॥ श्रीरामजयम्

# ॥ श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम् ॥

## युद्धकाण्डम्

### प्रथमखण्डः ॥

धर्मालयसंस्करणम् ।

***The Dharmalaya Edition.***

Edited by

The Late Rao Sahib P. S. KRISHNASWAMI IYER,

*Dharmalaya, Mylapore.*

Published with the aid of

Sri. M. N. RAMASWAMY IYER,

*Banker, Palghat.*

By

**R. Subrahmanya Vadhyar & Sons**

**BOOK-SELLERS & PUBLISHERS,**

**KALPATHI-PALGHAT**

Library Edition.] 1941 [Price Rs. 1—8—0

Printed at
THE SCHOLAR PRESS,
PALGHAT

॥ श्रीः ॥

# ॥ विषयानुक्रमणिका ॥


| विषयः | | | श्लोकसङ्ख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|---|
| हनुमत्प्रशंसा | ... | ... | 19 | 1 |
| सुग्रीवेण श्रीरामप्रोत्साहनम् | | ... | 26 | 4 |
| लङ्काया दुर्गादिकथनम् | ... | ... | 35 | 6 |
| ससैन्यस्य समुद्रतीरगमनम् | | ... | 125 | 10 |
| श्रीरामविलापः | ... | ... | 23 | 23 |
| रावणमन्त्रालोचनम् | ... | ... | 20 | 25 |
| राक्षसोक्तिः | ... | ... | 26 | 27 |
| प्रहस्तादिवचनम् | ... | ... | 24 | 30 |
| विभीषणोक्तिः | ... | ... | 24 | 33 |
| विभीषणहितोपदेशः | ... | ... | 30 | 36 |
| पुना रावणमन्त्रालोचनम् | ... | ... | 32 | 39 |
| कुम्भकर्णप्रतिज्ञा | ... | ... | 42 | 43 |
| रावणमहापार्श्वसंवादः | ... | ... | 21 | 47 |
| विभीषणेन सीताप्रत्यर्पणकथनम् | | ... | 22 | 48 |
| इन्द्रजिद्विभीषणविवादः | ... | ... | 14 | 52 |
| रावणेन विभीषणनिन्दनम् | | ... | 27 | 54 |
| विभीषणशरणागतिः | ... | ... | 69 | 57 |
| विभीषणसंग्रहः | ... | ... | 40 | 64 |
| दर्भशयनम् | ... | ... | 44 | 68 |
| शुकसन्देशः | ... | ... | 36 | 72 |
| समुद्रसंक्षोभः (श्रीरामक्रोधः) | | ... | 37 | 77 |
| सेतुबन्धः समुद्रतरणं च | ... | ... | 91 | 81 |

| सर्गः | विषयः | श्लोकसङ्ख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| 23. | लङ्काप्रस्थानम् ... ... | 16 | 90 |
| 24. | रावणात्मश्लाघा ... ... | 46 | 92 |
| | विशेऽस्मिं गीताः श्लोकाः 889 | | |
| 25 | शुकसारणवचनम् ... ... | 35 | 97 |
| 26 | वानरसेनादर्शनम् ... ... | 53 | 101 |
| 27. | वानरपराक्रमादिकथनम् ... ... | 49 | 107 |
| 28. | वानरसङ्ख्याकथनम् ... ... | 45 | 112 |
| 29. | शार्दूलादिचारप्रेषणम् ... ... | 33 | 117 |
| 30 | वानरनामनिर्देशः ... ... | 36 | 120 |
| 31. | सीतामोहनम् ... ... | 49 | 124 |
| 32. | सीताविलापः ... ... | 44 | 129 |
| 33. | सीतासमाश्वासनम् ... ... | 41 | 134 |
| 34. | सरमया रावणाशयकथनम् ... | 29 | 138 |
| 35. | माल्यवदुपदेशः ... ... | 43 | 141 |
| 36. | लङ्कागुप्तिः ... ... ... | 23 | 145 |
| 37. | श्रीरामेण सेनाव्यूहनम् ... ... | 41 | 148 |
| 38. | लङ्कादर्शनार्थं सुवेलारोहणम् ... | 21 | 152 |
| 39. | लङ्कादर्शनम् ... ... | 31 | 154 |
| 40 | सुग्रीवरावणयोर्द्वन्द्वयुद्धम् ... | 34 | 157 |
| 41 | अङ्गददौत्यम् ... ... | 104 | 161 |
| 42. | युद्धारंभः ... ... ... | 48 | 172 |
| 43. | द्वन्द्वयुद्धवर्णनम् ... ... | 48 | 176 |
| 44. | रात्रियुद्धम् ... ... ... | 46 | 181 |
| 45. | नागपाशबन्धः ... ... | 29 | 186 |
| 46. | सुग्रीवाद्यनुशोचनम् ... ... | 51 | 189 |
| 47. | सीतायै वीरशयनस्थरामलक्ष्मणप्रदर्शनम् | 26 | 194 |
| 48. | सीताप्रलापः ... ... | 41 | 197 |

| सर्गः | विषयः | | | श्लोकसङ्ख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|---|---|
| 49. | श्रीरामप्रबोधः | ... | ... | 35 | 201 |
| 50. | नागपाशविमोचनम् | ... | ... | 66 | 204 |
| | | एकविंशेऽह्नि गीताः श्लोकाः 1101 | | | |
| 51. | धूम्राक्षनिर्गमः | ... | ... | 40 | 211 |
| 52. | धूम्राक्षवधः ... | ... | ... | 41 | 215 |
| 53. | वज्रदंष्ट्रयुद्धम् | ... | ... | 35 | 219 |
| 54. | वज्रदंष्ट्रवधः ... | ... | ... | 40 | 222 |
| 55. | अकंपनयुद्धम् | ... | ... | 33 | 227 |
| 56. | अकम्पनवधः | ... | .. | 39 | 230 |
| 57. | प्रहस्तयुद्धम् | ... | ... | 48 | 235 |
| 58. | प्रहस्तवधः ... | ... | ... | 67 | 240 |
| 59. | रावणमकुटभङ्गः | ... | ... | 157 | 246 |
| 60. | कुम्भकर्णप्रबोधनम् | .... | ... | 106 | 262 |
| 61. | श्रीरामाय कुम्भकर्णवर्णनम् | | ... | 43 | 273 |
| 62. | कुम्भकर्णसान्त्वनम् | ... | ... | 28 | 277 |
| 63. | कुम्भकर्णोपदेशः | ... | ... | 59 | 280 |
| 64. | महोदरेण कुम्भकर्णभर्त्सनम् | | ... | 36 | 286 |
| 65. | युद्धाय कुम्भकर्णनिर्याणम् | | ... | 60 | 290 |
| 66. | कुम्भकर्णयुद्धम् | ... | ... | 36 | 296 |
| 67. | कुम्भकर्णवधः | ... | ... | 187 | 300 |
| 68. | रावणविलापः | ... | ... | 24 | 319 |
| 69. | नरान्तकवधः | ... | ... | 104 | 322 |
| 70. | देवान्तकादिवधः | ... | ... | 68 | 332 |
| | | द्वाविंशेऽह्नि गीताः श्लोकाः 1251 | | | |

॥ ॐ ॥

॥ अथ स्मार्तानां श्रीरामायणपठनोपक्रमेऽनुसन्धेयाः श्लोकाः ॥

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥ २ ॥

दोर्भिर्युक्ता चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना
हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण ।
भासा कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकमणिनिभा भासमानाऽसमाना
सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ ४ ॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ५ ॥

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ६ ॥

गोष्पदीकृतवाराशिं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ ७ ॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ ८ ॥

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ ९ ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥
यः कर्णाञ्जलिसंपुटैरहरहः सम्यक् पिबत्यादरात्
वाल्मीकेर्वदनारविन्दगलितं रामायणाख्यं मधु ।
जन्मव्याधिजराविपत्तिमरणैरत्यन्तसोपद्रवं
संसारं स विहाय गच्छति पुमान्विष्णोः पदं शाश्वतम् ॥
तदुपगतसमाससन्धियोगं सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥
वाल्मीकिगिरिसंभूता रामसागरगामिनी ।
पुनातु भुवनं पुण्या रामायणमहानदी ॥ १५ ॥
श्लोकसारजलाकीर्णं सर्गकल्लोलसङ्कुलम् ।
काण्डग्राहमहामीनं वन्दे रामायणार्णवम् ॥ १६ ॥
वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १७ ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥

वामे भूमिसुता पुरश्च हनुमान् पश्चात्सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ॥
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः॥

॥ पारायणसमापनसमये अनुसन्धेयश्लोकक्रमः ॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ १ ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणास्सन्तु निर्भयाः ॥ २ ॥

अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ॥ ३ ॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥ ४ ॥

शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा ।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा ॥ ५ ॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ ६ ॥

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ७ ॥

यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताऽकल्पयत्पुरा ।
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ८ ॥

अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत् ।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ९ ॥

त्रीन्विक्रमान् प्रक्रमतो विष्णोरमिततेजसः ।
यदासीन्मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ १० ॥

ऋतवः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु तव सर्वदा ॥ ११ ॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुध्याऽऽत्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥ १२ ॥

॥ श्रीवैष्णवानां श्रीरामायणपठनोपक्रमेनुसन्धेयाः श्लोकाः ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ १ ॥
वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ २ ॥
यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ३ ॥
गोष्पदीकृतवाराशिं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ ४ ॥
अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ ५ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ ७ ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १० ॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥

श्रीराघवं दशरथात्मजमप्रमेयं
सीतापतिं रघुकुलान्वयरत्नदीपम् ।
आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्षं
रामं निशाचरविनाशकरं नमामि ॥ १२ ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥

॥ पारायणसमापनक्रमः ॥

एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ १ ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ २ ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणास्सन्तु निर्भयाः ॥ ३ ॥

कावेरी वर्धतां काले काले वर्षतु वासवः ।
श्रीरङ्गनाथो जयतु श्रीरङ्गश्रीश्च वर्धताम् ॥ ४ ॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ ५ ॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ६ ॥

वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामलमूर्तये ।
पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥ ७ ॥

विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिलानगरीपतेः ।
भाग्यानां परिपाकाय भव्यरूपाय मङ्गलम् ॥ ८ ॥

पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया ।
नन्दिताखिललोकाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ ९ ॥

त्यक्तसाकेतवासाय चित्रकूटविहारिणे ।
सेव्याय सर्वयमिनां धीरोदाराय मङ्गलम् ॥ १० ॥

सौमित्रिणा च जानक्या चापबाणासिधारिणे ।
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम् ॥ ११ ॥

दण्डकारण्यवासाय खण्डितामरशत्रवे ।
गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायास्तु मङ्गलम् ॥ १२ ॥

सादरं शबरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे ।
सौलभ्यपरिपूर्णाय सत्त्वोद्रिक्ताय मङ्गलम् ॥ १३ ॥

हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्टदायिने ।
वालिप्रमथनायास्तु महाधीराय मङ्गलम् ॥ १४ ॥

श्रीमते रघुवीराय सेतूल्लङ्घितसिन्धवे ।
जितराक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम् ॥ १५ ॥

आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय सीतया ।
राजाधिराजराजाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ १६ ॥

मङ्गलाशासनपरैर्मदाचार्यपुरोगमैः ।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम् ॥ १७ ॥

॥ अथ माध्वानां रामायणपठनोपक्रमेऽनुसन्धेयाः श्लोकाः ॥

शुक्लांबरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

लक्ष्मीनारायणं वन्दे तद्भक्तप्रवरो हि यः ।
श्रीमदानन्दतीर्थाख्यो गुरुस्तं च नमाम्यहम् ॥ २ ॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च विष्णुः सर्वत्र गीयते ॥ ३ ॥

सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वसिद्धिकरं परम् ।
सर्वजीवप्रणेतारं वन्दे विजयदं हरिम् ॥ ४ ॥

सर्वाभीष्टप्रदं रामं सर्वारिष्टनिवारकम् ।
जानकीजानिमनिशं वन्दे मद्गुरुवन्दितम् ॥ ५ ॥

अभ्रमं भङ्गरहितमजडं विमलं सदा ।
आनन्दतीर्थमतुलं भजे तापत्रयापहम् ॥ ६ ॥

भवति यदनुभावादेडमूकोऽपि वाग्मी
जडमतिरपि जन्तुर्जायते प्राज्ञमौलिः ।
सकलवचनचेतोदेवता भारती सा
मम वचसि विधत्तां सन्निधिं मानसे च ॥ ७ ॥

मिथ्यासिद्धान्तदुर्ध्वान्तविध्वंसनविचक्षणः ।
जयतीर्थाख्यतरणिर्भासतां नो हृदम्बरे ॥ ८ ॥

चित्रैः पदैश्च गम्भीरैर्वाक्यैर्मानैरखण्डितैः ।
गुरुभावं व्यञ्जयन्ती भाति श्रीजयतीर्थवाक् ॥ ९ ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ १० ॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ११ ॥

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ १२ ॥

गोष्पदीकृतवाराशिं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ १३ ॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ १४ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १९ ॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥ २० ॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥

वन्दे वन्द्यं विधिभवमहेन्द्रादिबृन्दारकेन्द्रैः
व्यक्तं व्याप्तं स्वगुणगणतो देशतः कालतश्च ।
धूतावद्यं सुखचितिमयैर्मङ्गलैर्युक्तमङ्गैः
सानाथ्यं नो विदधदधिकं ब्रह्म नारायणाख्यम् ॥

भूषारत्नं भुवनवलयस्याखिलाश्चर्यरत्नं
लीलारत्नं जलधिदुहितुर्देवतामौलिरत्नम् ।
चिन्तारत्नं जगति भजतां सत्सरोजद्युरत्नं
कौसल्याया लसतु मम हृन्मण्डले पुत्ररत्नम् ॥ २४ ॥

महाव्याकरणाम्भोधिमन्थमानसमन्दरम् ।
कवयन्तं रामकीर्त्या हनुमन्तमुपास्महे ॥ २५ ॥

मुख्यप्राणाय भीमाय नमो यस्य भुजान्तरम् ।
नानावीरसुवर्णानां निकषाश्मायितं बभौ ॥ २६ ॥

स्वान्तस्थानन्तशय्याय पूर्णज्ञानमहार्णसे ।
उत्तुङ्गवाक्तरङ्गाय मध्वदुग्धाब्धये नमः ॥ २७ ॥

वाल्मीकेर्गोः पुनीयान्नो महीधरपदाश्रया ।
यद्दुग्धमुपजीवन्ति कवयस्तर्णका इव ॥ २८ ॥

सूक्तिरत्नाकरे रम्ये मूलरामायणार्णवे ।
विहरन्तो महीयांसः प्रीयन्तां गुरवो मम ॥ २९ ॥

हयग्रीव हयग्रीव हयग्रीवेति यो वदेत् ।
तस्य निःसरते वाणी जह्नुकन्याप्रवाहवत् ॥ ३० ॥

पारायणसमापनक्रमः ॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ १ ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणास्सन्तु निर्भयाः ॥ २ ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ ३ ॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ४ ॥

इत्यादिश्लोकाः श्रीवैष्णवपद्धतिवदनुसन्धेयाः ॥



श्रीराम-दरबार

THE GITA PRESS, GORAKHPUR.

No. 1016.

ॐ

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीसीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्नहनुमत्समेतश्रीरामचन्द्रस्वामिने नमः ॥

# ॥ श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम् ॥

## युद्धकाण्डम्

### प्रथमखण्डः ॥



[पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे द्वात्रिंशति
दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे त्रिंशत्तमेऽह्नि युद्धकाण्डे
प्रथमसर्गमारभ्य चतुर्विंशसर्गपर्यन्तं
(14676—15564 श्लोकाः) गीतम्। तस्मिन् दिने
गीताः श्लोकाश्च 889]

प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

हनुमत्प्रशंसा ॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं यथावदभिभाषितम् ।
रामः प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

कृतं हनुमता कार्यं सुमहद्भुवि दुष्करम् ।
मनसाऽपि यदन्येन न शक्यं धरणीतले ॥ २ ॥

न हि तं परिपश्यामि यस्तरेत महार्णवम् ।
अन्यत्र गरुडाद्वायोरन्यत्र च हनूमतः ॥ ३ ॥

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
अप्रधृष्यां पुरीं लङ्कां रावणेन सुरक्षिताम् ॥
प्रविष्टः सत्त्वमाश्रित्य जीवन् को नाम निष्क्रमेत् ॥ ४ ॥

को विशेत्सुदुराधर्षां राक्षसैश्च सुरक्षिताम् ।
यो वीर्यबलसंपन्नो न समः स्याद्धनूमतः ॥ ५ ॥

भृत्यकार्यं हनुमता सुग्रीवस्य कृतं महत् ।
एवं विधाय स्वबलं सदृशं विक्रमस्य च ॥ ६ ॥

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन्भर्त्रा कर्मणि दुष्करे ।
कुर्यात्तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७ ॥

नियुक्तो यः परं कार्यं न कुर्यान्नृपतेः प्रियम् ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥ ८ ॥

नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद्यः समाहितः ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ ९ ॥

तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता ।
न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः ॥ १० ॥

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः ।
वैदेह्या दर्शनेनाद्य धर्मतः परिरक्षिताः ॥ ११ ॥

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति ।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम् ॥ १२ ॥

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः ।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे ।
हनूमन्तं महात्मानं कृतकार्यमुपागतम् ॥ १४ ॥

ध्यात्वा पुनरुवाचेदं वचनं रघुसत्तमः ।
हरीणामीश्वरस्यैव सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ १५ ॥

सर्वथा सुकृतं तावत्सीतायाः परिमार्गणम् ।
सागरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम ॥ १६ ॥

कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महाम्भसः ।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समाहिताः ॥ १७ ॥

यद्यप्येष तु वृत्तान्तो वैदेह्या गदितो मम ।
समुद्रपारगमने हरीणां किमिवोत्तरम् ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा शोकसंभ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हणः ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपागमत् ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 14694 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 19

## द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

### सुग्रीवेण श्रीरामप्रोत्साहनम् ॥

तं तु शोकपरिद्यूनं रामं दशरथात्मजम् ।
उवाच वचनं श्रीमान्सुग्रीवः शोकनाशनम् ॥ १ ॥

किं त्वं संतप्यसे वीर यथाऽन्यः प्राकृतस्तथा ॥ २ ॥

मैवं भूस्त्यज संतापं कृतघ्न इव सौहृदम् ॥ ३ ॥

संतापस्य च ते स्थानं न हि पश्यामि राघव ।
प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः ॥ ४ ॥

मतिमाञ्छास्त्रवित्प्राज्ञः पण्डितश्चासि राघव ।
त्यजेमां पापिकां बुद्धिं कृतात्मेवार्थदूषणीम् ॥ ५ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु महानक्रसमाकुलम् ।
लङ्कामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च रावणम् ॥ ६ ॥

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ॥ ७ ॥

इमे शूराः समर्थाश्च सर्वे नो हरियूथपाः ।
त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहाः प्रवेष्टुमपि पावकम् ॥ ८ ॥

एषां हर्षेण जानामि तर्कश्चास्मिन्दृढो मम ॥ ९ ॥

विक्रमेण समानेष्ये सीतां हत्वा यथा रिपुम् ।
रावणं पापकर्माणं तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ १० ॥

सेतुरत्र यथा बध्येद्यथा पश्येम तां पुरीम् ।
तस्य राक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राघव ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा तां तु पुरीं लङ्कां त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ।
हतं च रावणं युद्धे दर्शनादुपधारय ॥ १२ ॥

अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरे तु वरुणालये ।
लङ्का न मर्दितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ १३ ॥

सेतुर्बद्धः समुद्रे च यावल्लङ्कासमीपतः ।
इमे हि समरे शूरा हरयः कामरूपिणः ॥ १४ ॥

तदलं विक्लवा बुद्धी राजन्सर्वार्थनाशिनी ।
पुरुषस्य हि लोकेऽस्मिञ्छोकः शौर्यापकर्षणः ॥ १५ ॥

यत्तु कार्यं मनुष्येण शौण्डीर्यमवलम्बता ।
अस्मिन्काले महाप्राज्ञ सत्त्वमातिष्ठ तेजसा ॥ १६ ॥

शूराणां हि मनुष्याणां त्वद्विधानां महात्मनाम् ।
विनष्टे वा प्रनष्टे वा शोकः सर्वार्थनाशनः ॥ १७ ॥

त्वं तु बुद्धिमतां श्रेष्ठः सर्वशास्त्रार्थकोविदः ।
मद्विधैः सचिवैः सार्धमरिं जेतुमिहार्हसि ॥ १८ ॥

न हि पश्याम्यहं कञ्चित्त्रिषु लोकेषु राघव ।
गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे ॥ १९ ॥

वानरेषु समासक्तं न ते कार्यं विपत्स्यते ।
अचिराद्द्रक्ष्यसे सीतां तीर्त्वा सागरमक्षयम् ॥ २० ॥

तदलं शोकमालम्ब्य क्रोधमालम्ब भूपते ।
निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः सर्वे चण्डस्य बिभ्यति ॥ २१ ॥

लङ्घनार्थं च घोरस्य समुद्रस्य नदीपतेः ।
सहास्माभिरिहोपेतः सूक्ष्मबुद्धिर्विचारय ॥ २२ ॥
सर्वं तीर्णं च मे सैन्यं जितमित्युपधार्यताम् ॥ २३ ॥

इमे हि हरयः शूरा विक्रान्ताः कामरूपिणः ।
तानरीन्विधमिष्यन्ति शिलापादपवृष्टिभिः ॥ २४ ॥

कथञ्चित्संतरिष्यामस्ते वयं वरुणालयम् ।
हतमित्येव तं मन्ये युद्धे शत्रुनिबर्हण ॥ २५ ॥

किमुक्त्वा बहुधा चापि सर्वथा विजयी भवान् ।
निमित्तानि च पश्यामि मनो मे संप्रहृष्यति ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 14720 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 45

## तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

लङ्काया दुर्गादिकथनम् ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवित् ।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

तपसा सेतुबन्धेन सागरोच्छोषणेन वा ।
सर्वथा सुसमर्थोऽस्मि सागरस्यास्य लङ्घने ॥ २ ॥

कति दुर्गाणि दुर्गाया लङ्कायाः ब्रूहि तानि मे ।
ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं दर्शनादिव वानर ॥ ३ ॥

बलस्य परिमाणं च द्वारदुर्गक्रियामपि ।
गुप्तिकर्म च लङ्काया रक्षसां सदनानि च ॥ ४ ॥

यथासुखं यथावच्च लङ्कायामसि दृष्टवान् ।
सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन सर्वथा कुशलो ह्यसि ॥ ५ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचनं हनुमान्मारुतात्मजः ।
प्रणम्य शिरसा रामं प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो रामं पुनरथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये दुर्गकर्मविधानतः ।
गुप्ता पुरी यथा लङ्का रक्षिता च यथा बलैः ॥ ७ ॥

राक्षसाश्च यथा स्निग्धा रावणस्य च तेजसा ।
परां समृद्धिं लङ्कायाः सागरस्य च भीमताम् ॥
विभागं च बलौघस्य निर्देशं वाहनस्य च ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा कपिश्रेष्ठः कथयामास तत्त्वतः ॥ ९ ॥

हृष्टप्रमुदिता लङ्का मत्तद्विपसमाकुला ।
महती रथसंपूर्णा रक्षोगणसमाकुला ॥
वाजिभिश्च सुसंपूर्णा सा पुरी दुर्गमा परैः ॥ १० ॥

दृढबद्धकवाटानि महापरिघवन्ति च ।
द्वाराणि विपुलान्यस्याश्चत्वारि सुमहान्ति च ॥ ११ ॥

तत्रेषूपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च ।
आगतं परसैन्यं तु तत्र तैः प्रतिहन्यते ॥ १२ ॥

द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः ।
शतशो रचिता वीरैः शतघ्न्यो रक्षसां गणैः ॥ १३ ॥

सौवर्णश्च महांस्तस्याः प्राकारो दुष्प्रधर्षणः ।
मणिविद्रुमवैडूर्यमुक्ताविरचितान्तरः ॥ १४ ॥

सर्वतश्च महाभीमाः शीततोयवहाः शुभाः ।
अगाधा ग्राहवत्यश्च परिखा मीनसंकुलाः ॥ १५ ॥

द्वारेषु तासां चत्वारः संक्रमाः परमायताः ।
यन्त्रैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्गृहपङ्क्तिभिः ॥ १६ ॥

त्रायन्ते संक्रमास्तत्र परसैन्यागमे सति ।
यन्त्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः ॥ १७ ॥

एकस्त्वकम्प्यो बलवान्संक्रमः सुमहादृढः ।
काञ्चनैर्बहुभिः स्तम्भैर्वेदिकाभिश्च शोभितः ॥ १८ ॥

स्वयं प्रकृतिसंपन्नो युयुत्सू राम रावणः ।
उत्थितश्चाप्रमत्तश्च बलानामनुदर्शने ॥ १९ ॥

लङ्का पुनर्निरालम्बा देवदुर्गा भयावहा ।
नादेयं पार्वतं वान्यं कृत्रिमं च चतुर्विधम् ॥ २० ॥

स्थिता पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राघव ।
नौपथोऽपि च नास्त्यत्र निरादेशश्च सर्वतः ॥ २१ ॥

शैलाग्रे रचिता दुर्गा सा पूर्देवपुरोपमा ।
वाजिवारणसंपूर्णा लङ्का परमदुर्जया ॥ २२ ॥

परिखाश्च शतघ्न्यश्च यन्त्राणि विविधानि च ।
शोभयन्ति पुरीं लङ्कां रावणस्य दुरात्मनः ॥ २३ ॥

अयुतं रक्षसामत्र पूर्वद्वारं समाश्रितम् ।
शूलहस्ता दुराधर्षाः सर्वे खड्गाग्रयोधिनः ॥ २४ ॥

नियुतं रक्षसामत्र दक्षिणद्वारमाश्रितम् ।
चतुरङ्गेण सैन्येन योधास्तत्राप्यनुत्तमाः ॥ २५ ॥

प्रयुतं रक्षसामत्र पश्चिमद्वारमाश्रितम् ।
चर्मखड्गधराः सर्वे तथा सर्वास्त्रकोविदाः ॥ २६ ॥

न्यर्बुदं रक्षसामत्र उत्तरद्वारमाश्रितम् ।
रथिनश्चाश्ववाहाश्च कुलपुत्राः सुपूजिताः ॥ २७ ॥

शतशोऽथ सहस्राणि मध्यमं स्कन्धमाश्रिताः ।
यातुधाना दुराधर्षाः शतकोटिश्च रक्षसाम् ॥ २८ ॥

बलैकदेशः क्षपितो राक्षसानां दुरात्मनाम् ॥ २९ ॥

ते मया संक्रमा भग्नाः परिखाश्चावपूरिताः ।
दग्धा च नगरी लङ्का प्राकाराश्चावसादिताः ॥ ३० ॥

येन केन च मार्गेण तराम वरुणालयम् ॥ ३१ ॥

हतेति नगरी लङ्का वानरैरवधार्यताम् ॥ ३२ ॥

अङ्गदो द्विविदो मैन्दो जाम्बवान्पनसो नलः ।
नीलः सेनापतिश्चैव बलशेषेण किं तव ॥ ३३ ॥

प्लवमाना हि गत्वा तां रावणस्य महापुरीम् ।
सपर्वतवनां भित्त्वा सखातां सप्रतोरणाम् ॥
सप्राकारां सभवनामानयिष्यन्ति मैथिलीम् ॥ ३४ ॥

एवमाज्ञापय क्षिप्रं बलानां सर्वसंग्रहम् ।
मुहूर्तेन तु युक्तेन प्रस्थानमभिरोचय ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 14755 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 80

## चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

ससैन्यस्य श्रीरामस्य समुद्रतीरगमनम् ॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं यथावदनुपूर्वशः ।
ततोऽब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥

यां निवेदयसे लङ्कां पुरीं भीमस्य रक्षसः ।
क्षिप्रमेनां वधिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २ ॥

अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय ।
युक्तो मुहूर्तो विजयः प्राप्तो मध्यं दिवाकरः ॥ ३ ॥

अस्मिन्मुहूर्ते विजये प्राप्ते मध्यं दिवाकरे ।
सीतां हृत्वा तु मे जातु क्वासौ यास्यति यास्यतः ॥ ४ ॥

सीता श्रुत्वाऽभियानं मे आशामेष्यति जीविते ।
जीवितान्तेऽमृतं स्पृष्ट्वा पीत्वा विषमिवातुरः ॥ ५ ॥

उत्तराफल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते ॥ ६ ॥

अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः ॥ ७ ॥

निमित्तानि च धन्यानि यानि प्रादुर्भवन्ति च ।
निहत्य रावणं संख्ये ह्यानयिष्यामि जानकीम् ॥ ८ ॥

उपरिष्टाद्धि नयनं स्फुरमाणमिदं मम ।
विजयं समनुप्राप्तं शंसतीव मनोरथम् ॥ ९ ॥

ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः ।
उवाच रामो धर्मात्मा पुनरप्यर्थकोविदः ॥ १० ॥

अग्रे यातु बलस्यास्य नीलो मार्गमवेक्षितुम् ।
वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ॥ ११ ॥

फलमूलवता नील शीतकाननवारिणा ।
पथा मधुमता चाशु सेनां सेनापते नय ॥ १२ ॥

दूषयेयुर्दुरात्मानः पथि मूलफलोदकम् ।
राक्षसाः परिरक्षेथास्तेभ्यस्त्वं नित्यमुद्यतः ॥ १३ ॥

निम्नेषु वनदुर्गेषु वनेषु च वनौकसः ।
अभिप्लुत्याभिपश्येयुः परेषां निहतं बलम् ॥ १४ ॥

यच्च फल्गु बलं किञ्चित्तदत्रैवोपयुज्यताम् ।
एतद्धि कृत्यं घोरं नो विक्रमेण प्रयुज्यताम् ॥ १५ ॥

सागरौघनिभं भीममग्रानीकं महाबलाः ।
कपिसिंहाः प्रकर्षन्तु शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १६ ॥

गजश्च गिरिसङ्काशो गवयश्च महाबलः ।
गवाक्षश्चाग्रतो यान्तु गवां दृप्ता इवर्षभाः ॥ १७ ॥

यातु वानरवाहिन्या वानरः प्लवतां वरः ।
पालयन् दक्षिणं पार्श्वमृषभो वानरर्षभः ॥ १८ ॥

गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः ।
यातु वानरवाहिन्याः सव्यं पार्श्वमधिष्ठितः ॥ १९ ॥

यास्यामि बलमध्येऽहं बलौघमभिहर्षयन् ।
अधिरुह्य हनूमन्तमैरावतमिवेश्वरः ॥ २० ॥

अङ्गदेनैष संयातु लक्ष्मणश्चान्तकोपमः ।
सार्वभौमेन भूतेशो द्रविणाधिपतिर्यथा ॥ २१ ॥

जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
ऋक्षराजो महासत्त्वः कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः ॥ २२ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
व्यादिदेश महावीर्यान्वानरान्वानरर्षभः ॥ २३ ॥

ते वानरगणाः सर्वे समुत्पत्य युयुत्सवः ।
गुहाभ्यः शिखरेभ्यश्च आशु पुप्लुविरे तदा ॥ २४ ॥

ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः ।
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ॥ २५ ॥

शतैः शतसहस्रैश्च कोटीभिरयुतैरपि ।
वारणाभैश्च हरिभिर्ययौ परिवृतस्तदा ॥ २६ ॥

तं यान्तमनुयाति स्म महती हरिवाहिनी ॥ २७ ॥

हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे सुग्रीवेणाभिपालिताः ।
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ॥
क्ष्वेलन्तो निनदन्तस्ते जग्मुर्वै दक्षिणां दिशम् ॥ २८ ॥

भक्षयन्तः सुगन्धीनि मधूनि च फलानि च ।
उद्वहन्तो महावृक्षान्मञ्जरीपुञ्जधारिणः ॥ २९ ॥

अन्योन्यं सहसा दृप्ता निर्वहन्ति क्षिपन्ति च ।
पततश्चाक्षिपन्त्यन्ये पातयन्त्यपरे परान् ॥ ३० ॥

रावणो नो निहन्तव्यः सर्वे च रजनीचराः ।
इति गर्जन्ति हरयो राघवस्य समीपतः ॥ ३१ ॥

पुरस्तादृषभो वीरो नीलः कुमुद एव च ।
पन्थानं शोधयन्ति स्म वानरैर्बहुभिः सह ॥ ३२ ॥

मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च ।
बहुभिर्बलिभिर्भीमैर्वृताः शत्रुनिबर्हणाः ॥ ३३ ॥

हरिः शतबलिर्वीरः कोटीभिर्दशभिर्वृतः ।
सर्वामेको ह्यवष्टभ्य ररक्ष हरिवाहिनीम् ॥ ३४ ॥

कोटीशतपरीवारः केसरी पनसो गजः ।
अर्कश्चातिबलः पार्श्वमेकं तस्याभिरक्षति ॥ ३५ ॥

सुषेणो जाम्बवांश्चैव ऋक्षैश्च बहुभिर्वृतौ ।
सुग्रीवं पुरतः कृत्वा जघनं संररक्षतुः ॥ ३६ ॥

तेषां सेनापतिर्वीरो नीलो वानरपुङ्गवः ।
संपतन्पततां श्रेष्ठस्तद्बलं पर्यपालयत् ॥ ३७ ॥

दरीमुखः प्रजङ्घश्च रम्भोऽथ रभसः कपिः ।
सर्वतश्च ययुर्वीरास्त्वरयन्तः प्लवङ्गमान् ॥ ३८ ॥

एवं ते हरिशार्दूला गच्छन्तो बलदर्पिताः ।
अपश्यंस्ते गिरिश्रेष्ठं सह्यं द्रुमलतायुतम् ॥
सरांसि च सुफुल्लानि तटाकानि वनानि च ॥ ३९ ॥

रामस्य शासनं ज्ञात्वा भीमकोपस्य भीतवत् ।
वर्जयन्नगराभ्याशांस्तथा जनपदानपि ॥ ४० ॥

सागरौघनिभं भीमं तद्वानरबलं महत् ।
निःससर्प महाघोषं भीमघोष इवार्णवः ॥ ४१ ॥

तस्य दाशरथेः पार्श्वे शूरास्ते कपिकुञ्जराः ।
तूर्णमापुप्लुवुः सर्वे सदश्वा इव चोदिताः ॥ ४२ ॥

कपिभ्यामूह्यमानौ तौ शुशुभाते नरोत्तमौ ।
महद्भ्यामिव संस्पृष्टौ ग्रहाभ्यां चन्द्रभास्करौ ॥ ४३ ॥

तमङ्गदगतो रामं लक्ष्मणः शुभया गिरा ।
उवाच परिपूर्णार्थः स्मृतिमान्प्रतिभानवान् ॥ ४४ ॥

हृतामवाप्य वैदेहीं क्षिप्रं हत्वा च रावणम् ।
समृद्धार्थः समृद्धार्थामयोध्यां प्रतियास्यसि ॥ ४५ ॥

महान्ति च निमित्तानि दिवि भूमौ च राघव ।
शुभानि तव पश्यामि सर्वाण्येवार्थसिद्धये ॥ ४६ ॥

अनुवाति शुभो वायुः सेनां मृदुहितः सुखः ॥ ४७ ॥

पूर्णवल्गुस्वराश्चेमे प्रवदन्ति मृगद्विजाः ॥ ४८ ॥

प्रसन्नाश्च दिशः सर्वा विमलश्च दिवाकरः ।
उशनाश्च प्रसन्नार्चिरनु त्वां भार्गवो गतः ॥ ४९ ॥

ब्रह्मराशिर्विशुद्धश्च शुद्धाश्च परमर्षयः ।
अर्चिष्मन्तः प्रकाशन्ते ध्रुवं सर्वे प्रदक्षिणम् ॥ ५० ॥

त्रिशङ्कुर्विमलो भाति राजर्षिः सपुरोहितः ।
पितामहवरोऽस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥ ५१ ॥

विमले च प्रकाशेते विशाखे निरुपद्रवे ।
नक्षत्रवरमस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥ ५२ ॥

नैर्ऋतं नैर्ऋतानां च नक्षत्रमभिपीड्यते ।
मूलो मूलवता स्पृष्टो धूप्यते धूमकेतुना ॥ ५३ ॥

सर्वं चैतद्विनाशाय राक्षसानामुपस्थितम् ।
काले कालगृहीतानां नक्षत्रं ग्रहपीडितम् ॥ ५४ ॥

प्रसन्नाः सुरसाश्चापो वनानि फलवन्ति च ।
प्रवान्त्यभ्यधिकं गन्धान्यथर्तुकुसुमा द्रुमाः ॥ ५५ ॥

व्यूढानि कपिसैन्यानि प्रकाशन्तेऽधिकं प्रभो ।
देवानामिव सैन्यानि सङ्ग्रामे तारकामये ॥ ५६ ॥

एवमार्य समीक्ष्यैतान्प्रीतो भवितुमर्हसि ।
इति भ्रातरमाश्वास्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥ ५७ ॥

अथावृत्य महीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः ।
ऋक्षवानरशार्दूलैर्नखदंष्ट्रायुधैर्वृता ॥ ५८ ॥

कराग्रैश्चरणाग्रैश्च वानरैरुत्थितं रजः ।
भीममन्तर्दधे लोकं निवार्य सवितुः प्रभाम् ॥ ५९ ॥

सपर्वतवनाकाशां दक्षिणां हरिवाहिनी ।
छादयन्ती ययौ भीमा द्यामिवाम्बुदसंततिः ॥ ६० ॥

उत्तरन्त्यां च सेनायां सन्ततं बहुयोजनम् ।
नदीस्रोतांसि सर्वाणि सस्यन्दुर्विपरीतवत् ॥ ६१ ॥

सरांसि विमलाम्भांसि द्रुमाकीर्णांश्च पर्वतान् ।
समान्भूमिप्रदेशांश्च वनानि फलवन्ति च ॥
मध्येन च समन्ताच्च तिर्यक्चाधश्च साऽऽविशत् ॥ ६२ ॥

समावृत्य महीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः ॥ ६३ ॥

ते हृष्टमनसः सर्वे जग्मुर्मारुतरंहसः ।
हरयो राघवस्यार्थे समारोपितविक्रमाः ॥ ६४ ॥

हर्षवीर्यबलोद्रेकान्दर्शयन्तः परस्परम् ।
यौवनोत्सेकजान्दर्पान्विविधांश्चक्रुरध्वनि ॥ ६५ ॥

तत्र केचिद्द्रुतं जग्मुरुत्पेतुश्च तथाऽपरे ।
केचित्किलकिलां चक्रुर्वानरा वनगोचराः ॥ ६६ ॥

प्रास्फोटयंश्च पुच्छानि संनिजघ्नुः पदान्यपि ।
भुजान्विक्षिप्य शैलांश्च द्रुमानन्ये बभञ्जिरे ॥ ६७ ॥

आरोहन्तश्च शृङ्गाणि गिरीणां गिरिगोचराः ।
महानादान्विमुञ्चन्ति क्ष्वेलामन्ये प्रचक्रिरे ॥ ६८ ॥

ऊरुवेगैश्च ममृदुर्लताजालान्यनेकशः ।
जृम्भमाणाश्च विक्रान्ता विचिक्रीडुः शिलाद्रुमैः ॥ ६९ ॥

शतैः शतसहस्रैश्च कोटीभिश्च सहस्रशः ।
वानराणां तु घोराणां यूथैः परिवृता मही ॥ ७० ॥

सा स्म याति दिवारात्रं महती हरिवाहिनी ।
हृष्टा प्रमुदिता सेना सुग्रीवेणाभिरक्षिता ॥ ७१ ॥

वानरास्त्वरितं यान्ति सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
मुमोक्षयिषवः सीतां मुहूर्तं क्वापि नासत ॥ ७२ ॥

ततः पादपसंबाधं नानामृगसमायुतम् ।
सह्यपर्वतमासेदुर्मलयं च महीधरम् ॥ ७३ ॥

काननानि विचित्राणि नदीप्रस्रवणानि च ।
पश्यन्नभिययौ रामः सह्यस्य मलयस्य च ॥ ७४ ॥

बकुलांस्तिलकांश्चूतानशोकान्सिन्धुवारकान् ।
करवीरांश्च तिमिशान्भञ्जन्ति स्म प्लवङ्गमाः ॥ ७५ ॥

अङ्कोलांश्च करञ्जांश्च प्लक्षन्यग्रोधतिन्दुकान् ।
जम्बूकामलकान्नीपान्भञ्जन्ति स्म प्लवङ्गमाः ॥ ७६ ॥

प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः ।
वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम् ॥ ७७ ॥

मारुतः सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः ।
षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगन्धिषु ॥ ७८ ॥

अधिकं शैलराजस्तु धातुभिः सुविभूषितः ॥ ७९ ॥

धातुभ्यः प्रसृतो रेणुर्वायुवेगविघट्टितः ।
सुमहद्वानरानीकं छादयामास सर्वतः ॥ ८० ॥

गिरिप्रस्थेषु रम्येषु सर्वतः संप्रपुष्पिताः ।
केतक्यः सिन्धुवाराश्च वासन्त्यश्च मनोरमाः ॥ ८१ ॥

माधव्यो गन्धपूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च पुष्पिताः ।
चिरिबिल्वा मधूकाश्च बकुलाः प्रियकास्तथा ॥ ८२ ॥

स्फूर्जकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ।
चूताः पाटलयश्चैव कोविदाराश्च पुष्पिताः ॥ ८३ ॥

मुचुलिन्दार्जुनाश्चैव शिंशुपाः कुटजास्तथा ।
धवाः शाल्मलयश्चैव रक्ताः कुरवकास्तथा ॥ ८४ ॥

हिन्तालास्तिमिशाश्चैव चूर्णका नीपकास्तथा ।
नीलाशोकाश्च वरणा अङ्कोलाः पद्मकास्तथा
प्लवमानैः प्लवङ्गैस्तु सर्वे पर्याकुलीकृताः ॥ ८५ ॥

वाप्यस्तस्मिन्गिरौ शीता: पल्वलानि तथैव च ।
चक्रवाकानुचरिताः कारण्डवनिषेविताः ॥
प्लवैः क्रौञ्चैश्च संकीर्णा वराहमृगसेविताः ॥ ८६ ॥

ऋक्षैस्तरक्षुभिः सिंहैः शार्दूलैश्च भयावहैः ।
व्यालैश्च बहुभिर्भीमैः सेव्यमानाः समन्ततः ॥ ८७ ॥

पद्मैः सौगन्धिकैः फुल्लैः कुमुदैश्चोत्पलैस्तथा ।
वारिजैर्विविधैः पुष्पै रम्यास्तत्र जलाशयाः ॥ ८८ ॥

तस्य सानुषु कूजन्ति नानाद्विजगणास्तथा ॥ ८९ ॥

स्नात्वा पीत्वोदकान्यत्र जले क्रीडन्ति वानराः ।
अन्योन्यं प्लावयन्ति स्म शैलमारुह्य वानराः ॥ ९० ॥

फलान्यमृतगन्धीनि मूलानि कुसुमानि च ।
बुभुजुर्वानरास्तत्र पादपानां मदोत्कटाः ॥ ९१ ॥

द्रोणमात्रप्रमाणानि लम्बमानानि वानराः ।
ययुः पिबन्तो हृष्टास्ते मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥ ९२ ॥

पादपानवभञ्जन्तो विकर्षन्तस्तथा लताः ।
विधमन्तो गिरिवरान्प्रययुः प्लवगर्षभाः ॥ ९३ ॥

वृक्षेभ्योऽन्ये तु कपयो नर्दन्तो मधुदर्पिताः ।
अन्ये वृक्षान्प्रपद्यन्ते प्रपतन्त्यपि चापरे ॥ ९४ ॥

बभूव वसुधा तैस्तु संपूर्णा हरियूथपैः ।
यथा कलमकेदारैः पक्वैरिव वसुन्धरा ॥ ९५ ॥

महेन्द्रमथ संप्राप्य रामो राजीवलोचनः ।
अध्यारोहन्महाबाहुः शिखरं द्रुमभूषितम् ॥ ९६ ॥
ततः शिखरमारुह्य रामो दशरथात्मजः ।
कूर्ममीनसमाकीर्णमपश्यत्सलिलाकरम् ॥ ९७ ॥
ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम् ।
आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिस्वनम् ॥ ९८ ॥
अवरुह्य जगामाशु वेलावनमनुत्तमम् ।
रामो रमयतां श्रेष्ठः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥ ९९ ॥
अथ धौतोपलतलां तोयौघैः सहसोत्थितैः ।
वेलामासाद्य विपुलां रामो वचनमब्रवीत् ॥ १०० ॥
एते वयमनुप्राप्ताः सुग्रीव वरुणालयम् ।
इहेदानीं विचिन्ता सा या नः पूर्वं समुत्थिता ॥ १०१ ॥
अतः परमतीरोऽयं सागरः सरितां पतिः ।
न चायमनुपायेन शक्यस्तरितुमर्णवः ॥ १०२ ॥
तदिहैव निवेशोऽस्तु मन्त्रः प्रस्तूयतामिति ।
यथेदं वानरबलं परं पारमवाप्नुयात् ॥ १०३ ॥
इतीव स महाबाहुः सीताहरणकर्शितः ।
रामः सागरमासाद्य वासमाज्ञापयत्तदा ॥ १०४ ॥
सर्वाः सेना निवेश्यन्तां वेलायां हरिपुङ्गव ।
संप्राप्तो मन्त्रकालो नः सागरस्येह लङ्घने ॥ १०५ ॥
स्वां स्वां सेनां समुत्सृज्य मा च कश्चित्कुतो व्रजेत् ।
गच्छन्तु वानराः शूरा ज्ञेयं छन्नं भयं च नः ॥ १०६ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ।
सेनां न्यवेशयत्तीरे सागरस्य द्रुमायुते ॥ १०७ ॥

विरराज समीपस्थं सागरस्य च तद्बलम् ।
मधुपाण्डुजलः श्रीमान्द्वितीय इव सागरः ॥ १०८ ॥

वेलावनमुपागम्य ततस्ते हरिपुङ्गवाः ।
निविष्टाः परमं पारं काङ्क्षमाणा महोदधेः ॥ १०९ ॥

तेषां निविशमानानां सैन्यसन्नाहनिस्वनः ।
अन्तर्धाय महानादमर्णवस्य प्रशुश्रुवे ॥ ११० ॥

सा वानराणां ध्वजिनी सुग्रीवेणाभिपालिता ।
त्रिधा निविष्टा महती रामस्यार्थपराऽभवत् ॥ १११ ॥

सा महार्णवमासाद्य हृष्टा वानरवाहिनी ।
वायुवेगसमाधूतं पश्यमाना महार्णवम् ॥ ११२ ॥

दूरपारमसंबाधं रक्षोगणनिषेवितम् ।
पश्यन्तो वरुणावासं निषेदुर्हरियूथपाः ॥ ११३ ॥

झषनक्रग्रहं घोरं क्षपादौ दिवसक्षये ।
हसन्तमिव फेनौघैर्नृत्यन्तमिव चोर्मिभिः ॥ ११४ ॥

चन्द्रोदयसमाधूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम् ।
चण्डानिलमहाग्राहैः कीर्णं तिमितिमिङ्गलैः ॥ ११५ ॥

दीप्तभोगैरिवाकीर्णं भुजगैर्भुजगालयम् ।
अवगाढं महासत्त्वैर्नानाशैलसमाकुलम् ॥
सुदुर्गं दुर्गमार्गं तमगाधमसुरालयम् ॥ ११६ ॥

मकरैर्नागभोगैश्च विगाढा वातलोलिताः ।
उत्पेतुश्च निपेतुश्च प्रवृद्धा जलराशयः ॥ ११७ ॥
अग्निचूर्णमिवाविद्धं भास्वराम्बु महोरगम् ।
सुरारिविषयं घोरं पातालविषयं सदा ॥ ११८ ॥
सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् ।
सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषमदृश्यत ॥ ११९ ॥
संपृक्तं नभसाऽप्यम्भः संपृक्तं च नभोऽम्भसा ।
तादृग्रूपे स्म दृश्येते तारारत्नसमाकुले ॥ १२० ॥
समुत्पतितमेघस्य वीचिमालाकुलस्य च ।
विशेषो न द्वयोरासीत्सागरस्याम्बरस्य च ॥ १२१ ॥
अन्योन्यमाहताः सक्ताः सस्वनुर्भीमनिस्वनाः ।
ऊर्मयः सिन्धुराजस्य महाभेर्य इवाहवे ॥ १२२ ॥
रत्नौघजलसन्नादं विषक्तमिव वायुना ।
उत्पतन्तमिव क्रुद्धं यादोगणसमाकुलम् ॥ १२३ ॥
ददृशुस्ते महात्मानो वाताहतजलाशयम् ।
अनिलोद्धूतमाकाशे प्रवल्गन्तमिवोर्मिभिः ॥ १२४ ॥
ततो विस्मयमापन्ना ददृशुर्हरयस्तदा ।
भ्रान्तोर्मिजलसन्नादं प्रलोलमिव सागरम् ॥ १२५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 14880 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 205

## पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

### श्रीरामविलापः ॥

सा तु नीलेन विधिवत्स्वारक्षा सुसमाहिता ।
सागरस्योत्तरे तीरे साधु सेना निवेशिता ॥ १ ॥

मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ तत्र वानरपुङ्गवौ ।
विचेरतुश्च तां सेनां रक्षार्थं सर्वतो दिशम् ॥ २ ॥

निविष्टायां तु सेनायां तीरे नदनदीपतेः ।
पार्श्वस्थं लक्ष्मणं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति ।
मम चापश्यतः कान्तामहन्यहनि वर्धते ॥ ४ ॥

न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति वा ।
एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवर्तते ॥ ५ ॥

वाहि वात यतः कान्ता तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश ।
त्वयि मे गात्रसंस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागमः ॥ ६ ॥

तन्मे दहति गात्राणि विषं पीतमिवाशये ।
हा नाथेति प्रिया सा मां ह्रियमाणा यदब्रवीत् ॥ ७ ॥

तद्वियोगेन्धनवता तच्चिन्ताविपुलार्चिषा ।
रात्रिंदिवं शरीरं मे दह्यते मदनाग्निना ॥ ८ ॥

अवगाह्यार्णवं स्वप्स्ये सौमित्रे भवता विना ।
कथंचित्प्रज्वलन्कामः स मा सुप्तं जले दहेत् ॥ ९ ॥

बह्वेतत्कामयानस्य शक्यमेतेन जीवितुम् ।
यदहं सा च वामोरुरेकां धरणिमाश्रितौ ॥ १० ॥

केदारस्येव केदारः सोदकस्य निरूदकः ।
उपस्नेहेन जीवामि जीवन्तीं यच्छृणोमि ताम् ॥ ११ ॥

कदा नु खलु सुश्रोणीं शतपत्रायतेक्षणाम् ।
विजित्य शत्रून्द्रक्ष्यामि सीतां स्फीतामिव श्रियम् ॥

कदा नु चारुबिम्बोष्ठं तस्याः पद्ममिवाननम् ।
ईषदुन्नम्य पास्यामि रसायनमिवातुरः ॥ १३ ॥

तस्यास्तु संहतौ पीनौ स्तनौ तालफलोपमौ ।
कदा नु खलु सोत्कम्पौ हसन्त्या मां भजिष्यतः ॥

सा नूनमसितापाङ्गी रक्षोमध्यगता सती ।
मन्नाथा नाथहीनेव त्रातारं नाधिगच्छति ॥ १५ ॥

कथं जनकराजस्य दुहिता सा मम प्रिया ।
राक्षसीमध्यगा शेते स्नुषा दशरथस्य च ॥ १६ ॥

कदा विक्षोभ्य रक्षांसि सा विधूयोत्पतिष्यति ।
विधूय जलदान्नीलाञ्छशिरेखा शरत्स्विव ॥ १७ ॥

स्वभावतनुका नूनं शोकेनानशनेन च ।
भूयस्तनुतरा सीता देशकालविपर्ययात् ॥ १८ ॥

कदा नु राक्षसेन्द्रस्य निधायोरसि सायकान् ।
सीतां प्रत्याहरिष्यामि शोकमुत्सृज्य मानसम् ॥ १९ ॥

कदा नु खलु मे साध्वी सीता सुरसुतोपमा ।
सोत्कण्ठा कण्ठमालम्ब्य मोक्ष्यत्यानन्दजं पयः ॥ २० ॥

कदा शोकमिमं घोरं मैथिलीविप्रयोगजम् ।
सहसा विप्रमोक्ष्यामि वासः शुक्लेतरं यथा ॥ २१ ॥

एवं विलपतस्तस्य तत्र रामस्य धीमतः ।
दिनक्षयान्मन्दरुचिर्भास्करोऽस्तमुपागमत् ॥ २२ ॥

आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः संध्यामुपाविशत् ।
स्मरन्कमलपत्राक्षीं सीतां शोकाकुलीकृतः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 14903 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 228

## षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

### रावणमन्त्रालोचनम् ॥

लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम् ।
राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणेव महात्मना ॥
अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥ १ ॥

धर्षिता च प्रविष्टा च लङ्का दुष्प्रसहा पुरी ।
तेन वानरमात्रेण दृष्टा सीता च जानकी ॥ २ ॥

प्रासादो धर्षितश्चैत्यः प्रवरा राक्षसा हताः ।
आकुला च पुरी लङ्का सर्वा हनुमता कृता ॥ ३ ॥

किं करिष्यामि भद्रं वः किं वा युक्तमनन्तरम् ।
उच्यतां नः समर्थं यत्कृतं च सुकृतं भवेत ॥ ४ ॥

मन्त्रमूलं हि विजयं प्राहुरार्या मनस्विनः ।
तस्माद्वै रोचये मन्त्रं रामं प्रति महाबलाः ॥ ५ ॥

त्रिविधाः पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमाः ॥ ६ ॥

तेषां तु समवेतानां गुणदोषौ वदाम्यहम् ॥ ७ ॥

मन्त्रिभिर्हितसंयुक्तैः समर्थैर्मन्त्रनिर्णये ।
मित्रैर्वाऽपि समानार्थैर्बान्धवैरपि वा हितैः ॥ ८ ॥

सहितो मन्त्रयित्वा यः कर्मारंभान्प्रवर्तयेत् ।
दैवे च कुरुते यत्नं तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ ९ ॥

एकोऽर्थं विमृशेदेको धर्मे प्रकुरुते मनः ।
एकः कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥ १० ॥

गुणदोषावनिश्चित्य त्यक्त्वा दैवव्यपाश्रयम् ।
करिष्यामीति यः कार्यमुपेक्षेत्स नराधमः ॥ ११ ॥

यथेमे पुरुषा नित्यमुत्तमाधममध्यमाः ।
एवं मन्त्रा हि विज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः ॥ १२ ॥

ऐकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा ।
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम् ॥ १३ ॥

बह्व्योऽपि मतयो भूत्वा मन्त्रिणामर्थनिर्णये ।
पुनर्यत्रैकतां प्राप्ताः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः ॥ १४ ॥

अन्योऽन्यं मतिमास्थाय यत्र संप्रतिभाष्यते ।
न चैकमत्ये श्रेयोऽस्ति मन्त्रः सोऽधम उच्यते ॥ १५ ॥
तस्मात्सुमन्त्रितं साधु भवन्तो मन्त्रिसत्तमाः ।
कार्यं संप्रतिपद्यन्तामेतत्कृत्यं मतं मम ॥ १६ ॥
वानराणां हि वीराणां सहस्रैः परिवारितः ।
रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः ॥ १७ ॥
तरिष्यति च सुव्यक्तं राघवः सागरं सुखम् ।
तरसा युक्तरूपेण सानुजः सबलानुगः ॥
समुद्रमुच्छोषयति वीर्येणान्यत्करोति वा ॥ १८ ॥
खरो येन हतः संख्ये तस्य वीर्येण लक्ष्यते ॥ १९ ॥
अस्मिन्नेवंगते कार्येऽविरुद्धे वानरैः सह ।
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं संमन्त्र्यतां मम ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 14923 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 248

## सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

### राक्षसोक्तिः ॥

इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥
द्विषत्पक्षमविज्ञाय नीतिबाह्यास्त्वबुद्धयः ।
अविज्ञाय स्वपक्षं च राजानं भेदयन्ति हि ॥ २ ॥

राजन्परिघशक्त्यृष्टिशूलपट्टिशसङ्कुलम् ।
सुमहन्नो बलं कस्माद्विषादं भजते भवान् ॥ ३ ॥

त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिताः पन्नगा युधि ।
कैलासशिखरावासी यक्षैर्बहुभिरावृतः ॥
सुमहत्कदनं कृत्वा वश्यस्ते धनदः कृतः ॥ ४ ॥

स महेश्वरसख्येन श्लाघमानस्त्वया विभो ।
निर्जितः समरे रोषाल्लोकपालो महाबलः ॥ ५ ॥

विनिहत्य च यक्षौघान्विक्षोभ्य च विगृह्य च ।
त्वया कैलासशिखराद्विमानमिदमाहृतम् ॥ ६ ॥

मयेन दानवेन्द्रेण त्वद्भयात्सख्यमिच्छता ।
दुहिता तव भार्यार्थे दत्ता राक्षसपुङ्गव ॥ ७ ॥

दानवेन्द्रो मधुर्नाम वीर्योत्सिक्तो दुरासदः ।
विगृह्य वशमानीतः कुम्भीनस्याः सुखावहः ॥ ८ ॥

निर्जितास्ते महाबाहो नागा गत्वा रसातलम् ।
वासुकिस्तक्षकः शङ्खो जटी च वशमाहृताः ॥ ९ ॥

अक्षया बलवन्तश्च शूरा लब्धवराः पुनः ।
त्वया संवत्सरं युद्ध्वा समरे दानवा विभो ॥ १० ॥

स्वबलं समुपाश्रित्य नीता वशमरिन्दम ।
मायाश्चाधिगतास्तत्र बहवो राक्षसाधिप ॥ ११ ॥

शूराश्च बलवन्तश्च वरुणस्य सुता रणे ।
निर्जितास्ते महाबाहो चतुर्विधबलानुगाः ॥ १२ ॥

मृत्युदण्डमहाग्राहं शाल्मलिद्रुममण्डितम् ।
कालपाशमहावीचिं यमकिङ्करपन्नगम् ॥ १३ ॥

अवगाह्य त्वया राजन्यमस्य बलसागरम् ।
जयश्च विपुलः प्राप्तो मृत्युश्च प्रतिषेधितः ॥ १४ ॥

सुयुद्धेन च ते सर्वे लोकास्तत्र सुतोषिताः ॥ १५ ॥

क्षत्रियैर्बहुभिर्वीरैः शक्रतुल्यपराक्रमैः ।
आसीद्वसुमती पूर्णा महद्भिरिव पादपैः ॥ १६ ॥

तेषां वीर्यगुणोत्साहैर्न समो राघवो रणे ।
प्रसह्य ते त्वया राजन्हताः परमदुर्जयाः ॥ १७ ॥

तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान् ।
अयमेको महाबाहुरिन्द्रजित्क्षपयिष्यति ॥ १८ ॥

अनेन हि महाराज माहेश्वरमनुत्तमम् ।
इष्ट्वा यज्ञं वरो लब्धो लोके परमदुर्लभः ॥ १९ ॥

शक्तितोमरमीनं च विनिकीर्णान्त्रशैवलम् ।
गजकच्छपसंबाधमश्वमण्डूकसंकुलम् ॥ २० ॥

रुद्रादित्यमहाग्राहं मरुद्वसुमहोरगम् ।
रथाश्वगजतोयौघं पदातिपुलिनं महत् ॥ २१ ॥

अनेन हि समासाद्य देवानां बलसागरम् ।
गृहीतो दैवतपतिर्लङ्कां चापि प्रवेशितः ॥ २२ ॥
पितामहनियोगाच्च मुक्तः शम्बरवृत्रहा ।
गतस्त्रिविष्टपं राजन्सर्वदेवनमस्कृतः ॥ २३ ॥
तमेव त्वं महाराज विसृजेन्द्रजितं सुतम् ॥ २४ ॥
यावद्वानरसेनां तां सरामां नयति क्षयम् ॥ २५ ॥
राजन्नापदयुक्तेयमागता प्राकृताज्जनात् ।
हृदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 14949 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 274

## अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

प्रहस्तादिवचनम् ॥

ततो नीलाम्बुदनिभः प्रहस्तो नाम राक्षसः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं शूरः सेनापतिस्तदा ॥ १ ॥
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः ।
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः किं पुनर्वानरा रणे ॥ २ ॥
सर्वे प्रमत्ता विश्वस्ता वञ्चिताः स्म हनूमता ।
न हि मे जीवतो गच्छेज्जीवन्स वनगोचरः ॥ ३ ॥
सर्वां सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ।
करोम्यवानरां भूमिमाज्ञापयतु मा भवान् ॥ ४ ॥

रक्षां चैव विधास्यामि वानराद्रजनीचर ।
नागमिष्यति ते दुःखं किंचिदात्मापराधजम् ॥ ५ ॥
अब्रवीत्तु सुसंक्रुद्धो दुर्मुखो नाम राक्षसः ।
इदं न क्षमणीयं हि सर्वेषां नः प्रधर्षणम् ॥ ६ ॥
अयं परिभवो भूयः पुरस्यान्तःपुरस्य च ।
श्रीमतो राक्षसेन्द्रस्य वानरेण प्रधर्षणम् ॥ ७ ॥
अस्मिन्मुहूर्ते हत्वैको निवर्तिष्यामि वानरान् ।
प्रविष्टान्सागरं भीममम्बरं वा रसातलम् ॥ ८ ॥
ततोऽब्रवीत्सुसंक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ।
प्रगृह्य परिघं घोरं मांसशोणितरूषितम् ॥ ९ ॥
किं नो हनुमता कार्यं कृपणेन तपस्विना ।
रामे तिष्ठति दुर्धर्षे ससुग्रीवे सलक्ष्मणे ॥ १० ॥
अद्य रामं ससुग्रीवं परिघेण सलक्ष्मणम् ।
आगमिष्यामि हत्वैको विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ॥ ११ ॥
इदं ममापरं वाक्यं शृणु राजन्यदीच्छसि ।
उपायकुशलो ह्येव जयेच्छत्रूनतन्द्रितः ॥ १२ ॥
कामरूपधराः शूराः सुभीमा भीमदर्शनाः ।
राक्षसानां सहस्राणि राक्षसाधिप निश्चिताः ॥ १३ ॥
काकुत्स्थमुपसंगम्य बिभ्रतो मानुषं वपुः ।
सर्वे ह्यसंभ्रमा भूत्वा ब्रुवन्तु रघुसत्तमम् ॥ १४ ॥
प्रेषिता भरतेन स्म भ्रात्रा तव यवीयसा ।
स हि सेनां समुत्थाप्य क्षिप्रमेत्रोपयास्यति ॥ १५ ॥

ततो वयमितस्तूर्णं शूलशक्तिगदाधराः ।
चापबाणासिहस्ताश्च त्वरितास्तत्र याम ह ॥ १६ ॥
आकाशे गणशः स्थित्वा हत्वा तां हरिवाहिनीम् ।
अस्त्रशस्त्रमहावृष्ट्या प्रापयाम यमक्षयम् ॥ १७ ॥
एवं चेदुपसर्पेतामनयं रामलक्ष्मणौ ।
अवश्यमपनीतेन जहतामेव जीवितम् ॥ १८ ॥
कौम्भकर्णिस्ततो वीरो निकुम्भो नाम वीर्यवान् ।
अब्रवीत्परमक्रुद्धो रावणं लोकरावणम् ॥ १९ ॥
सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु महाराजेन सङ्गताः ।
अहमेको हनिष्यामि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥
सुग्रीवं च हनूमन्तं सर्वानेव च वानरान् ॥ २० ॥
ततो वज्रहनुर्नाम राक्षसः पर्वतोपमः ।
क्रुद्धः परिलिहन्वक्त्रं जिह्वया वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥
स्वैरं कुर्वन्तु कार्याणि भवन्तो विगतज्वराः ।
एकोऽहं भक्षयिष्यामि तान्सर्वान्हरियूथपान् ॥ २२ ॥
स्वस्थाः क्रीडन्तु निश्चिन्ताः पिबन्तो मधुवारुणीम् ॥
अहमेको वधिष्यामि सुग्रीवं सहलक्ष्मणम् ।
अङ्गदं च हनूमन्तं रामं च रणकुञ्जरम् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 14973 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 298

## नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

### विभीषणोक्तिः ॥

ततो निकुम्भो रभसः सूर्यशत्रुर्महाबलः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च महापार्श्वमहोदरौ ॥ १ ॥

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
इन्द्रजिच्च महातेजा बलवान्रावणात्मजः ॥ २ ॥

प्रहस्तोऽथ विरूपाक्षो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ।
धूम्राक्षश्चातिकायश्च दुर्मुखश्चैव राक्षसः ॥ ३ ॥

परिघान्पट्टिशान्प्रासाञ्छक्तिशूलपरश्वधान् ।
चापानि च सबाणानि खड्गांश्च विपुलाञ्छितान् ॥

प्रगृह्य परमक्रुद्धाः समुत्पत्य च राक्षसाः ।
अब्रुवन्रावणं सर्वे प्रदीप्ता इव तेजसा ॥ ५ ॥

अद्य रामं वधिष्यामः सुग्रीवं च सलक्ष्मणम् ।
कृपणं च हनूमन्तं लङ्का येन प्रधर्षिता ॥ ६ ॥

तान्गृहीतायुधान्सर्वान्वारयित्वा विभीषणः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पुनः प्रत्युपवेश्य तान् ॥ ७ ॥

अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते ।
तस्य विक्रमकालांस्तान्युक्तानाहुर्मनीषिणः ॥ ८ ॥

प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च ।
विक्रमास्तात सिद्ध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृताः ॥ ९ ॥

अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषुं बले स्थितम् ।
जितरोषं दुराधर्षं प्रधर्षयितुमिच्छथ ॥ १० ॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम् ।
कृतं हनुमता कर्म दुष्करं तर्कयेत वा ॥ ११ ॥

बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च निशाचराः ।
परेषां सहसाऽवज्ञा न कर्तव्या कथंचन ॥ १२ ॥

किं च राक्षसराजस्य रामेणापकृतं पुरा ।
आजहार जनस्थानाद्यस्य भार्यां यशस्विनः ॥ १३ ॥

खरो यद्यतिवृत्तस्तु रामेण निहतो रणे ।
अवश्यं प्राणिनां प्राणा रक्षितव्या यथाबलम् ॥ १४ ॥

अयशस्यमनायुष्यं परदाराभिमर्शनम् ।
अर्थक्षयकरं घोरं पापस्य च पुनर्भवम् ॥ १५ ॥

एतन्निमित्तं वैदेह्या भयं नः सुमहद्भवेत् ।
आहृता सा परित्याज्या कलहार्थे कृतेन किम् ॥ १६ ॥

न नः क्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना ।
वैरं निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली ॥ १७ ॥

यावन्न सगजां साश्वां बहुरत्नसमाकुलाम् ।
पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली ॥ १८ ॥

यावत्सुघोरा महती दुर्धर्षा हरिवाहिनी ।
नावस्कन्दति नो लङ्कां तावत्सीता प्रदीयताम् ॥ १९ ॥

विनश्येद्धि पुरी लङ्का शूराः सर्वे च राक्षसाः ।
रामस्य दयिता पत्नी स्वयं न यदि दीयते ॥ २० ॥

प्रसादये त्वां बन्धुत्वात्कुरुष्व वचनं मम ।
हितं तथ्यं त्वहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली ॥ २१ ॥

पुरा शरत्सूर्यमरीचिसन्निभा-
न्नवाग्रपुङ्खान्सुदृढान्नृपात्मजः ।
सृजत्यमोघान्विशिखान्वधाय ते
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ २२ ॥

त्यजाशु कोपं सुखधर्मनाशनं
भजस्व धर्मं रतिकीर्तिवर्धनम् ।
प्रसीद जीवेम सपुत्रबान्धवाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ २३ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
विसर्जयित्वा तान्सर्वान्प्रविवेश स्वकं गृहम् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे नवमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 14997 अयोध्याकाण्डे आदितः श्लोकाः 322

## दशमः सर्गः ॥ १० ॥

### विभीषणहितोपदेशः ॥

ततः प्रत्युषसि प्राप्ते प्राप्तधर्मार्थनिश्चयः ।
राक्षसाधिपतेर्वेश्म भीमकर्मा विभीषणः ॥ १ ॥

शैलाग्रचयसंकाशं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
सुविभक्तमहाकक्ष्यं महाजनपरिग्रहम् ॥ २ ॥

मतिमद्भिर्महामात्रैरनुरक्तैरधिष्ठितम् ।
राक्षसैश्चाप्तपर्याप्तैः सर्वतः परिरक्षितम् ॥ ३ ॥

मत्तमातङ्गनिश्वासैर्व्याकुलीकृतमारुतम् ।
शङ्खघोषमहाघोषं तूर्यनादानुनादितम् ॥ ४ ॥

प्रमदाजनसंबाधं प्रजल्पितमहापथम् ।
तप्तकाञ्चननिर्यूहं भूषणोत्तमभूषितम् ॥ ५ ॥

गन्धर्वाणामिवावासमालयं मरुतामिव ।
रत्नसंचयसंबाधं भवनं भोगिनामिव ॥ ६ ॥

तं महाभ्रमिवादित्यस्तेजोविस्तृतरश्मिवान् ।
अग्रजस्यालयं वीरः प्रविवेश महाद्युतिः ॥ ७ ॥

पुण्यान्पुण्याहघोषांश्च वेदविद्भिरुदाहृतान् ।
शुश्राव सुमहातेजा भ्रातुर्विजयसंश्रितान् ॥ ८ ॥

पूजितान्दधिपात्रैश्च सर्पिर्भिः सुमनोक्षतैः ।
मन्त्रवेदविदो विप्रान्ददर्श सुमहाबलः ॥ ९ ॥

स पूज्यमानो रक्षोभिर्दीप्यमानः स्वतेजसा ।
आसनस्थं महाबाहुर्ववन्दे धनदानुजम् ॥ १० ॥

स राजदृष्टिसंपन्नमासनं हेमभूषितम् ।
जगाम समुदाचारं प्रयुज्याचारकोविदः ॥ ११ ॥

स रावणं महात्मानं विजने मन्त्रिसन्निधौ ।
उवाच हितमत्यर्थं वचनं हेतुनिश्चितम् ॥ १२ ॥

प्रसाद्य भ्रातरं ज्येष्ठं सान्त्वेनोपस्थितक्रमः ।
देशकालार्थसंवादी दृष्टलोकपरावरः ॥ १३ ॥

यदाप्रभृति वैदेही संप्राप्तेह परन्तप ।
तदाप्रभृति दृश्यन्ते निमित्तान्यशुभानि नः ॥ १४ ॥

सस्फुलिङ्गः सधूमार्चिः सधूमकलुषोदयः ।
मन्त्रसंधुक्षितोऽप्यग्निर्न सम्यगभिवर्धते ॥ १५ ॥

अग्निष्ठेष्वग्निशालासु तथा ब्रह्मस्थलीषु च ।
सरीसृपाणि दृश्यन्ते हव्येषु च पिपीलिकाः ॥ १६ ॥

गवां पयांसि स्कन्नानि विमदा वीरकुञ्जराः ।
दीनमश्वाः प्रहेषन्ते न च ग्रासाभिनन्दिनः ॥ १७ ॥

खरोष्ट्राश्वतरा राजन्भिन्नरोमाः स्रवन्ति नः ।
न स्वभावेऽवतिष्ठन्ते विधानैरपि चिन्तिताः ॥ १८ ॥

वायसाः सङ्घशः क्रूरा व्याहरन्ति समन्ततः ।
समवेताश्च दृश्यन्ते विमानाग्रेषु संघशः ॥ १९ ॥

गृध्राश्च परिलीयन्ते पुरीमुपरि पिण्डिताः ।
उपपन्नाश्च सन्ध्ये द्वे व्याहरन्त्यशिवं शिवाः ॥ २० ॥

क्रव्यादानां मृगाणां च पुरद्वारेषु सङ्घशः ।
श्रूयन्ते विपुला घोषाः सविस्फूर्जथुनिःस्वनाः ॥ २१ ॥

तदेवं प्रस्तुते कार्ये प्रायश्चित्तमिदं क्षमम् ।
रोचते यदि वैदेही राघवाय प्रदीयताम् ॥ २२ ॥

इदं च यदि वा मोहाल्लोभाद्वा व्याहृतं मया ।
तत्रापि च महाराज न दोषं कर्तुमर्हसि ॥ २३ ॥

अयं च दोषः सर्वस्य जनस्यास्योपलक्ष्यते ।
रक्षसां राक्षसीनां च पुरस्यान्तःपुरस्य च ॥ २४ ॥

प्रापणे चास्य मन्त्रस्य निवृत्ताः सर्वमन्त्रिणः ।
अवश्यं च मया वाच्यं यद्दृष्टमपि वा श्रुतम् ॥ २५ ॥

संप्रधार्य यथान्यायं तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ २६ ॥

इति स्म मन्त्रिणां मध्ये भ्राता भ्रातरमूचिवान् ।
रावणं राक्षसश्रेष्ठं पथ्यमेतद्विभीषणः ॥ २७ ॥

हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितं
व्यतीतकालायतिसंप्रतिक्षमम् ।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः
प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥ २८ ॥

भयं न पश्यामि कुतश्चिदप्यहं
न राघवः प्राप्स्यति जातु मैथिलीम् ।
सुरैः सहेन्द्रैरपि सङ्गतः कथं
ममाग्रतः स्थास्यति लक्ष्मणाग्रजः ॥ २९ ॥

इतीदमुक्त्वा सुरसैन्यनाशनो
महाबलः संयति चण्डविक्रमः ।
दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं
विसर्जयामास तदा विभीषणम् ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे दशमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15027 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 352

## एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

पुना रावणमन्त्रालोचनम् ॥

स वभूव कृशो राजा मैथिलीकाममोहितः ।
असंमानाच्च सुहृदां पापः पापेन कर्मणा ॥ १ ॥

अतीतसमये काले तस्मिन्वै युधि रावणः ।
अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च प्राप्तकालममन्यत ॥ २ ॥

स हेमजालविततं मणिविद्रुमभूषितम् ।
उपगम्य विनीताश्वमारुरोह महारथम् ॥ ३ ॥

तमास्थाय रथश्रेष्ठं महामेघसमस्वनम् ।
प्रययौ राक्षसश्रेष्ठो दशग्रीवः सभां प्रति ॥ ४ ॥

असिचर्मधरा योधाः सर्वायुधधरास्तथा ।
राक्षसा राक्षसेन्द्रस्य पुरतः संप्रतस्थिरे ॥ ५ ॥

नानाविकृतवेषाश्च नानाभूषणभूषिताः ।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैनं परिवार्य ययुस्ततः ॥ ६ ॥

रथैश्चातिरथाः शीघ्रं मत्तैश्च वरवारणैः ।
अनूत्पेतुर्दशग्रीवमाक्रीडद्भिश्च वाजिभिः ॥ ७ ॥

गदापरिघहस्ताश्च शक्तितोमरपाणयः ।
परश्वधधराश्चान्ये तथाऽन्ये शूलपाणयः ॥ ८ ॥

ततस्तूर्यसहस्राणां संजज्ञे निस्वनो महान् ।
तुमुलः शङ्खशब्दश्च सभां गच्छति रावणे ॥ ९ ॥

स नेमिघोषेण महान्सहसाऽभिविनादयन् ।
राजमार्गं श्रिया जुष्टं प्रतिपेदे महारथः ॥ १० ॥

विमलं चातपत्राणं प्रगृहीतमशोभत ।
पाण्डुरं राक्षसेन्द्रस्य पूर्णस्ताराधिपो यथा ॥ ११ ॥

हेममञ्जरिगर्भे च शुद्धस्फटिकविग्रहे ।
चामरव्यजने चास्य रेजतुः सव्यदक्षिणे ॥ १२ ॥

ते कृताञ्जलयः सर्वे रथस्थं पृथिवीस्थिताः ।
राक्षसा राक्षसश्रेष्ठं शिरोभिस्तं ववन्दिरे ॥ १३ ॥

राक्षसैः स्तूयमानोऽसौ जयाशीर्भिररिन्दमः ।
आससाद महातेजाः सभां विरचितां शुभाम् ॥ १४ ॥

सुवर्णरजतास्तीर्णां विशुद्धस्फटिकान्तराम् ।
विराजमानो वपुषा रुक्मपट्टोत्तरच्छदाम् ॥ १५ ॥

तां पिशाचशतैः षड्भिरभिगुप्तां सदा शुभाम् ।
प्रविवेश महातेजाः सुकृतां विश्वकर्मणा ॥ १६ ॥

तस्यां तु वैडूर्यमयं प्रियकाजिनसंवृतम् ।
महत्सोपाश्रयं भेजे रावणः परमासनम् ॥ १७ ॥

ततः शशासेश्वरवद्दूतांल्लघुपराक्रमान् ।
समानयत मे क्षिप्रमिहैतान्राक्षसानिति ॥ १८ ॥

कृत्यमस्ति महज्जातं समर्थ्यमिह नो महत् ॥ १९ ॥

राक्षसास्तद्वचः श्रुत्वा लङ्कायां परिचक्रमुः ।
अनुगेहमवस्थाय विहारशयनेषु च ॥
उद्यानेषु च रक्षांसि चोदयन्तो ह्यभीतवत् ॥ २० ॥

ते रथान्रुचिरानेके दृप्तानेके पृथग्घयान् ।
नागानन्येऽधिरुरुहुर्जग्मुश्चैके पदातयः ॥ २१ ॥

सा पुरी परमाकीर्णा रथकुञ्जरवाजिभिः ।
संपतद्भिर्विरुरुचे गरुत्मद्भिरिवाम्बरम् ॥ २२ ॥

ते वाहनान्यवस्थाप्य यानानि विविधानि च ।
सभां पद्भिः प्रविविशुः सिंहा गिरिगुहामिव ॥ २३ ॥

राज्ञः पादौ गृहीत्वा तु राज्ञा ते प्रतिपूजिताः ।
पीठेष्वन्ये बृसीष्वन्ये भूमौ केचिदुपाविशन् ॥ २४ ॥
ते समेत्य सभायां वै राक्षसा राजशासनात् ।
यथार्हमुपतस्थुस्ते रावणं राक्षसाधिपम् ॥ २५ ॥
मन्त्रिणश्च यथा मुख्या निश्चयार्थेषु पण्डिताः ।
अमात्याश्च गुणोपेताः सर्वज्ञा बुद्धिदर्शनाः ॥
समेयुस्तत्र शतशः शूराश्च बहवस्तदा ॥ २६ ॥
सभायां हेमवर्णायां सर्वार्थस्य सुखाय वै ।
रम्यायां राक्षसेन्द्रस्य समेयुस्तत्र सङ्घशः ॥ २७ ॥
ततो महात्मा विपुलं सुयुग्यं वरं रथं हेमविचित्रिताङ्गम् ।
शुभं समास्थाय ययौ यशस्वी विभीषणः संसदमग्रजस्य ॥
स पूर्वजायावरजः शशंस नामाथ पश्चाच्चरणौ ववन्दे ।
शुकः प्रहस्तश्च तथैव तेभ्यो ददौ यथार्हं पृथगासनानि ॥
सुवर्णनानामणिभूषणानां सुवाससां संसदि राक्षसानाम् ।
तेषां परार्ध्यागरुचन्दनानां स्रजश्च गन्धाश्च ववुः समन्तात् ॥
न चुक्रुशुर्नानृतमाह कश्चित्सभासदो नैव जजल्पुरुच्चैः ।
संसिद्धार्थाः सर्व एवोग्रवीर्या भर्तुः सर्वे ददृशुश्चाननं ते ॥
स रावणः शस्त्रभृतां मनस्विनां महाबलानां समितौ मनस्वी ।
तस्यां सभायां प्रभया चकाशे मध्ये वसूनामिव वज्रहस्तः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकादशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15059 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 384

## द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

### कुम्भकर्णप्रतिज्ञा ॥

स तां परिषदं कृत्स्नां समीक्ष्य समितिञ्जयः ।
प्रचोदयामास तदा प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ १ ॥

सेनापते यथा ते स्युः कृतविद्याश्चतुर्विधाः ।
योधा नगररक्षायां तथा व्यादेष्टुमर्हसि ॥ २ ॥

स प्रहस्तः प्रणीतात्मा चिकीर्षन्राजशासनम् ।
विन्यक्षिपद्बलं सर्वं बहिरन्तश्च मन्दिरे ॥ ३ ॥

ततो विनिक्षिप्य बलं पृथङ्नगरगुप्तये ।
प्रहस्तः प्रमुखे राज्ञो निषसाद जगाद च ॥ ४ ॥

निहितं बहिरन्तश्च बलं बलवतस्तव ।
कुरुष्वाविमनाः क्षिप्रं यदभिप्रेतमस्तु ते ॥ ५ ॥

प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा राजा राज्यहिते रतः ।
सुखेप्सुः सुहृदां मध्ये व्याजहार स रावणः ॥ ६ ॥

प्रियाप्रिये सुखं दुःखं लाभालाभौ हिताहिते ।
धर्मकामार्थकृच्छ्रेषु यूयमर्हथ वेदितुम् ॥ ७ ॥

सर्वकृत्यानि युष्माभिः समारब्धानि सर्वदा ।
मन्त्रकर्मनियुक्तानि न जातु विफलानि मे ॥ ८ ॥

स सोमग्रहनक्षत्रैर्मरुद्भिरिव वासवः ।
भवद्भिरहमत्यर्थं वृतः श्रियमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥

अहं तु खलु सर्वान्वः समर्थयितुमुद्यतः ।
कुम्भकर्णस्य तु स्वप्नान्नेममर्थमचोदयम् ॥ १० ॥

अयं हि सुप्तः षण्मासान्कुम्भकर्णो महाबलः ।
सर्वशस्त्रभृतां मुख्यः स इदानीं समुत्थितः ॥ ११ ॥

इयं च दण्डकारण्याद्रामस्य महिषी प्रिया ।
रक्षोभिश्चरिताद्देशादानीता जनकात्मजा ॥ १२ ॥

सा मे न शय्यामारोढुमिच्छत्यलसगामिनी ॥ १३ ॥

त्रिषु लोकेषु चान्या मे न सीतासदृशी मता ॥ १४ ॥

तनुमध्या पृथुश्रोणी शारदेन्दुनिभानना ।
हेमबिम्बनिभा सौम्या मायेव मयनिर्मिता ॥ १५ ॥

सुलोहिततलौ श्लक्ष्णौ चरणौ सुप्रतिष्ठितौ ।
दृष्ट्वा ताम्रनखौ तस्या दीप्यते मे शरीरजः ॥ १६ ॥

हुताग्नेरर्चिसङ्काशामेनां सौरीमिव प्रभाम् ।
दृष्ट्वा सीतां विशालाक्षीं कामस्य वशमेयिवान् ॥ १७ ॥

उन्नसं वदनं वल्गु विपुलं चारुलोचनम् ।
पश्यंस्तदाऽवशस्तस्याः कामस्य वशमेयिवान् ॥ १८ ॥

क्रोधहर्षसमानेन दुर्वर्णकरणेन च ।
शोकसन्तापनित्येन कामेन कलुषीकृतः ॥ १९ ॥

सा तु संवत्सरं कालं मामयाचत भामिनी ।
प्रतीक्षमाणा भर्तारं राममायतलोचना ॥२०॥

तन्मया चारुनेत्रायाः प्रतिज्ञातं वचः शुभम् ॥ २१ ॥

श्रान्तोऽहं सततं कामाद्यातो हय इवाध्वनि ॥ २२ ॥

कथं सागरमक्षोभ्यमुत्तरन्ति वनौकसः ।
बहुसत्त्वझषाकीर्णं तौ वा दशरथात्मजौ ॥ २३ ॥

अथ वा कपिनैकेन कृतं नः कदनं महत् ।
दुर्ज्ञेयाः कार्यगतयो ब्रूत यस्य यथा मतिः ॥ २४ ॥

मानुषान्मे भयं नास्ति तथापि तु विमृश्यताम् ।
तदा देवासुरे युद्धे युष्माभिः सहितोऽजयम् ॥
ते मे भवन्तश्च तथा सुग्रीवप्रमुखान्हरीन् ॥ २५ ॥

परे पारे समुद्रस्य पुरस्कृत्य नृपात्मजौ ।
सीतायाः पदवीं प्राप्तौ संप्राप्तौ वरुणालयम् ॥ २६ ॥

अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ ।
भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः सुनीतं चाभिधीयताम् ॥ २७ ॥

न हि शक्तिं प्रपश्यामि जगत्यन्यस्य कस्यचित् ।
सागरं वानरैस्तीर्त्वा निश्चयेन जयो मम ॥ २८ ॥

तस्य कामपरीतस्य निशम्य परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णः प्रचुक्रोध वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २९ ॥

यदा तु रामस्य सलक्ष्मणस्य प्रसह्य सीता खलु सा इहाहृता ।
सकृत्समीक्ष्यैव सुनिश्चितं तदा भजेत चित्तं यमुनेव यामुनम्॥

सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव ।
विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः ॥ ३१ ॥

न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन ।
न स संतप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥ ३२ ॥

अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ३३ ॥

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कर्माण्यभिचिकीर्षति ।
पूर्वं चापरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ ३४ ॥

चपलस्य तु कृत्येषु प्रसमीक्ष्याधिकं बलम् ।
क्षिप्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥ ३५ ॥

त्वयेदं महदारब्धं कार्यमप्रतिचिन्तितम् ।
दिष्ट्या त्वां नावधीद्रामो विषमिश्रमिवामिषम् ॥ ३६ ॥

तस्मात्त्वया समारब्धं कर्म ह्यप्रतिमं परैः ।
अहं समीकरिष्यामि हत्वा शत्रूंस्तवानघ ॥ ३७ ॥

अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव विशां पते ।
यदि शक्रविवस्वन्तौ यदि पावकमारुतौ ॥
तावहं योधयिष्यामि कुबेरवरुणावपि ॥ ३८ ॥

गिरिमात्रशरीरस्य महापरिघयोधिनः ।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभियाद्वै पुरन्दरः ॥ ३९ ॥

पुनर्मां स द्वितीयेन शरेण निहनिष्यति ।
ततोऽहं तस्य पास्यामि रुधिरं काममाश्वस ॥ ४० ॥
वधेन वै दाशरथेः सुखावहं
जयं तवाहर्तुमहं यतिष्ये ।
हत्वा च रामं सह लक्ष्मणेन
खादामि सर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ४१ ॥
रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारुणीम्
कुरुष्व कार्याणि हितानि विज्वरः ।
मया तु रामे गमिते यमक्षयं
चिराय सीता वशगा भविष्यति ॥ ४२ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः **15101** युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः **426**

## त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

### रावणमहापार्श्वसंवादः ॥

रावणं क्रुद्धमाज्ञाय महापार्श्वो महाबलः ।
मुहूर्तमनुसंचिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
यः खल्वपि वनं प्राप्य मृगव्यालसमाकुलम् ।
न पिबेन्मधु संप्राप्तं स नरो बालिशो भवेत् ॥ २ ॥
ईश्वरस्येश्वरः कोऽस्ति तव शत्रुनिबर्हण ।
रमस्व सह वैदेह्या शत्रूनाक्रम्य मूर्धसु ॥ ३ ॥

बलात्कुक्कुटवृत्तेन वर्तस्व सुमहाबल ।
आक्रम्याक्रम्य सीतां वै तथा भुङ्क्ष्व रमस्व च ॥ ४ ॥

लब्धकामस्य ते पश्चादागमिष्यति यद्भयम् ।
प्राप्तमप्राप्तकालं वा सर्वं प्रतिसहिष्यसि ॥ ५ ॥

कुम्भकर्णः सहास्माभिरिन्द्रजिच्च महाबलः ।
प्रतिषेधयितुं शक्तौ सवज्रमपि वज्रिणम् ॥ ६ ॥

उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदं वा कुशलैः कृतम् ।
समतिक्रम्य दण्डेन सिद्धिमर्थेषु रोचय ॥ ७ ॥

इह प्राप्तान्वयं सर्वाञ्छत्रूंस्तव महाबल ।
वशे शस्त्रप्रतापेन करिष्यामो न संशयः ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तदा राजा महापार्श्वेन रावणः ।
तस्य संपूजयन्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

महापार्श्व निबोध त्वं रहस्यं किंचिदात्मनः ।
चिरवृत्तं तदाख्यास्ये यदवाप्तं मया पुरा ॥ १० ॥

पितामहस्य भवनं गच्छन्तीं पुञ्जिकस्थलाम् ।
चञ्चूर्यमाणामद्राक्षमाकाशेऽग्निशिखामिव ॥ ११ ॥

सा प्रसह्य मया भुक्ता कृता विवसना ततः ।
स्वयंभूभवनं प्राप्ता लोलिता नलिनी यथा ॥ १२ ॥

तस्य तच्च तदा मन्ये ज्ञातमासीन्महात्मनः ।
अथ संकुपितो देवो मामिदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि ।
तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ १४ ॥
इत्यहं तस्य शापस्य भीतः प्रसभमेव ताम् ।
नारोपये बलात्सीतां वैदेहीं शयने शुभे ॥ १५ ॥
सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे गतिः ।
नैतद्दाशरथिर्वेद ह्यासादयति तेन माम् ॥ १६ ॥
यस्तु सिंहमिवासीनं सुप्तं गिरिगुहाशये ।
क्रुद्धं मृत्युमिवासीनं प्रबोधयितुमिच्छति ॥ १७ ॥
न मत्तो निशितान्बाणान्द्विजिह्वानिव पन्नगान् ।
रामः पश्यति संग्रामे तेन मामभिगच्छति ॥ १८ ॥
क्षिप्रं वज्रोपमैर्बाणैः शतधा कार्मुकच्युतैः ।
राममादीपयिष्यामि उल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ १९ ॥
तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः ।
उदयन्सविता काले नक्षत्राणामिव प्रभाम् ॥ २० ॥
न वासवेनापि सहस्रचक्षुषा
युधाऽस्मि शक्यो वरुणेन वा पुनः ।
मया त्वियं बाहुबलेन निर्जिता
पुरी पुरा वैश्रवणेन पालिता ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15122 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 447

## चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

### विभीषणेन सीताप्रत्यर्पणकथनम् ॥

निशाचरेन्द्रस्य निशम्य वाक्यं स कुम्भकर्णस्य च गर्जितानि ।
विभीषणो राक्षसराजमुख्यमुवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम् ॥

वृतो हि बाह्वन्तरभोगराशिश्चिन्ताविषः सुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः ।
पञ्चाङ्गुलीपञ्चशिरोऽतिकायः सीतामहाहिस्तव केन राजन् ॥

यावन्न लङ्कां समभिद्रवन्ति वलीमुखाः पर्वतकूटमात्राः ।
दंष्ट्रायुधाश्चैव नखायुधाश्च प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥

यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा रामेरिता राक्षसपुङ्गवानाम् ।
वज्रोपमा वायुसमानवेगाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ न राजा तथा महापार्श्वमहोदरौ वा ।
निकुम्भकुम्भौ च तथाऽतिकायः स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥

जीवंस्तु रामस्य न मोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सवित्राऽप्यथ वा मरुद्भिः ।
न वासवस्याङ्कगतो न मृत्योर्नभो न पातालमनुप्रविष्टः ॥

भित्त्वा न तावत्प्रविशन्ति कायं प्राणान्तिकास्तेऽशनितुल्यवेगाः ।
शिताः शरा राघवविप्रमुक्ताः प्रहस्त तेनैव विकत्थसे त्वम् ॥

निशम्य वाक्यं तु विभीषणस्य ततः प्रहस्तो वचनं बभाषे ।
न नो भयं विद्म न दैवतेभ्यो न दानवेभ्यो ह्यथ वा कुतश्चित् ॥

न यक्षगन्धर्वमहोरगेभ्यो भयं न संख्ये पतगोत्तमेभ्यः ।
कथं नु रामाद्भविता भयं नो नरेन्द्रपुत्रात्समरे कदाचित् ॥

प्रहस्तवाक्यं त्वहितं निशम्य विभीषणो राजहितानुकाङ्क्षी ।
ततो महात्मा वचनं बभाषे धर्मार्थकामेषु निविष्टबुद्धिः ॥

प्रहस्त राजा च महोदरश्च त्वं कुम्भकर्णश्च यथार्थजातम् ।
ब्रवीथ रामं प्रति तन्न शक्यं यथा गतिः स्वर्गमधर्मबुद्धेः ॥

वधस्तु रामस्य मया त्वया वा प्रहस्त सर्वैरपि राक्षसैर्वा ।
कथं भवेदर्थविशारदस्य महार्णवं तर्तुमिवाप्लवस्य ॥ १२ ॥

धर्मप्रधानस्य महारथस्य इक्ष्वाकुवंशप्रभवस्य राज्ञः ।
प्रहस्त देवाश्च तथाविधस्य कृत्येषु शक्तस्य भवन्ति मूढाः ॥

तीक्ष्णा नता यत्तव कङ्कपत्रा दुरासदा राघवविप्रमुक्ताः ।
भित्त्वा शरीरं प्रविशन्ति बाणाः प्रहस्त ते नैव विकत्थसे त्वम् ॥

न रावणो नातिबलस्त्रिशीर्षो न कुम्भकर्णोऽस्य सुतो निकुम्भः ।
न चेन्द्रजिद्दाशरथिं प्रसोढुं त्वं वा रणे शक्रसमं समर्थाः ॥

देवान्तको वाऽपि नरान्तको वा तथाऽतिकायोऽतिरथो महात्मा ।
अकम्पनश्चाद्रिसमानसारः स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥

अयं हि राजा व्यसनाभिभूतो मित्रैरमित्रप्रतिमैर्भवद्भिः ।
अन्वास्यते राक्षसनाशनार्थे तीक्ष्णः प्रकृत्या ह्यसमीक्ष्यकारी ॥

अनन्तभोगेन सहस्रमूर्ध्ना नागेन भीमेन महाबलेन ।
बलात्परिक्षिप्तमिमं भवन्तो राजानमुत्क्षिप्य विमोचयन्तु ॥

यावद्धि केशग्रहणात्सुहृद्भिः समेत्य सर्वैः परिपूर्णकामैः ।
निगृह्य राजा परिरक्षितव्यो भूतैर्यथा भीमबलैर्गृहीतः ॥

सुवारिणा राघवसागरेण प्रच्छाद्यमानस्तरसा भवद्भिः ।
युक्तस्त्वयं तारयितुं समेत्य काकुत्स्थपातालमुखे पतन्सः ॥
इदं पुरस्यास्य सराक्षसस्य राज्ञश्च पथ्यं ससुहृज्जनस्य ।
सम्यग्घि वाक्यं स्वमतं ब्रवीमि नरेन्द्रपुत्राय ददातु मैथिलीम्॥
परस्य वीर्यं स्वबलं च बुद्ध्वा स्थानं क्षयं चैव तथैव वृद्धिम् ।
तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुद्ध्या वदेत्क्षमं स्वामिहितं च मन्त्री॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15144 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 469

## पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

### इन्द्रजिद्विभीषणविवादः ॥

बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्तन्निशम्य यत्नेन विभीषणस्य ।
ततो महात्मा वचनं बभाषे तत्रेन्द्रजिन्नैर्ऋतयोधमुख्यः ॥
किं नाम ते तात कनिष्ठवाक्यमनर्थकं चैव सुभीतवच्च ।
अस्मिन्कुले योऽपि भवेन्न जातः सोऽपीदृशं नैव वदेन्न कुर्यात् ॥
सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण शौर्येण धैर्येण च तेजसा च ।
एकः कुलेऽस्मिन्पुरुषो विमुक्तो विभीषणस्तात कनिष्ठ एषः ॥
किं नाम तौ राक्षस राजपुत्रावस्माकमेकेन हि राक्षसेन ।
सुप्राकृतेनापि मतौ निहन्तुं शक्यौ कुतो भीषयसे स्म भीरो॥
त्रिलोकनाथो ननु देवराजः शक्रो मया भूमितले निविष्टः ।
भयार्दिताश्चापि दिशः प्रपन्नाः सर्वे तथा देवगणाः समग्राः॥

ऐरावतो विस्वरमुन्नदन्स निपातितो भूमितले मया तु ।
विकृष्य दन्तौ तु मया प्रसह्य वित्रासिता देवगणाः समग्राः॥
सोऽहं सुराणामपि दर्पहन्ता दैत्योत्तमानामपि शोकदाता ।
कथं नरेन्द्रात्मजयोर्न शक्तो मनुष्ययोः प्राकृतयोः सुवीर्यः॥
अथेन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य महौजसस्तद्वचनं निशम्य ।
ततो महार्थं वचनं बभाषे विभीषणः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥
न तात मन्त्रे तव निश्चयोऽस्ति बालस्त्वमद्याप्यविपक्वबुद्धिः।
तस्मात्त्वया ह्यात्मविनाशनाय वचोऽर्थहीनं बहु विप्रलप्तम् ॥
पुत्रप्रवादेन तु रावणस्य त्वमिन्द्रजिन्मित्रमुखोऽसि शत्रुः ।
यस्येदृशं राघवतो विनाशं निशम्य मोहादनुमन्यसे त्वम् ॥
त्वमेव वध्यश्च सुदुर्मतिश्च स चापि वध्यो य इहानयत्त्वाम् ।
बालं दृढं साहसिकं च योऽद्य प्रावेशयन्मन्त्रकृतां समीपम्॥
मूढः प्रगल्भोऽविनयोपपन्नस्तीक्ष्णस्वभावोऽल्पमतिर्दुरात्मा ।
मूर्खस्त्वमत्यन्तसुदुर्मतिश्च त्वमिन्द्रजिद्बालतया ब्रवीषि ॥
को ब्रह्मदण्डप्रतिमप्रकाशानर्चिष्मतः कालनिकाशरूपान् ।
सहेत बाणान् यमदण्डकल्पान्समक्षमुक्तान् युधि राघवेण ॥
धनानि रत्नानि विभूषणानि वासांसि दिव्यानि मणींश्च चित्रान्
सीतां च रामाय निवेद्य देवीं वसेम राजन्निह वीतशोकाः॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15158 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 483

## षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

### रावणेन विभीषणनिन्दनम् ॥

सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभीषणम् ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥ १ ॥

वसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण वा ।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥ २ ॥

जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस ।
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥ ३ ॥

प्रधानं साधनं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षस ।
ज्ञातयो ह्यवमन्यन्ते शूरं परिभवन्ति च ॥ ४ ॥

नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः ।
प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः ॥ ५ ॥

श्रूयन्ते हस्तिभिर्गीताः श्लोकाः पद्मवने क्वचित् ।
पाशहस्तान्नरान्दृष्ट्वा शृणु तान्गदतो मम ॥ ६ ॥

नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः ।
घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥ ७ ॥

उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः ।
कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयं सुकष्टं विदितं च नः ॥ ८ ॥

विद्यते गोषु संपन्नं विद्यते ब्राह्मणे दमः ।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ज्ञातितो भयम् ॥ ९ ॥

ततो नेष्टमिदं सौम्य यदहं लोकसत्कृतः ।
ऐश्वर्यमभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्न्यवस्थितः ॥ १० ॥

यथा पुष्करपर्णेषु पतितास्तोयबिन्दवः ।
न श्लेषमुपगच्छन्ति तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥ ११ ॥

यथा मधुकरस्तर्षाद्रसं विन्दन्न विद्यते ।
तथा त्वमपि तत्रैव तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥ १२ ॥

यथा पूर्वं गजः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः ।
दूषयत्यात्मनो देहं तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥ १३ ॥

यथा शरदि मेघानां सिञ्चतामपि गर्जताम् ।
न भवत्यम्बुसंक्लेदस्तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥ १४ ॥

अन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर ।
अस्मिन्मुहूर्ते न भवेत्त्वां तु धिक्कुलपांसनम् ॥ १५ ॥

इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः ।
उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥ १६ ॥

अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः ।
अन्तरिक्षगतः श्रीमान्भ्रातरं राक्षसाधिपम् ॥ १७ ॥

स त्वं भ्राताऽसि मे राजन्ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥

ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो न च धर्मपथे स्थितः ।
इदं तु परुषं वाक्यं न क्षमाम्यनृतं तव ॥ १९ ॥

सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन ।
न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः ॥ २० ॥

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ २१ ॥

बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणा ।
न नश्यन्तमुपेक्षेयं प्रदीप्तं शरणं यथा ॥ २२ ॥

दीप्तपावकसङ्काशैः शितैः काञ्चनभूषणैः ।
न त्वामिच्छाम्यहं द्रष्टुं रामेण निहतं शरैः ॥ २३ ॥

शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे ।
कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ॥ २४ ॥

तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता ।
आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम् ॥ २५ ॥

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना ॥

निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा
न रोचते ते वचनं निशाचर ।
परीतकाला हि गतायुषो नरा
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षोडशः सर्गः ॥

अदितः श्लोकाः 15185 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 510

## सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

### विभीषणशरणागतिः ॥

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः ।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ १ ॥

तं मेरुशिखराकारं दीप्तामिव शतहृदाम् ।
गगनस्थं महीस्थास्ते ददृशुर्वानराधिपाः ॥ २ ॥

स हि मेघाचलप्रख्यो महेन्द्रसमविक्रमः ।
सर्वायुधधरो वीरो दिव्याभरणभूषितः ॥ ३ ॥

ये चाप्यनुचरास्तस्य चत्वारो भीमविक्रमाः ।
तेऽपि सर्वायुधोपेता भूषणैश्चापि भूषिताः ॥ ४ ॥

तमात्मपञ्चमं दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिपः ।
वानरैः सह दुर्धर्षश्चिन्तयामास बुद्धिमान् ॥ ५ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु वानरांस्तानुवाच ह ।
हनुमत्प्रमुखान्सर्वानिदं वचनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

एष सर्वायुधोपेतश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ।
राक्षसोऽभ्येति पश्यध्वमस्मान्हन्तुं न संशयः ॥ ७ ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते वानरोत्तमाः ।
सालानुद्यम्य शैलांश्च इदं वचनमब्रुवन् ॥ ८ ॥

शीघ्रं व्यादिश नो राजन्वधायैषां दुरात्मनाम् ।
निपतन्तु हताश्चैते धरण्यामल्पतेजसः ॥ ९ ॥

तेषां संभाषमाणानामन्योन्यं स विभीषणः ।
उत्तरं तीरमासाद्य खस्थ एव व्यतिष्ठत ॥ १० ॥

उवाच च महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान् ।
सुग्रीवं तांश्च संप्रेक्ष्य खस्थ एव विभीषणः ॥ ११ ॥

रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः ।
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥ १२ ॥

तेन सीता जनस्थानाद्धृता हत्वा जटायुषम् ।
रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥ १३ ॥

तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम् ।
साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः ॥ १४ ॥

स च न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः ।
उच्यमानं हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम् ॥ १५ ॥

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः ।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥ १६ ॥

सर्वलोकशरण्याय राघवाय महात्मने ।
निवेदयत मां क्षिप्रं विभीषणमुपस्थितम् ॥ १७ ॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः ।
लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ।
चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः ॥ १९ ॥

मन्त्रे व्यूहे नये चारे युक्तो भवितुमर्हसि ।
वानराणां च भद्रं ते परेषां च परन्तप ॥ २० ॥

अन्तर्धानगता ह्येते राक्षसाः कामरूपिणः ।
शूराश्च निकृतिज्ञाश्च तेषु जातु न विश्वसेत् ॥ २१ ॥

प्रणिधी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवेदयम् ।
अनुप्रविश्य सोऽस्मासु भेदं कुर्यान्न संशयः ॥ २२ ॥

अथवा स्वयमेवैष छिद्रमासाद्य बुद्धिमान् ।
अनुप्रविश्य विश्वस्ते कदाचित्प्रहरेदपि ॥ २३ ॥

मित्रादपि बलं चैव मौलं भृत्यबलं तथा ।
सर्वमेतद्बलं ग्राह्यं वर्जयित्वा द्विषद्बलम् ॥ २४ ॥

प्रकृत्या राक्षसो ह्येष भ्राताऽमित्रस्य ते प्रभो ।
आगतश्च रिपोः पक्षात्कथमस्मिन्हि विश्वसेत् ॥ २५ ॥

रावणेन प्रणिहितं तमवेहि विभीषणम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥ २६ ॥

राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमुपागतः ।
प्रहर्तुं मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि चानघ ॥ २७ ॥

प्रविष्टः शत्रुसैन्यं हि प्राप्तः शत्रुरतर्कितः ।
निहन्यादन्तरं लब्ध्वा उलूक इव वायसान् ॥ २८ ॥

वध्यतामेष दण्डेन तीव्रेण सचिवैः सह ।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥ २९ ॥

एवमुक्त्वा तु तं रामं संरब्धो वाहिनीपतिः ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत् ॥ ३० ॥

सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा रामो महायशाः ।
समीपस्थानुवाचेदं हनुमत्प्रमुखान्हरीन् ॥ ३१ ॥

यदुक्तं कपिराजेन रावणावरजं प्रति ।
वाक्यं हेतुमदर्थ्यं च भवद्भिरपि तच्छ्रुतम् ॥ ३२ ॥

सुहृदा ह्यर्थकृच्छ्रेषु युक्तं बुद्धिमता सता ।
समर्थेनापि संदेष्टुं शाश्वतीं भूतिमिच्छता ॥ ३३ ॥

इत्येवं परिपृष्टास्ते स्वं स्वं मतमतन्द्रिताः ।
सोपचारं तदा राममूचुर्हितचिकीर्षवः ॥ ३४ ॥

अज्ञातं नास्ति ते किंचित्त्रिषु लोकेषु राघव ।
आत्मानं सूचयञ्जानन् पृच्छस्यस्मान्सुहृत्तया ॥ ३५ ॥

त्वं हि सत्यव्रतः शूरो धार्मिको दृढविक्रमः ।
परीक्ष्यकारी स्मृतिमान्निसृष्टात्मा सुहृत्सु च ॥ ३६ ॥

तस्मादेकैकशस्तावद्ब्रुवन्तु सचिवास्तव ।
हेतुतो मतिसंपन्नाः समर्थाश्च पुनः पुनः ॥ ३७ ॥

इत्युक्ते राघवायाथ मतिमानङ्गदोऽग्रतः ।
विभीषणपरीक्षार्थमुवाच वचनं हरिः ॥ ३८ ॥

शत्रोः सकाशात्संप्राप्तः सर्वथा शङ्क्य एव हि ।
विश्वासयोग्यः सहसा न कर्तव्यो विभीषणः ॥ ३९ ॥

छादयित्वाऽऽत्मभावं हि चरन्ति शठबुद्धयः ।
प्रहरन्ति च रन्ध्रेषु सोऽनर्थस्तत्कृतो भवेत् ॥ ४० ॥

अर्थानर्थौ विनिश्चित्य व्यवसायं भजेत ह ।
गुणतः संग्रहं कुर्याद्दोषतश्च विसर्जयेत् ॥ ४१ ॥

यदि दोषो महांस्तस्मिंस्त्यज्यतामविशङ्कितम् ।
गुणान्वापि बहून् ज्ञात्वा संग्रहः क्रियतां नृप ॥ ४२ ॥

शरभस्त्वथ निश्चित्य सार्थं वचनमब्रवीत् ।
क्षिप्रमस्मिन्नरव्याघ्र चारः प्रतिविधीयताम् ॥ ४३ ॥

प्रणिधाय हि चारेण यथावत्सूक्ष्मबुद्धिना ।
परीक्ष्य च ततः कार्यो यथान्याय्यं परिग्रहः ॥ ४४ ॥

जाम्बवांस्त्वथ संप्रेक्ष्य शास्त्रबुद्ध्या विचक्षणः ।
वाक्यं विज्ञापयामास गुणवद्दोषवर्जितम् ॥ ४५ ॥

बद्धवैराच्च पापाच्च राक्षसेन्द्राद्विभीषणः ।
अदेशकाले संप्राप्तः सर्वथा शङ्क्यतामयम् ॥ ४६ ॥

ततो मैन्दस्तु संप्रेक्ष्य नयापनयकोविदः ।
वाक्यं वचनसंपन्नो बभाषे हेतुमत्तरम् ॥ ४७ ॥

वचनं नाम तस्यैष रावणस्य विभीषणः ।
पृच्छ्यतां मधुरेणायं शनैर्नरवरेश्वर ॥ ४८ ॥

भावमस्य तु विज्ञाय ततस्तत्वं करिष्यसि ।
यदि दुष्टो न दुष्टो वा बुद्धिपूर्वं नरर्षभ ॥ ४९ ॥

अथ संस्कारसंपन्नो हनुमान्सचिवोत्तमः ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु ॥ ५० ॥
न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम् ।
अतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ॥ ५१ ॥
न वादान्नापि सङ्घर्षान्नाधिक्यान्न च कामतः ।
वक्ष्यामि वचनं राजन्यथार्थं राम गौरवात् ॥ ५२ ॥
अर्थानर्थनिमित्तं हि यदुक्तं सचिवैस्तव ।
तत्र दोषं प्रपश्यामि क्रिया न ह्युपपद्यते ॥ ५३ ॥
ऋते नियोगात्सामर्थ्यमवबोद्धुं न शक्यते ॥ ५४ ॥
सहसा विनियोगो हि दोषवान्प्रतिभाति मा ॥ ५५ ॥
चारप्रणिहितं युक्तं यदुक्तं सचिवैस्तव ।
अर्थस्यासंभवात्तत्र कारणं नोपपद्यते ॥ ५६ ॥
अदेशकाले संप्राप्त इत्ययं यद्विभीषणः ।
विवक्षा तत्र मेऽस्तीयं तां निबोध यथामति ॥
स एष देशः कालश्च भवतीति यथा तथा ॥ ५७ ॥
पुरुषात्पुरुषं प्राप्य तथा दोषगुणावपि ।
दौरात्म्यं रावणे दृष्ट्वा विक्रमं च तथा त्वयि ॥
युक्तमागमनं तस्य सदृशं तस्य बुद्धितः ॥ ५८ ॥
अज्ञातरूपैः पुरुषैः स राजन्पृच्छ्यतामिति ।
यदुक्तमत्र मे प्रेक्षा काचिदस्ति समीक्षिता ॥ ५९ ॥
पृच्छ्यमानो विशङ्केत सहसा बुद्धिमान्वचः ।
तत्र मित्रं प्रदुष्येत मिथ्या पृष्टं सुखागतम् ॥ ६० ॥

अशक्यः सहसा राजन्भावो वेत्तुं परस्य वै ।
अन्तःस्वभावैर्गीतैस्तैर्नैपुण्यं पश्यता भृशम् ॥ ६१ ॥
न त्वस्य ब्रुवतो जातु लक्ष्यते दुष्टभावता ।
प्रसन्नं वदनं चापि तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥ ६२ ॥
अशङ्कितमतिः स्वस्थो न शठः परिसर्पति ।
न चास्य दुष्टा वाक् चापि तस्मान्नास्तीह संशयः ॥
आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम् ।
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥ ६४ ॥
देशकालोपपन्नं च कार्यं कार्यविदां वर ।
सफलं कुरुते क्षिप्रं प्रयोगेणाभिसंहितम् ॥ ६५ ॥
उद्योगं तव संप्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम् ।
वालिनश्च वधं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम् ॥ ६६ ॥
अमर्षी भ्रातरं त्यक्त्वा भवन्तं शरणं गतः ।
देशकालोपपन्नश्च तत्कुलीनश्च राक्षसः ॥ ६७ ॥
राज्यं प्रार्थयमानश्च बुद्धिपूर्वमिहागतः ॥ ६८ ॥
एतावत्तु पुरस्कृत्य युज्यते त्वस्य संग्रहः ।
यथाशक्ति मयोक्तं तु राक्षसस्यार्जवं प्रति ॥
त्वं प्रमाणं तु शेषस्य श्रुत्वा बुद्धिमतां वर ॥ ६९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15254 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 579

## अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

### विभीषणसंग्रहः ॥

अथ रामः प्रसन्नात्मा श्रुत्वा वायुसुतस्य ह ।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः श्रुतवानात्मनि स्थितम् ॥ १ ॥

ममापि तु विवक्षाऽस्ति काचित्प्रति विभीषणम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं भवद्भिः श्रेयसि स्थितैः ॥ २ ॥

मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥ ३ ॥

सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः ॥ ४ ॥

सुदुष्टो वाऽप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ॥ ५ ॥

ईदृशं व्यसनं प्राप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत् ।
को नाम स भवेत्तस्य यमेष न परित्यजेत् ॥ ६ ॥

वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य च ।
ईषदुत्स्मयमानस्तु लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम् ॥
इति होवाच काकुत्स्थो वाक्यं सत्यपराक्रमः ॥ ७ ॥

अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च ।
न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः ॥ ८ ॥

अस्ति सूक्ष्मतरं किंचिद्यदत्र प्रतिभाति मे ।
प्रत्यक्षं लौकिकं वाऽपि विद्यते सर्वराजसु ॥ ९ ॥

अमित्रास्तत्कुलीनाश्च प्रातिदेश्याश्च कीर्तिताः ।
व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः ॥ १० ॥

अपापास्तत्कुलीनाश्च मानयन्ति स्वकान्हितान् ।
एष प्रायो नरेन्द्राणां शङ्कनीयस्तु शोभनः ॥ ११ ॥

यस्तु दोषस्त्वया प्रोक्तो ह्यादानेऽरिबलस्य च ।
तत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं शृणु ॥
न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकाङ्क्षी च राक्षसः ॥ १२ ॥

पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद्ग्राह्यो विभीषणः ॥ १३ ॥

अव्यग्राश्च प्रहृष्टाश्च न भविष्यन्ति सङ्गताः ।
प्रणादश्च महानेष ततोऽस्य भयमागतम् ॥
इति भेदं गमिष्यन्ति तस्माद्ग्राह्यो विभीषणः ॥ १४ ॥

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः ।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः ॥ १५ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ।
उत्थायेदं महाप्राज्ञः प्रणतो वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥

रावणेन प्रणिहितं तमवेमि विभीषणम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥ १७ ॥

राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः ।
प्रहर्तुं त्वयि विश्वस्ते प्रच्छन्नो मयि वाऽनघ ॥ १८ ॥

लक्ष्मणे वा महाबाहो स वध्यः सचिवैः सह ।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥ १९ ॥

एवमुक्त्वा रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत् ॥ २० ॥
सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं रामः श्रुत्वा विमृश्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवम् ॥ २१ ॥
स दुष्टो वाऽप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं ममाशक्तः कथञ्चन ॥ २२ ॥
पिशाचान्दानवान्यक्षान्पृथिव्यां चैव राक्षसान् ।
अङ्गुल्यग्रेण तान्हन्यामिच्छन्हरिगणेश्वर ॥ २३ ॥
श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः ।
अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः ॥ २४ ॥
स हि तं प्रतिजग्राह भार्याहर्तारमागतम् ।
कपोतो वानरश्रेष्ठ किं पुनर्मद्विधो जनः ॥ २५ ॥
ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा ।
शृणु गाथां पुरा गीतां धर्मिष्ठां सत्यवादिनीम् ॥ २६ ॥
बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप ॥ २७ ॥
आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणागतः ।
अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥ २८ ॥
स चेद्भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वाऽपि न रक्षति ।
स्वया शक्त्या यथासत्त्वं तत्पापं लोकगर्हितम् ॥ २९ ॥
विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणागतः ।
आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥ ३० ॥

एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे ॥ ३१ ॥
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ।
करिष्यामि यथार्थं तु कण्डोर्वचनमुत्तमम् ॥ ३२ ॥
धर्मिष्ठं च यशस्यं च स्वर्ग्यं स्यात्तु फलोदये ॥ ३३ ॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ ३४ ॥
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया ।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
प्रत्यभाषत काकुत्स्थं सौहार्देन प्रचोदितः ॥ ३६ ॥
किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथ सुखावह ।
यत्त्वमार्यं प्रभाषेथाः सत्त्ववान्सत्पथे स्थितः ॥ ३७ ॥
मम चाप्यन्तरात्माऽयं शुद्धं वेत्ति विभीषणम् ।
अनुमानाच्च भावाच्च सर्वतः सुपरीक्षितः ॥ ३८ ॥
तस्मात्क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव ।
विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः ॥ ३९ ॥
ततस्तु सुग्रीववचो निशम्य तद्धरीश्वरेणाभिहितं नरेश्वरः ।
विभीषणेनाशु जगाम सङ्गमं पतत्रिराजेन यथा पुरन्दरः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टादशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15294 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 619

## एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

### दर्भशयनम् ॥

राघवेणाभये दत्ते संनतो रावणानुजः ।
विभीषणो महाप्राज्ञो भूमिं समवलोकयत् ॥ १ ॥

खात्पपातावनीं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह ॥ २ ॥

स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः ।
पादयोः शरणान्वेषी चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥ ३ ॥

अब्रवीच्च तदा रामं वाक्यं तत्र विभीषणः ।
धर्मयुक्तं च युक्तं च सांप्रतं संप्रहर्षणम् ॥ ४ ॥

अनुजो रावणस्याहं तेन चाप्यवमानितः ।
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणागतः ॥ ५ ॥

परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि वै ।
भवद्गतं मे राज्यं च जीवितं च सुखानि च ॥ ६ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ।
वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव ॥ ७ ॥

आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम् ॥ ८ ॥

एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
रावणस्य बलं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ९ ॥

अवध्यः सर्वभूतानां गन्धर्वासुररक्षसाम् ।
राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात्स्वयंभुवः ॥ १० ॥

रावणानन्तरो भ्राता मम ज्येष्ठश्च वीर्यवान् ।
कुम्भकर्णो महातेजाः शक्रप्रतिबलो युधि ॥ ११ ॥

राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि वा श्रुतः ।
कैलासे येन संग्रामे माणिभद्रः पराजितः ॥ १२ ॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणस्त्ववध्यकवचो युधि ।
धनुरादाय यस्तिष्ठन्नदृश्यो भवतीन्द्रजित् ॥ १३ ॥

संग्रामसमयव्यूहे तर्पयित्वा हुताशनम् ।
अन्तर्धानगतः शत्रूनिन्द्रजिद्धन्ति राघव ॥ १४ ॥

महोदरमहापार्श्वौ राक्षसश्चाप्यकम्पनः ।
अनीकस्थास्तु तस्यैते लोकपालसमा युधि ॥ १५ ॥

दश कोटिसहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम् ।
मांसशोणितभक्षाणां लङ्कापुरनिवासिनाम् ॥ १६ ॥

स तैस्तु सहितो राजा लोकपालानयोधयत् ॥ १७ ॥

सह देवैस्तु ते भग्ना रावणेन महात्मना ॥ १८ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रामो दृढपराक्रमः ।
अन्वीक्ष्य मनसा सर्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥

यानि कर्मापदानानि रावणस्य विभीषण ।
आख्यातानि च तत्त्वेन ह्यवगच्छामि तान्यहम् ॥ २० ॥

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सबान्धवम् ।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २१ ॥

रसातलं वा प्रविशेत्पातालं वाऽपि रावणः ।
पितामहसकाशं वा न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥ २२ ॥

अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रबलबान्धवम् ।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे ॥ २३ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
शिरसाऽऽवन्द्य धर्मात्मा वक्तुमेवोपचक्रमे ॥ २४ ॥

राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणम् ।
करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम् ॥ २५ ॥

इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणं प्रीतः समुद्राज्जलमानय ॥ २६ ॥

तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम् ।
राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद ॥ २७ ॥

एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ।
मध्ये वानरमुख्यानां राजानं रामशासनात् ॥ २८ ॥

तं प्रसादं तु रामस्य दृष्ट्वा सद्यः प्लवङ्गमाः ।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानं साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥ २९ ॥

अब्रवीच्च हनूमांश्च सुग्रीवश्च विभीषणम् ॥ ३० ॥

कथं सागरमक्षोभ्यं तराम वरुणालयम् ।
सैन्यैः परिवृताः सर्वे वानराणां महौजसाम् ॥ ३१ ॥

उपायं नाधिगच्छामो यथा नदनदीपतिम् ।
तराम तरसा सर्वे ससैन्या वरुणालयम् ॥
एवमुक्तस्तु धर्मज्ञः प्रत्युवाच विभीषणः ॥ ३२ ॥

समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति ॥ ३३ ॥

खानितः सगरेणायमप्रमेयो महोदधिः ।
कर्तुमर्हति रामस्य ज्ञात्वा कार्यं महामतिः ॥ ३४ ॥

एवं विभीषणेनोक्तो राक्षसेन विपश्चिता ।
आजगामाथ सुग्रीवो यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ ३५ ॥

ततश्चाख्यातुमारेभे विभीषणवचः शुभम् ।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः सागरस्योपवेशनम् ॥
प्रकृत्या धर्मशीलस्य राघवस्याप्यरोचत ॥ ३६ ॥

स लक्ष्मणं महातेजाः सुग्रीवं च हरीश्वरम् ।
सत्क्रियार्थं क्रियादक्षः स्मितपूर्वमुवाच ह ॥ ३७ ॥

विभीषणस्य मन्त्रोऽयं मम लक्ष्मण रोचते ।
ब्रूहि त्वं सहसुग्रीवस्तवापि यदि रोचते ॥ ३८ ॥

सुग्रीवः पण्डितो नित्यं भवान्मन्त्रविचक्षणः ।
उभाभ्यां सम्प्रधार्यार्थं रोचते यत्तदुच्यताम् ॥ ३९ ॥

एवमुक्तौ तु तौ वीरावुभौ सुग्रीवलक्ष्मणौ ।
समुदाचारसंयुक्तमिदं वचनमूचतुः ॥ ४० ॥

किमर्थं नौ नरव्याघ्र न रोचिष्यति राघव ।
विभीषणेन यच्चोक्तमस्मिन्काले सुखावहम् ॥ ४१ ॥

अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरेऽस्मिन्वरुणालये ।
लङ्का नासादितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ४२ ॥

विभीषणस्य शूरस्य यथार्थं क्रियतां वचः ।
अलं कालात्ययं कृत्वा समुद्रोऽयं नियुज्यताम् ॥
यथा सैन्येन गच्छामः पुरीं रावणपालिताम् ॥ ४३ ॥

एवमुक्तः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः ।
संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15338 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 663

## विंशः सर्गः ॥ २० ॥

### शुकसन्देशः ॥

ततो निविष्टां ध्वजिनीं सुग्रीवेणाभिपालिताम् ।
ददर्श राक्षसोऽभ्येत्य शार्दूलो नाम वीर्यवान् ॥ २ ॥

चारो राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
तां दृष्ट्वा सर्वतो व्यग्रं प्रतिगम्य स राक्षसः ॥
प्रविश्य लङ्कां वेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

एष वानरऋक्षौघो लङ्कां समभिवर्तते ।
अगाधश्चाप्रमेयश्च द्वितीय इव सागरः ॥ ३ ॥

पुत्रौ दशरथस्येमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
उत्तमायुधसंपन्नौ सीतायाः पदमागतौ ॥ ४ ॥

एतौ सागरमासाद्य संनिविष्टौ महाद्युती ॥ ५ ॥

बलमाकाशमावृत्य सर्वतो दशयोजनम् ।
तत्त्वभूतं महाराज क्षिप्रं वेदितुमर्हसि ॥ ६ ॥

तव दूता महाराज क्षिप्रमर्हन्त्यवेक्षितुम् ॥ ७ ॥

उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदो वाऽत्र प्रयुज्यताम् ॥ ८ ॥

शार्दूलस्य वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
उवाच सहसा व्यग्रः संप्रधार्यार्थमात्मनः ॥
शुकं नाम तदा रक्षो वाक्यमर्थविदां वरम् ॥ ९ ॥

सुग्रीवं ब्रूहि गत्वा त्वं राजानं वचनान्मम ।
यथासंदेशमक्लीबं श्लक्ष्णया परया गिरा ॥ १० ॥

त्वं वै महाराज कुलप्रसूतो महाबलश्चर्क्षरजःसुतश्च ।
न कश्चिदर्थस्तव नास्त्यनर्थस्तथा हि मे भ्रातृसमो हरीश ॥

अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य धीमतः ।
किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रतिगम्यताम् ॥ १२ ॥

न हीयं हरिभिर्लङ्का शक्या प्राप्तुं कथञ्चन ।
देवैरपि सगन्धर्वैः किं पुनर्नरवानरैः ॥ १३ ॥

स तथा राक्षसेन्द्रेण संदिष्टो रजनीचरः ।
शुको विहङ्गमो भूत्वा तूर्णमाप्लुत्य चाम्बरम् ॥ १४ ॥

स गत्वा दूरमध्वानमुपर्युपरि सागरम् ।
संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥
सर्वमुक्तं यथादिष्टं रावणेन दुरात्मना ॥ १५ ॥

तं प्रापयन्तं वचनं तूर्णमाप्लुत्य वानराः ।
प्रापद्यन्त दिवं क्षिप्रं लोप्तुं हन्तुं च मुष्टिभिः ॥ १६ ॥

स तैः प्लवङ्गैः प्रसभं निगृहीतो निशाचरः ।
गगनाद्भूतले चाशु परिगृह्य निपातितः ॥ १७ ॥

वानरैः पीड्यमानस्तु शुको वचनमब्रवीत् ।
न दूतान्घ्नन्ति काकुत्स्थ वार्यन्तां साधु वानराः ॥ १८ ॥

यस्तु हित्वा मतं भर्तुः स्वमतं संप्रभाषते ।
अनुक्तवादी दूतः सन्स दूतो वधमर्हति ॥ १९ ॥

शुकस्य वचनं श्रुत्वा रामस्तु परिदेवितम् ।
उवाच मा वधिष्टेति घ्नतः शाखामृगर्षभान् ॥ २० ॥

स च पत्रलघुर्भूत्वा हरिभिर्दर्शिते भये ।
अन्तरिक्षस्थितो भूत्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥

सुग्रीव सत्त्वसंपन्न महाबलपराक्रम ।
किं मया खलु वक्तव्यो रावणो लोकरावणः ॥ २२ ॥

स एवमुक्तः प्लवगाधिपस्तदा
प्लवङ्गमानामृषभो महाबलः ।
उवाच वाक्यं रजनीचरस्य
चारं शुकं तूर्णमदीनसत्त्वः ॥ २३ ॥

न मेऽसि मित्रं न तथाऽनुकम्प्यो
न चोपकर्ताऽसि न मे प्रियोऽसि ।
अरिश्च रामस्य सहानुबन्धः
स मेऽसि वालीव वधार्ह वध्यः ॥ २४ ॥

निहन्म्यहं त्वां ससुतं सबन्धुं
सज्ञातिवर्गं रजनीचरेश ।
लङ्कां च सर्वां महता बलेन
क्षिप्रं करिष्यामि समेत्य भस्म ॥ २५ ॥

न मोक्ष्यसे रावण राघवस्य
सुरैः सहेन्द्रैरपि मूढ गुप्तः ।
अन्तर्हितः सूर्यपथं गतो वा
तथैव पातालमनुप्रविष्टः ॥ २६ ॥

तस्य ते त्रिषु लोकेषु न पिशाचं न राक्षसम् ।
त्रातारमनुपश्यामि न गन्धर्वं न चासुरम् ॥ २७ ॥

अवधीर्यज्जराद्वृद्धमक्षमं किं जटायुषम् ॥ २८ ॥

किं नु ते रामसान्निध्ये सकाशे लक्ष्मणस्य वा ।
हृता सीता विशालाक्षी यां त्वं गृह्य न बुध्यसे ॥ २९ ॥

महाबलं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि ।
न बुध्यसे रघुश्रेष्ठं यस्ते प्राणान्हरिष्यति ॥ ३० ॥

ततोऽब्रवीद्वालिसुतस्त्वङ्गदो हरिसत्तमः ।
नायं दूतो महाराज चारिकः प्रतिभाति मे ॥ ३१ ॥

तुलितं हि बलं सर्वमनेनात्रैव तिष्ठता ।
गृह्यतां मा गमल्लङ्कामेतद्धि मम रोचते ॥ ३२ ॥

ततो राज्ञा समादिष्टाः समुत्प्लुत्य वलीमुखाः ।
जगृहुश्च बबन्धुश्च विलपन्तमनाथवत् ॥ ३३ ॥

शुकस्तु वानरैश्चण्डैस्तत्र तैः संप्रपीडितः ।
व्याक्रोशत महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ॥
लुप्येते मे बलात्पक्षौ भिद्येते च तथाऽक्षिणी ॥ ३४ ॥

यां च रात्रिं मरिष्यामि जाये रात्रिं च यामहम् ।
एतस्मिन्नन्तरे काले यन्मया ह्यशुभं कृतम् ॥
सर्वं तदुपपद्येथा जह्यां चेद्यदि जीवितम् ॥ ३५ ॥

नाघातयत्तदा रामः श्रुत्वा तत्परिदेवनम् ।
वानरानब्रवीद्रामो मुच्यतां दूत आगतः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे विंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15374 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 699

## एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

### समुद्रसंक्षोपः श्रीरामक्रोधः ॥

ततः सागरवेलायां दर्भानास्तीर्य राघवः ।
अञ्जलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः ॥ १ ॥

जातरूपमयैश्चैव भूषणैर्भूषितं पुरा ।
बाहुं भुजगभोगाभमुपधायारिसूदनः ॥ २ ॥

वरकाञ्चनकेयूरमुक्ताप्रवरभूषणैः ।
भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा ॥ ३ ॥

चन्दनागरुभिश्चैव पुरस्तादधिवासितम् ।
बालसूर्यप्रतीकाशैश्चन्दनैरुपशोभितम् ॥ ४ ॥

शयने चोत्तमाङ्गेन सीतायाः शोभितं पुरा ।
तक्षकस्येव संभोगं गङ्गाजलनिषेवितम् ॥ ५ ॥

संयुगे युगसङ्काशं शत्रूणां शोकवर्धनम् ।
सुहृदानन्दनं दीर्घं सागरान्तव्यपाश्रयम् ॥ ६ ॥

अस्यता च पुनः सव्यं ज्याघातविगतत्वचम् ।
दक्षिणो दक्षिणं बाहुं महापरिघसन्निभम् ॥ ७ ॥

गोसहस्रप्रदातारमुपधाय महद्भुजम् ।
अद्य मे मरणं वाऽथ तरणं सागरस्य वा ॥ ८ ॥

इति रामो मतिं कृत्वा महाबाहुर्महोदधिम् ।
अधिशिश्ये स विधिवत्प्रयतो नियतो मुनिः ॥ ९ ॥

तस्य रामस्य सुप्तस्य कुशास्तीर्णे महीतले ।
नियमादप्रमत्तस्य निशास्तिस्रोऽतिचक्रमुः ॥ १० ॥

स त्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञो धर्मवत्सलः ।
उपासत तदा रामः सागरं सरितां पतिम् ॥ ११ ॥

न च दर्शयते रूपं तदा रामस्य सागरः ।
प्रयतेनापि रामेण यथार्हमभिपूजितः ॥ १२ ॥

समुद्रस्य ततः क्रुद्धो रामो रक्तान्तलोचनः ।
समीपस्थमुवाचेदं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १३ ॥

अवलेपः समुद्रस्य न दर्शयति यत्स्वयम् ॥ १४ ॥

प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता ।
असामर्थ्यं फलन्त्येते निर्गुणेषु सतां गुणाः ॥ १५ ॥

आत्मप्रशंसिनं दुष्टं धृष्टं विपरिधावकम् ।
सर्वत्रोत्सृष्टदण्डं च लोकः सत्कुरुते नरम् ॥ १६ ॥

न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यशः ।
प्राप्तुं लक्ष्मण लोकेऽस्मिञ्जयो वा रणमूर्धनि ॥ १७ ॥

अद्य मद्बाणनिर्भिन्नैर्मकरैर्मकरालयम् ।
निरुद्धतोयं सौमित्रे प्लवद्भिः पश्य सर्वतः ॥ १८ ॥

महाभोगानि मत्स्यानां करिणां च करानिह ।
भोगिनां पश्य नागानां मया छिन्नानि लक्ष्मण ॥ १९ ॥

सशङ्खशुक्तिकाजालं समीनमकरं शरैः ।
अद्य युद्धेन महता समुद्रं परिशोषये ॥ २० ॥
क्षमया हि समायुक्तं मामयं मकरालयः ।
असमर्थं विजानाति धिक् क्षमामीदृशे जने ॥ २१ ॥
न दर्शयति साम्ना मे सागरो रूपमात्मनः ॥ २२ ॥
चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान् ।
सागरं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवङ्गमाः ॥ २३ ॥
अद्याक्षोभ्यमपि क्रुद्धः क्षोभयिष्यामि सागरम् ॥ २४ ॥
वेलासु कृतमर्यादं सहसोर्मिसमाकुलम् ।
निर्मर्यादं करिष्यामि सायकैर्वरुणालयम् ॥ २५ ॥
महार्णवं क्षोभयिष्ये महादानवसङ्कुलम् ॥ २६ ॥
एवमुक्त्वा धनुष्पाणिः क्रोधविस्फारितेक्षणः ।
बभूव रामो दुर्धर्षो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ २७ ॥
संपीड्य च धनुर्घोरं कम्पयित्वा शरैर्जगत् ।
मुमोच विशिखानुग्रान् वज्रानिव शतक्रतुः ॥ २८ ॥
ते ज्वलन्तो महावेगास्तेजसा सायकोत्तमाः ।
प्रविशन्ति समुद्रस्य सलिलं त्रस्तपन्नगम् ॥ २९ ॥
तोयवेगः समुद्रस्य सनक्रमकरो महान् ।
संबभूव महाघोरः समारुतरवस्तदा ॥ ३० ॥
महोर्मिमालाविततः शङ्खशुक्तिसमावृतः ।
सधूमपरिवृत्तोर्मिः सहसाऽऽसीन्महोदधिः ॥ ३१ ॥

व्यथिताः पन्नगाश्चासन्दीप्तास्या दीप्तलोचनाः ।
दानवाश्च महावीर्याः पातालतलवासिनः ॥ ३२ ॥
ऊर्मयः सिन्धुराजस्य सनक्रमकरास्तदा ।
विन्ध्यमन्दरसङ्काशाः समुत्पेतुः सहस्रशः ॥ ३३ ॥
आघूर्णिततरङ्गौघः संभ्रान्तोरगराक्षसः ।
उद्वर्तितमहाग्राहः संवृत्तः सलिलाशयः ॥ ३४ ॥

ततस्तु तं राघवमुग्रवेगं
प्रकर्षमाणं धनुरप्रमेयम् ।
सौमित्रिरुत्पत्य समुच्छ्वसन्तं
मा मेति चोक्त्वा धनुराललम्बे ॥ ३५ ॥
एतद्विनाऽपि ह्युदधेस्तवाद्य
संपत्स्यते वीरतमस्य कार्यम् ।
भवद्विधाः क्रोधवशं न यान्ति
दीर्घं भवान्पश्यतु साधुवृत्तम् ॥ ३६ ॥
अन्तर्हितैश्चापि तथाऽन्तरिक्षे
ब्रह्मर्षिभिश्चैव सुरर्षिभिश्च ।
शब्दः कृतः कष्टमिति ब्रुवद्भि-
र्मा मेति चोक्त्वा महता स्वरेण ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15411 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 736

## द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

### सेतुबन्धः समुद्रतरणं च ॥

अथोवाच रघुश्रेष्ठः सागरं दारुणं वचः ।
अद्य त्वां शोषयिष्यामि सपातालं महार्णव ॥ १ ॥

शरनिर्दग्धतोयस्य परिशुष्कस्य सागर ।
मया शोषितसत्त्वस्य पांसुरुत्पद्यते महान् ॥ २ ॥

मत्कार्मुकविसृष्टेन शरवर्षेण सागर ।
पारं तेऽद्य गमिष्यन्ति पद्भिरेव प्लवङ्गमाः ॥ ३ ॥

विचिन्वन्नाभिजानासि पौरुषं वाऽपि विक्रमम् ।
दानवालय सन्तापं मत्तो नाधिगमिष्यसि ॥ ४ ॥

ब्राह्मेणास्त्रेण संयोज्य ब्रह्मदण्डनिभं शरम् ।
संयोज्य धनुषि श्रेष्ठे विचकर्ष महाबलः ॥ ५ ॥

तस्मिन्विकृष्टे सहसा राघवेण शरासने ।
रोदसी संपफालेव पर्वताश्च चकम्पिरे ॥ ६ ॥

तमश्च लोकमावव्रे दिशश्च न चकाशिरे ।
परिचुक्षुभिरे चाशु सरांसि सरितस्तथा ॥ ७ ॥

तिर्यक्च सह नक्षत्रैः सङ्गतौ चन्द्रभास्करौ ।
भास्करांशुभिरादीप्तं तमसा च समावृतम् ॥ ८ ॥

प्रचकाशे तदाऽऽकाशमुल्काशतविदीपितम् ।
अन्तरिक्षाच्च निर्घाता निर्जग्मुरतुलस्वनाः ॥ ९ ॥

पुस्फुरुश्च घना दिव्या दिवि मारुतपङ्क्तयः ॥ १० ॥

बभञ्ज च तदा वृक्षाञ्जलदानुद्वहन्नपि ।
अरुजंश्चैव शैलाग्राञ्छिखराणि प्रभञ्जनः ॥ ११ ॥

दिविस्पृशो महामेघाः सङ्गताः समहास्वनाः ।
मुमुचुर्वैद्युतानग्नींस्ते महाशनयस्तदा ॥ १२ ॥

यानि भूतानि दृश्यानि चुक्रुशुश्चाशनेः समम् ।
अदृश्यानि च भूतानि मुमुचुर्भैरवस्वनम् ॥ १३ ॥

शिश्यिरे चापि भूतानि संत्रस्तान्युद्विजन्ति च ।
संप्रविव्यथिरे चापि न च पस्पन्दिरे भयात् ॥ १४ ॥

सह भूतैः सतोयोर्मिः सनागः सहराक्षसः ।
सहसाऽभूत्ततो वेगाद्भीमवेगो महोदधिः ॥ १५ ॥

योजनं व्यतिचक्राम वेलामन्यत्र संप्लवात् ।
तं तदा समतिक्रान्तं नातिचक्राम राघवः ॥
समुद्धतममित्रघ्नो रामो नदनदीपतिम् ॥ १६ ॥

ततो मध्यात्समुद्रस्य सागरः स्वयमुत्थितः ।
उदयन्हि महाशैलान्मेरोरिव दिवाकरः ॥ १७ ॥

पन्नगैः सह दीप्तास्यैः समुद्रः प्रत्यदृश्यत ।
स्निग्धवैडूर्यसंकाशो जाम्बूनदविभूषितः ॥ १८ ॥

रक्तमाल्याम्बरधरः पद्मपत्रनिभेक्षणः ।
सर्वपुष्पमयीं दिव्यां शिरसा धारयन्स्रजम् ॥ १९ ॥

जातरूपमयैश्चैव तपनीयविभूषितैः ।
आत्मजानां च रत्नानां भूषितो भूषणोत्तमैः ॥ २० ॥

धातुभिर्मण्डितः शैलो विविधैर्हिमवानिव ।
एकावलीमध्यगतं तरलं पाण्डुरप्रभम् ॥ २१ ॥

विपुलेनोरसा बिभ्रत्कौस्तुभस्य सहोदरम् ।
आघूर्णिततरङ्गौघः कालिकानिलसङ्कुलः ॥ २२ ॥

देवतानां सुरूपाणां नानारूपाभिरीश्वरः ।
गङ्गासिन्धुप्रधानाभिरापगाभिः समावृतः ॥ २३ ॥

उद्वर्तितमहाग्राहः संभ्रान्तोरगराक्षसः ।
सागरः समुपक्रम्य पूर्वमामन्त्र्य वीर्यवान् ॥ २४ ॥

अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं शरपाणिनम् ॥ २५ ॥

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च राघव ।
स्वभावे सौम्य तिष्ठन्ति शाश्वतं मार्गमाश्रिताः ॥ २६ ॥

तत्स्वभावो ममाप्येष यदगाधोऽहमप्लवः ।
विकारस्तु भवेद्गाध एतत्ते प्रवदाम्यहम् ॥ २७ ॥

न कामान्न च लोभाद्वा न भयात्पार्थिवात्मज ।
ग्राहनक्राकुलजलं स्तम्भयेयं कथञ्चन ॥ २८ ॥

विधास्ये राम येनापि विषहिष्ये ह्यहं तथा ।
ग्राहा न प्रहरिष्यन्ति यावत्सेना तरिष्यति ॥
हरीणां तरणे राम करिष्यामि यथास्थलम् ॥ २९ ॥

तमब्रवीत्तदा राम उद्यतो हि नदीपते ।
अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन्देशे निपात्यताम् ॥ ३० ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा महाशरम् ।
महोदधिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित्पुण्यतमो मम ।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान् ॥

उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः ।
आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम ॥ ३३ ॥

तैस्तु संस्पर्शनं प्राप्तैर्न सहे पापकर्मभिः ।
अमोघः क्रियतां राम तत्र तेषु शरोत्तमः ॥ ३४ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य स राघवः ।
मुमोच तं शरं दीप्तं वीरः सागरदर्शनात् ॥ ३५ ॥

तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां खलु विश्रुतम् ।
निपातितः शरो यत्र दीप्ताशनिसमप्रभः ॥ ३६ ॥

ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता ।
तस्माद्व्रणमुखात्तोयमुत्पपात रसातलात् ॥ ३७ ॥

स बभूव तदा कूपो व्रण इत्यभिविश्रुतः ।
सततं चोत्थितं तोयं समुद्रस्येव दृश्यते ॥
अवदारणशब्दश्च दारुणः समपद्यत ॥ ३८ ॥

तस्मात्तद्बाणपातेन त्वपः कुक्षिष्वशोषयत् ॥ ३९ ॥

विख्यातं त्रिषु लोकेषु मरुकान्तारमेव तत् ।
शोषयित्वा ततः कुक्षिं रामो दशरथात्मजः ॥
वरं तस्मै ददौ विद्वान्मरवेऽमरविक्रमः ॥ ४० ॥

पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः ।
बहुस्नेहो बहुक्षीरसुगन्धिर्विविधौषधः ॥ ४१ ॥

एवमेतैर्गुणैर्युक्तो बहुभिः सततं मरुः ।
रामस्य वरदानाच्च शिवः पन्था बभूव ह ॥ ४२ ॥

तस्मिन्दग्धे तदा कुक्षौ समुद्रः सरितां पतिः ।
राघवं सर्वशास्त्रज्ञमिदं वचनमब्रवीत ॥ ४३ ॥

अयं सौम्य नलो नाम तनुजो विश्वकर्मणः ।
पित्रा दत्तवरः श्रीमान्प्रतिमो विश्वकर्मणा ॥ ४४ ॥

एष सेतुं महोत्साहः करोतु मयि वानरः ।
तमहं धारयिष्यामि तथा ह्येष यथा पिता ॥ ४५ ॥

एवमुक्त्वोदधिर्नष्टः समुत्थाय नलस्तदा ।
अब्रवीद्वानरश्रेष्ठो वाक्यं रामं महाबलः ॥ ४६ ॥

अहं सेतुं करिष्यामि विस्तीर्णे वरुणालये ।
पितुः सामर्थ्यमास्थाय तत्त्वमाह महोदधिः ॥ ४७ ॥

दण्ड एव वरो लोके पुरुषस्येति मे मतिः ।
धिक् क्षमामकृतज्ञेषु सान्त्वं दानमथापि वा ॥ ४८ ॥

अयं हि सागरो भीमः सेतुकर्म दिदृक्षया ।
ददौ दण्डभयाद्गाधं राघवाय महोदधिः ॥ ४९ ॥

मम मातुर्वरो दत्तो मन्दरे विश्वकर्मणा ।
औरसस्तस्य पुत्रोऽहं सदृशो विश्वकर्मणा ॥ ५० ॥

स्मारितोऽस्म्यहमेतेन तत्त्वमाह महोदधिः ।
न चाप्यहमनुक्तो वै प्रब्रूयामात्मनो गुणान् ॥ ५१ ॥

समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वै वरुणालये ।
काममद्यैव बध्नन्तु सेतुं वानरपुङ्गवाः ॥ ५२ ॥

ततोऽतिसृष्टा रामेण सर्वतो हरियूथपाः ।
अभिपेतुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः ॥ ५३ ॥

ते नगान्नगसंकाशाः शाखामृगगणर्षभाः ।
बभञ्जुर्वानरास्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम् ॥ ५४ ॥

ते सालैश्चाश्वकर्णैश्च धवैर्वंशैश्च वानराः ।
कुटजैरर्जुनैस्तालैस्तिलकैस्तिमिशैरपि ॥ ५५ ॥

बिल्वैश्च सप्तपर्णैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ।
चूतैश्चाशोकवृक्षैश्च सागरं समपूरयन् ॥ ५६ ॥

समूलांश्च विमूलांश्च पादपान्हरिसत्तमाः ।
इन्द्रकेतूनिवोद्यम्य प्रजह्रुर्हरयस्तरून् ॥ ५७ ॥

तालान्दाडिमगुल्मांश्च नारिकेलान्विभीतकान् ।
बकुलान्खदिरान्निम्बान्समाजह्रुः समन्ततः ॥ ५८ ॥

हस्तिमात्रान्महाकाया: पाषाणांश्च महाबला: ।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥ ५९ ॥

प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धतम् ।
समुत्पतितमाकाशमुपासर्पत्ततस्ततः ॥ ६० ॥

आप्लुवन्तः प्लुवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
समुद्रं क्षोभयामासुर्वानराश्च समन्ततः ॥
सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति व्यायतं शतयोजनम् ॥ ६१ ॥

नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः ।
स तथा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः ॥ ६२ ॥

दण्डानन्ये प्रगृह्णन्ति विचिन्वन्ति तथा परे ॥ ६३ ॥

वानराः शतशस्तत्र रामस्याज्ञापुरस्सराः ।
मेघाभैः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैर्बबन्धिरे ॥ ६४ ॥

पुष्पिताग्रैश्च तरुभिः सेतुं बध्नन्ति वानराः ॥ ६५ ॥

पाषाणांश्च गिरिप्रख्यान् गिरीणां शिखराणि च ।
दृश्यन्ते परिधावन्तो गृह्य वारणसन्निभाः ॥ ६६ ॥

शिलानां क्षिप्यमाणानां शैलानां च निपात्यताम् ।
बभूव तुमुलः शब्दस्तदा तस्मिन्महोदधौ ॥ ६७ ॥

सहेलं हनुमाञ्छैलं यं यं विपुलमाक्षिपत् ।
तं तं करेण वामेन सलीलं जगृहे नलः ॥ ६८ ॥

कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ।
प्रहृष्टैर्गजसंकाशैस्त्वरमाणैः प्लवङ्गमैः ॥ ६९ ॥

द्वितीयेन तथा चाह्ना योजनानि तु विंशतिः ।
कृतानि प्लवगैस्तूर्णं भीमकायैर्महाबलैः ॥ ७० ॥

अह्ना तृतीयेन तथा योजनानि कृतानि तु ।
त्वरमाणैर्महाकायैरेकविंशतिरेव च ॥ ७१ ॥

चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरथापि च ।
योजनानि महावेगैः कृतानि त्वरितैस्तु तैः ॥ ७२ ॥

पञ्चमेन तथा चाह्ना प्लवगैः क्षिप्रकारिभिः ।
योजनानि त्रयोविंशत्सुवेलमधिकृत्य वै ॥ ७३ ॥

स वानरवरः श्रीमान्विश्वकर्मात्मजो बली ।
बबन्ध सागरे सेतुं यथा चास्य पिता तथा ॥ ७४ ॥

स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये ।
शुशुभे सुभगः श्रीमान्स्वातीपथ इवाम्बरे ॥ ७५ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
आगम्य गगने तस्थुर्द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥ ७६ ॥

दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।
ददृशुर्देवगन्धर्वा नलसेतुं सुदुष्करम् ॥ ७७ ॥

तदचिन्त्यमसह्यं च अद्भुतं रोमहर्षणम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि सागरे सेतुबन्धनम् ॥ ७८ ॥

तानि कोटिसहस्राणि वानराणां महौजसाम् ।
बध्नन्तः सागरे सेतुं जग्मुः पारं महोदधेः ॥ ७९ ॥

विशालः सुकृतः श्रीमान्सुभूमिः सुसमाहितः ।
अशोभत महासेतुः सीमन्त इव सागरे ॥ ८० ॥

ततः पारे समुद्रस्य गदापाणिर्विभीषणः ।
परेषामभिघातार्थमतिष्ठत्सचिवैः सह ॥ ८१ ॥

सुग्रीवस्तु ततः प्राह रामं सत्यपराक्रमम् ।
हनुमन्तं त्वमारोह अङ्गदं चापि लक्ष्मणः ॥ ८२ ॥

अयं हि विपुलो वीर सागरो मकरालयः ॥ ८३ ॥

वैहायसौ युवामेतौ वानरौ तारयिष्यतः ॥ ८४ ॥

अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान्रामः सलक्ष्मणः ।
जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः ॥ ८५ ॥

अन्ये मध्येन गच्छन्ति पार्श्वतोऽन्ये प्लवङ्गमाः ।
सलिले प्रपतन्त्यन्ये मार्गमन्ये न लेभिरे ॥ ८६ ॥

केचिद्वैहायसगताः सुपर्णा इव पुप्लुवुः ॥ ८७ ॥

घोषेण महता तस्य सिन्धोर्घोषं समुच्छ्रितम् ।
भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती हरिवाहिनी ॥ ८८ ॥

वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना ।
तीरे निविविशे राज्ञो बहुमूलफलोदके ॥ ८९ ॥

तदद्भुतं राघवकर्म दुष्करं
समीक्ष्य देवाः सह सिद्धचारणैः ।
उपेत्य रामं सहसा महर्षिभिः
समभ्यषिञ्चन् सुशुभैर्जलैः पृथक् ॥ ९० ॥

जय स्वशत्रून्नरदेव मेदिनीं
ससागरां पालय शाश्वतीः समाः ।
इतीव रामं नरदेवसत्कृतं
शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥ ९१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15502 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 827

## त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

### लङ्काप्रस्थानम् ॥

निमित्तानि निमित्तज्ञो दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
सौमित्रिं संपरिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च ।
बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठेम लक्ष्मण ॥ २ ॥

लोकक्षयकरं भीमं भयं पश्याम्युपस्थितम् ।
निबर्हणं प्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ ३ ॥

वाताश्च कलुषा वान्ति कम्पते च वसुन्धरा ।
पर्वताग्राणि वेपन्ते पतन्ति च महीरुहाः ॥ ४ ॥

मेघाः क्रव्यादसङ्काशाः परुषा परुषस्वनाः ।
क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ति मिश्रं शोणितबिन्दुभिः ॥ ५ ॥

रक्तचन्दनसङ्काशा सन्ध्या परमदारुणा ।
ज्वलतः प्रपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम् ॥ ६ ॥

दीना दीनस्वराः क्रूराः सर्वतो मृगपक्षिणः ।
प्रत्यादित्यं विनर्दन्ति जनयन्तो महद्भयम् ॥ ७ ॥

रजन्यामप्रकाशस्तु सन्तापयति चन्द्रमाः ।
कृष्णरक्तांशुपर्यन्तो लोकक्षय इवोदितः ॥
ह्रस्वो रूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषः सुलोहितः ॥ ८ ॥

आदित्ये विमले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥ ९ ॥

रजसा महता चापि नक्षत्राणि हतानि च ।
युगान्तमिव लोकानां पश्य शंसन्ति लक्ष्मण ॥ १० ॥

काकाः श्येनास्तथा गृध्रा नीचैः परिपतन्ति च ।
शिवाश्चाप्यशिवान्नादान्नदन्ति सुमहाभयान् ॥ ११ ॥

शैलैः शूलैश्च खड्गैश्च विसृष्टैः कपिराक्षसैः ।
भविष्यत्यावृता भूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ १२ ॥

क्षिप्रमद्यैव दुर्धर्षां पुरीं रावणपालिताम् ।
अभियाम जवेनैव सर्वतो हरिभिर्वृताः ॥ १३ ॥

इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धन्वी संग्रामहर्षणः ।
प्रतस्थे पुरतो रामो लङ्कामभिमुखो विभुः ॥ १४ ॥

सविभीषणसुग्रीवास्ततस्ते वानरर्षभाः ।
प्रतस्थिरे विनर्दन्तो निश्चिता द्विषतां वधे ॥ १५ ॥

राघवस्य प्रियार्थं तु धृतानां वीर्यशालिनाम् ।
हरीणां कर्मचेष्टाभिस्तुतोष रघुनन्दनः ॥ १६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15518 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 843

## चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

### रावणात्मश्लाघा

सा वीरसमिती राज्ञा विरराज व्यवस्थिता ।
शशिना शुभनक्षत्रा पौर्णमासीव शारदी ॥ १ ॥

प्रचचाल च वेगेन त्रस्ता चैव वसुन्धरा ।
पीड्यमाना बलौघेन तेन सागरवर्चसा ॥ २ ॥

ततः शुश्रुवुराक्रुष्टं लङ्कायां काननौकसः ।
भेरीमृदङ्गसंघुष्टं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ ३ ॥

बभूवुस्तेन घोषेण संहृष्टा हरियूथपाः ।
अमृष्यमाणास्तं घोषं विनेदुर्घोषवत्तरम् ॥ ४ ॥

राक्षसास्तु प्लवङ्गानां शुश्रुवुश्चापि गर्जितम् ।
नर्दतामिव दृप्तानां मेघानामम्बरे स्वनम् ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा दाशरथिर्लङ्कां चित्रध्वजपताकिनीम् ।
जगाम मनसा सीतां दूयमानेन चेतसा ॥ ६ ॥

अत्र सा मृगशावाक्षी रावणेनोपरुध्यते ।
अभिभूता ग्रहेणेव लोहिताङ्गेन रोहिणी ॥ ७ ॥

दीर्घमुष्णं च निश्वस्य समुद्वीक्ष्य च लक्ष्मणम् ।
उवाच वचनं वीरस्तत्कालहितमात्मनः ॥ ८ ॥

आलिखन्तीमिवाकाशमुत्थितां पश्य लक्ष्मण ।
मनसेव कृतां लङ्कां नगाग्रे विश्वकर्मणा ॥ ९ ॥

विमानैर्बहुभिर्लङ्का सङ्कीर्णा हि विराजते ।
विष्णोः पदमिवाकाशं छादितं पाण्डुरैर्घनैः ॥ १० ॥

पुष्पितैः शोभिता लङ्का वनैश्चैत्ररथोपमैः ।
नानापतङ्गसंघुष्टैः फलपुष्पोपगैः शुभैः ॥ ११ ॥

पश्य मत्तविहङ्गानि प्रलीनभ्रमराणि च ।
कोकिलाकुलषण्डानि दोधवीति शिवोऽनिलः ॥ १२ ॥

इति दाशरथी रामो लक्ष्मणं समभाषत ॥ १३ ॥

बलं च तद्वै विभजञ्छास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
शशास कपिसेनाया बलमादाय वीर्यवान् ॥ १४ ॥

अङ्गदः सह नीलेन तिष्ठेदुरसि दुर्जयः ॥ १५ ॥

तिष्ठेद्वानरवाहिन्या वानरौघसमावृतः ।
आश्रित्य दक्षिणं पार्श्वमृषभो वानरर्षभः ॥ १६ ॥

गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः ।
तिष्ठेद्वानरवाहिन्याः सव्यं पार्श्वं समाश्रितः ॥
मूर्ध्नि स्थास्याम्यहं युक्तो लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ १७ ॥

जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
ऋक्षमुख्या महात्मानः कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः ॥ १८ ॥

जघनं कपिसेनायाः कपिराजोऽभिरक्षतु ।
पश्चार्धमिव लोकस्य प्रचेतास्तेजसा वृतः ॥ १९ ॥

सुविभक्तमहाव्यूहा महावानररक्षिता ।
अनीकिनी सा विबभौ यथा द्यौः साभ्रसंप्लवा ॥ २० ॥

प्रगृह्य गिरिशृङ्गाणि महतश्च महीरुहान् ।
आसेदुर्वानरा लङ्कां विमर्दयिषवो रणे ॥ २१ ॥

शिखरैर्विकिरामैनां लङ्कां मुष्टिभिरेव वा ।
इति स्म दधिरे सर्वे मनांसि हरिसत्तमाः ॥ २२ ॥

ततो रामो महातेजाः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ।
सुविभक्तानि सैन्यानि शुक एष विमुच्यताम् ॥ २३ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा वानरेन्द्रो महाबलः ।
मोचयामास तं दूतं शुकं रामस्य शासनात् ॥ २४ ॥

मोचितो रामवाक्येन वानरैश्चाभिपीडितः ।
शुकः परमसंत्रस्तो रक्षोऽधिपमुपागमत् ॥ २५ ॥

रावणः प्रहसन्नेव शुकं वाक्यमभाषत ।
किमिमौ ते सितौ पक्षौ लूनपक्षश्च दृश्यसे ॥
कच्चिन्नानेकचित्तानां तेषां त्वं वशमागतः ॥ २६ ॥

ततः स भयसंविग्नस्तथा राज्ञाऽभिचोदितः ।
वचनं प्रत्युवाचेदं राक्षसाधिपमुत्तमम् ॥ २७ ॥

सागरस्योत्तरे तीरे ब्रुवंस्ते वचनं तथा ।
यथा सन्देशमक्लिष्टं सान्त्वयं श्लक्ष्णया गिरा ॥ २८ ॥

क्रुद्धैस्तैरहमुत्प्लुत्य दृष्टमात्रैः प्लवङ्गमैः ।
गृहीतोऽस्म्यपि चारब्धो हन्तुं लोप्तुं च मुष्टिभिः ॥

नैव संभाषितुं शक्याः संप्रश्नोऽत्र न लभ्यते ।
प्रकृत्या कोपनास्तीक्ष्णा वानरा राक्षसाधिप ॥ ३० ॥

स च हन्ता विराधस्य कबन्धस्य खरस्य च ।
सुग्रीवसहितो रामः सीतायाः पदमागतः ॥ ३१ ॥

स कृत्वा सागरे सेतुं तीर्त्वा च लवणोदधिम् ।
एष रक्षांसि निर्धूय धन्वी तिष्ठति राघवः ॥ ३२ ॥

ऋक्षवानरसङ्घानामनीकानि सहस्रशः ।
गिरिमेघनिकाशानां छादयन्ति वसुन्धराम् ॥ ३३ ॥

राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च ।
नैतयोर्विद्यते सन्धिर्देवदानवयोरिव ॥ ३४ ॥

पुरा प्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु ।
सीतां वाऽस्मै प्रयच्छाशु सुयुद्धं वा प्रदीयताम् ॥ ३५ ॥

शुकस्य वचनं श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।
रोषसंरक्तनयनो निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ३६ ॥

यदि मां प्रति युद्ध्येरन्देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥ ३७ ॥

कदा नामाभिधावन्ति राघवं मामकाः शराः ।
वसन्ते पुष्पितं मत्ता भ्रमरा इव पादपम् ॥ ३८ ॥

कदा तूणीशयैर्दीप्तैर्गणशः कार्मुकच्युतैः ।
शरैरादीपयाम्येनमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ ३९ ॥

तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः ।
ज्योतिषामिव सर्वेषां प्रभामुद्यन्दिवाकरः ॥ ४० ॥

सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे गतिः ।
न हि दाशरथिर्वेद तेन मां योद्धुमिच्छति ॥ ४१ ॥

न मे तूणीशयान्बाणान्सविषानिव पन्नगान् ।
रामः पश्यति संग्रामे तेन मां योद्धुमिच्छति ॥ ४२ ॥

न जानाति पुरा वीर्यं मम युद्धे स राघवः ॥ ४३ ॥

मम चापमयीं वीणां शरकोणैः प्रवादिताम् ।
ज्याशब्दतुमुलां घोरामार्तभीतमहास्वनाम् ॥ ४४ ॥

नाराचतलसन्नादां तां ममाहितवाहिनीम् ।
अवगाह्य महारङ्गं वादयिष्याम्यहं रणे ॥ ४५ ॥

न वासवेनापि सहस्रचक्षुषा
यथाऽस्मि शक्यो वरुणेन वा स्वयम् ।
यमेन वा धर्षयितुं शराग्निना
महाहवे वैश्रवणेन वा पुनः ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15564 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 889

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे विंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥

[पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे
द्वात्रिंशति दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे एकविंशेऽह्नि
युद्धकाण्डे पञ्चविंशसर्गमारभ्य पञ्चाशसर्गपर्यन्तं
(15565—16665 श्लोकाः) गीतम् ।
तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाश्च 1101]

## पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

### शुकसारणवचनम् ॥

सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे ।
अमात्यौ रावणः श्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ ॥ १ ॥

समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम् ।
अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम् ॥ २ ॥

सागरे सेतुबन्धं तु न श्रद्दध्यां कथञ्चन ।
अवश्यं चापि संख्येयं तन्मया वानरं बलम् ॥ ३ ॥

भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ ।
परिमाणं च वीर्यं च ये च मुख्याः प्लवङ्गमाः ॥ ४ ॥

मन्त्रिणो ये च रामस्य सुग्रीवस्य च संमताः ।
ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवङ्गमाः ॥ ५ ॥

स च सेतुर्यथा बद्धः सागरे सलिलार्णवे ।
निवेशं च यथा तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥ ६ ॥

रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च ।
लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथः ॥ ७ ॥

कश्च सेनापतिस्तेषां वानराणां महौजसाम् ।
एतज्ज्ञात्वा यथातत्त्वं शीघ्रमागन्तुमर्हथः ॥ ८ ॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम् ॥ ९ ॥

ततस्तद्वानरं सैन्यमचिन्त्यं रोमहर्षणम् ।
संख्यातुं नाध्यगच्छेतां तदा तौ शुकसारणौ ॥ १० ॥

संस्थितं पर्वताग्रेषु निर्झरेषु गुहासु च ।
समुद्रस्य च तीरेषु वनेषूपवनेषु च ॥ ११ ॥

तरमाणं च तीर्णं च तर्तुकामं च सर्वशः ।
निविष्टं निविशच्चैव भीमनादं महाबलम् ॥
तद्बलार्णवमक्षोभ्यं ददृशाते निशाचरौ ॥ १२ ॥

तौ ददर्श महातेजाः प्रच्छन्नौ च विभीषणः ॥ १३ ॥
आचचक्षेऽथ रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ ॥ १४ ॥

तस्येमौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुकसारणौ ।
लङ्कायाः समनुप्राप्तौ चारौ परपुरञ्जय ॥ १५ ॥

तौ दृष्ट्वा व्यथितौ रामं निराशौ जीविते तदा ।
कृताञ्जलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः ॥ १६ ॥

आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहितावुभौ ।
परिज्ञातुं बलं कृत्स्नं तवेदं रघुनन्दन ॥ १७ ॥

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ।
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सर्वभूतहिते रतः ॥ १८ ॥

यदि दृष्टं बलं कृत्स्नं वयं वा सुसमीक्षिताः ।
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम् ॥ १९ ॥

अथ किंचिददृष्टं वा भूयस्तद्द्रष्टुमर्हथः ॥ २० ॥

विभीषणो वा कात्स्न्र्येन भूयः संदर्शयिष्यति ॥ २१ ॥

न चेदं ग्रहणं प्राप्य भेतव्यं जीवितं प्रति ।
न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ वा न दूतौ वधमर्हथः ॥ २२ ॥

पृच्छमानौ विमुञ्चैतौ चारौ रात्रिंचरावुभौ ।
शत्रुपक्षस्य सततं विभीषण विकर्षणौ ॥ २३ ॥

प्रविश्य नगरीं लङ्कां भवद्भ्यां धनदानुजः ।
वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम ॥ २४ ॥

यद्बलं च समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ।
तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यः सहबान्धवः ॥ २५ ॥

श्वः काल्ये नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।
राक्षसं च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ॥ २६ ॥

घोरं रोषमहं मोक्ष्ये बलं धारय रावण ।
श्वः काल्ये वज्रवान्वज्रं दानवेष्विव वासवः ॥ २७ ॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ।
जयेति प्रतिनन्द्यैतौ राघवं धर्मवत्सलम् ॥
आगम्य नगरीं लङ्कामब्रूतां राक्षसाधिपम् ॥ २८ ॥

विभीषणगृहीतौ तु वधार्हौ राक्षसेश्वर ।
दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामिततेजसा ॥ २९ ॥

एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः ।
लोकपालोपमाः शूराः कृतास्त्रा दृढविक्रमाः ॥ ३० ॥

रामो दाशरथिः श्रीमांल्लक्ष्मणश्च विभीषणः ।
सुग्रीवश्च महातेजा महेन्द्रसमविक्रमः ॥ ३१ ॥

एते शक्ताः पुरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।
उत्पाट्य संक्रामयितुं सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ॥ ३२ ॥

यादृशं तस्य रामस्य रूपं प्रहरणानि च ।
वधिष्यति पुरीं लङ्कामेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ॥ ३३ ॥

रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी ।
बभूव दुर्धर्षतरा सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ३४ ॥

प्रहृष्टरूपा ध्वजिनी वनौकसां
महात्मनां संप्रति योद्धुमिच्छताम् ।
अलं विरोधेन शमो विधीयतां
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15599 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 924

## षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

### वानरसेनादर्शनम् ॥

तद्वचः पथ्यमक्लीबं सारणेनाभिभाषितम् ।
निशम्य रावणो राजा पर्यभाषत सारणम् ॥ १ ॥

यदि मामभियुञ्जीरन्देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतामहं दद्यां सर्वलोकभयादपि ॥ २ ॥

त्वं तु सौम्य परित्रस्तो हरिभिस्तर्जितो भृशम् ।
प्रतिप्रदानमद्यैव सीतायाः साधु मन्यसे ॥ ३ ॥

को हि नाम सपत्नो मां समरे जेतुमर्हति ॥ ४ ॥

इत्यब्रवीत्स परुषं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ५ ॥

आरुरोह ततः श्रीमान्प्रासादं हिमपाण्डरम् ।
बहुतालसमुत्सेधं रावणोऽथ दिदृक्षया ॥ ६ ॥

ताभ्यां चराभ्यां सहितो रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
पश्यमानः समुद्रं च पर्वतांश्च वनानि च ॥ ७ ॥

ददर्श पृथिवीदेशं सुसंपूर्णं प्लवङ्गमैः ॥ ८ ॥

तदपारमसङ्ख्येयं वानराणां महद्बलम् ।
आलोक्य रावणो राजा परिपप्रच्छ सारणम् ॥ ९ ॥

एषां वानरमुख्यानां के शूराः के महाबलाः ॥ १० ॥

के पूर्वमभिवर्तन्ते महोत्साहाः समन्ततः ॥ ११ ॥

केषां शृणोति सुग्रीवः के वा यूथपयूथपाः ॥ १२ ॥

सारणाचक्ष्व मे सर्वं के प्रधानाः प्लवङ्गमाः ॥ १३ ॥

सारणो राक्षसेन्द्रस्य वचनं परिपृच्छतः ।
आचचक्षेऽथ मुख्यज्ञो मुख्यांस्तत्र वनौकसः ॥ १४ ॥

एष योऽभिमुखो लङ्कां नर्दंस्तिष्ठति वानरः ।
यूथपानां सहस्राणां शतेन परिवारितः ॥ १५ ॥

यस्य घोषेण महता सप्राकारा सतोरणा ।
लङ्का प्रवेपते सर्वा सशैलवनकानना ॥ १६ ॥

सर्वशाखामृगेन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
बलाग्रे तिष्ठते वीरो नीलो नामैष यूथपः ॥ १७ ॥

बाहू प्रगृह्य यः पद्भ्यां महीं गच्छति वीर्यवान् ।
लङ्कामभिमुखः क्रोधादभीक्ष्णं च विजृम्भते ॥
गिरिशृङ्गप्रतीकाशः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः ॥ १८ ॥

स्फोटयत्यभिसंरब्धो लाङ्गूलं च पुनः पुनः ।
यस्य लाङ्गूलशब्देन स्वनन्ति प्रदिशो दश ॥ १९ ॥

एष वानरराजेन सुग्रीवेणाभिषेचितः ।
यौवराज्येऽङ्गदो नाम त्वामाह्वयति संयुगे ॥ २० ॥

वालिनः सदृशः पुत्रः सुग्रीवस्य सदा प्रियः ।
राघवार्थे पराक्रान्तः शक्रार्थे वरुणो यथा ॥ २१ ॥

एतस्य सा मतिः सर्वा यद्दृष्टा जनकात्मजा ।
हनूमता वेगवता राघवस्य हितैषिणा ॥ २२ ॥

बहूनि वानरेन्द्राणामेष यूथानि वीर्यवान् ।
परिगृह्याभियाति त्वां स्वेनानीकेन दुर्जयः ॥ २३ ॥

अनु वालिसुतस्यापि बलेन महता वृतः ।
वीरस्तिष्ठति संग्रामे सेतुहेतुरयं नलः ॥ २४ ॥

ये तु विष्टभ्य गात्राणि क्ष्वेलयन्ति नदन्ति च ।
उत्थाय च विजृम्भन्ते क्रोधेन हरिपुङ्गवाः ॥ २५ ॥

एते दुष्प्रसहा घोराश्चण्डाश्चण्डपराक्रमाः ।
अष्टौ शतसहस्राणि दशकोटिशतानि च ॥ २६ ॥

य एनमनुगच्छन्ति वीराश्चन्दनवासिनः ।
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ २७ ॥

श्वेतो रजतसंकाशश्चपलो भीमविक्रमः ।
बुद्धिमान्वानरो वीरस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ २८ ॥

तूर्णं सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति सत्वरः ।
विभजन्वानरीं सेनामनीकानि प्रहर्षयन् ॥ २९ ॥

यः पुरा गोमतीतीरे रम्यं पर्येति पर्वतम् ।
नाम्ना सङ्कोचनो नाम नानानगयुतो गिरिः ॥ ३० ॥

तत्र राज्यं प्रशास्त्येष कुमुदो नाम यूथपः ।
योऽसौ शतसहस्राणां सहस्रं परिकर्षति ॥ ३१ ॥

यस्य वाला बहुव्यामा दीर्घा लाङ्गूलमाश्रिताः ।
ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः प्रकीर्णा घोरदर्शनाः ॥

अदीनो रोषणश्चण्डः संग्राममभिकाङ्क्षति ।
एषोऽप्याशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ ३३ ॥

यस्त्वेष सिंहसङ्काशः कपिलो दीर्घकेसरः ।
निभृतः प्रेक्षते लङ्कां दिधक्षन्निव चक्षुषा ॥ ३४ ॥

विन्ध्यं कृष्णगिरिं सह्यं पर्वतं च सुदर्शनम् ।
राजन्सततमध्यास्ते रम्भो नामैष यूथपः ॥ ३५ ॥

शतं शतसहस्राणां त्रिंशच्च हरिपुङ्गवाः ।
यमेति वानराः शूराश्चण्डाश्चण्डपराक्रमाः ॥
परिवार्यानुगच्छन्ति लङ्कां मर्दितुमोजसा ॥ ३६ ॥

यस्तु कर्णौ विवृणुते जृम्भते च पुनः पुनः ।
न च संविजते मृत्योर्न च युद्धाद्विधावति ॥ ३७ ॥

प्रकम्पते च रोषेण तिर्यक् च पुनरीक्षते ।
पश्यंल्लाङ्गूलमपि च क्ष्वेलते च महाबलः ॥ ३८ ॥

महाजवो वीतभयो रम्यं साल्वेयपर्वतम् ।
राजन्सततमध्यास्ते शरभो नाम यूथपः ॥ ३९ ॥

एतस्य बलिनः सर्वे विहारा नाम यूथपाः ।
राजञ्छतसहस्राणि चत्वारिंशत्तथैव च ॥ ४० ॥

यस्तु मेघ इवाकाशं महानावृत्य तिष्ठति ।
मध्ये वानरवीराणां सुराणामिव वासवः ॥ ४१ ॥

भेरीणामिव सन्नादो यस्यैष श्रूयते महान् ।
घोषः शाखामृगेन्द्राणां संग्राममभिकाङ्क्षताम् ॥ ४२ ॥

एष पर्वतमध्यास्ते पारियात्रमनुत्तमम् ।
युद्धे दुष्प्रसहो नित्यं पनसो नाम यूथपः ॥ ४३ ॥

एनं शतसहस्राणां शतार्धं पर्युपासते ।
यूथपा यूथपश्रेष्ठं येषां यूथानि भागशः ॥ ४४ ॥

यस्तु भीमां प्रवल्गन्तीं चमूं तिष्ठति शोभयन् ।
स्थितां तीरे समुद्रस्य द्वितीय इव सागरः ॥ ४५ ॥

एष दर्दरसंकाशो विनतो नाम यूथपः ।
पिबंश्चरति पर्णासां नदीनामुत्तमां नदीम् ॥ ४६ ॥

षष्टिः शतसहस्राणि बलमस्य प्लवङ्गमाः ॥ ४७ ॥

त्वामाह्वयति युद्धाय क्रोधनो नाम यूथपः ।
विक्रान्ता बलवन्तश्च यथायूथानि भागशः ॥ ४८ ॥

यस्तु गैरिकवर्णाभं वपुः पुष्यति वानरः ।
अवमत्य सदा सर्वान्वानरान्बलदर्पितान् ॥ ४९ ॥

गवयो नाम तेजस्वी त्वां क्रोधादभिवर्तते ।
एनं शतसहस्राणि सप्ततिः पर्युपासते ॥ ५० ॥

एष त्वाशङ्कते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ ५१ ॥

शतं शतसहस्राणि शतकोटिशतानि च ।
हरीणां यूथपाः सन्ति बलिनां च महौजसाम् ॥ ५२ ॥

एते दुष्प्रसहा घोरा बलिनः कामरूपिणः ।
यूथपा यूथपश्रेष्ठा एषां यूथानि भागशः ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15652 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 977

## सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

### वानरपराक्रमादिकथनम् ॥

तांस्तु तेऽहं प्रवक्ष्यामि प्रेक्षमाणस्य यूथपान् ।
राघवार्थे पराक्रान्ता ये न रक्षन्ति जीवितम् ॥ १ ॥

स्निग्धा यस्य बहुव्यामा वाला लाङ्गूलमाश्रिताः ।
ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः प्रकीर्णा घोरकर्मणः ॥

प्रगृहीताः प्रकाशन्ते सूर्यस्येव मरीचयः ।
पृथिव्यां चानुकृष्यन्ते तारो नामैष यूथपः ॥ ३ ॥

यं पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ।
द्रुमानुद्यम्य सहसा लङ्कारोहणतत्पराः ॥
यूथपा हरिराजस्य किङ्कराः समुपस्थिताः ॥ ४ ॥

नीलानिव महामेघांस्तिष्ठतो यांस्तु पश्यसि ।
असिताञ्जनसङ्काशान्युद्धे सत्यपराक्रमान् ॥ ५ ॥

असंख्येयाननिर्देश्यान्परं पारमिवोदधेः ।
नखदंष्ट्रायुधान् वीरांस्तीक्ष्णकोपान् भयावहान् ॥ ६ ॥

पर्वतेषु च ये केचिद्विषमेषु नदीषु च ।
एते त्वामभिवर्तन्ते राजन्नृक्षाः सुदारुणाः ॥ ७ ॥

एषां मध्ये स्थितो राजन्भीमाक्षो भीमदर्शनः ।
पर्जन्य इव जीमूतैः समन्तात्परिवारितः ॥ ८ ॥

ऋक्षवन्तं गिरिश्रेष्ठमध्यास्ते नर्मदां पिबन् ।
सर्वर्क्षाणामधिपतिर्धूम्रो नामैष यूथपः ॥ ९ ॥

यवीयानस्य तु भ्राता पश्यैनं पर्वतोपमम् ।
भ्रात्रा समानो रूपेण विशिष्टस्तु पराक्रमैः ॥ १० ॥

स एष जाम्बवान्नाम महायूथपयूथपः ।
प्रशान्तो गुरुवर्ती च संप्रहारेष्वमर्षणः ॥ ११ ॥

एतेन साह्यं सुमहत्कृतं शक्रस्य धीमता ।
दैवासुरे जाम्बवता लब्धाश्च बहवो वराः ॥ १२ ॥

आरुह्य पर्वताग्रेभ्यो महाभ्रविपुलाः शिलाः ।
मुञ्चन्ति विपुलाकारा न मृत्योरुद्विजन्ति च ॥ १३ ॥

राक्षसानां च सदृशाः पिशाचानां च लोमशाः ।
एतस्य सैन्या बहवो विचरन्त्यग्नितेजसः ॥ १४ ॥

यं त्वेनमभिसंरब्धं प्लवमानमिव स्थितम् ।
प्रेक्षन्ते वानराः सर्वे स्थिता यूथपयूथपम् ॥ १५ ॥

एष राजन्सहस्राक्षं पर्युपास्ते हरीश्वरः ।
बलेन बलसंपन्नो दम्भो नामैष यूथपः ॥ १६ ॥

यः स्थितं योजने शैलं गच्छन्पार्श्वेन सेवते ।
ऊर्ध्वं तथैव कायेन गतः प्राप्नोति योजनम् ॥ १७ ॥

यस्मान्न परमं रूपं चतुष्पादेषु विद्यते ।
श्रुतः सन्नादनो नाम वानराणां पितामहः ॥ १८ ॥

येन युद्धं पुरा दत्तं रणे शक्रस्य धीमता ।
पराजयश्च न प्राप्तः सोऽयं यूथपयूथपः ॥ १९ ॥
यस्य विक्रममाणस्य शक्रस्येव पराक्रमः ।
एष गन्धर्वकन्यायामुत्पन्नः कृष्णवर्त्मनः ॥ २० ॥
तदा दैवासुरे युद्धे साह्यार्थं त्रिदिवौकसाम् ॥ २१ ॥
यस्य वैश्रवणो राजा जम्बूमुपनिषेवते ।
यो राजा पर्वतेन्द्राणां बहुकिंनरसेविनाम् ॥ २२ ॥
विहारसुखदो नित्यं भ्रातुस्ते राक्षसाधिप ।
तत्रैष वसति श्रीमान्बलवान्वानरर्षभः ॥ २३ ॥
युद्धेष्वकत्थनो नित्यं क्रथनो नाम यूथपः ।
वृतः कोटिसहस्रेण हरीणां समुपस्थितः ॥ २४ ॥
यो गङ्गामनु पर्येति त्रासयन्हस्तियूथपान् ।
हस्तिनां वानराणां च पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥
एष यूथपतिर्नेता गच्छन्गिरिगुहाशयः ।
गजान्याधयते वन्यान्गिरींश्चैव महीरुहान् ॥ २६ ॥
हरीणां वाहिनीमुख्यो नदीं हैमवतीमनु ।
उशीरबीजमाश्रित्य पर्वतं मन्दरोपमम् ॥
रमते वानरश्रेष्ठो दिवि शक्र इव स्वयम् ॥ २७ ॥
एनं शतसहस्राणां सहस्रमनुवर्तते ।
वीर्यविक्रमदृप्तानां नर्दतां बलशालिनाम् ॥ २८ ॥
स एष नेता चैतेषां वानराणां महात्मनाम् ॥ २९ ॥

स एष दुर्धरो राजन्प्रमाथी नाम यूथपः ।
वातेनेवोद्धतं मेघं यमेनमनुपश्यसि ॥ ३० ॥

अनीकमपि संरब्धं वानराणां तरस्विनाम् ।
उद्धूतमरुणाभासं पवनेन समन्ततः ॥
विवर्तमानं बहुधा यत्रैतद्बहुलं रजः ॥ ३१ ॥

एतेऽसितमुखा घोरा गोलाङ्गूला महाबलाः ।
शतं शतसहस्राणि दृष्ट्वा वै सेतुबन्धनम् ॥ ३२ ॥

गोलाङ्गूलं महावेगं गवाक्षं नाम यूथपम् ।
परिवार्याभिवर्तन्ते लङ्कां मर्दितुमोजसा ॥ ३३ ॥

भ्रमराचरिता यत्र सर्वकामफलद्रुमाः ।
यं सूर्यस्तुल्यवर्णाभमनु पर्येति पर्वतम् ॥ ३४ ॥

यस्य भासा सदा भान्ति तद्वर्णा मृगपक्षिणः ।
यस्य प्रस्थं महात्मानो न त्यजन्ति महर्षयः ॥ ३५ ॥

सर्वकामफला वृक्षाः सदा फलसमन्विताः ।
मधूनि च महार्हाणि यस्मिन्पर्वतसत्तमे ॥ ३६ ॥

तत्रैष रमते राजन्रम्ये काञ्चनपर्वते ।
मुख्यो वानरमुख्यानां केसरी नाम यूथपः ॥ ३७ ॥

षष्टिर्गिरिसहस्राणां रम्याः काञ्चनपर्वताः ।
तेषां मध्ये गिरिवरस्त्वमिवानघ रक्षसाम् ॥ ३८ ॥

तत्रैते कपिलाः श्वेतास्ताम्रास्या मधुपिङ्गलाः ।
निवसन्त्युत्तमगिरौ तीक्ष्णदंष्ट्रा नखायुधाः ॥ ३९ ॥

सिंहा इव चतुर्दंष्ट्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः ।
सर्वे वैश्वानरसमा ज्वलिताशीविषोपमाः ॥ ४० ॥
सुदीर्घाञ्चितलाङ्गूला मत्तमातङ्गसन्निभाः ।
महापर्वतसङ्काशा महाजीमूतनिस्वनाः ॥ ४१ ॥
वृत्तपिङ्गलरक्ताक्षा भीमभीमगतिस्वराः ।
मर्दयन्तीव ते सर्वे तस्थुर्लङ्कां समीक्ष्य ते ॥ ४२ ॥
एष चैषामधिपतिर्मध्ये तिष्ठति वीर्यवान् । ॥ ४३ ॥
जयार्थी नित्यमादित्यमुपतिष्ठति बुद्धिमान् ॥ ४४ ॥
नाम्ना पृथिव्यां विख्यातो राजञ्छतबलीति यः ।
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ ४५ ॥
विक्रान्तो बलवाञ्छूरः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः ।
रामप्रियार्थं प्राणानां दयां न कुरुते हरिः ॥ ४६ ॥
गजो गवाक्षो गवयो नलो नीलश्च वानरः ।
एकैक एव यूथानां कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ ४७ ॥
तथाऽन्ये वानरश्रेष्ठा विन्ध्यपर्वतवासिनः ।
न शक्यन्ते बहुत्वात्तु संख्यातुं लघुविक्रमाः ॥ ४८ ॥
सर्वे महाराज महाप्रभावाः सर्वे महाशैलनिकाशकायाः ।
सर्वे समर्थाः पृथिवीं क्षणेन कर्तुं प्रविध्वस्तविकीर्णशैलाम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15701 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1026

## अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

### वानरसङ्ख्याकथनम् ॥

सारणस्य वचः श्रुत्वा रावणं राक्षसाधिपम् ।
बलमादिश्य तत्सर्वं शुको वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

स्थितान्पश्यसि यानेतान्मत्तानिव महाद्विपान् ।
न्यग्रोधानिव गाङ्गेयान्सालान्हैमवतानिव ॥ २ ॥

एते दुष्प्रसहा राजन्बलिनः कामरूपिणः ।
दैत्यदानवसङ्काशा युद्धे देवपराक्रमाः ॥ ३ ॥

एषां कोटिसहस्राणि नव पञ्च च सप्त च ।
तथा शङ्खसहस्राणि तथा बृन्दशतानि च ॥ ४ ॥

एते सुग्रीवसचिवाः किष्किन्धानिलयाः सदा ।
हरयो देवगन्धर्वैरुत्पन्नाः कामरूपिणः ॥ ५ ॥

यौ तौ पश्यसि तिष्ठन्तौ कुमारौ देवरूपिणौ ।
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ ताभ्यां नास्ति समो युधि ॥ ६ ॥

ब्रह्मणा समनुज्ञातावमृतप्राशिनावुभौ ।
आशंसेते युधा लङ्कामेतौ मर्दितुमोजसा ॥ ७ ॥

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
यो बलात्क्षोभयेत्क्रुद्धः समुद्रमपि वानरः ॥ ८ ॥

एषोऽभिगन्ता लङ्काया वैदेह्यास्तव च प्रभो ।
एनं पश्य पुरा दृष्टं वानरं पुनरागतम् ॥ ९ ॥

ज्येष्ठः केसरिणः पुत्रो वातात्मज इति श्रुतः ।
हनुमानिति विख्यातो लङ्घितो येन सागरः ॥ १० ॥

कामरूपी हरिश्रेष्ठो बलरूपसमन्वितः ।
अनिवार्यगतिश्चैव यथा सततगः प्रभुः ॥ ११ ॥

उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा बालः किल पिपासितः ।
त्रियोजनसहस्रं तु अध्वानमवतीर्य हि ॥ १२ ॥

आदित्यमाहरिष्यामि न मे क्षुत्प्रतियास्यति ।
इति संचिन्त्य मनसा पुरैष बलदर्पितः ॥ १३ ॥

अनाधृष्यतमं देवमपि देवर्षिदानवैः ।
अनासाद्यैव पतितो भास्करोदयने गिरौ ॥ १४ ॥

पतितस्य कपेरस्य हनुरेका शिलातले ।
किंचिद्भिन्ना दृढहनोर्हनुमानेष तेन वै ॥ १५ ॥

सत्यमागमयोगेन ममैष विदितो हरिः ।
नास्य शक्यं बलं रूपं प्रभावो वापि भाषितुम् ॥ १६ ॥

एष आशंसते लङ्कामेको मर्दितुमोजसा ।
येन जाज्वल्यतेऽसौ वै धूमकेतुस्तवाद्य वै ॥ १७ ॥

लङ्कायां निहितश्चापि कथं विस्मरसे कपिम् ॥ १८ ॥

यश्चैषोऽनन्तरः शूरः श्यामः पद्मनिभेक्षणः ।
इक्ष्वाकूणामतिरथो लोके विख्यातपौरुषः ॥ १९ ॥

यस्मिन्न चलते धर्मो यो धर्मं नातिवर्तते ।
यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ॥ २० ॥

यो भिन्द्याद्गगनं बाणैः पर्वतानपि दारयेत् ।
यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ॥ २१ ॥

यस्य भार्या जनस्थानात् सीता चापहृता त्वया ।
स एष रामस्त्वां योद्धुं राजन् समभिवर्तते ॥ २२ ॥

यस्यैष दक्षिणे पार्श्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभः ।
विशालवक्षास्ताम्राक्षो नीलकुञ्चितमूर्धजः ॥ २३ ॥

एषोऽस्य लक्ष्मणो नाम भ्राता प्राणसमः प्रियः ।
नये युद्धे च कुशलः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २४ ॥

अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान् बली ।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः ॥ २५ ॥

न ह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति ॥ २६ ॥

एषैवाशंसते युद्धे निहन्तुं सर्वराक्षसान् ॥ २७ ॥

यस्तु सव्यमसौ पक्षं रामस्याश्रित्य तिष्ठति ।
रक्षोगणपरिक्षिप्तो राजा ह्येष विभीषणः ॥ २८ ॥

श्रीमता राजराजेन लङ्कायामभिषेचितः ।
त्वामेव प्रतिसंरब्धो युद्धायैषोऽभिवर्तते ॥ २९ ॥

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं मध्ये गिरिमिवाचलम् ।
सर्वशाखामृगेन्द्राणां भर्तारमपराजितम् ॥ ३० ॥

तेजसा यशसा बुद्ध्या ज्ञानेनाभिजनेन च ।
यः कपीनतिबभ्राज हिमवानिव पर्वतान् ॥ ३१ ॥

किष्किन्धां यः समध्यास्ते गुहां सगहनद्रुमाम् ।
दुर्गां पर्वतदुर्गस्थां प्रधानैः सह यूथपैः ॥ ३२ ॥

यस्यैषा काञ्चनी माला शोभते शतपुष्करा ।
कान्ता देवमनुष्याणां यस्यां लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता ॥ ३३ ॥

एतां च मालां तारां च कपिराज्यं च शाश्वतम् ।
सुग्रीवो वालिनं हत्वा रामेण प्रतिपादितः ॥ ३४ ॥

शतं शतसहस्राणां कोटिमाहुर्मनीषिणः ।
शतं कोटिसहस्राणां शङ्ख इत्यभिधीयते ॥ ३५ ॥

शतं शङ्खसहस्राणां महाशङ्ख इति स्मृतः ।
महाशङ्खसहस्राणां शतं बृन्दमिति स्मृतम् ॥ ३६ ॥

शतं बृन्दसहस्राणां महाबृन्दमिति स्मृतम् ।
महाबृन्दसहस्राणां शतं पद्ममिति स्मृतम् ॥ ३७ ॥

शतं पद्मसहस्राणां महापद्ममिति स्मृतम् ।
महापद्मसहस्राणां शतं खर्वमिहोच्यते ॥ ३८ ॥

शतं खर्वसहस्राणां महाखर्वमिति स्मृतम् ।
महाखर्वसहस्राणां समुद्रमभिधीयते ॥ ३९ ॥

शतं समुद्रसाहस्रमोघ इत्यभिधीयते ।
शतमोघसहस्राणां महौघ इति विश्रुतः ॥ ४० ॥

एवं कोटिसहस्रेण शङ्कूनां च शतेन च ।
महाशङ्कुसहस्रेण तथा बृन्दशतेन च ॥ ४१ ॥

महाबृन्दसहस्रेण तथा पद्मशतेन च ।
महापद्मसहस्रेण तथा खर्वशतेन च ॥ ४२ ॥

समुद्रेण शतेनैव महौघेन तथैव च ।
एवं कोटिमहौघेन समुद्रसदृशेन च ॥ ४३ ॥

विभीषणेन सचिवै राक्षसैः परिवारितः ।
सुग्रीवो वानरेन्द्रस्त्वां युद्धार्थमभिवर्तते ॥
महाबलवृतो नित्यं महाबलपराक्रमः ॥ ४४ ॥

इमां महाराज समीक्ष्य वाहिनी-
मुपस्थितां प्रज्वलितग्रहोपमाम् ।
ततः प्रयत्नः परमो विधीयतां
यथा जयः स्यान्न परैः पराजयः ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टाविंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15746 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1071

## एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

### शार्दूलादिचारप्रेषणम् ॥

शुकेन तु समाख्यातांस्तान्दृष्ट्वा हरियूथपान् ।
समीपस्थं च रामस्य भ्रातरं स्वं विभीषणम् ॥ १ ॥
लक्ष्मणं च महावीर्यं भुजं रामस्य दक्षिणम् ।
सर्ववानरराजं च सुग्रीवं भीमविक्रमम् ॥ २ ॥
गजं गवाक्षं गवयं मैन्दं द्विविदमेव च ।
अङ्गदं चैव बलिनं वज्रहस्तात्मजात्मजम् ॥ ३ ॥
हनूमन्तं च विक्रान्तं जाम्बवन्तं च दुर्जयम् ।
सुषेणं कुमुदं नीलं नलं च प्लवगर्षभम् ॥ ४ ॥
किञ्चिदाविग्नहृदयो जातक्रोधश्च रावणः ।
भर्त्सयामास तौ वीरौ कथान्ते शुकसारणौ ॥ ५ ॥
अधोमुखौ तौ प्रणतावब्रवीच्छुकसारणौ ।
रोषगद्गदया वाचा संरब्धः परुषं वचः ॥ ६ ॥
न तावत्सदृशं नाम सचिवैरुपजीविभिः ।
विप्रियं नृपतेर्वक्तुं निग्रहप्रग्रहे प्रभोः ॥ ७ ॥
रिपूणां प्रतिकूलानां युद्धार्थमभिवर्तताम् ।
उभाभ्यां सदृशं नाम वक्तुमप्रस्तवे स्तवम् ॥ ८ ॥
आचार्या गुरवो वृद्धा वृथा वां पर्युपासिताः ।
सारं यद्राजशास्त्राणामनुजीव्यं न गृह्यते ॥ ९ ॥
गृहीतो वा न विज्ञातो भारो ज्ञानस्य वोह्यते ॥ १० ॥
ईदृशैः सचिवैर्युक्तो मूर्खैर्दिष्ट्या धराम्यहम् ॥ ११ ॥

किंतु मृत्योर्भयं नास्ति वक्तुं मां परुषं वचः ।
यस्य मे शासतो जिह्वा प्रयच्छति शुभाशुभम् ॥ १२ ॥
अप्येव दहनं स्पृष्ट्वा वने तिष्ठन्ति पादपाः ।
राजदोषपरामृष्टास्तिष्ठन्ते नापराधिनः ॥ १३ ॥
हन्यामहं त्विमौ पापौ शत्रुपक्षप्रशंसकौ ।
यदि पूर्वोपकारैस्तु न क्रोधो मृदुतां व्रजेत् ॥ १४ ॥
अपध्वंसत गच्छध्वं सन्निकर्षादितो मम ।
न हि वां हन्तुमिच्छामि स्मराम्युपकृतानि वाम् ॥ १५ ॥
हतावेव कृतघ्नौ तौ मयि स्नेहपराङ्मुखौ ॥ १६ ॥
एवमुक्तौ तु सव्रीडौ तावुभौ शुकसारणौ ।
रावणं जयशब्देन प्रतिनन्द्याभिनिःसृतौ ॥ १७ ॥
अब्रवीत्तु दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम् ।
उपस्थापय मे शीघ्रं चारान्नीतिविशारदान् ॥ १८ ॥
महोदरस्तथोक्तस्तु शीघ्रमाज्ञापयच्चरान् ॥ १९ ॥
ततश्चाराः संत्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात् ।
उपस्थिताः प्राञ्जलयो वर्धयित्वा जयाशिषा ॥ २० ॥
तानब्रवीत्ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
चारान्प्रत्यायिताञ्छूरान्भक्तान्विगतसाध्वसान् ॥ २१ ॥
इतो गच्छत रामस्य व्यवसायं परीक्षथ ।
मन्त्रिष्वभ्यन्तरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागताः ॥ २२ ॥
कथं स्वपिति जागर्ति किमन्यच्च करिष्यति ।
विज्ञाय निपुणं सर्वमागन्तव्यमशेषतः ॥ २३ ॥

चारेण विदितः शत्रुः पण्डितैर्वसुधाधिपैः ।
युद्धे स्वल्पेन यत्नेन समासाद्य निरस्यते ॥ २४ ॥
चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् ।
शार्दूलमग्रतः कृत्वा ततश्चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ २५ ॥
ततस्ते तं महात्मानं चारा राक्षससत्तमम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ २६ ॥
ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ ।
प्रच्छन्ना ददृशुर्गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ ॥ २७ ॥
प्रेक्षमाणाश्चमूं तां च बभूवुर्भयविक्लवाः ।
ते तु धर्मात्मना दृष्टा राक्षसेन्द्रेण राक्षसाः ॥ २८ ॥
विभीषणेन तत्रस्था निगृहीता यदृच्छया ।
शार्दूलो ग्राहितस्त्वेकः पापोऽयमिति राक्षसः ॥ २९ ॥
मोचितः सोऽपि रामेण वध्यमानः प्लवङ्गमैः ॥ ३० ॥
आनृशंस्येन रामस्य मोचिता राक्षसाः परे ॥ ३१ ॥
वानरैरर्दितास्ते तु विक्रान्तैर्लघुविक्रमैः ।
पुनर्लङ्कामनुप्राप्ताः श्वसन्तो नष्टचेतसः ॥ ३२ ॥
ततो दशग्रीवमुपस्थितास्तु ते चारा बहिर्नित्यचरा निशाचराः ।
गिरेः सुवेलस्य समीपवासिनं न्यवेदयन्भीमबलं महाबलाः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15779 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1104

# त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

## वानरनामनिर्देशः ॥

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्काधिपतये चराः ।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥

चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम् ।
जातोद्वेगोऽभवत्किंचिच्छार्दूलं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

अयथावच्च ते वर्णो दीनश्चासि निशाचर ।
नासि कच्चिदमित्राणां क्रुद्धानां वशमागतः ॥ ३ ॥

इति तेनानुशिष्टस्तु वाचं मन्दमुदैरयत् ।
तदा राक्षसशार्दूलं शार्दूलो भयविह्वलः ॥ ४ ॥

न ते चारयितुं शक्या राजन्वानरपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

विक्रान्ता बलवन्तश्च राघवेण च रक्षिताः ।
नापि संभाषितुं शक्याः संप्रश्नोऽत्र न लभ्यते ॥ ६ ॥

सर्वतो रक्ष्यते पन्था वानरैः पर्वतोपमैः ।
प्रविष्टमात्रे ज्ञातोऽहं बले तस्मिन्नचारिते ॥ ७ ॥

बलाद्गृहीतो रक्षोभिर्बहुधाऽस्मि विचालितः ।
जानुभिर्मुष्टिभिर्दन्तैस्तलैश्चाभिहतो भृशम् ॥ ८ ॥

परिणीतोऽस्मि हरिभिर्बलवद्भिरमर्षणैः ।
परिणीय च सर्वत्र नीतोऽहं रामसंसदम् ॥ ९ ॥

रुधिरादिग्धसर्वाङ्गो विह्वलश्चलितेन्द्रियः ।
हरिभिर्वध्यमानश्च याचमानः कृताञ्जलिः ॥ १० ॥

राघवेण परित्रातो जीवामीति यदृच्छया ॥ ११ ॥

एष शैलैः शिलाभिश्च पूरयित्वा महार्णवम् ।
द्वारमाश्रित्य लङ्काया रामस्तिष्ठति सायुधः ॥ १२ ॥

गरुडव्यूहमास्थाय सर्वतो हरिभिर्वृतः ।
मां विसृज्य महातेजा लङ्कामेवाभिवर्तते ॥ १३ ॥

पुरा प्राकारमायाति क्षिप्रमेकतरं कुरु ।
सीतां वाऽस्मै प्रयच्छाशु सुयुद्धं वा प्रदीयताम् ॥ १४ ॥

मनसा सन्ततापाथ तच्छ्रुत्वा राक्षसाधिपः ।
शार्दूलस्य महद्वाक्यमथोवाच स रावणः ॥ १५ ॥

यदि मां प्रति युद्ध्येरन्देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा रावणः पुनरब्रवीत् ।
चारिता भवता सेना केऽत्र शूराः प्लवङ्गमाः ॥ १७ ॥

कीदृशाः किंप्रभाः सौम्य वानरा ये दुरासदाः ।
कस्य पुत्राश्च पौत्राश्च तत्त्वमाख्याहि राक्षस ॥ १८ ॥

तथाऽत्र प्रतिपत्स्यामि ज्ञात्वा तेषां बलाबलम् ।
अवश्यं बलसंख्यानं कर्तव्यं युद्धमिच्छताम् ॥ १९ ॥

तथैवमुक्तः शार्दूलो रावणेनोत्तमश्वरः ।
इदं वचनमारेभे वक्तुं रावणसन्निधौ ॥ २० ॥

अथर्क्षरजसः पुत्रो युधि राजा सुदुर्जयः ।
गद्गदस्याथ पुत्रोऽत्र जाम्बवानिति विश्रुतः ॥ २१ ॥

गद्गदस्यैव पुत्रोऽन्यो गुरुपुत्रः शतक्रतोः ।
कदनं यस्य पुत्रेण कृतमेकेन रक्षसाम् ॥ २२ ॥

सुषेणश्चापि धर्मात्मा पुत्रो धर्मस्य वीर्यवान् ।
सौम्यः सोमात्मजश्चात्र राजन्दधिमुखः कपिः ॥ २३ ॥

सुमुखो दुर्मुखश्चात्र वेगदर्शी च वानरः ।
मृत्युर्वानररूपेण नूनं सृष्टः स्वयंभुवा ॥ २४ ॥

पुत्रो हुतवहस्याथ नीलः सेनापतिः स्वयम् ।
अनिलस्य च पुत्रोऽत्र हनुमानिति विश्रुतः ॥ २५ ॥

नप्ता शक्रस्य दुर्धर्षो बलवानङ्गदो युवा ।
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ बलिनावश्विसंभवौ ॥ २६ ॥

पुत्रा वैवस्वतस्यात्र पञ्च कालान्तकोपमाः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥ २७ ॥

दश कोट्यो वानराणां शूराणां युद्धकाङ्क्षिणाम् ।
श्रीमतां देवपुत्राणां शेषं नाख्यातुमुत्सहे ॥ २८ ॥

पुत्रो दशरथस्यैष सिंहसंहननो युवा ।
दूषणो निहतो येन खरश्च त्रिशिरास्तथा ॥ २९ ॥

नास्ति रामस्य सदृशो विक्रमे भुवि कश्चन ।
विराधो निहतो येन कबन्धश्चान्तकोपमः ॥ ३० ॥

वक्तुं न शक्तो रामस्य नरः कश्चिद्गुणान्क्षितौ ।
जनस्थानगता येन यावन्तो राक्षसा हताः ॥ ३१ ॥

लक्ष्मणश्चात्र धर्मात्मा मातङ्गानामिवर्षभः ।
यस्य बाणपथं प्राप्य न जीवेदपि वासवः ॥ ३२ ॥

श्वेतो ज्योतिर्मुखश्चात्र भास्करस्यात्मसंभवौ ।
वरुणस्य च पुत्रोऽन्यो हेमकूटः प्लवङ्गमः ॥ ३३ ॥

विश्वकर्मसुतो वीरो नलः प्लवगसत्तमः ।
विक्रान्तो बलवानत्र वसुपुत्रः सुदुर्धरः ॥ ३४ ॥

राक्षसानां वरिष्ठश्च तव भ्राता विभीषणः ।
परिगृह्य पुरीं लङ्कां राघवस्य हिते रतः ॥ ३५ ॥

इति सर्वं समाख्यातं तवेदं वानरं बलम् ।
सुवेलेऽधितिष्ठं शैले शेषकार्ये भवान्गतिः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15815 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1140

# एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

## सीतामोहनम् ॥

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्काधिपतये चराः ।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥

चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामबलं महत् ।
जातोद्वेगोऽभवत्किंचित्सचिवानिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

मन्त्रिणः शीघ्रमायान्तु सर्वे वै सुसमाहिताः ।
अयं नो मन्त्रकालो हि संप्राप्त इति राक्षसाः ॥ ३ ॥

तस्य तच्छासनं श्रुत्वा मन्त्रिणोऽभ्यागमन्द्रुतम् ।
ततः स मन्त्रयामास सचिवै राक्षसैः सह ॥ ४ ॥

मन्त्रयित्वा स दुर्धर्षः क्षमं यत्समनन्तरम् ।
विसर्जयित्वा सचिवान्प्रविवेश स्वमालयम् ॥ ५ ॥

ततो राक्षसमाहूय विद्युज्जिह्वं महाबलम् ।
मायाविदं महामायः प्राविशद्यत्र मैथिली ॥ ६ ॥

विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः ।
मोहयिष्यावहे सीतां मायया जनकात्मजाम् ॥ ७ ॥

शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर ।
त्वं मां समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः ।
तस्य तुष्टोऽभवद्राजा प्रददौ च विभूषणम् ॥ ९ ॥

अशोकवनिकायां तु सीतादर्शनलालसः ।
नैर्ऋतानामधिपतिः संविवेश महाबलः ॥ १० ॥

ततो दीनामदैन्यार्हां ददर्श धनदानुजः ।
अधोमुखीं शोकपरामुपविष्टां महीतले ॥ ११ ॥

भर्तारमेव ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम् ।
उपास्यमानां घोराभी राक्षसीभिरितस्ततः ॥ १२ ॥

राक्षसीभिर्वृतां सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
उत्पातमेघजालाभिश्चन्द्ररेखामिवावृताम् ॥ १३ ॥

भूषणैरुत्तमैः कैश्चिन्मङ्गलार्थमलंकृताम् ।
चरन्तीं मारुतोद्धूतां क्षिप्तां पुष्पलतामिव ॥ १४ ॥

हर्षशोकान्तरे मग्नां विषादस्य विलक्षणाम् ।
स्तिमितामिव गाम्भीर्यान्नदीं भागीरथीमिव ॥ १५ ॥

उपसृत्य ततः सीतां प्रहर्ष नाम कीर्तयन् ।
इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम् ॥ १६ ॥

सान्त्व्यमाना मया भद्रे यमुपाश्रित्य वल्गसे ।
खरहन्ता स ते भर्ता राघवः समरे हतः ॥ १७ ॥

छिन्नं ते सर्वतो मूलं दर्पस्ते विहतो मया ।
व्यसनेनात्मनः सीते मम भार्या भविष्यसि ॥ १८ ॥

विसृजेमां मतिं मूढे किं मृतेन करिष्यसि ।
भद्रे त्वं भव भार्याणां सर्वासामीश्वरी मम ॥ १९ ॥

अल्पपुण्ये निवृत्तार्थे मूढे पण्डितमानिनि ।
शृणु भर्तृवधं सीते घोरं वृत्रवधं यथा ॥ २० ॥

समायातः समुद्रान्तं मां हन्तुं किल राघवः ।
वानरेन्द्रप्रणीतेन बलेन महता वृतः ॥ २१ ॥

स निविष्टः समुद्रस्य पीड्य तीरमथोत्तरम् ।
बलेन महता रामो व्रजत्यस्तं दिवाकरे ॥ २२ ॥

अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम् ।
सुखसंसुप्तमासाद्य चारितं प्रथमं चरैः ॥ २३ ॥

तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम ।
बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ २४ ॥

पट्टिशान्परिघांश्चक्रान्दण्डान्खड्गान्महायसान् ।
बाणजालानि शूलानि भास्वरान् कूटमुद्गरान् ॥ २५ ॥

यष्टीश्च तोमराञ्छक्तीश्चक्राणि मुसलानि च ।
उद्यम्योद्यम्य रक्षोभिर्वानरेषु निपातिताः ॥ २६ ॥

अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना ।
असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना ॥ २७ ॥

विभीषणः समुत्पत्य निगृहीतो यदृच्छया ।
दिशः प्रव्राजितः सर्वैर्लक्ष्मणः प्लवगैः सह ॥ २८ ॥

सुग्रीवो ग्रीवया सीते भग्नया प्लवगाधिपः ।
निरस्तहनुकः शेते हनुमान् राक्षसैर्हतः ॥ २९ ॥

जाम्बवानथ जानुभ्यामुत्पतन्निहतो युधि ।
पट्टिशैर्बहुभिश्छिन्नो निकृत्तः पादपो यथा ॥ ३० ॥

मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ निहतौ वानरर्षभौ ।
निश्वसन्तौ रुदन्तौ च रुधिरेण परिप्लुतौ ॥
असिना व्यायतौ छिन्नौ मध्ये ह्यरिनिषूदनौ ॥ ३१ ॥

अनुतिष्ठति मेदिन्यां पनसः पनसो यथा ॥ ३२ ॥

नाराचैर्बहुभिश्छिन्नः शेते दर्यां दरीमुखः ॥ ३३ ॥

कुमुदस्तु महातेजा निष्कूजः सायकैः कृतः ॥ ३४ ॥

अङ्गदो बहुभिश्छिन्नः शरैरासाद्य राक्षसैः ।
पतितो रुधिरोद्गारी क्षितौ निपतिताङ्गदः ॥ ३५ ॥

हरयो मथिता नागै रथजातैस्तथाऽपरे ।
शायिता मृदिताश्चाश्वैर्वायुवेगैरिवाम्बुदाः ॥ ३६ ॥

प्रहृताश्चापरे त्रस्ता हन्यमाना जघन्यतः ।
अभिद्रुतास्तु रक्षोभिः सिंहैरिव महाद्विपाः ॥ ३७ ॥

सागरे पतिताः केचित्केचिद्गगनमाश्रिताः ।
ऋक्षा वृक्षानुपारूढा वानरीं वृत्तिमाश्रिताः ॥ ३८ ॥

सागरस्य च तीरेषु शैलेषु च वनेषु च ।
पिङ्गलास्ते विरूपाक्षैर्बहुभिर्बहवो हताः ॥ ३९ ॥

एवं तव हतो भर्ता ससैन्यो मम सेनया ।
क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतं शिरः ॥ ४० ॥

ततः परमदुर्धर्षो रावणो राक्षसाधिपः ।
सीतायामुपशृण्वन्त्यां राक्षसीमिदमब्रवीत् ॥ ४१ ॥
राक्षसं क्रूरकर्माणं विद्युज्जिह्वं त्वमानय ।
येन तद्राघवशिरः संग्रामात्स्वयमाहृतम् ॥ ४२ ॥
विद्युज्जिह्वस्ततो गृह्य शिरस्तत्सशरासनम् ।
प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ॥ ४३ ॥
तमब्रवीत्ततो राजा रावणो राक्षसं स्थितम् ।
विद्युज्जिह्वं महाजिह्वं समीपपरिवर्तिनम् ॥ ४४ ॥
अग्रतः कुरु सीतायाः शीघ्रं दाशरथेः शिरः ।
अवस्थां पश्चिमां भर्तुः कृपणा साधु पश्यतु ॥ ४५ ॥
एवमुक्तं तु तद्रक्षः शिरस्तत्प्रियदर्शनम् ।
उपनिक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ ४६ ॥
रावणश्चापि चिक्षेप भास्वरं कार्मुकं महत् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं सीतामिदमुवाच च ॥ ४७ ॥
इदं तत्तव रामस्य कार्मुकं ज्यासमायुतम् ।
इह प्रहस्तेनानीतं हत्वा तं निशि मानुषम् ॥ ४८ ॥
स विद्युजिह्वेन सहैव तच्छिरो धनुश्च भूमौ विनिकीर्य रावणः ।
विदेहराजस्य सुतां यशस्विनीं ततोऽब्रवीत्तां भव मे वशानुगा॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15864 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1189

## द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

### सीताविलापः ॥

सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।
सुग्रीवप्रीतिसंसर्गमाख्यातं च हनूमता ॥ १ ॥

नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं मुखम् ।
केशान्केशान्तदेशं च तं च चूडामणिं शुभम् ॥ २ ॥

एतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता ।
विजगर्हेऽत्र कैकेयीं क्रोशन्ती कुररी यथा ॥ ३ ॥

सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनन्दनः ।
कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया ॥ ४ ॥

आर्येण किं ते कैकेयि कृतं रामेण विप्रियम् ।
यन्मया चीरवसनस्त्वया प्रस्थापितो वनम् ॥ ५ ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही वेपमाना तपस्विनी ।
जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा ॥ ६ ॥

सा मुहूर्तात्समाश्वास्य प्रतिलभ्य च चेतनाम् ।
तच्छिरः समुपाघ्राय विललापायतेक्षणा ॥ ७ ॥

हा हताऽस्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत ।
इमां ते पश्चिमावस्थां गताऽस्मि विधवा कृता ॥ ८ ॥

प्रथमं मरणं नार्या भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते ।
सुवृत्त साधुवृत्तायाः संवृत्तस्त्वं ममाग्रतः ॥ ९ ॥

दुःखाद्दुःखं प्रपन्नाया मग्नायाः शोकसागरे ।
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽपि त्वं विनिपातितः ॥ १० ॥

सा श्वश्रूर्मम कौसल्या त्वया पुत्रेण राघव ।
वत्सेनेव यथा धेनुर्विवत्सा वत्सला कृता ॥ ११ ॥

आदिष्टं दीर्घमायुस्ते यैरचिन्त्यपराक्रम ।
अनृतं वचनं तेषामल्पायुरसि राघव ॥ १२ ॥

अथवा नश्यति प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतस्तव ।
पचत्येनं यथा कालो भूतानां प्रभवो ह्ययम् ॥ १३ ॥

अदृष्टं मृत्युमापन्नः कस्मात्त्वं नयशास्त्रवित् ।
व्यसनानामुपायज्ञः कुशलो ह्यसि वर्जने ॥ १४ ॥

तथा त्वं संपरिष्वज्य रौद्र्याऽतिनृशंसया ।
कालरात्र्या ममाच्छिद्य हृतः कमललोचनः ॥ १५ ॥

उपशेषे महाबाहो मां विहाय तपस्विनीम् ।
प्रियामिव शुभां नारीं पृथिवीं पुरुषर्षभ ॥ १६ ॥

अर्चितं सततं यत्नाद्गन्धमाल्यैर्मया तव ।
इदं ते मत्प्रियं वीर धनुः काञ्चनभूषणम् ॥ १७ ॥

पित्रा दशरथेन त्वं श्वशुरेण ममानघ ।
सर्वैश्च पितृभिः सार्धं नूनं स्वर्गे समागतः ॥ १८ ॥

दिवि नक्षत्रभूतस्त्वं महत्कर्मकृतां प्रियम् ।
पुण्यं राजर्षिवंशं त्वमात्मनः समुपेक्षसे ॥ १९ ॥

किं मां न प्रेक्षसे राजन्किं मां न प्रतिभाषसे ।
बालां बाल्येन संप्राप्तां भार्यां मां सहचारिणीम् ॥ २० ॥

संश्रुतं गृह्णता पाणिं चरिष्यामीति यत्त्वया ।
स्मर तन्मम काकुत्स्थ नय मामपि दुःखिताम् ॥ २१ ॥

कस्मान्मामपहाय त्वं गतो गतिमतां वर ।
अस्माल्लोकादमुं लोकं त्यक्त्वा मामपि दुःखिताम् ॥

कल्याणैरुचितं यत्तत्परिष्वक्तं मयैव तु ।
क्रव्यादैस्तच्छरीरं ते नूनं विपरिकृष्यते ॥ २३ ॥

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ।
अग्निहोत्रेण संस्कारं केन त्वं तु न लप्स्यसे ॥ २४ ॥

प्रव्रज्यामुपपन्नानां त्रयाणामेकमागतम् ।
परिप्रक्ष्यति कौसल्या लक्ष्मणं शोकलालसा ॥ २५ ॥

स तस्याः परिपृच्छन्त्या वधं मित्रबलस्य ते ।
तव चाख्यास्यते नूनं निशायां राक्षसैर्वधम् ॥ २६ ॥

सा त्वां सुप्तं हतं श्रुत्वा मां च रक्षोगृहं गताम् ।
हृदयेनावदीर्णेन न भविष्यति राघव ॥ २७ ॥

मम हेतोरनार्याया ह्यनर्हः पार्थिवात्मजः ।
रामः सागरमुत्तीर्य वीर्यवान्गोष्पदे हतः ॥ २८ ॥

अहं दाशरथेनोढा मोहात्स्वकुलपांसनी ।
आर्यपुत्रस्य रामस्य भार्या मृत्युरजायत ॥ २९ ॥

नूनमन्यां मया जातिं वारितं दानमुत्तमम् ।
याऽहमद्येह शोचामि भार्या सर्वातिथेरिह ॥ ३० ॥

साधु पातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण ।
समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय ।
रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः ॥ ३२ ॥

इति सा दुःखसन्तप्ता विललापाकुलेन्द्रिया ।
भर्तुः शिरो धनुस्तत्र समीक्ष्य च पुनः पुनः ॥ ३३ ॥

एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसः ।
अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः ॥ ३४ ॥

विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च ।
न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ ३५ ॥

अमात्यैः सहितैः सर्वैः प्रहस्तः समुपस्थितः ।
तेन दर्शनकामेन वयं प्रस्थापिताः प्रभो ॥ ३६ ॥

नूनमस्ति महाराज राजभावात्क्षमान्वितम् ।
किंचिदात्ययिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु ॥ ३७ ॥

एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम् ।
अशोकवनिकां त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ ॥ ३८ ॥

स तु सर्वं समर्थ्यैव मन्त्रिभिः कृत्यमात्मनः ।
सभां प्रविश्य विदधे विदित्वा रामविक्रमम् ॥ ३९ ॥

अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।
जगाम रावणस्यैव निर्याणसमनन्तरम् ॥ ४० ॥

राक्षसेन्द्रस्तु तैः सार्धं मन्त्रिभिर्भीमविक्रमैः ।
संमन्त्रयामास तदा रामकार्यविनिश्चयम् ॥ ४१ ॥

अविदूरस्थितान्सर्वान्बलाध्यक्षान्हितैषिणः ।
अब्रवीत्कालसदृशो रावणो राक्षसाधिपः ॥ ४२ ॥

शीघ्रं भेरीनिनादेन स्फुटकोणाहतेन मे ।
समानयध्वं सैन्यानि वक्तव्यं च न कारणम् ॥ ४३ ॥

ततस्तथेति प्रतिगृह्य तद्वचो
बलाधिपास्ते महदात्मनो बलम् ।
समानयंश्चैव समागमं च ते
न्यवेदयन्भर्तरि युद्धकाङ्क्षिणि ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15908 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1233

## त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

### सीतासमाश्वासनम् ॥

सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी ।
आससादाशु वैदेहीं प्रियां प्रणयिनीं सखीम् ॥ १ ॥

मोहितां राक्षसेन्द्रेण सीतां परमदुःखिताम् ।
आश्वासयामास तदा सरमा मृदुभाषिणी ॥ २ ॥

सा हि तत्र कृता मित्रं सीतया रक्ष्यमाणया ।
रक्षन्ती रावणादिष्टा सानुक्रोशा दृढव्रता ॥ ३ ॥

सा ददर्श सखीं सीतां सरमा नष्टचेतनाम् ।
उपावृत्योत्थितां ध्वस्तां बडवामिव पांसुषु ॥ ४ ॥

तां समाश्वासयामास सखीस्नेहेन सुव्रता ॥ ५ ॥

समाश्वसिहि वैदेहि मा भूत्ते मनसो व्यथा ।
उक्ता यद्रावणेन त्वं प्रत्युक्तं च स्वयं त्वया ॥
सखीस्नेहेन तद्भीरु मया सर्वं प्रतिश्रुतम् ॥ ६ ॥

लीनया गगने शून्ये भयमुत्सृज्य रावणात् ।
तव हेतोर्विशालाक्षि न हि मे जीवितं प्रियम् ॥ ७ ॥

स संभ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसाधिपः ।
तच्च मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥ ८ ॥

न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः ॥ ९ ॥

वधश्च पुरुषव्याघ्रे तस्मिन्नैवोपपद्यते ॥ १० ॥

न त्वेव वानरा हन्तुं शक्याः पादपयोधिनः ।
सुरा देवर्षभेणेव रामेण हि सुरक्षिताः ॥ ११ ॥

दीर्घवृत्तभुजः श्रीमान्महोरस्कः प्रतापवान् ।
धन्वी संहननोपेतो धर्मात्मा भुवि विश्रुतः ॥ १२ ॥

विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा कुशली नयशास्त्रवित् ॥ १३ ॥

हन्ता परबलौघानामचिन्त्यबलपौरुषः ।
न हतो राघवः श्रीमान्सीते शत्रुनिबर्हणः ॥ १४ ॥

अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना ।
इयं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविदा त्वयि ॥ १५ ॥

शोकस्ते विगतः सर्वः कल्याणं त्वामुपस्थितम् ॥ १६ ॥

ध्रुवं त्वां भजते लक्ष्मीः प्रियं प्रीतिकरं शृणु ॥ १७ ॥

उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया ।
सन्निविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥ १८ ॥

दृष्टो मे परिपूर्णार्थः काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ॥ १९ ॥

स हि तैः सागरान्तस्थैर्बलैस्तिष्ठति रक्षितः ॥ २० ॥

अनेन प्रेषिता ये च राक्षसा लघुविक्रमाः ।
राघवस्तीर्ण इत्येव प्रवृत्तिस्तैरिहाहृता ॥ २१ ॥

स तां श्रुत्वा विशालाक्षि प्रवृत्तिं राक्षसाधिपः ।
एष मन्त्रयते सर्वैः सचिवैः सह रावणः ॥ २२ ॥

इति ब्रुवाणा सरमा राक्षसी सीतया सह ।
सर्वोद्योगेन सैन्यानां शब्दं शुश्राव भैरवम् ॥ २३ ॥

दण्डनिर्घातवादिन्याः श्रुत्वा भेर्या महास्वनम् ।
उवाच सरमा सीतामिदं मधुरभाषिणी ॥ २४ ॥

सन्नाहजननी ह्येषा भैरवा भीरु भेरिका ।
भेरीनादं च गम्भीरं शृणु तोयदनिस्वनम् ॥ २५ ॥

कल्प्यन्ते मत्तमातङ्गा युज्यन्ते रथवाजिनः ।
हृष्यन्ते तुरगारूढाः प्रासहस्ताः सहस्रशः ॥ २६ ॥

तत्र तत्र च सन्नद्धाः संपतन्ति पदातयः ।
आपूर्यन्ते राजमार्गाः सैन्यैरद्भुतदर्शनैः ॥
वेगवद्भिर्नदद्भिश्च तोयौघैरिव सागरः ॥ २७ ॥

शस्त्राणां च प्रसन्नानां चर्मणां वर्मणां तथा ।
रथवाजिगजानां च भूषितानां च रक्षसाम् ॥ २८ ॥

प्रभां विसृजतां पश्य नानावर्णां समुत्थिताम् ।
वनं निर्दहतो घर्मे यथा रूपं विभावसोः ॥ २९ ॥

घण्टानां शृणु निर्घोषं रथानां शृणु निस्वनम् ।
हयानां हेषमाणानां शृणु तूर्यध्वनिं यथा ॥ ३० ॥

उद्यतायुधहस्तानां राक्षसेन्द्रानुयायिनाम् ।
संभ्रमो रक्षसामेष तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ३१ ॥

श्रीस्त्वां भजति शोकघ्नी रक्षसां भयमागतम् ॥ ३२ ॥

रामः कमलपत्राक्षो दैत्यानामिव वासवः ।
विनिर्जित्य जितक्रोधस्त्वामचिन्त्यपराक्रमः ॥
रावणं समरे हत्वा भर्ता त्वाऽधिगमिष्यति ॥ ३३ ॥
विक्रमिष्यति रक्षस्सु भर्ता ते सहलक्ष्मणः ।
यथा शत्रुषु शत्रुघ्नो विष्णुना सह वासवः ॥ ३४ ॥
आगतस्य हि रामस्य क्षिप्रमङ्कगतां सतीम् ।
अहं द्रक्ष्यामि सिद्धार्थां त्वां शत्रौ विनिपातिते॥ ३५ ॥
अश्रूण्यानन्दजानि त्वं वर्तयिष्यसि शोभने ।
समागम्य परिष्वज्य तस्योरसि महोरसः ॥ ३६ ॥
अचिरान्मोक्ष्यते सीते देवि ते जघनं गताम् ।
धृतामेतां बहून्मासान्वेणीं रामो महाबलः ॥ ३७ ॥
तस्य दृष्ट्वा मुखं देवि पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ।
मोक्ष्यसे शोकजं वारि निर्मोकमिव पन्नगी ॥ ३८ ॥
रावणं समरे हत्वा नचिरादेव मैथिलि ।
त्वया समग्रः प्रियया सुखार्हो लप्स्यते सुखम् ॥ ३९ ॥
समागता त्वं वीर्येण मोदिष्यसि महात्मना ।
सुवर्षेण समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी ॥ ४० ॥

गिरिवरमभितोऽनुवर्तमानो हय इव मण्डलमाशु यः करोति।
तमिह शरणमभ्युपेहि देवं दिवसकरं प्रभवो ह्ययं प्रजानाम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15949 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1274

## चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

### सरमया रावणाशयकथनम् ॥

अथ तां जातसन्तापां तेन वाक्येन मोहिताम् ।
सरमा ह्लादयामास पृथिवीं द्यौरिवाम्भसा ॥ १ ॥

ततस्तस्या हितं सख्याश्चिकीर्षन्ती सखी वचः ।
उवाच काले कालज्ञा स्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ २ ॥

उत्सहेयमहं गत्वा त्वद्वाक्यमसितेक्षणे ।
निवेद्य कुशलं रामे प्रतिच्छन्ना निवर्तितुम् ॥ ३ ॥

न हि मे क्रममाणाया निरालम्बे विहायसि ।
समर्थो गतिमन्वेतुं पवनो गरुडोऽपि वा ॥ ४ ॥

एवं ब्रुवाणां तां सीता सरमां पुनरब्रवीत् ।
मधुरं श्लक्ष्णया वाचा पूर्वं शोकाभिपन्नया ॥ ५ ॥

समर्था गगनं गन्तुमपि वा त्वं रसातलम् ।
अवगच्छाम्यकर्तव्यं कर्तव्यं ते मदन्तरे ॥ ६ ॥

मत्प्रियं यदि कर्तव्यं यदि बुद्धिः स्थिरा तव ।
ज्ञातुमिच्छामि तं गत्वा किं करोतीति रावणः ॥ ७ ॥

स हि मायाबलः क्रूरो रावणः शत्रुरावणः ।
मां मोहयति दुष्टात्मा पीतमात्रेव वारुणी ॥ ८ ॥

तर्जापयति मां नित्यं भर्त्सापयति चासकृत् ।
राक्षसीभिः सुघोराभिर्या मां रक्षन्ति नित्यशः ॥ ९ ॥

उद्विग्ना शङ्किता चास्मि न स्वस्थं च मनो मम ।
तद्भयाच्चाहमुद्विग्ना अशोकवनिकां गता ॥ १० ॥

यदि नाम कथा तस्य निश्चितं वाऽपि यद्भवेत् ।
निवेदयेथाः सर्वं तत्परो मे स्यादनुग्रहः ॥ ११ ॥

सा त्वेवं ब्रुवतीं सीतां सरमा वल्गुभाषिणी ।
उवाच वदनं तस्याः स्पृशन्ती बाष्पविक्लवम् ॥ १२ ॥

एष ते यद्यभिप्रायस्तदा गच्छामि जानकि ॥ १३ ॥

गृह्य शत्रोरभिप्रायमुपावृत्तां च पश्य माम् ॥ १४ ॥

एवमुक्त्वा ततो गत्वा समीपं तस्य रक्षसः ।
शुश्राव कथितं तस्य रावणस्य समन्त्रिणः ॥ १५ ॥

सा श्रुत्वा निश्चयं तस्य निश्चयज्ञा दुरात्मनः ।
पुनरेवागमत्क्षिप्रमशोकवनिकां तदा ॥ १६ ॥

सा प्रविष्टा पुनस्तत्र ददर्श जनकात्मजाम् ।
प्रतीक्षमाणां तामेव भ्रष्टपद्मामिव श्रियम् ॥ १७ ॥

तां तु सीता पुनः प्राप्तां सरमां वल्गुभाषिणीम् ।
परिष्वज्य च सुस्निग्धं ददौ च स्वयमासनम् ॥ १८ ॥

इहासीना सुखं सर्वमाख्याहि मम तत्त्वतः ।
क्रूरस्य निश्चयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ १९ ॥

एवमुक्ता तु सरमा सीतया वेपमानया ।
कथितं सर्वमाचष्ट रावणस्य समन्त्रिणः ॥ २० ॥

जनन्या राक्षसेन्द्रो वै त्वन्मोक्षार्थं बृहद्वचः ।
अविद्धेन च वैदेहि मन्त्रिवृद्धेन बोधितः ॥ २१ ॥
दीयतामभिसत्कृत्य मनुजेन्द्राय मैथिली ।
निदर्शनं ते पर्याप्तं जनस्थाने यदद्भुतम् ॥ २२ ॥
लङ्घनं च समुद्रस्य दर्शनं च हनूमतः ।
वधं च रक्षसां युद्धे कः कुर्यान्मानुषो भुवि ॥ २३ ॥
एवं स मन्त्रिवृद्धैश्च मात्रा च बहु बोधितः ।
न त्वामुत्सहते मोक्तुमर्थमर्थपरो यथा ॥ २४ ॥
नोत्सहत्यमृतो मोक्तुं युद्धे त्वामिति मैथिलि ।
सामात्यस्य नृशंसस्य निश्चयो ह्येष वर्तते ॥ २५ ॥
तदेषा निश्चिता बुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता ।
भयान्न शक्तस्त्वां मोक्तुमनिरस्तस्तु संयुगे ॥
राक्षसानां च सर्वेषामात्मनश्च वधेन हि ॥ २६ ॥
निहत्य रावणं संख्ये सर्वथा निशितैः शरैः ।
प्रतिनेष्यति रामस्त्वामयोध्यामसितेक्षणे ॥ २७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे शब्दो भेरीशङ्खसमाकुलः ।
श्रुतो वानरसैन्यानां कम्पयन्धरणीतलम् ॥ २८ ॥
श्रुत्वा तु तद्वानरसैन्यशब्दं लङ्कागता राक्षसराजभृत्याः ।
नष्टौजसो दैन्यपरीतचेष्टाः श्रेयो न पश्यन्ति नृपस्य दोषे ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 15978 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1303

## पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

माल्यवदुपदेशः ॥

तेन शङ्खविमिश्रेण भेरीशब्देन राघवः ।
उपयाति महाबाहू रामः परपुरञ्जयः ॥ १ ॥

तं निनादं निशम्याथ रावणो राक्षसेश्वरः ।
मुहूर्तं ध्यानमास्थाय सचिवानभ्युदैक्षत ॥ २ ॥

अथ तान्सचिवांस्तत्र सर्वानाभाष्य रावणः ।
सभां सन्नादयन्सर्वामित्युवाच महाबलः ॥
जगत्संतापनः क्रूरो गर्हयन्राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥

तरणं सागरस्यापि विक्रमं बलसञ्चयम् ।
यदुक्तवन्तो रामस्य भवन्तस्तन्मया श्रुतम् ॥ ४ ॥

भवतश्चाप्यहं वेद्मि युद्धे सत्यपराक्रमान् ।
तूष्णीकानीक्षतोऽन्योन्यं विदित्वा रामविक्रमम् ॥ ५ ॥

ततस्तु सुमहाप्राज्ञो माल्यवान्नाम राक्षसः ।
रावणस्य वचः श्रुत्वा मातुः पैतामहोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥

विद्यास्वभिविनीतो यो राजा राजनयानुगः ।
स शास्ति चिरमैश्वर्यमरींश्च कुरुते वशे ॥ ७ ॥

संदधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह ।
स्वपक्षवर्धनं कुर्वन्महदैश्वर्यमश्नुते ॥ ८ ॥

हीयमानेन कर्तव्यो राज्ञा संधिः समेन च ।
न शत्रुमवमन्येत ज्यायान्कुर्वीत विग्रहम् ॥ ९ ॥

तन्मह्यं रोचते संधिः सह रामेण रावण ।
यदर्थमभियुक्ताः स्म सीता तस्मै प्रदीयताम् ॥ १० ॥

यस्य देवर्षयः सर्वे गन्धर्वाश्च जयैषिणः ।
विरोधं मा गमस्तेन संधिस्ते तेन रोचताम् ॥ ११ ॥

असृजद्भगवान्पक्षौ द्वावेव हि पितामहः ।
सुराणामसुराणां च धर्माधर्मौ तदाश्रयौ ॥ १२ ॥

धर्मो हि श्रूयते पक्षो ह्यमराणां महात्मनाम् ।
अधर्मो रक्षसां पक्षो ह्यसुराणां च रावण ॥ १३ ॥

धर्मो वै ग्रसतेऽधर्मं ततः कृतमभूद्युगम् ।
अधर्मो ग्रसते धर्मं ततस्तिष्यः प्रवर्तते ॥ १४ ॥

तत्त्वया चरता लोकान्धर्मो विनिहतो महान् ।
अधर्मः प्रगृहीतश्च तेनास्मद्बलिनः परे ॥ १५ ॥

स प्रमादाद्विवृद्धस्ते ह्यधर्मो ग्रसते च नः ।
विवर्धयति पक्षं च सुराणां सुरभावनः ॥ १६ ॥

विषयेषु प्रसक्तेन यत्किंचित्कारिणा त्वया ।
ऋषीणामग्निकल्पानामुद्वेगो जनितो महान् ॥ १७ ॥

तेषां प्रभावो दुर्धर्षः प्रदीप्त इव पावकः ।
तपसा भावितात्मानो धर्मस्यानुग्रहे रताः ॥ १८ ॥

मुख्यैर्यज्ञैर्यजन्त्येते नित्यं तैस्तैर्द्विजातयः ।
जुह्वत्यग्नींश्च विधिवद्वेदांश्चोच्चैरधीयते ॥ १९ ॥

अभिभूय च रक्षांसि ब्रह्मघोषानुदैरयन् ।
दिशोऽपि विद्रुताः सर्वाः स्तनयित्नुरिवोष्णगे ॥ २० ॥

ऋषीणामग्निकल्पानामग्निहोत्रसमुत्थितः ।
आदत्ते रक्षसां तेजो धूमो व्याप्य दिशो दश ॥ २१ ॥

तेषु तेषु च देशेषु पुण्येष्वेव दृढव्रतैः ।
चर्यमाणं तपस्तीव्रं सन्तापयति राक्षसान् ॥ २२ ॥

देवदानवयक्षेभ्यो गृहीतश्च वरस्त्वया ॥ २३ ॥

मानुषा वानरा ऋक्षा गोलाङ्गूला महाबलाः ।
बलवन्त इहागम्य गर्जन्ति दृढविक्रमाः ॥ २४ ॥

उत्पातान्विविधान्दृष्ट्वा घोरान्बहुविधांस्तथा ।
विनाशमनुपश्यामि सर्वेषां रक्षसामहम् ॥ २५ ॥

खराभिस्तनिता घोरा मेघाः प्रतिभयङ्कराः ।
शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वतः ॥ २६ ॥

रुदतां वाहनानां च प्रपतन्त्यस्रबिन्दवः ।
ध्वजा ध्वस्ता विवर्णाश्च न प्रभान्ति यथा पुरा ॥ २७ ॥

व्याला गोमायवो गृध्रा वाश्यन्ति च सुभैरवम् ॥ २८ ॥

प्रविश्य लङ्कामनिशं समवायांश्च कुर्वते ॥ २९ ॥

कालिकाः पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसन्त्यग्रतः स्थिताः ।
स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्त्यो गृहाणि प्रतिभाष्य च ॥ ३० ॥

गृहाणां बलिकर्माणि श्वानः पर्युपभुञ्जते ॥ ३१ ॥

खरा गोषु प्रजायन्ते मूषिका नकुलैः सह ॥ ३२ ॥

मार्जारा द्वीपिभिः सार्धं सूकराः शुनकैः सह ।
किन्नरा राक्षसैश्चापि समीयुर्मानुषैस्सह ॥ ३३ ॥

पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहङ्गाः कालचोदिताः ।
राक्षसानां विनाशाय कपोता विचरन्ति च ॥ ३४ ॥

वीचीकूचीति वाश्यन्त्यः शारिका वेश्मसु स्थिताः ॥

पतन्ति ग्रथिताश्चापि निर्जिताः कलहैषिणः ।
पक्षिणश्च मृगाः सर्वे प्रत्यादित्यं रुदन्ति च ॥ ३६ ॥

करालो विकटो मुण्डः परुषः कृष्णपिङ्गलः ।
कालो गृहाणि सर्वेषां काले कालेऽन्ववेक्षते ॥ ३७ ॥

एतान्यन्यानि दुष्टानि निमित्तान्युत्पतन्ति च ।
विष्णुं मन्यामहे रामं मानुषं रूपमास्थितम् ॥ ३८ ॥

न हि मानुषमात्रोऽसौ राघवो दृढविक्रमः ।
येन बद्धः समुद्रस्य स सेतुः परमाद्भुतः ॥ ३९ ॥

कुरुष्व नरराजेन सन्धिं रामेण रावण ।
ज्ञात्वा प्रधार्य कार्याणि क्रियतामायतिक्षमम् ॥ ४० ॥

सीतार्थे ते महाप्राज्ञ महद्भयमुपस्थितम् ॥ ४१ ॥

इदं वचस्तत्र निशम्य माल्यवान्परीक्ष्य रक्षोऽधिपतेर्मनः पुनः ।
अनुत्तमेषूत्तमपौरुषो बली बभूव तूष्णीं समवेक्ष्य रावणम् ॥

स तद्वचो माल्यवता प्रभाषितं दशाननो न प्रतिशुश्रुवे तदा ।
भृशं जगर्हे च सुदुष्टमानसो मुमूर्षुरत्युच्चवचांस्युदीरयन् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः **16021** युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः **1346**

## षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

लङ्कागुप्तिः ॥

तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः ।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः ॥ १ ॥

स बद्ध्वा भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य वशमागतः ।
अमर्षात्परिवृत्ताक्षो माल्यवन्तमथाब्रवीत् ॥ २ ॥

हितबुद्ध्या यदहितं वचः परुषमुच्यते ।
परपक्षं प्रविश्यैव नैतच्छ्रोत्रं गतं मम ॥ ३ ॥

मानुषं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम् ।
समर्थं मन्यसे केन त्यक्तं पित्रा वनालयम् ॥ ४ ॥

रक्षसामीश्वरं मां च देवतानां भयङ्करम् ।
हीनं मां मन्यसे केन ह्यहीनं सर्वविक्रमैः ॥ ५ ॥

वीर्यद्वेषेण वा शङ्के पक्षपातेन वा रिपोः ।
त्वयाऽहं परुषाण्युक्तः परप्रोत्साहनेन वा ॥ ६ ॥

प्रभवन्तं पदस्थं हि परुषं कोऽभिधास्यति ।
पण्डितः शास्त्रतत्त्वज्ञो विना प्रोत्साहनाद्रिपोः ॥ ७ ॥

आनीय च वनात्सीतां पद्महीनामिव श्रियम् ।
किमर्थं प्रतिदास्यामि राघवस्य भयादहम् ॥ ८ ॥

वृतं वानरकोटीभिः ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् ।
पश्य कैश्चिदहोभिस्त्वं राघवं निहतं मया ॥ ९ ॥

द्वन्द्वे यस्य न तिष्ठन्ति दैवतान्यपि संयुगे ।
स कस्माद्रावणो युद्धे भयमाहारयिष्यति ॥ १० ॥

द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित् ॥ ११ ॥

एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ १२ ॥

यदि तावत्समुद्रे तु सेतुर्बद्धो यदृच्छया ।
रामेण विस्मयः कोऽत्र येन ते भयमागतम् ॥ १३ ॥

स तु तीर्त्वाऽर्णवं रामः सह वानरसेनया ।
प्रतिजानामि ते सत्यं न जीवन्प्रतियास्यति ॥ १४ ॥

एवं ब्रुवाणं संरब्धं रुष्टं विज्ञाय रावणम् ।
व्रीडितो माल्यवान् वाक्यं नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ १५ ॥

जयाशिषा च राजानं वर्धयित्वा यथोचितम् ।
माल्यवानभ्यनुज्ञातो जगाम स्वं निवेशनम् ॥ १६ ॥

रावणस्तु सहामात्यो मन्त्रयित्वा विमृश्य च ।
लङ्कायामतुलां गुप्तिं कारयामास राक्षसः ॥ १७ ॥

स व्यादिदेश पूर्वस्यां प्रहस्तं द्वारि राक्षसम् ।
दक्षिणस्यां महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥ १८ ॥

पश्चिमायामथो द्वारि पुत्रमिन्द्रजितं तथा ।
व्यादिदेश महामायं बहुभी राक्षसैर्वृतम् ॥ १९ ॥

उत्तरस्यां पुरद्वारि व्यादिश्य शुकसारणौ ।
स्वयं चात्र भविष्यामि मन्त्रिणस्तानुवाच ह ॥ २० ॥

राक्षसं तु विरूपाक्षं महावीर्यपराक्रमम् ।
मध्यमेऽस्थापयद्गुल्मे बहुभिः सह राक्षसैः ॥ २१ ॥

एवं विधानं लङ्कायां कृत्वा राक्षसपुङ्गवः ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥ २२ ॥

विसर्जयामास ततः स मन्त्रिणो
विधानमाज्ञाप्य पुरस्य पुष्कलम् ।
जयाशिषा मन्त्रिगणेन पूजितो
विवेश चान्तःपुरमृद्धिमन्महत् ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16644 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1369

## सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

### श्रीरामेण सेनाव्यूहनम् ॥

नरवानरराजौ तौ स च वायुसुतः कपिः ।
जाम्बवानृक्षराजश्च राक्षसश्च विभीषणः ॥ १ ॥

अङ्गदो वालिपुत्रश्च सौमित्रिः शलभः कपिः ।
सुषेणः सहदायादो मैन्दो द्विविद एव च ॥ २ ॥

गजो गवाक्षः कुमुदो नलोऽथ पनसस्तदा ।
अमित्रविषयं प्राप्ताः समवेताः समर्थयन् ॥ ३ ॥

इयं सा लक्ष्यते लङ्का पुरी रावणपालिता ।
सासुरोरगगन्धर्वैरमरैरपि दुर्जया ॥ ४ ॥

कार्यसिद्धिं पुरस्कृत्य मन्त्रयध्वं विनिर्णये ॥ ५ ॥

नित्यं सन्निहितो ह्यत्र रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥

तथा तेषु ब्रुवाणेषु रावणावरजोऽब्रवीत् ।
वाक्यमग्राम्यपदवत्पुष्कलार्थं विभीषणः ॥ ७ ॥

अनलः शरभश्चैव संपातिर्विहगस्तथा ।
गत्वा लङ्कां महामात्याः पुरीं पुनरिहागताः ॥ ८ ॥

भूत्वा शकुनयः सर्वे प्रविष्टाश्च रिपोर्बलम् ।
विधानं विहितं यच्च तद्दृष्ट्वा समुपस्थिताः ॥ ९ ॥

संविधानं यदाहुस्ते रावणस्य दुरात्मनः ।
राम तद्ब्रुवतः सर्वं यथा तत्त्वेन मे शृणु ॥ १० ॥

पूर्वं प्रहस्तः सबलो द्वारमासाद्य तिष्ठति ॥ ११ ॥
दक्षिणं च महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥ १२ ॥

इन्द्रजित्पश्चिमद्वारं राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
पट्टिशासिधनुष्मद्भिः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥
नानाप्रहरणैः शूरैरावृतो रावणात्मजः ॥ १३ ॥

राक्षसानां सहस्रैस्तु बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ।
युक्तः परमसंविग्नो राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥
उत्तरं नगरद्वारं रावणः स्वयमास्थितः ॥ १४ ॥

विरूपाक्षस्तु महता शूलखड्गधनुष्मता ।
बलेन राक्षसैः सार्धं मध्यमं गुल्ममास्थितः ॥ १५ ॥

एतानेवंविधान्गुल्मांल्लङ्कायां समुदीक्ष्य ते ।
मामकाः सचिवाः सर्वे पुनः शीघ्रमिहागताः ॥ १६ ॥

गजानां च सहस्रं च रथानामयुतं पुरे ।
हयानामयुते द्वे च साग्रकोटिश्च रक्षसाम् ॥ १७ ॥

विक्रान्ता बलवन्तश्च संयुगेष्वाततायिनः ।
इष्टा राक्षसराजस्य नित्यमेते निशाचराः ॥ १८ ॥

एकैकस्यात्र युद्धार्थे राक्षसस्य विशां पते ।
परिवारः सहस्राणां सहस्रमुपतिष्ठते ॥ १९ ॥

एतां प्रवृत्तिं लङ्कायां मन्त्रिप्रोक्तां विभीषणः ।
एवमुक्त्वा महाबाहू राक्षसांस्तानदर्शयत् ॥ २० ॥

लङ्कायां सचिवैः सर्वं रामाय प्रत्यवेदयत् ॥ २१ ॥
रामं कमलपत्राक्षमिदमुत्तरमब्रवीत् ।
रावणावरजः श्रीमान्राममप्रियचिकीर्षया ॥ २२ ॥
कुबेरं तु यदा राम रावणः प्रत्ययुध्यत ।
षष्टिः शतसहस्राणि तदा निर्यान्ति राक्षसाः ॥ २३ ॥
पराक्रमेण वीर्येण तेजसा सत्त्वगौरवात् ।
सदृशा येऽत्र दर्पेण रावणस्य दुरात्मनः ॥ २४ ॥
अत्र मन्युर्न कर्तव्यो रोषये त्वां न भीषये ॥ २५ ॥
समर्थो ह्यसि वीर्येण सुराणामपि निग्रहे ॥ २६ ॥
तद्भवांश्चतुरङ्गेण बलेन महता वृतः ।
व्यूह्येदं वानरानीकं निर्मथिष्यति रावणम् ॥ २७ ॥
रावणावरजे वाक्यमेवं ब्रुवति राघवः ।
शत्रूणां प्रतिघातार्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥
पूर्वद्वारे तु लङ्काया नीलो वानरपुङ्गवः ।
प्रहस्तप्रतियोद्धा स्याद्वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥ २९ ॥
अङ्गदो वालिपुत्रस्तु बलेन महता वृतः ।
दक्षिणे बाधतां द्वारे महापार्श्वमहोदरौ ॥ ३० ॥
हनुमान्पश्चिमद्वारं निपीड्य पवनात्मजः ।
प्रविशत्वप्रमेयात्मा बहुभिः कपिभिर्वृतः ॥ ३१ ॥
दैत्यदानवसङ्घानामृषीणां च महात्मनाम् ।
विप्रकारप्रियः क्षुद्रो वरदानबलान्वितः ॥ ३२ ॥

परिक्रामति यः सर्वाँल्लोकान्सन्तापयन्प्रजाः ।
तस्याहं राक्षसेन्द्रस्य स्वयमेव वधे धृतः ॥ ३३ ॥

उत्तरं नगरद्वारमहं सौमित्रिणा सह ।
निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामि सबलो यत्र रावणः ॥ ३४ ॥

वानरेन्द्रश्च बलवानृक्षराजश्च वीर्यवान् ।
राक्षसेन्द्रानुजश्चैव गुल्मे भवतु मध्यमे ॥ ३५ ॥
न चैव मानुषं रूपं कार्यं हरिभिराहवे ॥ ३६ ॥
एषा भवतु संज्ञा नो युद्धेऽस्मिन्वानरे बले ॥ ३७ ॥
वानरा एव नश्चिह्नं स्वजनेऽस्मिन्भविष्यति ॥ ३८ ॥

वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान् ।
अहमेष सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन महौजसा ॥
आत्मना पञ्चमश्चायं सखा मम विभीषणः ॥ ३९ ॥

स रामः कृत्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वा विभीषणम् ।
सुवेलारोहणे बुद्धिं चकार मतिमान्प्रभुः ॥
रमणीयतरं दृष्ट्वा सुवेलस्य गिरेस्तटम् ॥ ४० ॥

ततस्तु रामो महता बलेन प्रच्छाद्य सर्वां पृथिवीं महात्मा ।
प्रहृष्टरूपोऽभिजगाम लङ्कां कृत्वा मतिं सोऽरिवधे महात्मा ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16085 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1410

## अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

### लङ्कादर्शनार्थं सुवेलारोहणम् ॥

स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति ।
लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम् ।
मन्त्रज्ञं च विधिज्ञं च श्लक्ष्णया परया गिरा ॥ २ ॥

सुवेलं साधुशैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम् ।
अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम् ॥ ३ ॥

लङ्कां चालोकयिष्यामो निलयं तस्य रक्षसः ।
येन मे मरणान्ताय हृता भार्या दुरात्मना ॥ ४ ॥

येन धर्मो न विज्ञातो न वृत्तं न कुलं तथा ।
राक्षस्या नीचया बुद्ध्या येन तद्गर्हितं कृतम् ॥ ५ ॥

तस्मिन्मे वर्तते रोषः कीर्तिते राक्षसाधमे ।
यस्यापराधान्नीचस्य वधं द्रक्ष्यामि रक्षसाम् ॥ ६ ॥

एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः ।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति ॥ ७ ॥

एवं संमन्त्रयन्नेव सक्रोधो रावणं प्रति ।
रामः सुवेलं वासाय चित्रसानुमुपारुहत् ॥ ८ ॥

पृष्ठतो लक्ष्मणश्चैनमन्वगच्छत्समाहितः ।
सशरं चापमुद्यम्य सुमहद्विक्रमे रतः ॥ ९ ॥

तमन्वरोहत्सुग्रीवः सामात्यः सविभीषणः ॥ १० ॥

हनुमानङ्गदो नीलो मैन्दो द्विविद एव च ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥ ११ ॥

पनसः कुमुदश्चैव हरो रम्भश्च यूथपः ।
जाम्बवांश्च सुषेणश्च करम्भश्च महाद्युतिः ॥ १२ ॥

दुर्मुखश्च महातेजास्तथा शतबलिः कपिः ।
एते चान्ये च बहवो वानराः शीघ्रगामिनः ॥ १३ ॥

ते वायुवेगप्रवणास्तं गिरिं गिरिचारिणः ।
अध्यारोहन्त शतशः सुवेलं यत्र राघवः ॥ १४ ॥

ते त्वदीर्घेण कालेन गिरिमारुह्य सर्वतः ।
ददृशुः शिखरे तस्य विषक्तामिव खे पुरीम् ॥ १५ ॥

तां शुभां प्रवरद्वारां प्राकारपरिशोभिताम् ।
लङ्कां राक्षससंपूर्णां ददृशुर्हरियूथपाः ॥ १६ ॥

प्राकारचयसंस्थैश्च तदा नीलैर्निशाचरैः ।
ददृशुस्ते हरिश्रेष्ठाः प्राकारमपरं कृतम् ॥ १७ ॥

ते दृष्ट्वा वानराः सर्वे राक्षसान्युद्धकाङ्क्षिणः ।
मुमुचुर्विविधान्नादांस्तत्र रामस्य पश्यतः ॥ १८ ॥

ततोऽस्तमगमत्सूर्यः सन्ध्यया प्रतिरञ्जितः ।
पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च क्षपा समभिवर्तते ॥ १९ ॥

सुवेलपृष्ठं प्राप्ता सा महती राघवानुगा ।
शुशुभे वानरी सेना प्रदोषसमये स्थिता ॥ २० ॥

ततः स रामो हरिवाहिनीपति-
विभीषणेन प्रतिनन्द्य सत्कृतः ।
सलक्ष्मणो यूथपयूथसंवृतः
सुवेलपृष्ठे न्यवसद्यथासुखम् ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16106 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1431

## एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

### लङ्कादर्शनम् ॥

तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरिपुङ्गवाः ।
लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च ॥ १ ॥

समसौम्यानि रम्याणि विशालान्यायतानि च ।
दृष्टिरम्याणि ते दृष्ट्वा बभूवुर्जातविस्मयाः ॥ २ ॥

चम्पकाशोकपुन्नागसालतालसमाकुला ।
तमालवनसंछन्ना नागमालासमावृता ॥ ३ ॥

हिन्तालैरर्जुनैर्नीपैः सप्तपर्णैश्च पुष्पितैः ।
तिलकैः कर्णिकारैश्च पाटलैश्च समन्ततः ॥ ४ ॥

शुशुभे पुष्पिताग्रैश्च लतापरिगतैर्द्रुमैः ।
लङ्का बहुविधैर्दिव्यैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ५ ॥

विचित्रकुसुमोपेतै रक्तकोमलपल्लवैः ।
शाद्वलैश्च तथा नीलैश्चित्राभिर्वनराजिभिः ॥ ६ ॥

गन्धाढ्यान्यभिरम्याणि पुष्पाणि च फलानि च ।
धारयन्त्यगमास्तत्र भूषणानीव मानवाः ॥ ७ ॥

तच्चैत्ररथसङ्काशं मनोज्ञं नन्दनोपमम् ।
वनं सर्वर्तुकं रम्यं शुशुभे षट्पदायुतम् ॥ ८ ॥

नत्यूहकोयष्टिभकैर्नृत्यमानैश्च बर्हिणैः ।
रुतं परभृतानां च शुश्रुवुर्वननिर्झरे ॥ ९ ॥

नित्यमत्तविहङ्गानि भ्रमराचरितानि च ।
कोकिलाकुलषण्डानि विहगाभिरुतानि च ॥ १० ॥

भृङ्गराजाभिगीतानि भ्रमरैः सेवितानि च ।
कोणालकविघुष्टानि सारसाभिरुतानि च ॥ ११ ॥

विविशुस्ते ततस्तानि वनान्युपवनानि च ।
हृष्टाः प्रमुदिता वीरा हरयः कामरूपिणः ॥ १२ ॥

तेषां प्रविशतां तत्र वानराणां महौजसाम् ।
पुष्पसंसर्गसुरभिर्ववौ घ्राणसुखोऽनिलः ॥ १३ ॥

अन्ये तु हरिवीराणां यूथान्निष्क्रम्य यूथपाः ।
सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता लङ्कां जग्मुः पताकिनीम् ॥ १४ ॥

वित्रासयन्तो विहगांस्त्रासयन्तो मृगद्विपान् ।
कम्पयन्तश्च तां लङ्कां नादैस्ते नदतां वराः ॥ १५ ॥
कुर्वन्तस्ते महावेगा महीं चरणपीडिताम् ॥ १६ ॥
रजश्च सहसैवोर्ध्वं जगाम चरणोत्थितम् ॥ १७ ॥
ऋक्षाः सिंहा वराहाश्च महिषा वारणा मृगाः ।
तेन शब्देन वित्रस्ता जग्मुर्भीता दिशो दश ॥ १८ ॥
शिखरं तत्त्रिकूटस्य प्रांशु चैकं दिविस्पृशम् ।
समन्तात्पुष्पसंछन्नं महारजतसन्निभम् ॥ १९ ॥
शतयोजनविस्तीर्णं विमलं चारुदर्शनम् ।
श्लक्ष्णं श्रीमन्महच्चैव दुष्प्रापं शकुनैरपि ॥ २० ॥
मनसाऽपि दुरारोहं किं पुनः कर्मणा जनैः ॥ २१ ॥
निविष्टा तत्र शिखरे लङ्का रावणपालिता ।
शतयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ॥ २२ ॥
सा पुरी गोपुरैरुच्चैः पाण्डुराम्बुदसन्निभैः ।
काञ्चनेन च सालेन राजतेन च शोभिता ॥ २३ ॥
प्रासादैश्च विमानैश्च लङ्का परमभूषिता ।
घनैरिवातपापाये मध्यमं वैष्णवं पदम् ॥ २४ ॥
यस्यां स्तम्भसहस्रेण प्रासादः समलङ्कृतः ।
कैलासशिखराकारो दृश्यते खमिवोल्लिखन् ॥ २५ ॥
चैत्यः स राक्षसेन्द्रस्य बभूव पुरभूषणम् ।
बलेन रक्षसां नित्यं यः समग्रेण रक्ष्यते ॥ २६ ॥

मनोज्ञां काञ्चनवतीं पर्वतैरुपशोभिताम् ।
नानाधातुविचित्रैश्च उद्यानैरुपशोभिताम् ॥ २७ ॥

नानाविहगसंघुष्टां नानामृगनिषेविताम् ।
नानाकाननसन्तानां नानाराक्षससेविताम् ॥ २८ ॥

तां समृद्धां समृद्धार्थो लक्ष्मीवांल्लक्ष्मणाग्रजः ।
रावणस्य पुरीं रामो ददर्श सह वानरैः ॥ २९ ॥

तां महागृहसंबाधां दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
नगरीममरप्रख्यो विस्मयं प्राप वीर्यवान् ॥ ३० ॥

तां रत्नपूर्णां बहुसंविधानां प्रासादमालाभिरलङ्कृतां च ।
पुरीं महायन्त्रकवाटमुख्यां ददर्श रामो महता बलेन ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16137 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1462

## चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

### सुग्रीवरावणयोर्द्वन्द्वयुद्धम् ॥

ततो रामः सुवेलाग्रं योजनद्वयमण्डलम् ।
आरुरोह ससुग्रीवो हरियूथपसंवृतः ॥ १ ॥

स्थित्वा मुहूर्तं तत्रैव दिशो दश विलोकयन् ।
त्रिकूटशिखरे रम्ये निर्मितां विश्वकर्मणा ॥
ददर्श लङ्कां सुन्यस्तां रम्यकाननशोभिताम् ॥ २ ॥

तस्यां गोपुरशृङ्गस्थं राक्षसेन्द्रं दुरासदम् ॥ ३ ॥
श्वेतचामरपर्यन्तं विजयच्छत्रशोभितम् ।
रक्तचन्दनसंलिप्तं रत्नाभरणभूषितम् ॥ ४ ॥
नीलजीमूतसङ्काशं हेमसंछादिताम्बरम् ।
ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ५ ॥
शशलोहितरागेण संवीतं रक्तवाससा ।
सन्ध्यातपेन संच्छन्नं मेघराशिमिवाम्बरे ॥ ६ ॥
पश्यतां वानरेन्द्राणां राघवस्यापि पश्यतः ।
दर्शनाद्राक्षसेन्द्रस्य सुग्रीवः सहसोत्थितः ॥ ७ ॥
क्रोधवेगेन सन्तप्तः सत्त्वेन च बलेन च ।
अचलाग्रादथोत्थाय पुप्लुवे गोपुरस्थले ॥ ८ ॥
स्थित्वा मुहूर्तं संप्रेक्ष्य निर्भयेनान्तरात्मना ।
तृणीकृत्य च तद्रक्षः सोऽब्रवीत्परुषं वचः ॥ ९ ॥
लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस ॥ १० ॥
न मया मोक्ष्यसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा ॥ ११ ॥
इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य पुप्लुवे तस्य चोपरि ॥ १२ ॥
आकृष्य मुकुटं चित्रं पातयामास तद्भुवि ॥ १३ ॥
समीक्ष्य तूर्णमायान्तमाबभाषे निशाचरः ॥ १४ ॥
सुग्रीवस्त्वं परोक्षं मे हीनग्रीवो भविष्यसि ॥ १५ ॥
इत्युक्त्वोत्थाय तं क्षिप्रं बाहुभ्यामाक्षिपत्तले ॥ १६ ॥
कन्तुवत्तं समुत्थाय बाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः ॥ १७ ॥

परस्परं स्वेदविदिग्धगात्रौ परस्परं शोणितदिग्धदेहौ ।
परस्परं श्लिष्टनिरुद्धचेष्टौ परस्परं शाल्मलिकिंशुकौ यथा ॥

मुष्टिप्रहारैश्च तलप्रहारैररत्निघातैश्च कराग्रघातैः ।
तौ चक्रतुर्युद्धमसह्यरूपं महाबलौ वानरराक्षसेन्द्रौ ॥

कृत्वा नियुद्धं भृशमुग्रवेगौ कालं चिरं गोपुरवेदिमध्ये ।
उत्क्षिप्य चाक्षिप्य विनम्य देहौ पादक्रमाद्गोपुरवेदिलग्नौ ॥

अन्योन्यमाविध्य विलग्नदेहौ तौ पेततुः सालनिखातमध्ये ॥
उत्पेततुर्भूतलमस्पृशन्तौ स्थित्वा मुहूर्तं त्वभिनिश्वसन्तौ ।
आलिङ्ग्य चावल्ग्य च बाहुयोक्त्रैः संयोजयामासतुराहवे तौ ॥

संरम्भशिक्षाबलसंप्रयुक्तौ संचेरतुः संप्रति युद्धमार्गैः ।
शार्दूलसिंहाविव जातदर्पौ गजेन्द्रपोताविव संप्रयुक्तौ ॥

संहत्य चापीड्य च तावुरोभ्यां निपेततुर्वै युगपद्धरण्याम् ।
उद्यम्य चान्योन्यमधिक्षिपन्तौ संचक्रमाते बहुयुद्धमार्गैः ॥

व्यायामशिक्षाबलसंप्रयुक्तौ क्लमं न तौ जग्मतुराशु वीरौ ।
बाहूत्तमैर्वारणवारणाभैर्निवारयन्तौ वरवारणाभौ ॥ २४ ॥

चिरेण कालेन तु संप्रयुक्तौ संचेरतुर्मण्डलमार्गमाशु ॥

तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यसूदने ।
मार्जाराविव भक्षार्थे वितस्थाते मुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥

मण्डलानि विचित्राणि स्थानानि विविधानि च ।
गोमूत्रिकाणि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ २७ ॥

तिरश्चीनगतान्येव तथा वक्रगतानि च ।
परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम् ॥ २८ ॥

अभिद्रवणमाप्लावमास्थानं च सविग्रहम् ।
परावृत्तमपावृत्तमवद्रुतमवप्लुतम् ॥ २९ ॥

उपन्यस्तमपन्यस्तं युद्धमार्गविशारदौ ।
तौ संचेरतुरन्योन्यं वानरेन्द्रश्च रावणः ॥ ३० ॥

एतस्मिन्नन्तरे रक्षो मायाबलमथात्मनः ।
आरब्धुमुपसंपेदे ज्ञात्वा तं वानराधिपः ॥ ३१ ॥

उत्पपात तदाऽऽकाशं जितकाशी जितक्लमः ।
रावणः स्थित एवात्र हरिराजेन वञ्चितः ॥ ३२ ॥

अथ हरिवरनाथः प्राप्य संग्रामकीर्तिं
निशिचरपतिमाजौ योजयित्वा श्रमेण ।
गगनमतिविशालं लङ्घयित्वार्कसूनु-
र्हरिवरगणमध्ये रामपार्श्वं जगाम ॥ ३३ ॥

इति स सवितृसूनुस्तत्र तत्कर्म कृत्वा
पवनगतिरनीकं प्राविशत्संप्रहृष्टः ।
रघुवरनृपसूनोर्वर्धयन्युद्धहर्षं
तरुमृगगणमुख्यैः पूज्यमानो हरीन्द्रः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16171 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1496

## एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

अङ्गददौत्यम् ॥

अथ तस्मिन्निमित्तानि दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
सुग्रीवं संपरिष्वज्य तदा वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

असंमन्त्र्य मया सार्धं तदिदं साहसं कृतम् ।
एवं साहसयुक्तानि न कुर्वन्ति जनेश्वराः ॥ २ ॥

संशये स्थाप्य मां चेदं बलं च सविभीषणम् ।
कष्टं कृतमिदं वीर साहसं साहसप्रिय ॥ ३ ॥

इदानीं मा कृथा वीर एवंविधमचिन्तितम् ।
त्वयि किंचित्समापन्ने किं कार्यं सीतया मम ॥ ४॥

भरतेन महाबाहो लक्ष्मणेन यवीयसा ।
शत्रुघ्नेन च शत्रुघ्न स्वशरीरेण वा पुनः ॥ ५ ॥

त्वयि चानागते पूर्वमिति मे निश्चिता मतिः ।
जानतश्चापि ते वीर्यं महेन्द्रवरुणोपम ॥ ६ ॥

हत्वाऽहं रावणं युद्धे सपुत्रबलवाहनम् ।
अभिषिच्य च लङ्कायां विभीषणमथापि च ॥
भरते राज्यमावेश्य त्यक्ष्ये देहं महाबल ॥ ७ ॥

तमेवंवादिनं रामं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥

तव भार्यापहर्तारं दृष्ट्वा राघव रावणम् ।
मर्षयामि कथं वीर जानन्पौरुषमात्मनः ॥ ९ ॥

इत्येवंवादिनं वीरमभिनन्द्य स राघवः ।
लक्ष्मणं लक्ष्मिसंपन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च ।
बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठेम लक्ष्मण ॥ ११ ॥

लोकक्षयकरं भीमं भयं पश्याभ्युपस्थितम् ।
निबर्हणं प्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ १२ ॥

वाताश्च परुषा वान्ति कम्पते च वसुन्धरा ।
पर्वताग्राणि वेपन्ते नदन्ति धरणीधराः ॥ १३ ॥

मेघाः क्रव्यादसंकाशाः परुषाः परुषस्वनाः ।
क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ति मिश्रं शोणितबिन्दुभिः ॥ १४ ॥

रक्तचन्दनसङ्काशा सन्ध्या परमदारुणा ।
ज्वलच्च निपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम् ॥ १५ ॥

आदित्यमभिवाश्यन्ति जनयन्तो महद्भयम् ।
दीना दीनस्वरा घोरा अप्रशस्ता मृगद्विजाः ॥ १६ ॥

रजन्यामप्रकाशश्च सन्तापयति चन्द्रमाः ।
कृष्णरक्तांशुपर्यन्तो यथा लोकस्य संक्षये ॥
ह्रस्वो रूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषः सुलोहितः ॥ १७ ॥

आदित्यमण्डले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ।
दृश्यन्ते न यथावच्च नक्षत्राण्यभिवर्तते ॥
युगान्तमिव लोकस्य पश्य लक्ष्मण शंसति ॥ १८ ॥

काकाः श्येनास्तथा गृध्रा नीचैः परिपतन्ति च ॥ १९ ॥
शिवाश्चाप्यशिवा वाचः प्रवदन्ति महास्वनाः ॥ २० ॥

शैलैः शूलैश्च खड्गैश्च विमुक्तैः कपिराक्षसैः ।
भविष्यत्यावृता भूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ २१ ॥

क्षिप्रमद्य दुराधर्षां लङ्कां रावणपालिताम् ।
अभियाम जवेनैव सर्वतो हरिभिर्वृताः ॥ २२ ॥

इत्येवं संवदन्वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः ।
तस्मादवातरच्छीघ्रं पर्वताग्रान्महाबलः ॥ २३ ॥

अवतीर्य च धर्मात्मा तस्माच्छैलात्स राघवः ।
परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः ॥ २४ ॥

सन्नह्य तु ससुग्रीवः कपिराजबलं महत् ।
कालज्ञो राघवः काले संयुगायाभ्यचोदयत् ॥ २५ ॥

ततः काले महाबाहुर्बलेन महता वृतः ।
प्रस्थितः पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥ २६ ॥

तं विभीषणसुग्रीवौ हनुमाञ्जाम्बवान्नलः ।
ऋक्षराजस्तथा नीलो लक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा ॥ २७ ॥

ततः पश्चात्सुमहती पृतनार्क्षवनौकसाम् ।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयाति स्म राघवम् ॥ २८ ॥

शैलशृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहान् ।
जगृहुः कुञ्जरप्रख्या वानराः परवारणाः ॥ २९ ॥

तौ तु दीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदतुररिंदमौ ॥ ३० ॥

पताकमालिनीं रम्यामुद्यानवनशोभिताम् ।
चित्रवप्रां सुदुष्प्रापामुच्चैः प्राकारतोरणाम् ॥ ३१ ॥

तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्यप्रचोदिताः ।
यथानिवेशं संपीड्य न्यविशन्त वनौकसः ॥ ३२ ॥

लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलश‍ृङ्गमिवोन्नतम् ।
रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च ॥ ३३ ॥

लङ्कामुपनिविष्टश्च रामो दशरथात्मजः ।
लक्ष्मणानुचरो वीरः पुरीं रावणपालिताम् ॥
उत्तरद्वारमासाद्य यत्र तिष्ठति रावणः ॥ ३४ ॥

नान्यो रामाद्धि तद्द्वारं समर्थः परिरक्षितुम् ।
रावणाधिष्ठितं भीमं वरुणेनेव सागरम् ॥ ३५ ॥

सायुधै राक्षसैर्भीमैरभिगुप्तं समन्ततः ।
लघूनां त्रासजननं पातालमिव दानवैः ॥ ३६ ॥

विन्यस्तानि च योधानां बहूनि विविधानि च ।
ददर्शायुधजालानि तथैव कवचानि च ॥ ३७ ॥

पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः ।
अतिष्ठत्सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान् ॥ ३८ ॥

अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः ।
ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च ॥ ३९ ॥

हनुमान्पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान्कपिः ।
प्रमाथिप्रघसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च संगतः ॥ ४० ॥

मध्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत ।
सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैः सुपर्णश्वसनोपमैः ॥ ४१ ॥

वानराणां तु षट्त्रिंशत्कोट्यः प्रख्यातयूथपाः ।
निपीड्योपनिविष्टाश्च सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ ४२ ॥

शासनेन तु रामस्य लक्ष्मणः सविभीषणः ।
द्वारे द्वारे हरीणां तु कोटिं कोटिं न्यवेशयत् ॥ ४३ ॥

पश्चिमेन तु रामस्य सुग्रीवः सहजाम्बवान् ।
अदूरान्मध्यमे गुल्मे तस्थौ बहुबलानुगः ॥ ४४ ॥

ते तु वानरशार्दूलाः शार्दूला इव दंष्ट्रिणः ।
गृहीत्वा द्रुमशैलाग्रान् हृष्टा युद्धाय तस्थिरे ॥ ४५ ॥

सर्वे विकृतलाङ्गूलाः सर्वे दंष्ट्रानखायुधाः ।
सर्वे विकृतचित्राङ्गाः सर्वे च विकृताननाः ॥ ४६ ॥

दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः ।
केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥ ४७ ॥

सन्ति चौघबलाः केचित्केचिच्छतगुणोत्तराः ।
अप्रमेयबलाश्चान्ये तत्रासन्हरियूथपाः ॥ ४८ ॥

अद्भुतश्च विचित्रश्च तेषामासीत्समागमः ।
तत्र वानरसैन्यानां शैलानामिव सङ्गमः ॥ ४९ ॥
परिपूर्णमिवाकाशं सञ्छन्नेव च मेदिनी ।
लङ्कामुपनिविष्टैश्च संपतद्भिश्च वानरैः ॥ ५० ॥
शतं शतसहस्राणां पृथगृक्षवनौकसाम् ।
लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुरन्ये योद्धुं समन्ततः ॥ ५१ ॥
आवृतः स गिरिः सर्वैस्तैः समन्तात्प्लवङ्गमैः ॥ ५२ ॥
अयुतानां सहस्रं च पुरीं तामभ्यवर्तत ॥ ५३ ॥
वानरैर्बलवद्भिश्च बभूव द्रुमपाणिभिः ।
संवृता सर्वतो लङ्का दुष्प्रवेशाऽपि वायुना ॥ ५४ ॥
राक्षसा विस्मयं जग्मुः सहसाऽभिनिपीडिताः ।
वानरैर्मेघसङ्काशैः शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५५ ॥
महाञ्छब्दोऽभवत्तत्र बलौघस्याभिवर्ततः ।
सागरस्येव भिन्नस्य यथा स्यात्सलिलस्वनः ॥ ५६ ॥
तेन शब्देन महता सप्राकारा सतोरणा ।
लङ्का प्रचलिता सर्वा सशैलवनकानना ॥ ५७ ॥
रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी ।
बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ ५८ ॥
राघवः सन्निवेश्यैव सैन्यं स्वं रक्षसां वधे ।
संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं निश्चित्य च पुनः पुनः ॥
आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः क्रमयोगार्थतत्त्ववित् ॥ ५९ ॥

विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन् ।
अङ्गदं वालितनयं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ६० ॥

गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात्कपे ।
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां भयं त्यक्त्वा गतव्यथः ॥ ६१ ॥

भ्रष्टश्रीक गतैश्वर्य मुमूर्षो नष्टचेतन ।
ऋषीणां देवतानां च गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ ६२ ॥

नागानामथ यक्षाणां राज्ञां च रजनीचर ।
यच्च पापं कृतं मोहादवलिप्तेन राक्षस ॥
तस्य पापस्य संप्राप्ता व्युष्टिरस्य दुरासदा ॥ ६३ ॥

नूनमद्य गतो दर्पः स्वयंभूवरदानजः ।
यस्य दण्डधरस्तेऽहं दाराहरणकर्शितः ॥
दण्डं धारयमाणस्तु लङ्काद्वारे व्यवस्थितः ॥ ६४ ॥

पदवीं देवतानां च महर्षीणां च राक्षस ।
राजर्षीणां च सर्वेषां गमिष्यसि मया हतः ॥ ६५ ॥

बलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम ।
मामतिक्रामयित्वा त्वं हृतवांस्तन्निदर्शय ॥ ६६ ॥

अराक्षसमिमं लोकं कर्तास्मि निशितैः शरैः ।
न चेच्छरणमभ्येषि मामुपादाय मैथिलीम् ॥ ६७ ॥

धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः संप्राप्तोऽयं विभीषणः ॥ ६८ ॥

लङ्कैश्वर्यं ध्रुवं श्रीमानयं प्राप्नोत्यकण्टकम् ॥ ६९ ॥

न हि राज्यमधर्मेण भोक्तुं क्षणमपि त्वया ।
शक्यं मूर्खसहायेन पापेनाविदितात्मना ॥ ७० ॥

युद्ध्यस्व वा धृतिं कृत्वा शौर्यमालम्ब्य राक्षस ॥ ७१ ॥
मच्छरैस्त्वं रणे शान्तस्ततः पूतो भविष्यसि ॥ ७२ ॥

यद्वा विशसि लोकांस्त्रीन्पक्षिभूतो मनोजवः ।
मम चक्षुष्पथं प्राप्य न जीवन्प्रतियास्यसि ॥ ७३ ॥

ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदैहिकम् ॥ ७४ ॥
सुदृष्टा क्रियतां लङ्का जीवितं ते मयि स्थितम् ॥ ७५ ॥

इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
जगामाकाशमाविश्य मूर्तिमानिव हव्यवाट् ॥ ७६ ॥

सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमान्रावणमन्दिरम् ।
ददर्शासीनमव्यग्रं रावणं सचिवैः सह ॥ ७७ ॥

ततस्तस्याविदूरे स निपत्य हरिपुङ्गवः ।
दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावङ्गदः कनकाङ्गदः ॥ ७८ ॥

तद्रामवचनं सर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् ।
सामात्यं श्रावयामास निवेद्यात्मानमात्मना ॥ ७९ ॥

दूतोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
वालिपुत्रोऽङ्गदो नाम यदि ते श्रोत्रमागतः ॥ ८० ॥

आह त्वां राघवो रामः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
निष्पत्य प्रतियुद्ध्यस्व नृशंस पुरुषाधम ॥ ८१ ॥

हन्तास्मि त्वां सहामात्यं सपुत्रज्ञातिबान्धवम् ॥ ८२ ॥

निरुद्विग्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि ॥ ८३ ॥

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
शत्रुमद्योद्धरिष्यामि त्वामृषीणां च कण्टकम् ॥ ८४ ॥

विभीषणस्य चैश्वर्यं भविष्यति हते त्वयि ।
न चेत्सत्कृत्य वैदेहीं प्रणिपत्य प्रदास्यसि ॥ ८५ ॥

इत्येवं परुषं वाक्यं ब्रुवाणे हरिपुङ्गवे ।
अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः ॥ ८६ ॥

ततः स रोषताम्राक्षः शशास सचिवांस्तदा ।
गृह्यतामेष दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत् ॥ ८७ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा दीप्ताग्निसमतेजसः ।
जगृहुस्तं ततो घोराश्चत्वारो रजनीचराः ॥ ८८ ॥

ग्राहयामास तारेयः स्वयमात्मानमात्मवान् ।
बलं दर्शयितुं वीरो यातुधानगणे तदा ॥ ८९ ॥

स तान्बाहुद्वये सक्तानादाय पतगानिव ।
प्रासादं शैलसङ्काशमुत्पपाताङ्गदस्तदा ॥ ९० ॥

तेऽन्तरिक्षाद्विनिर्धूतास्तस्य वेगेन राक्षसाः ।
भूमौ निपतिताः सर्वे राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥ ९१ ॥

ततः प्रासादशिखरं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ ९२ ॥

तत्पफाल पदाक्रान्तं दशग्रीवस्य पश्यतः ।
पुरा हिमवतः शृङ्गं वज्रिणेव विदारितम् ॥ ९३ ॥

भङ्क्त्वा प्रासादशिखरं नाम विश्राव्य चात्मनः ।
विनद्य सुमहानादमुत्पपात विहायसम् ॥ ९४ ॥

व्यथयन्राक्षसान्सर्वान्हर्षयंश्चापि वानरान् ।
स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः ॥ ९५ ॥

रावणस्तु परं चक्रे क्रोधं प्रासादधर्षणात् ।
विनाशं चात्मनः पश्यन्निश्वासपरमोऽभवत् ॥ ९६ ॥

रामस्तु बहुभिर्हृष्टैर्निनदद्भिः प्लवङ्गमैः ।
वृतो रिपुवधाकाङ्क्षी युद्धायैवाभ्यवर्तत ॥ ९७ ॥

सुषेणस्तु महावीर्यो गिरिकूटोपमो हरिः ।
बहुभिः संवृतस्तत्र वानरैः कामरूपिभिः ॥ ९८ ॥

चतुर्द्वाराणि सर्वाणि सुग्रीववचनात्कपिः ।
पर्यक्रामत दुर्धर्षो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥ ९९ ॥

तेषामक्षौहिणिशतं समवेक्ष्य वनौकसाम् ।
लङ्कामुपनिविष्टानां सागरं चाभिवर्तताम् ॥ १०० ॥

राक्षसा विस्मयं जग्मुस्त्रासं जग्मुस्तथाऽपरे ।
अपरे समरोद्धर्षाद्धर्षमेव प्रपेदिरे ॥ १०१ ॥

कृत्स्नं हि कपिभिर्व्याप्तं प्राकारपरिखान्तरम् ।
ददृशू राक्षसा दीनाः प्राकारं वानरीकृतम् ॥ १०२ ॥

हाहाकारं प्रकुर्वन्ति राक्षसा भयमोहिताः ॥ १०३ ॥

तस्मिन्महाभीषणके प्रवृत्ते
कोलाहले राक्षसराजधान्याम् ।
प्रगृह्य रक्षांसि महायुधानि
युगान्तवाता इव संविचेरुः ॥ १०४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16275 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1600

## द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

### युद्धारंभः ॥

ततस्ते राक्षसास्तत्र गत्वा रावणमन्दिरम् ।
न्यवेदयन्पुरीं रुद्धां रामेण सह वानरैः ॥ १ ॥

रुद्धां तु नगरीं श्रुत्वा जातक्रोधो निशाचरः ।
विधानं द्विगुणं कृत्वा प्रासादं सोऽध्यरोहत ॥ २ ॥

स ददर्शावृतां लङ्कां सशैलवनकाननाम् ।
असंख्येयैर्हरिगणैः सर्वतो युद्धकाङ्क्षिभिः ॥ ३ ॥

स दृष्ट्वा वानरैः सर्वां वसुधां कबलीकृताम् ।
कथं क्षपयितव्याः स्युरिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ४ ॥

स चिन्तयित्वा सुचिरं धैर्यमालम्ब्य रावणः ।
राघवं हरियूथांश्च ददर्शायतलोचनः ॥ ५ ॥

राघवः सह सैन्येन मुदितो नाम पुप्लुवे ॥ ६ ॥
लङ्कां ददर्श गुप्तां वै सर्वतो राक्षसैर्वृताम् ॥ ७ ॥

दृष्ट्वा दाशरथिर्लङ्कां चित्रध्वजपताकिनीम् ।
जगाम सहसा सीतां दूयमानेन चेतसा ॥ ८ ॥

अत्र सा मृगशावाक्षी मत्कृते जनकात्मजा ।
पीड्यते शोकसन्तप्ता कृशा स्थण्डिलशायिनी ॥ ९ ॥

पीड्यमानां स धर्मात्मा वैदेहीमनुचिन्तयन् ।
क्षिप्रमाज्ञापयामास वानरान्द्विषतां वधे ॥ १० ॥

एवमुक्ते तु वचने रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
सङ्घर्षमाणाः प्लवगाः सिंहनादैरनादयन् ॥ ११ ॥

शिखरैर्विकिरामैनां लङ्कां मुष्टिभिरेव वा ।
इति स्म दधिरे सर्वे मनांसि हरियूथपाः ॥ १२ ॥

उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि शिखराणि महान्ति च ।
तरूंश्चोत्पाट्य विविधांस्तिष्ठन्ति हरियूथपाः ॥ १३ ॥

प्रेक्षतो राक्षसेन्द्रस्य तान्यनीकानि भागशः ।
राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥ १४ ॥

ते ताम्रवक्त्रा हेमाभा रामार्थे त्यक्तजीविताः ।
लङ्कामेवाभ्यवर्तन्त सालतालशिलायुधाः ॥ १५ ॥

ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवङ्गमाः ।
प्राकाराग्राण्यरण्यानि ममन्थुस्तोरणानि च ॥ १६ ॥

परिखाः पूरयन्ति स्म प्रसन्नसलिलायुताः ।
पांसुभिः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैश्च वानराः ॥ १७ ॥

ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च वानराः ।
कोटीशतयुताश्चान्ये लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥ १८ ॥

काञ्चनानि प्रमृद्नन्तस्तोरणानि प्लवङ्गमाः ।
कैलासशिखराभाणि गोपुराणि प्रमथ्य च ॥ १९ ॥

आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
लङ्कां तामभिधावन्ति महावारणसन्निभाः ॥ २० ॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ २१ ॥

इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
अभ्यधावन्त लङ्कायाः प्राकारं कामरूपिणः ॥ २२ ॥

वीरबाहुः सुबाहुश्च नलश्च वनगोचरः ।
निपीड्योपनिविष्टास्ते प्राकारं हरियूथपाः
एतस्मिन्नन्तरे चक्रुः स्कन्धावारनिवेशनम् ॥ २३ ॥

पूर्वद्वारं तु कुमुदः कोटिभिर्दशभिर्वृतः ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ हरिभिर्जितकाशिभिः ॥ २४ ॥

साहाय्यार्थं तु तस्यैव निविष्टः प्रघसो हरिः ।
पनसश्च महाबाहुर्वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥ २५ ॥

दक्षिणं द्वारमागम्य वीरः शतबलिः कपिः ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ विंशत्या कोटिभिर्वृतः ॥ २६ ॥

सुषेणः पश्चिमद्वारं गतस्तारापिता हरिः ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ षष्टिकोटिभिरावृतः ॥ २७ ॥

उत्तरं द्वारमासाद्य रामः सौमित्रिणा सह ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ सुग्रीवश्च हरीश्वरः ॥ २८ ॥

गोलाङ्गूलो महाकायो गवाक्षो भीमदर्शनः ।
वृतः कोट्या महावीर्यस्तस्थौ रामस्य पार्श्वतः ॥ २९ ॥

ऋक्षाणां भीमवेगानां धूम्रः शत्रुनिबर्हणः ।
वृतः कोट्या महावीर्यस्तस्थौ रामस्य पार्श्वतः ॥ ३० ॥

सन्नद्धस्तु महावीर्यो गदापाणिर्विभीषणः ।
वृतो यत्तैस्तु सचिवैस्तस्थौ तत्र महाबलः ॥ ३१ ॥

गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ।
समन्तात्परिधावन्तो ररक्षुर्हरिवाहिनीम् ॥ ३२ ॥

ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः ।
निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥ ३३ ॥

एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं रावणस्य मुखोद्गतम् ।
सहसा भीमनिर्घोषमुद्घुष्टं रजनीचरैः ॥ ३४ ॥

ततः प्रचोदिता भेर्यश्चन्द्रपाण्डुरपुष्कराः ।
हेमकोणाहता भीमा राक्षसानां समन्ततः ॥ ३५ ॥

विनेदुश्च महाघोषाः शङ्खाः शतसहस्रशः ।
राक्षसानां सुघोराणां मुखमारुतपूरिताः ॥ ३६ ॥

ते बभुः शुभनीलाङ्गाः सशङ्का रजनीचराः ।
विद्युन्मण्डलसन्नद्धाः सबलाका इवाम्बुदाः ॥ ३७ ॥

निष्पतन्ति ततः सैन्या हृष्टा रावणचोदिताः ।
समये पूर्यमाणस्य वेगा इव महोदधेः ॥ ३८ ॥

ततो वानरसैन्येन मुक्तो नादः समन्ततः ।
मलयः पूरितो येन ससानुप्रस्थकन्दरः ॥ ३९ ॥

शङ्खदुन्दुभिसंघुष्टः सिंहनादस्तरस्विनाम् ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यनादयत् ॥ ४० ॥

गजानां बृंहितैः सार्धं हयानां हेषितैरपि ।
रथानां नेमिघोषैश्च रक्षसां पादनिस्वनैः ॥ ४१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे घोरः संग्रामः समपद्यत ।
रक्षसां वानराणां च यथा देवासुरे पुरा ॥ ४२ ॥

ते गदाभिः प्रदीप्ताभिः शक्तिशूलपरश्वधैः ।
निजघ्नुर्वानरान्घोराः कथयन्तः स्वविक्रमान् ॥ ४३ ॥

राजा जयति सुग्रीव इति शब्दो महानभूत् ॥ ४४ ॥

राजञ्जय जयेत्युक्त्वा स्वस्वनामकथान्ततः ।
तथा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः ॥
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिताः ॥ ४५ ॥

राक्षसास्त्वपरे भीमाः प्राकारस्था महीगतान् ।
भिण्डिपालैश्च खड्गैश्च शूलैश्चैव व्यदारयन् ॥ ४६ ॥

वानराश्चापि संक्रुद्धाः प्राकारस्थान्महीगताः ।
राक्षसान्पातयामासुः समाप्लुत्य प्लवङ्गमाः ॥ ४७ ॥

स संप्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः ।
रक्षसां वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16323 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1648

## त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

### द्वन्द्वयुद्धवर्णनम् ॥

युध्यतां तु ततस्तेषां वानराणां महात्मनाम् ।
रक्षसां संबभूवाथ बलकोपः सुदारुणः ॥ १ ॥

ते हयैः काञ्चनापीडैर्ध्वजैश्चाग्निशिखोपमैः ।
रथैश्चादित्यसङ्काशैः कवचैश्च मनोरमैः ॥ २ ॥

निर्ययू राक्षसव्याघ्रा नादयन्तो दिशो दश ।
राक्षसा भीमकर्माणो रावणस्य जयैषिणः ॥ ३ ॥

वानराणामपि चमूर्बृहती जयमिच्छताम् ।
अभ्यधावत तां सेनां रक्षसां कामरूपिणाम् ॥ ४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिधावताम् ।
रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ॥ ५ ॥

अङ्गदेनेन्द्रजित्सार्धं वालिपुत्रेण राक्षसः ।
अयुध्यत महातेजास्त्र्यम्बकेण यथाऽन्तकः ॥ ६ ॥

प्रजङ्घेन च संपातिर्नित्यं दुर्मर्षणो रणे ।
जम्बुमालिनमारब्धो हनुमानपि वानरः ॥ ७ ॥

संगतः सुमहाक्रोधो राक्षसो रावणानुजः ।
समरे तीक्ष्णवेगेन मित्रघ्नेन विभीषणः ॥ ८ ॥

तपनेन गजः सार्धं राक्षसेन महाबलः ।
निकुम्भेन महातेजा नीलोऽपि समयुध्यत ॥ ९ ॥

वानरेन्द्रस्तु सुग्रीवः प्रघसेन समागतः ।
संगतः समरे श्रीमान्विरूपाक्षेण लक्ष्मणः ॥ १० ॥

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामेण सह संगताः ॥ ११ ॥

वज्रमुष्टिस्तु मैन्देन द्विविदेनाशनिप्रभः ।
राक्षसाभ्यां सुघोराभ्यां कपिमुख्यौ समागतौ ॥ १२ ॥

वीरः प्रतपनो घोरो राक्षसो रणदुर्धरः ।
समरे तीक्ष्णवेगेन नलेन समयुध्यत ॥ १३ ॥

धर्मस्य पुत्रो बलवान्सुषेण इति विश्रुतः ।
स विद्युन्मालिना सार्धमयुध्यत महाकपिः ॥ १४ ॥

वानराश्चापरे भीमा राक्षसैरपरैः सह ।
द्वन्द्वं समीयुर्बहुधा युद्धाय बहुभिः सह ॥ १५ ॥

तत्रासीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
रक्षसां वानराणां च वीराणां जयमिच्छताम् ॥ १६ ॥

हरिराक्षसदेहेभ्यः प्रभूताः केशशाद्वलाः ।
शरीरसङ्घाटवहाः प्रसुस्रुः शोणितापगाः ॥ १७ ॥

आजघानेन्द्रजित्क्रुद्धो वज्रेणेव शतक्रतुः ।
अङ्गदं गदया वीरं शत्रुसैन्यविदारणम् ॥ १८ ॥

तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम् ।
जघान समरे श्रीमानङ्गदो वेगवान् कपिः ॥ १९ ॥

संपातिस्तु त्रिभिर्बाणैः प्रजङ्घेन समाहतः ।
निजघानाश्वकर्णेन प्रजङ्घं रणमूर्धनि ॥ २० ॥

जम्बुमाली रथस्थस्तु रथशक्त्या महाबलः ।
बिभेद समरे क्रुद्धो हनुमन्तं स्तनान्तरे ॥ २१ ॥

तस्य तं रथमास्थाय हनुमान् मारुतात्मजः ।
प्रममाथ तलेनाशु सह तेनैव रक्षसा ॥ २२ ॥

नदन्प्रतपनो घोरो नलं सोऽप्यन्वधावत ॥ २३ ॥

नलः प्रतपनस्याशु पातयामास चक्षुषी ।
भिन्नगात्रः शरैस्तीक्ष्णैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा ॥ २४ ॥

निजघानाद्रिशृङ्गेण तपनं वेगवान् गजः ॥ २५ ॥

ग्रसन्तमिव सैन्यानि प्रघसं वानराधिपः ।
सुग्रीवः सप्तपर्णेन निर्बिभेद जघान च ॥ २६ ॥

प्रपीड्य शरवर्षेण राक्षसं भीमदर्शनम् ।
निजघान विरूपाक्षं शरेणैकेन लक्ष्मणः ॥ २७ ॥

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामं निर्बिभिदुः शरैः ॥ २८ ॥

तेषां चतुर्णां रामस्तु शिरांसि निशितैः शरैः ।
क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेद घोरैरग्निशिखोपमैः ॥ २९ ॥

वज्रमुष्टिस्तु मैन्देन मुष्टिना निहतो रणे ।
पपात सरथः साश्वः पुराट्ट इव भूतले ॥ ३० ॥

निकुम्भस्तु रणे नीलं नीलाञ्जनचयप्रभम् ।
निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैः करैर्मेघमिवांशुमान् ॥ ३१ ॥

पुनः शरशतेनाथ क्षिप्रहस्तो निशाचरः ।
बिभेद समरे नीलं निकुम्भः प्रजहास च ॥ ३२ ॥

तस्यैव रथचक्रेण नीलो विष्णुरिवाहवे ।
शिरश्चिच्छेद समरे निकुम्भस्य च सारथेः ॥ ३३ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शो द्विविदोऽप्यशनिप्रभम् ।
जघान गिरिशृङ्गेण मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ३४ ॥

द्विविदं वानरेन्द्रं तु नगयोधिनमाहवे ।
शरैरशनिसङ्काशैः स विव्याधाशनिप्रभः ॥ ३५ ॥

स शरैरतिविद्धाङ्गो द्विविदः क्रोधमूर्च्छितः ।
सालेन सरथं साश्वं निजघानाशनिप्रभम् ॥ ३६ ॥

विद्युन्माली रथस्थस्तु शरैः काञ्चनभूषणैः ।
सुषेणं ताडयामास ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ ३७ ॥
तं रथस्थमथो दृष्ट्वा सुषेणो वानरोत्तमः ।
गिरिशृङ्गेण महता रथमाशु न्यपातयत् ॥ ३८ ॥
लाघवेन तु संयुक्तो विद्युन्माली निशाचरः ।
अपक्रम्य रथात्तूर्णं गदापाणिः क्षितौ स्थितः ॥ ३९ ॥
ततः क्रोधसमाविष्टः सुषेणो हरिपुङ्गवः ।
शिलां सुमहतीं गृह्य निशाचरमभिद्रवत् ॥ ४० ॥
तमापतन्तं गदया विद्युन्माली निशाचरः ।
वक्षस्यभिजघानाशु सुषेणं हरिसत्तमम् ॥ ४१ ॥
गदाप्रहारं तं घोरमचिन्त्य प्लवगोत्तमः ।
तां शिलां पातयामास तस्योरसि महामृधे ॥ ४२ ॥
शिलाप्रहाराभिहतो विद्युन्माली निशाचरः ।
निष्पिष्टहृदयो भूमौ गतासुर्निपपात ह ॥ ४३ ॥
एवं तैर्वानरैः शूरैः शूरास्ते रजनीचराः ।
द्वन्द्वे विमृदितास्तत्र दैत्या इव दिवौकसैः ॥ ४४ ॥
भग्नैः खड्गैर्गदाभिश्च शक्तितोमरपट्टिशैः ।
अपविद्धैश्च भिन्नैश्च रथैः सांग्रामिकैर्हयैः ॥ ४५ ॥
निहतैः कुञ्जरैर्मत्तैस्तथा वानरराक्षसैः ।
चक्राक्षयुगदण्डैश्च भग्नैर्धरणिसंश्रितैः ॥
बभूवायोधनं घोरं गोमायुगणसङ्कुलम् ॥ ४६ ॥

कबन्धानि समुत्पेतुर्दिक्षु वानररक्षसाम् ।
विमर्दे तुमुले तस्मिन्देवासुररणोपमे ॥ ४७ ॥

विदार्यमाणा हरिपुङ्गवैस्तदा
निशाचराः शोणितदिग्धगात्राः ।
पुनः सुयुद्धं तरसा समास्थिता
दिवाकरस्यास्तमयाभिकाङ्क्षिणः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16317 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1696

## चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

### रात्रियुद्धम् ॥

युद्ध्यतामेव तेषां तु तदा वानररक्षसाम् ।
रविरस्तंगतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी ॥ १ ॥

अन्योन्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम् ।
संप्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानररक्षसाम् ॥ २ ॥

राक्षसोऽसीति हरयो हरिश्चासीति राक्षसाः ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ ३ ॥

जहि दारय चैहीति कथं विद्रवसीति च ।
एवं सुतुमलः शब्दस्तस्मिंस्तमसि शुश्रुवे ॥ ४ ॥

काला: काञ्चनसन्नाहास्तस्मिंस्तमसि राक्षसा: ।
संप्रादृश्यन्त शैलेन्द्रा दीप्तौषधिवना इव ॥ ५ ॥

तस्मिंस्तमसि दुष्पारे राक्षसा: क्रोधमूर्च्छिता: ।
परिपेतुर्महावेगा भक्षयन्त: प्लवङ्गमान् ॥ ६ ॥

ते हयान्काञ्चनापीडान्ध्वजांश्चाग्निशिखोपमान् ।
आप्लुत्य दशनैस्तीक्ष्णैर्भीमकोपा व्यदारयन् ॥ ७ ॥

वानरा बलिनो युद्धेऽक्षोभयन्राक्षसीं चमूम् ॥ ८ ॥

कुञ्जरान्कुञ्जरारोहान्पताकाध्वजिनो रथान् ।
चकर्षुश्च ददंशुश्च दशनै: क्रोधमूर्च्छिता: ॥ ९ ॥

लक्ष्मणश्चापि रामश्च शरैराशीविषोपमै: ।
दृश्यादृश्यानि रक्षांसि प्रवराणि निजघ्नतु: ॥ १० ॥

तुरङ्गखुरविध्वस्तं रथनेमिसमुत्थितम् ।
रुरोध कर्णनेत्राणि युद्ध्यतां धरणीरज: ॥ ११ ॥

वर्तमाने महाघोरे संग्रामे रोमहर्षणे ।
रुधिरोदा महाघोरा नद्यस्तत्र प्रसुस्रुवु: ॥ १२ ॥

ततो भेरीमृदङ्गानां पणवानां च निस्वन: ।
शङ्खवेणुस्वनोन्मिश्र: संबभूवाद्भुतोपम: ॥ १३ ॥

हतानां स्तनमानानां राक्षसानां च निस्वन: ।
शस्तानां वानराणां च संबभूवातिदारुण: ॥ १३ ॥

हतैर्वानरवीरैश्च शक्तिशूलपरश्वधैः ।
निहतैः पर्वताग्रैश्च राक्षसैः कामरूपिभिः ॥ १५ ॥

शस्त्रपुष्पोपहारा च तत्रासीद्युद्धमेदिनी ।
दुर्ज्ञेया दुर्निवेशा च शोणितास्रावकर्दमा ॥ १६ ॥

सा बभूव निशा घोरा हरिराक्षसहारिणी ।
कालरात्रीव भूतानां सर्वेषां दुरतिक्रमा ॥ १७ ॥

ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे ।
राममेवाभ्यवर्तन्त संसृष्टाः शरवृष्टिभिः ॥ १८ ॥

तेषामापततां शब्दः क्रुद्धानामभिगर्जताम् ।
उद्वर्त इव सप्तानां समुद्राणां प्रशुश्रुवे ॥ १९ ॥

तेषां रामः शरैः षड्भिः षड् जघान निशाचरान् ।
निमेषान्तरमात्रेण शितैरग्निशिखोपमैः ॥ २० ॥

यमशत्रुश्च दुर्धर्षौ महापार्श्वमहोदरौ ।
वज्रदंष्ट्रो महाकायस्तौ चोभौ शुकसारणौ ॥ २१ ॥

ते तु रामेण बाणौघैः सर्वे मर्मसु ताडिताः ।
युद्धादपसृतास्तत्र सावशेषायुषोऽभवन् ॥ २२ ॥

तत्र काञ्चनचित्राङ्गैः शरैरग्निशिखोपमैः ।
दिशश्चकार विमलाः प्रदिशश्च महाबलः ॥ २३ ॥

रामनामाङ्कितैर्बाणैर्व्याप्तं तद्रणमण्डलम् ॥ २४ ॥

ये त्वन्ये राक्षसा भीमा रामस्याभिमुखे स्थिताः ।
तेऽपि नष्टाः समासाद्य पतङ्गा इव पावकम् ॥ २५ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैः संपतद्भिः सहस्रशः ।
बभूव रजनी चित्रा खद्योतैरिव शारदी ॥ २६ ॥

राक्षसानां च निनदैर्हरीणां चापि निस्वनैः ।
सा बभूव निशा घोरा भूयो घोरतरा तदा ॥ २७ ॥

तेन शब्देन महता प्रवृद्धेन समन्ततः ।
त्रिकूटः कन्दराकीर्णः प्रव्याहरदिवाचलः ॥ २८ ॥

गोलाङ्गूला महाकायास्तमसा तुल्यवर्चसः ।
संपरिष्वज्य बाहुभ्यां भक्षयन्रजनीचरान् ॥ २९ ॥

अङ्गदस्तु रणे शत्रुं निहन्तुं समुपस्थितः ।
रावणिं निजघानाशु सारथिं च हयानपि ॥ ३० ॥

वर्तमाने तदा घोरे संग्रामे भृशदारुणे ।
इन्द्रजित्तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः ॥
अङ्गदेन महामायस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३१ ॥

तत्कर्म वालिपुत्रस्य सर्वे देवाः सहर्षिभिः ।
तुष्टुवुः पूजनार्हस्य तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३२ ॥

प्रभावं सर्वभूतानि विदुरिन्द्रजितो युधि ।
अदृश्यः सर्वभूतानां यो रणेऽभूच्च दुर्जयः ॥ ३३ ॥

तेन ते तं महात्मानं तुष्टा दृष्ट्वा प्रधर्षितम् ॥ ३४ ॥

ततः प्रहृष्टाः कपयः ससुग्रीवविभीषणाः ।
साधु साध्विति नेदुश्च दृष्ट्वा शत्रुं प्रधर्षितम् ॥ ३५ ॥

इन्द्रजित्तु तदा तेन निर्जितो भीमकर्मणा ।
संयुगे वालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम् ॥ ३६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे रामो वानरान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३७ ॥
सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु कपिराजेन सङ्गताः ॥ ३८ ॥
स ब्रह्मणा दत्तवरस्त्रैलोक्यं बाधते भृशम् ॥ ३९ ॥
भवतामर्थसिद्ध्यर्थं कालेन स समागतः ॥ ४० ॥
अद्यैव क्षमितव्यं मे भवन्तो विगतज्वराः ॥ ४१ ॥
सोऽन्तर्धानगतः पापो रावणी रणकर्कशः ।
अदृश्यो निशितान्बाणान्मुमोचाशनिवर्चसः ॥ ४२ ॥
स रामं लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः ।
बिभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राक्षसः ॥ ४३ ॥
मायया संवृतस्तत्र मोहयन्राघवौ युधि ।
अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः ।
बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४४ ॥
तौ तेन पुरुषव्याघ्रौ क्रुद्धेनाशीविषैः शरैः ।
सहसा निहतौ वीरौ तदा प्रैक्षन्त वानराः ॥ ४५ ॥
प्रकाशरूपस्तु यदा न शक्तस्तौ बाधितुं राक्षसराजपुत्रः ।
मायां प्रयोक्तुं समुपाजगाम बबन्ध तौ राजसुतौ महात्मा ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16417 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1742

# पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

## नागपाशबन्धः ॥

स तस्य गतिमन्विच्छन्राजपुत्रः प्रतापवान् ।
दिदेशातिबलो रामो दश वानरयूथपान् ॥ १ ॥

द्वौ सुषेणस्य दायादौ नीलं च प्लवगर्षभम् ।
अङ्गदं वालिपुत्रं च शरभं च तरस्विनम् ॥ २ ॥

विनतं जाम्बवन्तं च सानुप्रस्थं महाबलम् ।
ऋषभं चर्षभस्कन्धमादिदेश परन्तपः ॥ ३ ॥

ते संप्रहृष्टा हरयो भीमानुद्यम्य पादपान् ।
आकाशं विविशुः सर्वे मार्गमाणा दिशो दश ॥ ४ ॥

तेषां वेगवतां वेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः ।
अस्त्रवित्परमास्त्रैस्तु वारयामास रावणिः ॥ ५ ॥

तं भीमवेगा हरयो नाराचैः क्षतविग्रहाः ।
अन्धकारे न ददृशुर्मेघैः सूर्यमिवावृतम् ॥ ६ ॥

रामलक्ष्मणयोरेव सर्वदेहभिदः शरान् ।
भृशमावेशयामास रावणिः समितिञ्जयः ॥ ७ ॥

निरन्तरशरीरौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
क्रुद्धेनेन्द्रजिता वीरौ पन्नगैः शरतां गतैः ॥ ८ ॥

तयोः क्षतजमार्गेण सुस्राव रुधिरं बहु ।
तावुभौ च प्रकाशेते पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ९ ॥

ततः पर्यन्तरक्ताक्षो भिन्नाञ्जनचयोपमः ।
रावणिर्भ्रातरौ वाक्यमन्तर्धानगतोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

युध्यमानमनालक्ष्यं शक्रोऽपि त्रिदशेश्वरः ।
द्रष्टुमासादितुं वाऽपि न शक्तः किं पुनर्युवाम् ॥ ११ ॥

प्रावृताविषुजालेन राघवौ कङ्कपत्रिणा ।
एष रोषपरीतात्मा नयामि यमसादनम् ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा तु धर्मज्ञौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
निर्बिभेद शितैर्बाणैः प्रजहर्ष ननाद च ॥ १३ ॥

भिन्नाञ्जनचयश्यामो विस्फार्य विपुलं धनुः ।
भूयो भूयः शरान्घोरान्विससर्ज महामृधे ॥ १४ ॥

ततो मर्मसु मर्मज्ञो मज्जयन्निशिताञ्च्छरान् ।
रामलक्ष्मणयोर्वीरो ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥

बद्धौ तु शरबन्धेन तावुभौ रणमूर्धनि ।
निमेषान्तरमात्रेण न शेकतुरुदीक्षितुम् ॥ १६ ॥

ततो विभिन्नसर्वाङ्गौ शरशल्याचितावुभौ ।
ध्वजाविव महेन्द्रस्य रज्जुमुक्तौ प्रकम्पितौ ॥ १७ ॥

तौ संप्रचलितौ वीरौ मर्मभेदेन कर्शितौ ।
निपेततुर्महेष्वासौ जगत्यां जगतीपती ॥ १८ ॥

तौ वीरशयने वीरौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ।
शरवेष्टितसर्वाङ्गावार्तौ परमपीडितौ ॥ १९ ॥

न ह्यविद्धं तयोर्गात्रे बभूवाङ्गुलमन्तरम् ।
नानिर्भिन्नं न चास्तब्धमाकराग्रादजिह्मगैः ॥ २० ॥
तौ तु क्रूरेण निहतौ रक्षसा कामरूपिणा ।
असृक् सुस्रुवतुस्तीव्रं जलं प्रस्रवणाविव ॥ २१ ॥
पपात प्रथमं रामो विद्धो मर्मसु मार्गणैः ।
क्रोधादिन्द्रजिता येन पुरा शक्रो विनिर्जितः ॥ २२ ॥
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैरधोगतिभिराशुगैः ।
नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥
विव्याध वत्सदन्तैश्च सिंहदंष्ट्रैः क्षुरैस्तथा ॥ २३ ॥
स वीरशयने शिश्ये विज्यमादाय कार्मुकम् ।
भिन्नमुष्टिपरीणाहं त्रिणतं रुक्मभूषितम् ॥ २४ ॥
बाणपातान्तरे रामं पतितं पुरुषर्षभम् ।
स तत्र लक्ष्मणो दृष्ट्वा निराशो जीवितेऽभवत् ॥ २५ ॥
रामं कमलपत्राक्षं शरबन्धपरिक्षतम् ।
शुशोच भ्रातरं दृष्ट्वा पतितं धरणीतले ॥ २६ ॥
हरयश्चापि तं दृष्ट्वा संतापं परमं गताः ।
शोकार्ताश्चुक्रुशुर्घोरमश्रुपूरितलोचनाः ॥ २७ ॥
बद्धौ तु वीरौ पतितौ शयानौ तौ वानराः संपरिवार्य तस्थुः
समागता वायुसुतप्रमुख्या विषादमार्ताः परमं च जग्मुः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16446 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1771

## षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

### सुग्रीवाद्यनुशोचनम् ॥

ततो द्यां पृथिवीं चैव वीक्षमाणा वनौकसः ।
ददृशुः सन्ततौ बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥

वृष्ट्वेवोपरते देवे कृतकर्मणि राक्षसे ।
आजगामाथ तं देशं ससुग्रीवो विभीषणः ॥ २ ॥

नीलद्विविदमैन्दाश्च सुषेणसुमुखाङ्गदाः ।
तूर्णं हनुमता सार्धमन्वशोचन्त राघवौ ॥ ३ ॥

अचेष्टौ मन्दनिश्वासौ शोणितेन परिप्लुतौ ।
शरजालाचितौ स्तब्धौ शयानौ शरतल्पयोः ॥ ४ ॥

निश्वसन्तौ यथा सर्पौ निश्चेष्टौ मन्दविक्रमौ ।
रुधिरस्रावदिग्धाङ्गौ तापनीयाविव ध्वजौ ॥ ५ ॥

तौ वीरशयने वीरौ शयानौ मन्दचेष्टितौ ।
यूथपैस्तैः परिवृतौ बाष्पव्याकुललोचनैः ॥ ६ ॥

राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमावृतौ ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सविभीषणाः ॥ ७ ॥

अन्तरिक्षं निरीक्षन्तो दिशः सर्वाश्च वानराः ।
न चैनं मायया च्छन्नं ददृशू रावणिं रणे ॥ ८ ॥

तं तु मायाप्रतिच्छन्नं माययैव विभीषणः ।
वीक्षमाणो ददर्शाथ भ्रातुः पुत्रमवस्थितम् ॥ ९ ॥

तमप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ।
ददर्शान्तर्हितं वीरं वरदानाद्विभीषणः ॥
तेजसा यशसा चैव विक्रमेण च संयुतम् ॥ १० ॥

इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च ।
उवाच परमप्रीतो हर्षयन्सर्वनैर्ऋतान् ॥ ११ ॥

दूषणस्य च हन्तारौ खरस्य च महाबलौ ।
सादितौ मामकैर्बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥

नेमौ मोक्षयितुं शक्यावेतस्मादिषुबन्धनात् ।
सर्वैरपि समागम्य सर्षिसङ्घैः सुरासुरैः ॥ १३ ॥

यत्कृते चिन्तयानस्य शोकार्तस्य पितुर्मम ।
अस्पृष्ट्वा शयनं गात्रैस्त्रियामा याति शर्वरी ॥ १४ ॥

कृत्स्नेयं यत्कृते लङ्का नदी वर्षास्विवाकुला ।
सोऽयं मूलहरोऽनर्थः सर्वेषां निहतो मया ॥ १५ ॥

रामस्य लक्ष्मणस्यापि सर्वेषां च वनौकसाम् ।
विक्रमा निष्फलाः सर्वे यथा शरदि तोयदाः ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु तान्सर्वान्राक्षसान्परिपार्श्वतः ।
यूथपानपि तान्सर्वांस्ताडयामास रावणिः ॥ १७ ॥

नीलं नवभिराहत्य मैन्दं च द्विविदं तथा ।
त्रिभिस्त्रिभिरमित्रघ्नस्तताप प्रवरेषुभिः ॥ १८ ॥

जाम्बवन्तं महेष्वासो विद्ध्वा बाणेन वक्षसि ।
हनूमतो वेगवतो विससर्ज शरान्दश ॥ १९ ॥

गवाक्षं शरभं चैव द्वावप्यमिततेजसौ ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महावेगो विव्याध युधि रावणिः॥ २० ॥
गोलाङ्गूलेश्वरं चैव बालिपुत्रमथाङ्गदम् ।
विव्याध बहुभिर्बाणैस्त्वरमाणोऽथ रावणिः ॥ २१ ॥
तान्वानरवरान्भित्त्वा शरैरग्निशिखोपमैः ।
ननाद बलवांस्तत्र महासत्त्वः स रावणिः ॥ २२ ॥
तानर्दयित्वा बाणौघैस्त्रासयित्वा च वानरान् ।
प्रजहास महाबाहुर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २३ ॥
शरबन्धेन घोरेण मया बद्धौ चमूमुखे ।
सहितौ भ्रातरावेतौ निशामयत राक्षसाः ॥ २४ ॥
एवमुक्तास्तु ते सर्वे राक्षसाः कूटयोधिनः ।
परं विस्मयमाजग्मुः कर्मणा तेन हर्षिताः ॥ २५ ॥
विनेदुश्च महानादान्सर्वतो जलदोपमाः ।
हतो राम इति ज्ञात्वा रावणिं समपूजयन् ॥ २६ ॥
निष्पन्दौ तु तदा दृष्ट्वा तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
वसुधायां निरुच्छ्वासौ हतावित्यन्वमन्यत ॥ २७ ॥
हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित्समितिंजयः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन्सर्वनैर्ऋतान् ॥ २८ ॥
रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते ।
सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत् ॥ २९ ॥
तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः ।
सबाष्पवदनं दीनं क्रोधव्याकुललोचनम् ॥ ३० ॥

अलं त्रासेन सुग्रीव बाष्पवेगो निगृह्यताम् ।
एवंप्रायाणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः ॥ ३१ ॥

सशेषभाग्यतास्माकं यदि वीर भविष्यति ।
मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानौ महाबलौ ॥ ३२ ॥

पर्यवस्थापयात्मानमनाथं मां च वानर ।
सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम् ॥ ३३ ॥

एवमुक्त्वा ततस्तस्य जलक्लिन्नेन पाणिना ।
सुग्रीवस्य शुभे नेत्रे प्रममार्ज विभीषणः ॥ ३४ ॥

ततः सलिलमादाय विद्यया परिजप्य च ।
सुग्रीवनेत्रे धर्मात्मा स ममार्ज विभीषणः ॥ ३५ ॥

प्रमृज्य वदनं तस्य कपिराजस्य धीमतः ।
अब्रवीत्कालसंप्राप्तमसंभ्रममिदं वचः ॥ ३६ ॥

न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमनुवर्तितुम् ।
अतिस्नेहोऽप्यकालेऽस्मिन्मरणायोपकल्पते ॥ ३७ ॥

तस्मादुत्सृज्य वैक्लव्यं सर्वकार्यविनाशनम् ।
हितं रामपुरोगाणां सैन्यानामनुचिन्त्यताम् ॥ ३८ ॥

अथ वा रक्ष्यतां रामो यावत्संज्ञाविपर्ययः ॥ ३९ ॥

लब्धसंज्ञौ हि काकुत्स्थौ भयं नो व्यपनेष्यतः ॥ ४० ॥

नैतत्किंचन रामस्य न च रामो मुमूर्षति ।
न ह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम् ॥ ४१ ॥

तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम् ।
यावत्कार्याणि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम् ॥ ४२ ॥
एते हि फुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः ।
कर्णे कर्णे प्रकथिता हरयो हरिसत्तम ॥ ४३ ॥
मां तु दृष्ट्वा प्रधावन्तमनीकं संप्रहर्षितुम् ।
त्यजन्तु हरयस्त्रासं भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ॥ ४४ ॥
समाश्वास्य तु सुग्रीवं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
विद्रुतं वानरानीकं तत्समाश्वासयत्पुनः ॥ ४५ ॥
इन्द्रजित्तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः ।
विवेश नगरीं लङ्कां पितरं चाभ्युपागमत् ॥ ४६ ॥
तत्र रावणमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
आचचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४७ ॥
रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ।
उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे ॥ ४८ ॥
उपाघ्राय स मूर्ध्न्येनं पप्रच्छ प्रीतमानसः ॥ ४९ ॥
पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ।
यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ ॥ ५० ॥
स हर्षवेगानुगतान्तरात्मा श्रुत्वा वचस्तस्य महारथस्य ।
जहौ ज्वरं दाशरथेः समुत्थितं प्रहृष्य वाचाऽभिननन्द पुत्रम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16497 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1822

## सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

### सीतायै वीरशयनस्य रामलक्ष्मणप्रदर्शनम् ॥

प्रतिप्रविष्टे लङ्कां तु कृतार्थे रावणात्मजे ।
राघवं परिवार्यार्ता ररक्षुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥

हनुमानङ्गदो नीलः सुषेणः कुमुदो नलः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥
जाम्बवानृषभः स्कन्धो रम्भः शतबलिः पृथुः ॥ २ ॥

व्यूढानीकाश्च यत्ताश्च द्रुमानादाय सर्वतः ।
वीक्षमाणा दिशः सर्वास्तिर्यगूर्ध्वं च वानराः ॥
तृणेष्वपि च चेष्टत्सु राक्षसा इति मेनिरे ॥ ३ ॥

रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम् ।
आजुहाव ततः सीतारक्षिणी राक्षसीस्तदा ॥ ४ ॥

राक्षस्यस्त्रिजटा चैव शासनात्समुपस्थिताः ॥ ५ ॥

ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥

हताविन्द्रजिताऽऽख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥

पुष्पकं च समारोप्य दर्शयध्वं हतौ रणे ॥ ८ ॥

यदाश्रयादवष्टब्धा नेयं मामुपतिष्ठति ।
सोऽस्या भर्ता सह भ्रात्रा निरस्तो रणमूर्धनि ॥ ९ ॥

निर्विशङ्का निरुद्विग्ना निरपेक्षा च मैथिली ।
मामुपस्थास्यते सीता सर्वाभरणभूषिता ॥ १० ॥

अद्य कालवशं प्राप्तं रणे रामं सलक्ष्मणम् ।
अवेक्ष्य विनिवृत्ताशा चान्यां गतिमपश्यती ॥
अनपेक्षा विशालाक्षी मामुपस्थास्यते स्वयम् ॥ ११ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्य दुरात्मनः ।
राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्यत्र पुष्पकम् ॥ १२ ॥

ततः पुष्पकमादाय राक्षस्यो रावणाज्ञया ।
अशोकवनिकास्थां तां मैथिलीं समुपानयन् ॥ १३ ॥

तामादाय तु राक्षस्यो भर्तृशोकपराजिताम् ।
सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा ॥ १४ ॥

ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह ।
जग्मुर्दर्शयितुं तस्यै राक्षस्यो रामलक्ष्मणौ ॥ १५ ॥

प्राघोषयत हृष्टश्च लङ्कायां राक्षसेश्वरः ॥ १६ ॥

रावणोऽकारयल्लङ्कां पताकाध्वजमालिनीम् ॥ १७ ॥

राघवो लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजिता रणे ॥ १८ ॥

विमानेनापि सीता तु गत्वा त्रिजटया सह ।
ददर्श वानराणां तु सर्वं सैन्यं निपातितम् ॥ १९ ॥

प्रहृष्टमनसश्चापि ददर्श पिशिताशनान् ।
वानरांश्चापि दुःखार्तान्रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥ २० ॥

ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पयोः ।
लक्ष्मणं चापि रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥ २१ ॥

विध्वस्तकवचौ वीरौ विप्रविद्धशरासनौ ।
सायकैश्छिन्नसर्वाङ्गौ शरस्तम्बमयौ क्षितौ ॥ २२ ॥

तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ तत्र वीरौ सा पुरुषर्षभौ ।
शयानौ पुण्डरीकाक्षौ कुमाराविव पावकी ॥ २३ ॥

शरतल्पगतौ वीरौ तथाभूतौ नरर्षभौ ।
दुःखार्ता सुभृशं सीता सुचिरं विललाप ह ॥ २४ ॥

भर्तारमनवद्याङ्गी लक्ष्मणं चासितेक्षणा ।
प्रेक्ष्य पांसुषु वेष्टन्तौ रुरोद जनकात्मजा ॥ २५ ॥

सा बाष्पशोकाभिहता समीक्ष्य
तौ भ्रातरौ देवसमप्रभावौ ।
वितर्कयन्ती निधनं तयोः सा
दुःखान्विता वाक्यमिदं जगाद ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16523 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1848

## अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

### सीताप्रलापः ॥

भर्तारं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महारथम् ।
विललाप भृशं सीता करुणं शोककर्शिता ॥ १ ॥

ऊचुर्लक्षणिनो ये मां पुत्रिण्यविधवेति च ।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ २ ॥

यज्वनो महिषीं ये मामूचुः पत्नीं च सत्रिणः ।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ३ ॥

ऊचुः संश्रवणे ये मां द्विजाः कार्तान्तिकाः शुभाम् ।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ४ ॥

वीरपार्थिवपत्नी त्वं ये धन्येति च मां विदुः ।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ५ ॥

इमानि खलु पद्मानि पादयोर्यैः कुलस्त्रियः ।
आधिराज्येऽभिषिच्यन्ते नरेन्द्रैः पतिभिः सह ॥ ६ ॥

वैधव्यं यान्ति यैर्नार्यो लक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः ।
नात्मनस्तानि पश्यामि पश्यन्ती हतलक्षणा ॥ ७ ॥

सत्यनामानि पद्मानि स्त्रीणामुक्तानि लक्षणैः ।
तान्यद्य निहते रामे वितथानि भवन्ति मे ॥ ८ ॥

केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासङ्गते मम ।
वृत्ते चारोमशे जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम ॥ ९ ॥

शङ्खे नेत्रे करौ पादौ गुल्फावूरू च मे चितौ ।
अनुवृत्तनखाः स्निग्धाः समाश्चाङ्गुलयो मम ॥ १० ॥

स्तनौ चाविरलौ पीनौ ममेमौ मग्नचूचुकौ ।
मग्ना चोत्सङ्गिनी नाभिः पार्श्वोरस्कं च मे चितम् ॥

मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरुहाणि च ।
प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मामूचुः शुभलक्षणाम् ॥ १२ ॥

समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत् ।
मन्दस्मितेत्येव च मां कन्यालक्षणिनो विदुः ॥ १३ ॥

आधिराज्येऽभिषेको मे ब्राह्मणैः पतिना सह ।
कृतान्तकुशलैरुक्तस्तत्सर्वं वितथीकृतम् ॥ १४ ॥

शोधयित्वा जनस्थानं प्रवृत्तिमुपलभ्य च ।
तीर्त्वा सागरमक्षोभ्यं भ्रातरौ गोष्पदे हतौ ॥ १५ ॥

ननु वारुणमाग्नेयमैन्द्रं वायव्यमेव च ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव राघवौ प्रत्यपद्यताम् ॥ १६ ॥

अदृश्यमानेन रणे मायया वासवोपमौ ।
मम नाथावनाथाया निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥

न हि दृष्टिपथं प्राप्य राघवस्य रणे रिपुः ।
जीवन्प्रति निवर्तेत यद्यपि स्यान्मनोजवः ॥ १८ ॥

न कालस्यातिभारोऽस्ति कृतान्तश्च सुदुर्जयः ।
यत्र रामः सह भ्रात्रा शेते युधि निपातितः ॥ १९ ॥

न शोचामि तथा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ।
नात्मानं जननीं वापि यथा श्वश्रूं तपस्विनीम् ॥ २० ॥

साऽनुचिन्तयते नित्यं समाप्तव्रतमागतम् ।
कदा द्रक्ष्यामि सीतां च लक्ष्मणं च सराघवम् ॥ २१ ॥

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाऽब्रवीत् ॥ २२ ॥

मा विषादं कृथा देवि भर्ताऽयं तव जीवति ॥ २३ ॥

कारणानि च वक्ष्यामि महान्ति सदृशानि च ।
यथेमौ जीवतो देवि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥

नहि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि च ।
भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ ॥ २५ ॥

इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम नामतः ।
दिव्यं त्वां धारयेन्नैवं यद्येतौ गतजीवितौ ॥ २६ ॥

हतवीरप्रधाना हि हतोत्साहा निरुद्यमा ।
सेना भ्रमति संख्येषु हतकर्णेव नौर्जले ॥ २७ ॥

इयं पुनरसंभ्रान्ता निरुद्विग्ना तरस्विनी ।
सेना रक्षति काकुत्स्थौ मया प्रीत्या निवेदितौ ॥

सा त्वं भव सुविस्रब्धा अनुमानैः सुखोदयैः ।
अहतौ पश्य काकुत्स्थौ स्नेहादेतद्ब्रवीमि ते ॥ २९ ॥

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ॥ ३० ॥

चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टाऽसि मनो मम ॥ ३१ ॥

नेमौ शक्यौ रणे जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ३२ ॥
तादृशं दर्शनं दृष्ट्वा मया चावेदितं तव ॥ ३३ ॥
इदं च सुमहच्चिह्नं शनैः पश्याद्य मैथिलि ॥ ३४ ॥
निःसंज्ञावप्युभावेतौ नैव लक्ष्मीर्वियुज्यते ॥ ३५ ॥
प्रायेण गतसत्त्वानां पुरुषाणां गतायुषाम् ।
दृश्यमानेषु वक्त्रेषु परं भवति वैकृतम् ॥ ३६ ॥
त्यज शोकं च मोहं च दुःखं च जनकात्मजे ।
रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम् ॥ ३७ ॥
श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा ।
कृताञ्जलिरुवाचेदमेवमस्त्विति मैथिली ॥ ३८ ॥
विमानं पुष्पकं तत्तु संनिवर्त्य मनोजवम् ।
दीना त्रिजटया सीता लङ्कामेव प्रवेशिता ॥ ३९ ॥
ततस्त्रिजटया सार्धं पुष्पकादवरुह्य सा ।
अशोकवनिकामेव राक्षसीभिः प्रवेशिता ॥ ४० ॥

प्रविश्य सीता बहुवृक्षषण्डां
तां राक्षसेन्द्रस्य विहारभूमिम् ।
संप्रेक्ष्य संचिन्त्य च राजपुत्रौ
परं विषादं समुपाजगाम ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16564 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1889

## एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

### श्रीरामप्रबोधः ॥

घोरेण शरबन्धेन बद्धौ दशरथात्मजौ ।
निश्वसन्तौ यथा नागौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥ १ ॥

सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः ससुग्रीवा महाबलाः ।
परिवार्य महात्मानौ तस्थुः शोकपरिप्लुताः ॥ २ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रत्यबुध्यत वीर्यवान् ।
स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्च शरैः संदानितोऽपि सन् ॥ ३ ॥

ततो दृष्ट्वा सरुधिरं विषण्णं गाढमर्पितम् ।
भ्रातरं दीनवदनं पर्यदेवयदातुरः ॥ ४ ॥

किं नु मे सीतया कार्यं किं कार्यं जीवितेन वा ।
शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधि निर्जितम् ॥ ५ ॥

शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता ।
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः सांपरायिकः ॥ ६ ॥

परित्यक्ष्याम्यहं प्राणं वानराणां तु पश्यताम् ।
यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ७ ॥

किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम् ।
कथमम्बां सुमित्रां च पुत्रदर्शनलालसाम् ॥ ८ ॥

विवत्सां वेपमानां च क्रोशन्तीं कुररीमिव ।
कथमाश्वासयिष्यामि यदि यास्यामि तं विना ॥ ९ ॥

कथं वक्ष्यामि शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम् ॥ १० ॥

मया सह वनं यातो विना तेन गतः पुनः ।
उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुं बत सुमित्रया ॥ ११ ॥

इहैव देहं त्यक्ष्यामि न हि जीवितुमुत्सहे ॥ १२ ॥

धिङ् मां दुष्कृतकर्माणमनार्यं यत्कृते ह्यसौ ।
लक्ष्मणः पतितः शेते शरतल्पे गतासुवत् ॥ १३ ॥

त्वं नित्यं स विषण्णं मामाश्वासयसि लक्ष्मण ॥ १४ ॥

गतासुर्नाद्य शक्नोषि मामार्तमभिभाषितुम् ॥ १५ ॥

येनाद्य निहता युद्धे राक्षसा विनिपातिताः ।
तस्यामेव क्षितौ वीरः स शेते निहतः परैः ॥ १६ ॥

शयानः शरतल्पेऽस्मिन्स्वशोणितपरिप्लुतः ।
शरजालैश्चितो भाति भास्करोऽस्तमिव व्रजन् ॥ १७ ॥

बाणाभिहतमर्मत्वान्न शक्नोत्यभिभाषितुम् ।
रुजा चाब्रुवतोऽप्यस्य दृष्टिरागेण सूच्यते ॥ १८ ॥

यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः ।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥ १९ ॥

इष्टबन्धुजनो नित्यं मां च नित्यमनुव्रतः ।
इमामद्य गतोऽवस्थां ममानार्यस्य दुर्नयैः ॥ २० ॥

सुरुष्टेनापि वीरेण लक्ष्मणेन न संस्मरे ।
परुषं विप्रियं वाऽपि श्रावितं तु कदाचन ॥ २१ ॥

विससर्जैकवेगेन पञ्च बाणशतानि यः ।
इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात्कार्तवीर्याच्च लक्ष्मणः ॥ २२ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि यो हन्याच्छक्रस्यापि महात्मनः ।
सोऽयमुर्व्यां हतः शेते महार्हशयनोचितः ॥ २३ ॥

तच्च मिथ्या प्रलप्तं मां प्रधक्ष्यति न संशयः ।
यन्मया न कृतो राजा राक्षसानां विभीषणः ॥ २४ ॥

अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रतियातुमितोऽर्हसि ॥ २५ ॥

स तु हीनं मया राजन्रावणोऽभिद्रवेद्बली ॥ २६ ॥

अङ्गदं तु पुरस्कृत्य ससैन्यः ससुहृज्जनः ।
सागरं तर सुग्रीव नीलेन च नलेन च ॥ २७ ॥

कृतं हनुमता कार्यं यदन्यैर्दुष्करं रणे ।
ऋक्षराजेन तुष्यामि गोलाङ्गूलाधिपेन च ॥ २८ ॥

अङ्गदेन कृतं कर्म मैन्देन द्विविदेन च ।
युद्धं केसरिणा संख्ये घोरं संपातिना कृतम् ॥ २९ ॥

गवयेन गवाक्षेण शरभेण गजेन च ।
अन्यैश्च हरिभिर्युद्धं मदर्थे त्यक्तजीवितैः ॥
न चातिक्रमितुं शक्यं दैवं सुग्रीव मानुषैः ॥ ३० ॥

यत्तु शक्यं वयस्येन सुहृदा च परन्तप ।
कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवता धर्मभीरुणा ॥ ३१ ॥

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः ।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ ॥ ३२ ॥

शुश्रुवुस्तस्य ते सर्वे वानराः परिदेवनम् ।
वर्तयाश्चक्रुरश्रूणि नेत्रैः कृष्णेतरेक्षणाः ॥ ३३ ॥

ततःसर्वाण्यनीकानि स्थापयित्वा विभीषणः ।
आजगाम गदापाणिस्त्वरितो यत्र राघवः ॥ ३४ ॥

तं दृष्ट्वा त्वरितं यान्तं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
वानरा दुद्रुवुस्सर्वे मन्यमानास्तु रावणिम् ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः **16599** युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः **1924**

## पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

### नागपाशविमोचनम् ॥

अथोवाच महातेजा हरिराजो महाबलः ।
किमियं व्यथिता सेना मूढवातेव नौर्जले ॥ १ ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा वालिपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् ॥ २ ॥

न त्वं पश्यसि रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् ।
शरजालाचितौ वीरावुभौ दशरथात्मजौ ॥
शरतल्पे महात्मानौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥ ३ ॥

अथाब्रवीद्वानरेन्द्रः सुग्रीवः पुत्रमङ्गदम् ।
नानिमित्तमिदं मन्ये भवितव्यं भयेन तु ॥ ४ ॥

विषण्णवदना ह्येते त्यक्तप्रहरणा दिशः ।
प्रपलायन्ति हरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचनाः ॥ ५ ॥

अन्योन्यस्य न लज्जन्ते न निरीक्षन्ति पृष्ठतः ।
विप्रकर्षन्ति चान्योन्यं पतितं लङ्घयन्ति च ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो गदापाणिर्विभीषणः ।
सुग्रीवं वर्धयामास राघवं च निरैक्षत ॥ ७ ॥

विभीषणं तं सुग्रीवो दृष्ट्वा वानरभीषणम् ।
ऋक्षराजं समीपस्थं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥ ८ ॥

विभीषणोऽयं संप्राप्तो यं दृष्ट्वा वानरर्षभाः ।
व्यद्रवंस्तु परित्रस्ता रावणात्मजशङ्कया ॥ ९ ॥

शीघ्रमेतान्सुसंत्रस्तान्बहुधा विप्रधावितान् ।
पर्यवस्थापयाख्याहि विभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु जाम्बवानृक्षपार्थिवः ।
वानरान्सान्त्वयामास संनिवार्य प्रधावतः ॥ ११ ॥

ते निवृत्ताः पुनः सर्वे वानरास्त्यक्तसंभ्रमाः ।
ऋक्षराजवचः श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा विभीषणम् ॥ १२ ॥

विभीषणस्तु रामस्य दृष्ट्वा गात्रं शरैश्चितम् ।
लक्ष्मणस्य च धर्मात्मा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १३ ॥

जलक्लिन्नेन हस्तेन तयोर्नेत्रे प्रमृज्य च ।
शोकसंपीडितमना रुरोद विललाप च ॥ १४ ॥
इमौ तौ सत्त्वसंपन्नौ विक्रान्तौ प्रियसंयुगौ ।
इमामवस्थां गमितौ राक्षसैः कूटयोधिभिः ॥ १५ ॥
भ्रातुः पुत्रेण मे तेन दुष्पुत्रेण दुरात्मना ।
राक्षस्या जिह्मया बुद्ध्या वञ्चितावृजुविक्रमौ ॥ १६ ॥
शरैरिमावलं विद्धौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
वसुधायामिमौ सुप्तौ दृश्येते शल्यकाविव ॥ १७ ॥
ययोर्वीर्यमुपाश्रित्य प्रतिष्ठा काङ्क्षिता मया ।
तावुभौ देहनाशाय प्रसुप्तौ पुरुषर्षभौ ॥ १८ ॥
जीवन्नद्य विपन्नोऽस्मि नष्टराज्यमनोरथः ।
प्राप्तप्रतिज्ञश्च रिपुः सकामो रावणः कृतः ॥ १९ ॥
एवं विलपमानं तं परिष्वज्य विभीषणम् ।
सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नो हरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २० ॥
राज्यं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ लङ्कायां नात्र संशयः ॥ २१ ॥
रावणः सह पुत्रेण स कामं नेह लप्स्यते ॥ २२ ॥
न रुजापीडितावेतावुभौ राघवलक्ष्मणौ ।
त्यक्त्वा मोहं वधिष्येते सगणं रावणं रणे ॥ २३ ॥
तमेवं सान्त्वयित्वा तु समाश्वास्य च राक्षसम् ।
सुषेणं श्वशुरं पार्श्वे सुग्रीवस्तमुवाच ह ॥ २४ ॥
सह शूरैर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिन्दमौ ।
गच्छ त्वं भ्रातरौ गृह्य किष्किन्धां रामलक्ष्मणौ ॥२५॥

अहं तु रावणं हत्वा सपुत्रं सहबान्धवम् ।
मैथिलीमानयिष्यामि शक्रो नष्टामिव श्रियम् ॥ २६ ॥
श्रुत्वैतद्वानरेन्द्रस्य सुषेणो वाक्यमब्रवीत् ।
दैवासुरं महद्युद्धमनुभूतं सुदारुणम् ॥ २७ ॥
तदा स्म दानवा देवाञ्छरसंस्पर्शकोविदाः ।
निजघ्नुः शस्त्रविदुषश्छादयन्तो मुहुर्मुहुः ॥ २८ ॥
तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्च परासूंश्च बृहस्पतिः ।
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ॥ २९ ॥
तान्यौषधान्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम् ।
जवेन वानराः शीघ्रं संपातिपनसादयः ॥ ३० ॥
हरयस्तु विजानन्ति पार्वतीं तां महौषधीम् ।
सञ्जीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम् ॥ ३१ ॥
चन्द्रश्च नाम्ना द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे ।
अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी ॥ ३२ ॥
तस्मिंस्ते निहिते देवैः पर्वते परमौषधी ।
अयं वायुसुतो राजन्हनुमांस्तत्र गच्छतु ॥ ३३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्मेघांश्चापि सविद्युतः ।
पर्यस्यन्सागरे तोयं कम्पयन्निव पर्वतान् ॥ ३४ ॥
महता पक्षवातेन सर्वद्वीपमहाद्रुमाः ।
निपेतुर्भिन्नविटपाः समूला लवणाम्भसि ॥ ३५ ॥
अभवन्पन्नगास्त्रस्ता भोगिनस्तत्रवासिनः ।
शीघ्रं सर्वाणि यादांसि जग्मुश्च लवणार्णवम् ॥ ३६ ॥

ततो मुहूर्ताद्गरुडं वैनतेयं महाबलम् ।
वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ३७ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रदुद्रुवुः ।
यैस्तौ सत्पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलौ ॥ ३८ ॥

ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ दृष्ट्वा प्रत्यभिनन्दितः ।
विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे ॥ ३९ ॥

वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः ।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥ ४० ॥

तेजो वीर्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणः ।
प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणं तयोः ॥ ४१ ॥

तावुत्थाप्य महावीर्यौ गरुडो वासवोपमौ ।
उभौ तौ सस्वजे हृष्टो रामश्चैनमुवाच ह ॥ ४२ ॥

भवत्प्रसादाद्व्यसनं रावणिप्रभवं महत् ।
आवामिह व्यतिक्रान्तौ पूर्ववद्बलिनौ कृतौ ॥ ४३ ॥

यथा तातं दशरथं यथाऽजं च पितामहम् ।
तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ॥ ४४ ॥

को भवान्रूपसंपन्नो दिव्यस्रगनुलेपनः ।
वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः ॥ ४५ ॥

तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः ।
पतत्रिराजः प्रीतात्मा हर्षपर्याकुलेक्षणः ॥ ४६ ॥

अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ।
गरुत्मानिह संप्राप्तो युवयोः साह्यकारणात् ॥ ४७ ॥
असुरा वा महावीर्या दानवा वा महाबलाः ।
सुराश्चापि सगन्धर्वाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥ ४८ ॥
नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् ।
मायाबलादिन्द्रजिता निर्मितं क्रूरकर्मणा ॥ ४९ ॥
एते नागाः काद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्रा विषोल्बणाः ।
रक्षोमायाप्रभावेन शरा भूत्वा त्वदाश्रिताः ॥ ५० ॥
सभाग्यश्चासि धर्मज्ञ राम सत्यपराक्रम ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा समरे रिपुघातिना ॥ ५१ ॥
इमं श्रुत्वा तु वृत्तान्तं त्वरमाणोऽहमागतः ।
सहसा युवयोः स्नेहात्सखित्वमनुपालयन् ॥ ५२ ॥
मोक्षितौ च महाघोरादस्मात्सायकबन्धनात् ।
अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि ॥ ५३ ॥
प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः ।
शूराणां शुद्धभावानां भवतामार्जवं बलम् ॥ ५४ ॥
तन्न विश्वसितव्यं वो राक्षसानां रणाजिरे ।
एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥ ५५ ॥
एवमुक्त्वा ततो रामं सुपर्णः सुमहाबलः ।
परिष्वज्य सुहृत्स्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ५६ ॥
सखे राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल ।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि गमिष्यामि यथागतम् ॥ ५७ ॥

न च कौतूहलं कार्यं सखित्वं प्रति राघव ।
कृतकर्मा रणे वीर सखित्वमनुवेत्स्यसि ॥ ५८ ॥
बालवृद्धावशेषां तु लङ्कां कृत्वा शरोर्मिभिः ।
रावणं च रिपुं हत्वा सीतां समुपलप्स्यसे ॥ ५९ ॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं सुपर्णः शीघ्रविक्रमः ।
रामं च विरुजं कृत्वा मध्ये तेषां वनौकसाम् ॥ ६० ॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा परिष्वज्य च वीर्यवान् ।
जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा ॥ ६१ ॥
विरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः ।
सिंहनादांस्तदा नेदुर्लाङ्गूलान्दुधुवुश्च ते ॥ ६२ ॥
ततो भेरीः समाजघ्नुर्मृदङ्गांश्चाप्यनादयन् ।
दध्मुः शङ्खान्संप्रहृष्टाः क्ष्वेलन्त्यपि यथापुरम् ॥ ६३ ॥
आस्फोट्यास्फोट्य विक्रान्ता वानरा नगयोधिनः ।
द्रुमानुत्पाट्य विविधांस्तस्थुः शतसहस्रशः ॥ ६४ ॥
विसृजन्तो महानादांस्त्रासयन्तो निशाचरान् ।
लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुर्योद्धुकामाः प्लवङ्गमाः ॥ ६५ ॥
ततस्तु भीमस्तुमुलो निनादो बभूव शाखामृगयूथपानाम् ।
क्षये निदाघस्य यथा घनानां नादः सुभीमो नदतां निशीथे ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16665 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 1990

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे एकविंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥

[पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे द्वाविंशति दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे द्वाविंशेऽह्नि युद्धकाण्डे एकपञ्चाशसर्गमारभ्य सप्ततितमसर्गपर्यन्तं (16666–17916 श्लोकाः) गीतम्। तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाश्च 1251.]

## एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

### धूम्राक्षनिर्गमः ॥

तेषां सुतुमुलं शब्दं वानराणां महौजसाम् ।
नदतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः ॥ १ ॥

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं श्रुत्वा स निनदं भृशम् ।
सचिवानां ततस्तेषां मध्ये वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

यथाऽसौ संप्रहृष्टानां वानराणां समुत्थितः ।
बहूनां सुमहानादो मेघानामिव गर्जताम् ॥ ३ ॥

व्यक्तं सुमहती प्रीतिरेतेषां नात्र संशयः ॥ ४ ॥

तथा हि विपुलैर्नादैश्चुक्षुभे वरुणालयः ॥ ५ ॥

तौ तु बद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अयं च सुमहान्नादः शङ्कां जनयतीव मे ॥ ६ ॥

एतत्तु वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः ।
उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः ॥ ७ ॥

ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां वनचारिणाम् ।
शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम् ॥ ८ ॥

तथोक्तास्तेन संभ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य ते ।
ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना ॥ ९ ॥

तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ ।
समुत्थितौ महाभागौ विषेदुः प्रेक्ष्य राक्षसाः ॥ १० ॥

संत्रस्तहृदयाः सर्वे प्राकारादवरुह्य ते ।
विषण्णवदना घोरा राक्षसेन्द्रमुपस्थिताः ॥ ११ ॥

तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य निशाचराः ।
कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥ १२ ॥

यौ ताविन्द्रजिता युद्धे भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
निबद्धौ शरबन्धेन निष्प्रकम्पभुजौ कृतौ ॥ १३ ॥

विमुक्तौ शरबन्धेन तौ दृश्येते रणाजिरे ।
पाशानिव गजौ छित्त्वा गजेन्द्रसमविक्रमौ ॥ १४ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः ।
चिन्ताशोकसमाक्रान्तो विषण्णवदनोऽब्रवीत् ॥ १५ ॥

घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौ शरैराशीविषोपमैः ।
अमोघैः सूर्यसङ्काशैः प्रमथ्येन्द्रजिता युधि ॥ १६ ॥

तदस्त्रबन्धमासाद्य यदि मुक्तौ रिपू मम ।
संशयस्थमिदं सर्वमनुपश्याम्यहं बलम् ॥ १७ ॥

निष्फलाः खलु संवृत्ताः शरा वासुकितेजसः ।
आदत्तं यैस्सुसङ्ग्रामे रिपूणां मम जीवितम् ॥ १८ ॥

एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धो निश्वसन्नुरगो यथा ।
अब्रवीद्रक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम् ॥ १९ ॥
बलेन महता युक्तो रक्षसां भीमविक्रम ।
त्वं वधायाभिनिर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥ २० ॥
एवमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसेन्द्रेण धीमता ।
कृत्वा प्रणामं संहृष्टो निर्जगाम नृपालयात् ॥ २१ ॥
अभिनिष्क्रम्य तद्द्वारं बलाध्यक्षमुवाच ह ।
त्वरयस्व बलं तूर्णं किं चिरेण युयुत्सतः ॥ २२ ॥
धूम्राक्षवचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो बलानुगः ।
बलमुद्योजयामास रावणस्याज्ञया द्रुतम् ॥ २३ ॥
ते बद्धघण्टा बलिनो घोररूपा निशाचराः ।
विगर्जमानाः संहृष्टा धूम्राक्षं पर्यवारयन् ॥ २४ ॥
विविधायुधहस्ताश्च शूलमुद्गरपाणयः ॥ २५ ॥
गदाभिः पट्टिशैर्दण्डैरायसैर्मुसलैर्भृशम् ।
परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः प्रासैः परश्वधैः ॥ २६ ॥
निर्ययू राक्षसा दिग्भ्यो नर्दन्तो जलदा यथा ॥ २७ ॥
रथैः कवचिनस्त्वन्ये ध्वजैश्च समलङ्कृतैः ।
सुवर्णजालविहितैः खरैश्च विविधाननैः ॥ २८ ॥
हयैः परमशीघ्रैश्च गजेन्द्रैश्च मदोत्कटैः ।
निर्ययू राक्षसव्याघ्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥ २९ ॥
वृकसिंहमुखैर्युक्तं खरैः कनकभूषणैः ।
आरुरोह रथं दिव्यं धूम्राक्षः खरनिस्वनः ॥ ३० ॥

स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः ।
हसन्वै पश्चिमद्वाराद्धनुमान्यत्र तिष्ठति ॥ ३१ ॥
रथप्रवरमास्थाय खरयुक्तं खरस्वनम् ॥ ३२ ॥

प्रयान्तं तु महाघोरं राक्षसं भीमदर्शनम् ।
अन्तरिक्षगता घोराः शकुनाः प्रत्यषेधयन् ॥ ३३ ॥

रथशीर्षे महान्भीमो गृध्रश्च निपपात ह ।
ध्वजाग्रे ग्रथिताश्चैव निपेतुः कुणपाशनाः ॥ ३४ ॥

रुधिरार्द्रो महाञ्छ्वेतः कबन्धः पतितो भुवि ।
विस्वरं चोत्सृजन्नादं धूम्राक्षस्य समीपतः ॥ ३५ ॥

ववर्ष रुधिरं देवः सञ्चचाल च मेदिनी ।
प्रतिलोमं ववौ वायुर्निर्घातसमनिस्वनः ॥ ३६ ॥

तिमिरौघावृतास्तत्र दिशश्च न चकाशिरे ॥ ३७ ॥

स तूत्पातांस्तदा दृष्ट्वा राक्षसानां भयावहान् ।
प्रादुर्भूतान्सुघोरांश्च धूम्राक्षो व्यथितोऽभवत् ॥ ३८ ॥
मुमुहू राक्षसाः सर्वे धूम्राक्षस्य पुरःसराः ॥ ३९ ॥
ततः सुभीमो बहुभिर्निशाचरैर्वृतोऽभिनिष्क्रम्य रणोत्सुकोबली।
ददर्श तां राघवबाहुपालितां समुद्रकल्पां बहुवानरीं चमूम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16705 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2030

## द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

### धूम्राक्षवधः ॥

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम् ।
विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

तेषां सुतुमुलं युद्धं सञ्जज्ञे हरिरक्षसाम् ।
अन्योन्यं पादपैर्घोरं निघ्नतां शूलमुद्गरैः ॥ २ ॥

घोरैश्च परिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापि संहतैः ।
राक्षसैर्वानरा घोरैर्विनिकृत्ताः समन्ततः ॥ ३ ॥

वानरै राक्षसाश्चापि द्रुमैर्भूमौ समीकृताः ।
राक्षसाश्चापि संक्रुद्धा वानरान्निशितैः शरैः ॥ ४ ॥

विव्यधुर्घोरसङ्काशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ५ ॥

ते गदाभिश्च भीमाभिः पट्टिशैः कूटमुद्गरैः ।
विदार्यमाणा रक्षोभिर्वानरास्ते महाबलाः ॥ ६ ॥

अमर्षाज्जनितोद्धर्षाश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ७ ॥

शरनिर्भिन्नगात्रास्ते शूलनिर्भिन्नदेहिनः ।
जगृहुस्ते द्रुमांस्तत्र शिलाश्च हरियूथपाः ॥ ८ ॥

ते भीमवेगा हरयो नर्दमानास्ततस्ततः ।
ममन्थू राक्षसान्भीमान्नामानि च बभाषिरे ॥ ९ ॥

तद्बभूवाद्भुतं घोरं युद्धं वानररक्षसाम् ।
शिलाभिर्विविधाभिश्च बहुभिश्चैव पादपैः ॥ १० ॥

राक्षसा मथिताः केचिद्वानरैर्जितकाशिभिः ।
प्रवेमू रुधिरं केचिन्मुखै रुधिरभोजनाः ॥ ११ ॥
पार्श्वेषु दारिताः केचित्केचिद्राशीकृता द्रुमैः ।
शिलाभिश्चूर्णिताः केचित्केचिद्दन्तैर्विदारिताः ॥ १२ ॥
ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैः खरैश्च विनिपातितैः ।
रथैर्विध्वंसितैश्चापि पतितै रजनीचरैः ॥ १३ ॥
गजेन्द्रैः पर्वताकारैः पर्वताग्रैर्वनौकसाम् ।
मथितैर्वाजिभिः कीर्णं सारोहैर्वसुधातलम् ॥ १४ ॥
वानरैर्भीमविक्रान्तैराप्लुत्याप्लुत्य वेगितैः ।
राक्षसाः करजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषु विनिकर्तिताः ॥ १५ ॥
विवर्णवदना भूयो विप्रकीर्णशिरोरुहाः ।
मूढाः शोणितगन्धेन निपेतुर्धरणीतले ॥ १६ ॥
अन्ये परमसंक्रुद्धा राक्षसा भीमनिस्वनाः ।
तलैरेवाभिधावन्ति वज्रस्पर्शसमैर्हरीन् ॥ १७ ॥
वानरैरापतन्तस्ते वेगिता वेगवत्तरैः ।
मुष्टिभिश्चरणैर्दन्तैः पादपैश्चावपोथिताः ॥ १८ ॥
वानरैर्हन्यमानास्ते राक्षसा विप्रदुद्रुवुः ॥ १९ ॥
सैन्यं तु विद्रुतं दृष्ट्वा धूम्राक्षो राक्षसर्षभः ।
क्रोधेन कदनं चक्रे वानराणां युयुत्सताम् ॥ २० ॥
प्रासैः प्रमथिताः केचिद्वानराः शोणितस्रवाः ।
मुद्गरैराहताः केचित्पतिता धरणीतले ॥ २१ ॥

परिघैर्मथिताः केचिद्भिन्दिपालैर्विदारिताः ।
पट्टिशैराहताः केचिद्विह्वलन्तो गतासवः ॥ २२ ॥
केचिद्विनिहताः शूलै रुधिरार्द्रा वनौकसः ।
केचिद्विद्राविता नष्टाः सबलै राक्षसैर्युधि ॥ २३ ॥
विभिन्नहृदयाः केचिदेकपार्श्वेन दारिताः ।
विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदान्त्रैर्विनिःसृताः ॥ २४ ॥
तत्सुभीमं महायुद्धं हरिराक्षससङ्कुलम् ।
प्रबभौ शब्दबहुलं शिलापादपसङ्कुलम् ॥ २५ ॥
धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम् ।
मन्दस्तनितसङ्गीतं युद्धगान्धर्वमाबभौ ॥ २६ ॥
धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानराणमूर्धनि ।
हसन्विद्रावयामास दिशस्तु शरवृष्टिभिः ॥ २७ ॥
धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं दृश्य मारुतिः ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥ २८ ॥
क्रोधाद्द्विगुणताम्राक्षः पितृतुल्यपराक्रमः ।
शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥ २९ ॥
आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य संभ्रमात् ।
रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥ ३० ॥
सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि ।
सचक्रकूबरं साश्वं सध्वजं सशरासनम् ॥ ३१ ॥
स भङ्क्त्वा तु रथं तस्य हनुमान्मारुतात्मजः ।
रक्षसां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥ ३२ ॥

विभिन्नशिरसो भूत्वा राक्षसाः शोणितोक्षिताः ।
द्रुमैः प्रव्यथिताश्चान्ये निपेतुर्धरणीतले ॥ ३३ ॥

विद्राव्य राक्षसं सैन्यं हनुमान्मारुतात्मजः ।
गिरेः शिखरमादाय धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥ ३४ ॥

तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
विनर्दमानः सहसा हनुमन्तमभिद्रवत् ॥ ३५ ॥

ततः क्रुद्धस्तु वेगेन गदां तां बहुकण्टकाम् ।
पातयामास धूम्राक्षो मस्तके तु हनूमतः ॥ ३६ ॥

ताडितः स तया तत्र गदया भीमरूपया ॥ ३७ ॥

स कपिर्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् ।
धूम्राक्षस्य शिरोमध्ये गिरिशृङ्गमपातयत् ॥ ३८ ॥

स विह्वलितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः ।
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः ॥ ३९ ॥

धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचराः ।
त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥ ४० ॥

स तु पवनसुतो निहत्य शत्रुं क्षतजवहाः सरितश्च संनिकीर्य ।
रिपुवधजनितश्रमो महात्मा मुदमगमत्कपिभिः सुपूज्यमानः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16746 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2071

## त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

### वज्रदंष्ट्रयुद्धम् ॥

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निश्वसन्नुरगो यथा ॥ १ ॥

दीर्घमुष्णं विनिश्वस्य क्रोधेन कलुषीकृतः ।
अब्रवीद्राक्षसं शूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम् ॥ २ ॥

गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः ।
जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह ॥ ३ ॥

तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः ।
निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः ॥ ४ ॥

नागैरश्वैः खरैरुष्ट्रैः संयुक्तः सुसमाहितः ।
पताकाध्वजचित्रैश्च रथैश्च समलङ्कृतः ॥ ५ ॥

ततो विचित्रकेयूरमकुटैश्च विभूषितः ।
तनुत्राणि च संरुद्ध्य सधनुर्निर्ययो द्रुतम् ॥ ६ ॥

पताकालङ्कृतं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
रथं प्रदक्षिणं कृत्वा समारोहच्चमूपतिः ॥ ७ ॥

यष्टिभिस्तोमरैश्चित्रैः शूलैश्च मुसलैरपि ।
भिन्दिपालैश्च पाशैश्च शक्तिभिः पट्टिशैरपि ॥ ८ ॥

खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्च निशितैश्च परश्वधैः ।
पदातयश्च निर्यान्ति विविधाः शस्त्रपाणयः ॥ ९ ॥

विचित्रवाससः सर्वे दीप्ता राक्षसपुङ्गवाः ॥ १० ॥

गजा मदोत्कटाः शूराश्चलन्त इव पर्वताः ।
ते युद्धकुशलै रूढास्तोमराङ्कुशपाणिभिः ॥ ११ ॥

अन्ये लक्षणसंयुक्ताः शूरारूढा महाबलाः ॥ १२ ॥

तद्राक्षसबलं घोरं विप्रस्थितमशोभत ।
प्रावृट्काले यथा मेघा नर्दमानाः सविद्युतः ॥ १३ ॥

निःसृता दक्षिणद्वारादङ्गदो यत्र यूथपः ।
तेषां निष्क्रममाणानामशुभं समजायत ॥ १४ ॥

आकाशाद्विघनात्तीव्रा उल्काश्चाभ्यपतंस्तदा ।
वमन्त्यः पावकज्वालाः शिवा घोरं ववाशिरे ॥ १५ ॥

व्याहरन्ति मृगा घोरा रक्षसां निधनं तदा ।
समापतन्तो योधास्तु प्रास्खलन्भयमोहिताः ॥ १६ ॥

एतानौत्पातिकान्दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रो महाबलः ।
धैर्यमालम्ब्य तेजस्वी निर्जगाम रणोत्सुकः ॥ १७ ॥

तांस्तु निष्क्रमतो दृष्ट्वा वानरा जितकाशिनः ।
प्रणेदुः सुमहानादान्पूरयंश्च दिशो दश ॥ १८ ॥

ततः प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह ।
घोराणां भीमरूपाणामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥ १९ ॥

निष्पतन्तो महोत्साहा भिन्नदेहशिरोधराः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा न्यपतञ्जगतीतले ॥ २० ॥

केचिदन्योन्यमासाद्य शूराः परिघपाणयः ।
चिक्षिपुर्विविधं शस्त्रं समरेष्वनिवर्तिनः ॥ २१ ॥

द्रुमाणां च शिलानां च शस्त्राणां चापि निस्वनः ।
श्रूयते सुमहांस्तत्र घोरो हृदयभेदनः ॥ २२ ॥

रथनेमिस्वनस्तत्र धनुषश्चापि निस्वनः ।
शङ्खभेरीमृदङ्गानां बभूव तुमुलः स्वनः ॥ २३ ॥

केचिदस्त्राणि संसृज्य बाहुयुद्धमकुर्वत ॥ २४ ॥
तलैश्च चरणैश्चापि मुष्टिभिश्च द्रुमैरपि ।
जानुभिश्च हताः केचिद्भिन्नदेहाश्च राक्षसाः ॥ २५ ॥
शिलाभिश्चूर्णिताः केचिद्वानरैर्युद्धदुर्मदैः ॥ २६ ॥

वज्रदंष्ट्रो भृशं बाणै रणे वित्रासयन्हरीन् ।
चचार लोकसंहारे पाशहस्त इवान्तकः ॥ २७ ॥

बलवन्तोऽस्त्रविदुषो नानाप्रहरणा रणे ।
जघ्नुर्वानरसैन्यानि राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ २८ ॥

निघ्नतो राक्षसान्दृष्ट्वा सर्वान्वालिसुतो रणे ।
क्रोधेन द्विगुणाविष्टः संवर्तक इवानलः ॥ २९ ॥

तान्राक्षसगणान्सर्वान्वृक्षमुद्यम्य वीर्यवान् ।
अङ्गदः क्रोधताम्राक्षः सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३० ॥

चकार कदनं घोरं शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ३१ ॥

अङ्गदाभिहतास्तत्र राक्षसा भीमविक्रमाः ।
विभिन्नशिरसः पेतुर्विकृत्ता इव पादपाः ॥ ३२ ॥

रथैरश्वैर्ध्वजैश्चित्रैः शरीरैर्हरिरक्षसाम् ।
रुधिरेण च सञ्छन्ना भूमिर्भयकरी तदा ॥ ३३ ॥

हारकेयूरवस्त्रैश्च शस्त्रैश्च समलङ्कृता ।
भूमिर्भाति रणे तत्र शारदीव यथा निशा ॥ ३४ ॥

अङ्गदस्य च वेगेन तद्राक्षसबलं महत् ।
प्राकम्पत तदा तत्र पवनेनाम्बुदो यथा ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16781 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2106

## चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

### वज्रदंष्ट्रवधः ॥

बलस्य च निघातेन अङ्गदस्य जयेन च ।
राक्षसः क्रोधमाविष्टो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ॥ १ ॥

स विस्फार्य धनुर्घोरं शक्राशनिसमस्वनम् ।
वानराणामनीकानि प्राकिरच्छरवृष्टिभिः ॥ २ ॥

राक्षसाश्चापि मुख्यास्ते रथेषु समवस्थिताः ।
नानाप्रहरणाः शूराः प्रायुध्यन्त तदा रणे ॥ ३ ॥

वानराणां तु शूरो ये सर्वे ते प्लवगर्षभाः ।
आयुध्यन्त शिलाहस्ताः समवेताः समन्ततः ॥ ४ ॥

तत्रायुधसहस्राणि तस्मिन्नायोधने भृशम् ।
राक्षसाः कपिमुख्येषु पातयांचक्रिरे तदा ॥ ५ ॥

वानराश्चापि रक्षःसु गिरीन्वृक्षान्महाशिलाः ।
प्रवीराः पातयामासुर्मत्तवारणसन्निभाः ॥ ६ ॥

शूराणां युध्यमानानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
तद्राक्षसगणानां च सुयुद्धं समवर्तत ॥ ७ ।

प्रभिन्नशिरसः केचिच्छिन्नैः पादैश्च बाहुभिः ।
शस्त्रैरर्पितदेहास्तु रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ८ ॥

हरयो राक्षसाश्चैव शेरते गां समाश्रिताः ।
कङ्कगृध्रबलैराढ्या गोमायुगणसंकुलाः ॥ ९ ॥

कबन्धानि समुत्पेतुर्भीरूणां भीषणानि वै ॥ १० ॥

भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्च भूतले ।
वानरा राक्षसाश्चापि निपेतुस्तत्र वै रणे ॥ ११ ॥

ततो वानरसैन्येन हन्यमानं निशाचरम् ।
प्राभज्यत बलं सर्वं वज्रदंष्ट्रस्य पश्यतः ॥ १२ ॥

राक्षसान्भयवित्रस्तान्हन्यमानान्प्लवङ्गमैः ।
दृष्ट्वा स रोषताम्राक्षो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥ १३ ।

प्रविवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन्हरिवाहिनीम् ।
शरैर्विदारयामास कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ १४ ॥

बिभेद वानरांस्तत्र सप्ताष्टौ नव पञ्च च ।
विव्याध परमक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥ १५ ॥

त्रस्ताः सर्वे हरिगणाः शरैः संकृत्तदेहिनः ।
अङ्गदं संप्रधावन्ति प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ १६ ॥

ततो हरिगणान्भग्नान्दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा ।
क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत ॥ १७ ॥

वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ सङ्गतौ हरिराक्षसौ ।
चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव ॥ १८ ॥

ततः शरसहस्रेण वालिपुत्रं महाबलः ।
जघान मर्मदेशेषु मातङ्गमिव तोमरैः ॥ १९ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो वालिसूनुर्महाबलः ।
चिक्षेप वज्रदंष्ट्राय वृक्षं भीमपराक्रमः ॥ २० ॥

दृष्ट्वा पतन्तं तं वृक्षमसंभ्रान्तश्च राक्षसः ।
चिच्छेद बहुधा सोऽपि निकृत्तः पतितो भुवि ॥ २१ ॥

तं दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रस्य विक्रमं प्लवगर्षभः ।
प्रगृह्य विपुलं शैलं चिक्षेप च ननाद च ॥ २२ ॥

समापतन्तं तं दृष्ट्वा रथादाप्लुत्य वीर्यवान् ।
गदापाणिरसंभ्रान्तः पृथिव्यां समतिष्ठत ॥ २३ ॥

साऽङ्गदेन गदाऽऽक्षिप्ता गत्वा तु रणमूर्धनि ।
सचक्रकूबरं साश्वं प्रममाथ रथं तदा ॥ २४ ॥

ततोऽन्यं गिरिमाक्षिप्य विपुलं द्रुमभूषितम् ।
वज्रदंष्ट्रस्य शिरसि पातयामास सोऽङ्गदः ॥ २५ ॥

अभवच्छोणितोद्गारी वज्रदंष्ट्रः स मूर्च्छितः ।
मुहूर्तमभवन्मूढो गदामालिङ्ग्य निश्वसन् ॥ २६ ॥

स लब्धसंज्ञो गदया वालिपुत्रमवस्थितम् ।
जघान परमक्रुद्धो वक्षोदेशे निशाचरः ॥ २७ ॥

गदां त्यक्त्वा ततस्तत्र मुष्टियुद्धमवर्तत ।
अन्योन्यं जघ्नतुस्तत्र तावुभौ हरिराक्षसौ ॥ २८ ॥

रुधिरोद्गारिणौ तौ तु प्रहारैर्जनितश्रमौ ।
बभूवतुः सुविक्रान्तावङ्गारकबुधाविव ॥ २९ ॥

ततः परमतेजस्वी अङ्गदः कपिकुञ्जरः ।
उत्पाट्य वृक्षं स्थितवान्बहुपुष्पफलान्वितम् ॥ ३० ॥

जग्राह चार्षभं चर्म खड्गं च विपुलं शुभम् ।
किङ्किणीजालसंछन्नं चर्मणा च परिष्कृतम् ॥ ३१ ॥

वज्रदंष्ट्रोऽथ जग्राह सोऽङ्गदोऽप्यसिचर्मणी ॥ ३२ ॥

विचित्रांश्चेरतुर्मार्गान्रुषितौ कपिराक्षसौ ।
जघ्नतुश्च तदाऽन्योन्यं निर्दयं जयकाङ्क्षिणौ ॥ ३३ ॥

व्रणैः सास्रैरशोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ ।
युध्यमानौ परिश्रान्तौ जानुभ्यामवनीं गतौ ॥ ३४ ॥

निमेषान्तरमात्रेण अङ्गदः कपिकुञ्जरः ।
उदतिष्ठत दीप्ताक्षो दण्डाहत इवोरगः ॥ ३५ ॥

निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य महच्छिरः ।
जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः ॥ ३६ ॥

रुधिरोक्षितगात्रस्य बभूव पतितं द्विधा ।
सरोषपरिवृत्ताक्षं शुभं खड्गहतं शिरः ॥ ३७ ॥

वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः ।
त्रस्ताः प्रत्यपतल्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥ ३८ ॥

विषण्णवदना दीना ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखाः ॥ ३९ ॥

निहत्य तं वज्रधरप्रभावः
स वालिसूनुः कपिसैन्यमध्ये ।
जगाम हर्षं महितो महाबलः
सहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16821 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2146

## पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

### अकम्पनयुद्धम् ॥

वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा वालिपुत्रेण रावणः ।
बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमवस्थितम् ॥ १ ॥

शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रप्रकोविदम् ॥ २ ॥

एष शास्ता च गोप्ता च नेता च युधि संमतः ।
भूतिकामश्च मे नित्यं नित्यं च समरप्रियः ॥ ३ ॥

एष जेष्यति काकुत्स्थौ सुग्रीवं च महाबलम् ।
वानरांश्चापरान्घोरान्हनिष्यति परन्तपः ॥ ४ ॥

परिगृह्य स तामाज्ञां रावणस्य महाबलः ।
बलं सन्त्वारयामास तदा लघुपराक्रमः ॥ ५ ॥

ततो नानाप्रहरणा भीमाक्षा भीमदर्शनाः ।
निष्पेतू रक्षसां मुख्या बलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥ ६ ॥

रथमास्थाय विपुलं तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
मेघाभो मेघवर्णश्च मेघस्वनमहास्वनः ॥ ७ ॥

राक्षसैः संवृतो भीमैस्तदा निर्यात्यकम्पनः ॥ ८ ॥

न हि कम्पयितुं शक्य सुरैरपि महामृधे ।
अकम्पनस्ततस्तेषामादित्य इव तेजसा ॥ ९ ॥

तस्य निर्धावमानस्य संरब्धस्य युयुत्सया ।
अकस्माद्दैन्यमागच्छद्धयानां रथवाहिनाम् ॥ १० ॥

व्यस्फुरन्नयनं चास्य सव्यं युद्धाभिनन्दिनः ।
विवर्णो मुखवर्णश्च गद्गदश्चाभवत्स्वनः ॥ ११ ॥

अभवत्सुदिने काले दुर्दिनं रूक्षमारुतम् ।
ऊचुः खगा मृगाः सर्वे वाचः क्रूरा भयावहाः ॥ १२ ॥

स सिंहोपचितस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ।
तानुत्पातानचिन्त्यैव निर्जगाम रणाजिरम् ॥ १३ ॥

तदा निर्गच्छतस्तस्य रक्षसः सह राक्षसैः ।
बभूव सुमहान्नादः क्षोभयन्निव सागरम् ॥ १४ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता वानराणां महाचमूः ।
द्रुमशैलप्रहरणा योद्धुं समवतिष्ठत ॥ १५ ॥

तेषां युद्धं महारौद्रं सञ्जज्ञे हरिरक्षसाम् ।
रामरावणयोरर्थे समभित्यक्तजीविनाम् ॥ १६ ॥

सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसन्निभाः ।
हरयो राक्षसाश्चैव परस्परजिघांसवः ॥ १७ ॥

तेषां विनर्दतां शब्दः संयुगेऽतितरस्विनाम् ।
शुश्रुवे सुमहान्क्रोधादन्योन्यमभिगर्जताम् ॥ १८ ॥

रजश्चारुणवर्णाभं सुभीममभवद्भृशम् ।
उद्धूतं हरिरक्षोभिः संरुरोध दिशो दश ॥ १९ ॥

अन्योन्यं रजसा तेन कौशेयोद्धूतपाण्डुना ।
संवृतानि च भूतानि ददृशुर्न रणाजिरे ॥ २० ॥

न ध्वजा न पताका वा चर्म वा तुरगोऽपि वा ।
आयुधं स्यन्दनं वाऽपि ददृशे तेन रेणुना ॥ २१ ॥

शब्दश्च सुमहांस्तेषां नर्दतामभिधावताम् ।
श्रूयते तुमुले युद्धे न रूपाणि चकाशिरे ॥ २२ ॥

हरीनेव सुसंक्रुद्धा हरयो जघ्नुराहवे ।
राक्षसाश्चापि रक्षांसि निजघ्नुस्तिमिरे तदा ॥ २३ ॥

परांश्चैव विनिघ्नन्तः स्वांश्च वानरराक्षसाः ।
रुधिरार्द्रां तदा चक्रुर्महीं पङ्कानुलेपनाम् ॥ २४ ॥

ततस्तु रुधिरौघेण सिक्तं व्यपगतं रजः ।
शरीरशवसङ्कीर्णा बभूव च वसुन्धरा ॥ २५ ॥

द्रुमशक्तिशिलाप्रासैर्गदापरिघतोमरैः ।
हरयो राक्षसाश्चैव जघ्नुरन्योन्यमोजसा ॥ २६ ॥

बाहुभिः परिघाकारैर्युध्यन्तः पर्वतोपमाः ।
हरयो भीमकर्माणो राक्षसाञ्जघ्नुराहवे ॥ २७ ॥

राक्षसास्त्वपि संक्रुद्धाः प्रासतोमरपाणयः ।
कपीन्निजघ्निरे तत्र शस्त्रैः परमदारुणैः ॥ २८ ॥

अकम्पनः सुसंक्रुद्धो राक्षसानां चमूपतिः ।
संहर्षयति तान्सर्वान्राक्षसान्भीमविक्रमान् ॥ २९ ॥

हरयस्त्वपि रक्षांसि महाद्रुममहाश्मभिः ।
विदारयन्त्यभिक्रम्य शस्त्राण्याच्छिद्य वीर्यतः ॥ ३० ॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः ।
मैन्दश्च द्विविदः क्रुद्धाश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् ॥ ३१ ॥
ते तु वृक्षैर्महावेगा राक्षसानां चमूमुखे ।
कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया हरियूथपाः ॥ ३२ ॥
ममन्थू राक्षसान्सर्वे वानरा गणशो भृशम् ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16854 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2179

## षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

अकम्पनवधः ॥

तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म कृतं वानरसत्तमैः ।
क्रोधमाहारयामास युधि तीव्रमकम्पनः ॥ १ ॥
क्रोधमूर्च्छितरूपस्तु धून्वन्परमकार्मुकम् ।
दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
तत्रैव तावत्त्वरितं रथं प्रापय सारथे ।
यत्रैते बहवो घ्नन्ति सुबहून्राक्षसान्रणे ॥ ३ ॥
एतेऽत्र बलवन्तो हि भीमकायाश्च वानराः ।
द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठन्ति प्रमुखे मम ॥ ४ ॥

एतान्निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम् ।
एतैः प्रमथितं सर्वं दृश्यते राक्षसं बलम् ॥ ५ ॥

ततः प्रजवनाश्वेन रथेन रथिनां वरः ।
हरीनभ्यहनत्क्रोधाच्छरजालैरकम्पनः ॥ ६ ॥

न स्थातुं वानराः शेकुः किं पुनर्योद्धुमाहवे ।
अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्व एव विदुद्रुवुः ॥ ७ ॥

तान्मृत्युवशमापन्नानकम्पनवशं गतान् ।
समीक्ष्य हनुमान् ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः ॥ ८ ॥

तं महाप्लवगं दृष्ट्वा सर्वे प्लवगयूथपाः ।
समेत्य समरे वीराः संहृष्टाः पर्यवारयन् ॥ ९ ॥

अवस्थितं हनूमन्तं ते दृष्ट्वा हरियूथपाः ।
बभूवुर्बलवन्तो हि बलवन्तमुपाश्रिताः ॥ १० ॥

अकम्पनस्तु शैलाभं हनूमन्तमवस्थितम् ।
महेन्द्र इव धाराभिः शरैरभिववर्ष ह ॥ ११ ॥

अचिन्तयित्वा बाणौघाञ्छरीरे पतिताञ्छितान् ।
अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः ॥ १२ ॥

स प्रसह्य महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः ।
अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १३ ॥

तस्याभिनर्दमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा ।
बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥ १४ ॥

आत्मानमप्रहरणं ज्ञात्वा क्रोधसमन्वितः ।
शैलमुत्पाटयामास वेगेन हरिपुङ्गवः ॥ १५ ॥

तं गृहीत्वा महाशैलं पाणिनैकेन मारुतिः ।
स विनद्य महानादं भ्रामयामास वीर्यवान् ॥ १६ ॥

ततस्तमभिदुद्राव राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
पुरा हि नमुचिं संख्ये वज्रेणेव पुरन्दरः ॥ १७ ॥

अकम्पनस्तु तद्दृष्ट्वा गिरिशृङ्गं समुद्यतम् ।
दूरादेव महाबाणैरर्धचन्द्रैर्व्यदारयत् ॥ १८ ॥

तत्पर्वताग्रमाकाशे रक्षोबाणविदारितम् ।
विशीर्णं पतितं दृष्ट्वा हनुमान्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १९ ॥

सोऽश्वकर्णं समासाद्य रोषदर्पान्वितो हरिः ।
तूर्णमुत्पाटयामास महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ २० ॥

तं गृहीत्वा महास्कन्धं सोऽश्वकर्णं महाद्युतिः ।
प्रहस्य परया प्रीत्या भ्रामयामास संयुगे ॥ २१ ॥

प्रधावन्नूरुवेगेन प्रभञ्जंस्तरसा द्रुमान् ।
हनुमान्परमक्रुद्धश्चरणैर्दारयत्क्षितिम् ॥ २२ ॥

गजांश्च सगजारोहान्सरथान्रथिनस्तथा ।
जघान हनुमान्धीमान्राक्षसांश्च पदातिगान् ॥ २३ ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं समरे प्राणहारिणम् ।
हनुमन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसा विप्रदुद्रुवुः ॥ २४ ॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् ।
ददर्शाकम्पनो वीरश्चुक्रोध च ननाद च ॥ २५ ॥

स चतुर्दशभिर्बाणैः शितैर्देहविदारणैः ।
निर्बिभेद हनूमन्तं महावीर्यमकम्पनः ॥ २६ ॥

स तदा प्रतिविद्धस्तु बह्वीभिः शरवृष्टिभिः ।
हनूमन्ददृशे वीरः प्ररूढ इव सानुमान् ॥ २७ ॥

विरराज महाकायो महावीर्यो महामनाः ।
पुष्पिताशोकसङ्काशो विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥

ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम् ।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥ २९ ॥

स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना ।
राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ॥ ३० ॥

तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
व्यथिता राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव द्रुमाः ॥ ३१ ॥

त्यक्तप्रहरणाः सर्वे राक्षसास्ते पराजिताः ।
लङ्कामभिययुस्त्रस्ता वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥ ३२ ॥

ते मुक्तकेशाः संभ्रान्ता भग्नमानाः पराजिताः ।
स्रवच्छ्रमजलैरङ्गैः श्वसन्तो विप्रदुद्रुवुः ॥ ३३ ॥

अन्योन्यं प्रममन्थुस्ते विविशुर्नगरं भयात् ।
पृष्ठतस्ते सुसंमूढाः प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥

तेषु लङ्कां प्रविष्टेषु राक्षसेषु महाबलाः ।
समेत्य हरयः सर्वे हनुमन्तमपूजयन् ॥ ३५ ॥

सोऽपि प्रहृष्टस्तान्सर्वान्हरीन्प्रत्यभ्यपूजयत् ।
हनुमान्सत्त्वसंपन्नो यथार्हमनुकूलतः ॥ ३६ ॥

विनेदुश्च यथाप्राणं हरयो जितकाशिनः ।
चकर्षुश्च पुनस्तत्र सप्राणानपि राक्षसान् ॥ ३७ ॥

स वीरशोभामभजन्महाकपिः
समेत्य रक्षांसि निहत्य मारुतिः ।
महासुरं भीममित्रनाशनं
यथैव विष्णुर्बलिनं चमूमुखे ॥ ३८ ॥

अपूजयन्देवगणास्तदा कपिं
स्वयं च रामोऽतिबलश्च लक्ष्मणः ।
तथैव सुग्रीवमुखाः प्लवङ्गमा
विभीषणश्चैव महाबलस्तथा ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकः 16893 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2218

## सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

### प्रहस्तयुद्धम्

अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः ।
किंचिद्दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत ॥ १ ॥

स तु ध्यात्वा मुहूर्तं तु मन्त्रिभिः संविचार्य च ।
ततस्तु रावणः पूर्वदिवसे राक्षसाधिपः ॥ २ ॥

पुरीं परिययौ लङ्कां सर्वान्गुल्मानवेक्षितुम् ॥ ३ ॥

तां राक्षसगणैर्गुप्तां गुल्मैर्बहुभिरावृताम् ।
ददर्श नगरीं लङ्कां पताकाध्वजमालिनीम् ॥ ४ ॥

रुद्धां तु नगरीं दृष्ट्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
उवाचामर्षतः काले प्रहस्तं युद्धकोविदम् ॥ ५ ॥

पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य वा ।
नान्यं युद्धात्प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारद ॥ ६ ॥

अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम ।
इन्द्रजिद्वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥ ७ ॥

स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च ।
विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ॥ ८ ॥

निर्याणादेव ते नूनं चपला हरिवाहिनी ।
नर्दतां राक्षसेन्द्राणां श्रुत्वा नादं द्रविष्यति ॥ ९ ॥

चपला ह्यविनीताश्च चलचित्ताश्च वानराः ।
न सहिष्यन्ति ते नादं सिंहनादमिव द्विपाः ॥ १० ॥

विद्रुते च बले तस्मिन्रामः सौमित्रिणा सह ।
अवशस्ते निरालम्बः प्रहस्त वशमेष्यति ॥ ११ ॥

आपत्संशयिता श्रेयो न तु निःसंशयींकृता ।
प्रतिलोमानुलोमं वा यद्वा नो मन्यसे हितम् ॥ १२ ॥

रावणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
राक्षसेन्द्रमुवाचेदमसुरेन्द्रमिवोशनाः ॥ १३ ॥

राजन्मन्त्रितपूर्वं नः कुशलैः सह मन्त्रिभिः ।
विवादश्चापि नो वृत्तः समवेक्ष्य परस्परम् ॥ १४ ॥

प्रदाने न तु सीतायाः श्रेयो व्यवसितं मया ।
अप्रदाने पुनर्युद्धं दृष्टमेतत्तथैव नः ॥ १५ ॥

सोऽहं दानैश्च मानैश्च सततं पूजितस्त्वया ।
सान्त्वैश्च विविधैः काले किं न कुर्यां प्रियं तव ॥ १६ ॥

न हि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि वा ।
त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थं जीवितं युधि ॥ १७ ॥

एवमुक्त्वा तु भर्तारं रावणं वाहिनीपतिः ।
उवाचेदं बलाध्यक्षान्प्रहस्तः पुरतः स्थितान् ॥ १८ ॥

समानयत मे शीघ्रं राक्षसानां महद्बलम् ॥ १९ ॥

मद्बाणशतवेगेन हतानां च रणाजिरे ।
अद्य तृप्यन्तु मांसादाः पक्षिणः काननौकसाम् ॥ २० ॥

इत्युक्तास्ते प्रहस्तेन बलाध्यक्षाः कृतत्वराः ।
बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन्राक्षसमन्दिरे ॥ २१ ॥

सा बभूव मुहूर्तेन तिग्मनानाविधायुधैः ।
लङ्का राक्षसवीरैस्तैर्गजैरिव समाकुला ॥ २२ ॥

हुताशनं तर्पयतां ब्राह्मणांश्च नमस्यताम् ।
आज्यगन्धप्रतिवहः सुरभिर्मारुतो ववौ ॥ २३ ॥

स्रजश्च विविधाकारा जगृहुस्त्वभिमन्त्रिताः ।
सङ्ग्रामसज्जाः संहृष्टा धारयन्राक्षसास्तदा ॥ २४ ॥

सधनुष्काः कवचिनो वेगातात्प्लुत्य राक्षसाः ।
रावणं प्रेक्ष्य राजानं प्रहस्तं पर्यवारयन् ॥ २५ ॥

अथामन्त्र्य च राजानं भेरीमाहत्य भैरवाम् ।
आरुरोह रथं दिव्यं प्रहस्तः सज्जकल्पितम् ॥ २६ ॥

हयैर्महाजवैर्युक्तं सम्यक्सूतसुसंयतम् ।
महाजलदनिर्घोषं साक्षाच्चन्द्रार्कभास्वरम् ॥ २७ ॥

उरगध्वजदुर्धर्षं सुवरूथं स्वपस्करम् ।
सुवर्णजालसंयुक्तं प्रहसन्तमिव श्रिया ॥ २८ ॥

ततस्तं रथमास्थाय रावणार्पितशासनः ।
लङ्काया निर्ययौ तूर्णं बलेन महता वृतः ॥ २९ ॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ।
वादित्राणां च निनदः पूरयन्निव सागरम् ॥ ३० ॥

शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च प्रयाते वाहिनीपतौ ॥ ३१ ॥

निनदन्तः स्वरान्घोरान्राक्षसा जग्मुरग्रतः ।
भीमरूपा महाकायाः प्रहस्तस्य पुरःसराः ॥ ३२ ॥

नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ।
प्रहस्तसचिवा ह्येते निर्ययुः परिवार्य तम् ॥ ३३ ॥

व्यूढेनैव सुघोरेण पूर्वद्वारात्स निर्ययौ ।
गजयूथनिकाशेन बलेन महता वृतः ॥ ३४ ॥

सागरप्रतिमौघेन वृतस्तेन बलेन सः ।
प्रहस्तो निर्ययौ तूर्णं कालान्तकयमोपमः ॥ ३५ ॥

तस्य निर्याणघोषेण राक्षसानां च नर्दताम् ।
लङ्कायां सर्वभूतानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥ ३६ ॥

व्यभ्रमाकाशमाविश्य मांसशोणितभोजनाः ।
मण्डलान्यपसव्यानि खगाश्चक्रू रथं प्रति ॥ ३७ ॥

वमन्त्यः पावकज्वालाः शिवा घोरं ववाशिरे ।
अन्तरीक्षात्पपातोल्का वायुश्च परुषो ववौ ॥ ३८ ॥

अन्योन्यमभिसंरब्धा ग्रहाश्च न चकाशिरे ॥ ३९ ॥

मेघाश्च खरनिर्घोषा रथस्योपरि रक्षसः ।
ववृषू रुधिरं चास्य सिषिचुश्च पुरःसरान् ॥ ४० ॥

केतुमूर्धनि गृध्रोऽस्य निलीनो दक्षिणामुखः ।
तुदन्नुपयतः पार्श्वं समग्रामहरत्प्रभाम् ॥ ४१ ॥
सारथेर्बहुशश्चास्य संग्राममवगाहतः
प्रतोदो न्यपतद्धस्तात्सूतस्य हयसादिनः ॥ ४२ ॥
निर्याणश्रीश्च याऽस्यासीद्भास्वरा वसुदुर्लभा ।
सा ननाश मुहूर्तेन समे च स्खलिता हयाः ॥ ४३ ॥
प्रहस्तं त्वभिनिर्यान्तं प्रख्यातबलपौरुषम् ।
युधि नानाप्रहरणा कपिसेनाऽभ्यवर्तत ॥ ४४ ॥
अथ घोषः सुतमुलो हरीणां समजायत ।
वृक्षानारुजतां चैव गुर्वीरागृह्णतां शिलाः ॥ ४५ ॥
नदतां राक्षसानां च वानराणां च गर्जताम् ।
उभे प्रमुदिते सैन्ये रक्षोगणवनौकसाम् ॥ ४६ ॥
वेगितानां समर्थानामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ।
परस्परं चाह्वयतां निनादः श्रूयते महान् ॥ ४७ ॥
ततः प्रहस्तः कपिराजवाहिनी-
मभिप्रतस्थे विजयाय दुर्मतिः ।
विवृद्धवेगां च विवेश तां चमूं
यथा मुमूर्षुः शलभो विभावसुम् ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 16941 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2266

## अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

### प्रहस्तवधः

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं दृष्ट्वा भीमपराक्रमम् ।
उवाच सस्मितं रामो विभीषणमरिन्दमः ॥ १ ॥

क एष सुमहाकायो बलेन महता वृतः ।
आचक्ष्व मे महाबाहो वीर्यवन्तं निशाचरम् ॥ २ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ॥ ३ ॥

एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षसः ।
लङ्कायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः ॥ ४ ॥

वीर्यवानस्त्रविच्छूरः प्रख्यातश्च पराक्रमे ॥ ५ ॥

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं राक्षसैरभिसंवृतम् ॥ ६ ॥

ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम् ।
अतिसंजातरोषाणां प्रहस्तमभिगर्जताम् ॥ ७ ॥

खड्गशक्त्यृष्टिबाणाश्च शूलानि मुसलानि च ।
गदाश्च परिघाः प्रासा विविधाश्च परश्वधाः ॥ ८ ॥

धनूंषि च विचित्राणि राक्षसानां जयैषिणाम् ।
प्रगृहीतान्यशोभन्त वानरानभिधावताम् ॥ ९ ॥

जगृहुः पादपांश्चापि पुष्पितान्वानरर्षभाः ।
शिलाश्च विपुला दीर्घा योद्धुकामाः प्लवङ्गमाः ॥ १० ॥

तेषामन्योन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत् ।
बहूनामश्मवृष्टिं च शरवृष्टिं च वर्षताम् ॥ ११ ॥

बहवो राक्षसा युद्धे बहून्वानरयूथपान् ।
वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥ १२ ॥

शूलैः प्रमथिताः केचित्केचिच्च परमायुधैः ।
परिघैराहताः केचित्केचिच्छिन्नाः परश्वधैः ॥ १३ ॥

निरुच्छ्वासाः कृताः केचित्पतिता धरणीतले ।
विभिन्नहृदयाः केचिदिषुसन्धानसन्दिताः ॥ १४ ॥

केचिद्द्विधाकृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि ।
वानरा राक्षसैः शूलैः पार्श्वतश्चावदारिताः ॥ १५ ॥

वानरैश्चापि संक्रुद्धै राक्षसौघाः समन्ततः ।
पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च संपिष्टा वसुधातले ॥ १६ ॥

वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च हता भृशम् ।
वेमुः शोणितमास्येभ्यो विशीर्णदशनेक्षणाः ॥ १७ ॥

आर्तस्वनं च स्वनतां सिंहनादं च नर्दताम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो हरीणां रक्षसां युधि ॥ १८ ॥

वानरा राक्षसाः क्रुद्धा वीरमार्गमनुव्रताः ।
विवृत्तनयनाः क्रूराश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ १९ ॥

आर्तस्वनं च स्वनतां धावतां स्वपतां पथि ।
उत्थितान् स्वापतो दृष्ट्वा लब्धकामाः प्लवङ्गमाः ॥ २० ॥

उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि राक्षसान् प्रति दुद्रुवुः ॥ २१ ॥

नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ।
एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः ॥ २२ ॥

तेषामापततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान् ।
द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम् ॥ २३ ॥

दुर्मुखः पुनरुत्थाय कपिः सविपुलद्रुमम् ।
राक्षसं क्षिप्रहस्तस्तु समुन्नतमपोथयत् ॥ २४ ॥

जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ।
पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि ॥ २५ ॥

अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान् ।
वृक्षेणाभिहतो मूर्ध्नि प्राणान्संत्याजयद्रणे ॥ २६ ॥

अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमास्थितः ।
चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥ २७ ॥

आवर्त इव सञ्जज्ञे उभयोः सेनयोस्तदा ।
क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव निस्वनः ॥ २८ ॥

महता हि शरौघेण प्रहस्तो युद्धकोविदः ।
अर्दयामास संक्रुद्धो वानरान्परमाहवे ॥ २९ ॥

वानराणां शरीरैश्च राक्षसानां च मेदिनी ।
बभूव निचिता घोरा पतितैरिव पर्वतैः ॥ ३० ॥

सा मही रुधिरौघेण प्रच्छन्ना संप्रकाशते ।
सञ्छन्ना माधवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः ॥ ३१ ॥

हतवीरौघवप्रां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम् ।
शोणितौघमहातोयां यमसागरगामिनीम् ॥ ३२ ॥

यकृत्प्लीहमहापङ्कां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम् ।
भिन्नकायशिरोमीनामङ्गावयवशाद्वलाम् ॥ ३३ ॥

गृध्रहंसगणाकीर्णां कङ्कसारससेविताम् ।
मेदःफेनसमाकीर्णामार्तस्तनितनिस्वनाम् ॥ ३४ ॥

तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमिमयीं नदीम् ॥ ३५ ॥

नदीमिव घनापाये हंससारससेविताम् ।
राक्षसाः कपिमुख्याश्च तेरुस्तां दुस्तरां नदीम् ॥ ३६ ॥

यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः ॥ ३७ ॥

ततः सृजन्तं बाणौघान्प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम् ।
ददर्श तरसा नीलो विनिघ्नन्तं प्लवङ्गमान् ॥ ३८ ॥

उद्धूत इव वायुः खे महदभ्रबलं बलात् ।
समीक्ष्याभिद्रुतं युद्धे प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥ ३९ ॥

रथेनादित्यवर्णेन नीलमेवाभिदुद्रुवे ॥ ४० ॥

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य परमाहवे ।
नीलाय व्यसृजद्बाणान्प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥ ४१ ॥

ते प्राप्य विशिखा नीलं विनिर्भिद्य समाहिताः ।
महीं जग्मुर्महावेगा रुषिता इव पन्नगाः ॥ ४२ ॥

नीलः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः ।
स तं परमदुर्धर्षमापतन्तं महाकपिः ॥ ४३ ॥

प्रहस्तं ताडयामास वृक्षमुत्पाट्य वीर्यवान् ॥ ४४ ॥

स तेनाभिहतः क्रुद्धो नदन्राक्षसपुङ्गवः ।
ववर्ष शरवर्षाणि प्लवङ्गानां चमूपतौ ॥ ४५ ॥

तस्य बाणगणान्घोरान्राक्षसस्य महाबलः ।
अपारयन्वारयितुं प्रत्यगृह्णान्निमीलितः ॥ ४६ ॥

यथैव गोवृषो वर्षं शारदं शीघ्रमागतम् ।
एवमेव प्रहस्तस्य शरवर्षं दुरासदम् ॥ ४७ ॥

निमीलिताक्षः सहसा नीलः सेहे सुदारुणम् ॥ ४८ ॥

रोषितः शरवर्षेण सालेन महता महान् ।
प्रजघान हयान्नीलः प्रहस्तस्य मनोजवान् ॥ ४९ ॥

ततः स चापमुद्गृह्य प्रहस्तस्य महाबलः ।
बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः ॥ ५० ॥

विधनुस्तु कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुप्लुवे ॥ ५१ ॥

तावुभौ वाहिनीमुख्यौ जातवैरौ तरस्विनौ ।
स्थितौ क्षतजदिग्धाङ्गौ प्रभिन्नाविव कुञ्जरौ ॥ ५२ ॥

उल्लिखन्तौ सुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम् ।
सिंहशार्दूलसदृशौ सिंहशार्दूलचेष्टितौ ॥ ५३ ॥

विक्रान्तविजयौ वीरौ समरेष्वनिवर्तिनौ ।
काङ्क्षमाणौ यशः प्राप्तुं वृत्रवासवयोः समौ ॥ ५४ ॥

आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः ।
प्रहस्तः परमायत्तस्तस्य सुस्राव शोणितम् ॥ ५५ ॥

ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रगृह्य सुमहातरुम् ।
प्रहस्तस्योरसि क्रुद्धो विससर्ज महाकपिः ॥ ५६ ॥

तमचिन्त्य प्रहारं सः प्रगृह्य मुसलं महत् ।
अभिदुद्राव बलिनं बलान्नीलं प्लवङ्गमम् ॥ ५७ ॥

तमुग्रवेगं संरब्धमापतन्तं महाकपिः ।
ततः संप्रेक्ष्य जग्राह महावेगो महाशिलाम् ॥ ५८ ॥

तस्य युद्धाभिकामस्य मृधे मुसलयोधिनः ।
प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत् ॥ ५९ ॥

सा तेन कपिमुख्येन विमुक्ता महती शिला ।
बिभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा ॥ ६० ॥

स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः ।
पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ६१ ॥

प्रभिन्नशिरसस्तस्य बहु सुस्राव शोणितम् ।
शरीरादपि सुस्राव गिरेः प्रस्रवणं यथा ॥ ६२ ॥

हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महद्बलम् ।
रक्षसामप्रहृष्टानां लङ्कामभिजगाम ह ॥ ६३ ॥

न शेकुः समरे स्थातुं निहते वाहिनीपतौ ।
सेतुबन्धं समासाद्य विकीर्णं सलिलं यथा ॥ ६४ ॥

हते तस्मिंश्चमूमुख्ये राक्षसास्ते निरुद्यमाः ।
रक्षःपतिगृहं गत्वा ध्यानमूकत्वमास्थिताः ॥ ६५ ॥

प्राप्ताः शोकार्णवं तीव्रं निःसंज्ञा इव तेऽभवन् ॥ ६६ ॥

ततस्तु नीलो विजयी महाबलः
प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा ।
समेत्य रामेण सलक्ष्मणेन च
प्रहृष्टरूपस्तु बभूव यूथपः ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17008 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2333

## एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

रावणमकुटभङ्गः ॥

तस्मिन्हते राक्षससैन्यपाले प्लवङ्गमानामृषभेण युद्धे ।
भीमायुधं सागरतुल्यवेगं विदुद्रुवे राक्षसराजसैन्यम् ॥ २ ॥

गत्वाऽथ रक्षोधिपतेः शशंसुः सेनापतिं पावकसूनुशस्तम् ।
तच्चापि तेषां वचनं निशम्य रक्षोधिपः क्रोधवशं जगाम ॥

संख्ये प्रहस्तं निहतं निशम्य शोकार्दितः क्रोधपरीतचेताः ।
उवाच तान्नैर्ऋतयोधमुख्यानिन्द्रो यथा चामरयोधमुख्यान्॥

नावज्ञा रिपवे कार्या यैरिन्द्रबलसूदनः ।
सूदितः सैन्यपालो मे सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥ ४ ॥

सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन् ।
स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम् ॥ ५ ॥

अद्य तद्वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम् ।
निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ॥ ६ ॥

स एवमुक्त्वा ज्वलनप्रकाशं रथं तुरङ्गोत्तमराजयुक्तम् ।
प्रकाशमानं वपुषा ज्वलन्तं समारुरोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥

स शङ्खभेरीपणवप्रणादैरास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादैः ।
पुण्यैः स्तवैश्चाप्यभिपूज्यमानस्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः॥

स शैलजीमूतनिकाशरूपैर्मांसादनैः पावकदीप्तनेत्रैः ।
बभौ वृतो राक्षसराजमुख्यो भूतैर्वृतो रुद्र इवासुरेशः ॥

ततो नगर्याः सहसा महौजा निष्क्रम्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ।
महार्णवाभ्रस्तनितं ददर्श समुद्यतं पादपशैलहस्तम् ॥

तद्राक्षसानीकमतिप्रचण्डमालोक्य रामो भुजगेन्द्रबाहुः ।
विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठमुवाच सेनानुगतः पृथुश्रीः ॥

नानापताकाध्वजशस्त्रजुष्टं प्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् ।
सैन्यं गजेन्द्रोपमनागजुष्टं कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टम् ॥

ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यं विभीषणः शक्रसमानवीर्यः ।
शशंस रामस्य बलप्रवेकं महात्मनां राक्षसपुङ्गवानाम् ॥

योऽसौ गजस्कन्धगतो महात्मा नवोदितार्कोपमताम्रवक्त्रः ।
प्रकम्पयन्नागशिरोऽभ्युपैति ह्यकम्पनं त्वेनमवेहि राजन् ॥

योऽसौ रथस्थो मृगराजकेतुर्धून्वन्धनुः शक्रधनुःप्रकाशम् ।
करीव भात्युग्रविवृत्तदंष्ट्रः स इन्द्रजिन्नाम वरप्रधानः ॥

यश्चैष विन्ध्यास्तमहेन्द्रकल्पो धन्वी रथस्थोऽतिरथोऽतिवीरः ।
विस्फारयंश्चापमतुल्यमानं नाम्नाऽतिकायोऽतिविवृद्धकायः ॥

योऽसौ नवार्कोदितताम्रचक्षुरारुह्य घण्टानिनदप्रणादम् ।
गजं खरं गर्जति वै महात्मा महोदरो नाम स एष वीरः ॥

योऽसौ हयं काञ्चनचित्रभाण्डमारुह्य सन्ध्याभ्रगिरिप्रकाशम् ।
प्रासं समुद्यम्य मरीचिनद्धं पिशाच एषोऽशनितुल्यवेगः ॥

यश्चैष शूलं निशितं प्रगृह्य विद्युत्प्रभं किङ्करवज्रवेगम् ।
वृषेन्द्रमास्थाय गिरिप्रकाशमायाति योऽसौ त्रिशिरा यशस्वी ॥

असौ च जीमूतनिकाशरूपः कुम्भः पृथुव्यूढसुजातवक्षाः ।
समाहितः पन्नगराजकेतुर्विस्फारयन्भाति धनुर्विधून्वन् ॥

यश्चैष जाम्बूनदवज्रजुष्टं दीप्तं सधूमं परिघं प्रगृह्य ।
आयाति रक्षोबलकेतुभूतस्त्वसौ निकुम्भोऽद्भुतघोरकर्मा ॥

यश्चैष चापासिशरौघजुष्टं पताकिनं पावकदीप्तरूपम् ।
रथं समास्थाय विभात्युदग्रो नरान्तकोऽसौ नगशृङ्गयोधी ॥

यश्चैष नानाविधघोररूपैर्व्याघ्रोष्ट्रनागेन्द्रमृगाश्ववक्त्रैः।
भूतैर्वृतो भाति विवृत्तनेत्रैः सोऽसौ सुराणामपि दर्पहन्ता ॥

यत्रैतदिन्दुप्रतिमं विभाति छत्रं सितं सूक्ष्मशलाकमग्र्यम् ।
अत्रैष रक्षोधिपतिर्महात्मा भूतैर्वृतो रुद्र इवावभाति ॥ २४ ॥

असौ किरीटी चलकुण्डलास्यो नगेन्द्रविन्ध्योपमभीमकायः।
महेन्द्रवैवस्वतदर्पहन्ता रक्षोधिपः सूर्य इवावभाति ॥ २५ ॥

प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमरिन्दमम् ।
अहो दीप्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥

आदित्य इव दुष्प्रेक्षो रश्मिभिर्भाति रावणः ।
सुव्यक्तं लक्षये ह्यस्य रूपं तेजःसमावृतम् ॥ २७ ॥

अहो वीर्यमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः ।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणसंयुता ॥ २८ ॥

देवदानववीराणां वपुर्नैवंविधं भवेत् ।
यादृशं राक्षसेन्द्रस्य वपुरेतत्प्रकाशते ॥ २९ ॥

सर्वे पर्वतसङ्काशाः सर्वे पर्वतयोधिनः ।
सर्वे दीप्तायुधधरा योधाश्चास्य महौजसः ॥ ३० ॥

भाति राक्षसराजोऽसौ प्रदीप्तैर्भीमविक्रमैः ।
भूतैः परिवृतस्तीक्ष्णैर्देहवद्भिरिवान्तकः ॥ ३१ ॥

दिष्ट्याऽयमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः ।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसंभवम् ॥ ३२ ॥

एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान् ।
लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम् ॥ ३३ ॥

ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा रक्षांसि तान्याह महाबलानि ।
द्वारेषु चर्यागृहगोपुरेषु सुनिर्वृतास्तिष्ठत निर्विशङ्काः ॥ ३४ ॥

इहागतं मां सहितं भवद्भिर्वनौकसश्छिद्रमिदं विदित्वा ।
शून्यां पुरीं दुष्प्रसहां प्रमथ्य प्रधर्षयेयुः सहसा समेताः ॥

विसर्जयित्वा सहितांस्ततस्तान्गतेषु रक्षःसु यथानियोगम् ।
व्यदारयद्वानरसागरौघं महाझषः पूर्णमिवार्णवौघम् ॥ ३६ ॥

तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य दीप्तेषुचापं युधि राक्षसेन्द्रम् ।
महत्समुत्पाट्य महीधराग्रं दुद्राव रक्षोधिपतिं हरीशः ॥

तच्छैलशृङ्गं बहुवृक्षसानुं प्रगृह्य चिक्षेप निशाचराय ।
तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य बिभेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥

तस्मिन्प्रवृद्धोत्तमसानुवृक्षे शृङ्गे विकीर्णे पतिते पृथिव्याम् ।
महाहिकल्पं शरमन्तकाभं समाददे राक्षसलोकनाथः ॥

स तं गृहीत्वाऽनिलतुल्यवेगं सविस्फुलिङ्गज्वलनप्रकाशम् ।
बाणं महेन्द्राशनितुल्यवेगं चिक्षेप सुग्रीववधाय रुष्टः ॥ ४० ॥

स सायको रावणबाहुमुक्तः शक्राशनिप्रख्यवपुः शिताग्रः ।
सुग्रीवमासाद्य बिभेद वेगाद्गुहेरिता क्रौञ्चमिवोग्रशक्तिः ॥

स सायकार्तो विपरीतचेताः कूजन्पृथिव्यां निपपात वीरः ।
तं प्रेक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥

ततो गवाक्षो गवयः सुदंष्ट्रस्तथार्षभो ज्योतिमुखो नभश्च ।
शैलान्समुद्यम्य विवृद्धकायाः प्रदुद्रुवुस्तं प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥

तेषां प्रहारान् स चकार मोघान्रक्षोधिपो बाणगणैः शिताग्रैः।
तान्वानरेन्द्रानपि बाणजालैर्बिभेद जाम्बूनदचित्रपुङ्खैः ॥

ते वानरेन्द्रास्त्रिदशारिबाणैर्भिन्ना निपेतुर्भुवि भीमकायाः ।
ततस्तु तद्वानरसैन्यमुग्रं प्रच्छादयामास स बाणजालैः ॥

ते वध्यमानाः पतिताः प्रवीरा नानद्यमाना भयशल्यविद्धाः।
शाखामृगा रावणसायकार्ता जग्मुः शरण्यं शरणं स्म रामम् ॥

ततो महात्मा स धनुर्धनुष्मानादाय रामः सहसा जगाम ।
तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्युपेत्य उवाच वाक्यं परमार्थयुक्तम् ॥

कामामार्य सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः ।
विधमिष्याम्यहं नीचमनुजानीहि मां प्रभो ॥ ४८ ॥

तमब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ ४९ ॥

गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण संयुगे ।
रावणो हि महावीर्यो रणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ ५० ॥

त्रैलोक्येनापि संक्रुद्धो दुष्प्रसह्यो न संशयः ॥ ५१ ॥

तस्य छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च लक्षय ।
चक्षुषा धनुषा यत्नाद्रक्षात्मानं समाहितः ॥ ५२ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा परिष्वज्याभिपूज्य च ।
अभिवाद्य ततो रामं ययौ सौमित्रिराहवम् ॥ ५३ ॥

स रावणं वारणहस्तबाहुर्ददर्श दीप्तोद्यतभीमचापम् ।
प्रच्छादयन्तं शरवृष्टिजालैस्तान्वानरान्भिन्नविकीर्णदेहान् ॥

तमालोक्य महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः ।
निवार्य शरजालानि प्रदुद्राव स रावणम् ॥ ५५ ॥

रथं तस्य समासाद्य भुजमुद्यम्य दक्षिणम् ।
त्रासयन्रावणं धीमान्हनुमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५६ ॥

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षैश्च सह राक्षसैः ।
अवध्यत्वं त्वया प्राप्तं वानरेभ्यस्तु ते भयम् ॥ ५७ ॥

एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः ।
विधमिष्यति ते देहाद्भूतात्मानं चिरोषितम् ॥ ५८ ॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं रावणो भीमविक्रमः ।
संरक्तनयनः क्रोधादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५९ ॥

क्षिप्रं प्रहर निःशङ्कं स्थिरां कीर्तिमवाप्नुहि ।
ततस्त्वां ज्ञातविक्रान्तं नाशयिष्यामि वानर ॥ ६० ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा वायुसूनुर्वचोऽब्रवीत् ।
प्रहृतं हि मया पूर्वमक्षं स्मर सुतं तव ॥ ६१ ॥

एवमुक्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ।
आजघानानिलसुतं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ६२ ॥

स तलाभिहतस्तेन चचाल च मुहुर्मुहुः ।
स्थित्वा मुहूर्तं तेजस्वी स्थैर्यं कृत्वा महामतिः ॥ ६३ ॥

आजघानाभिसंक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम् ॥ ६४ ॥
ततस्तलेनाभिहतो वानरेण महात्मना ।
दशग्रीवः समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ॥ ६५ ॥
संग्रामे तं तथा दृष्ट्वा रावणं तलताडितम् ।
ऋषयो वानराः सिद्धा नेदुर्देवाः सहासुरैः ॥ ६६ ॥
अथाश्वास्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।
साधु वानर वीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः ॥ ६७ ॥
रावणेनैवमुक्तस्तु मारुतिर्वाक्यमब्रवीत् ।
धिगस्तु मम वीर्येण यस्त्वं जीवसि रावण ॥ ६८ ॥
सकृत्तु प्रहरेदानीं दुर्बुद्धे किं विकत्थसे ।
ततस्त्वां मामिका मुष्टिर्नयिष्यति यमक्षयम् ॥ ६९ ॥
ततो मारुतिवाक्येन क्रोधस्तस्य तदाऽज्वलत् ।
संरक्तनयनो यत्नान्मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ ७० ॥
पातयामास वेगेन वानरोऽरसि वीर्यवान् ॥ ७१ ॥
हनुमान्वक्षसि व्यूढे संचचाल हतः पुनः ॥ ७२ ॥
विह्वलं तु तदा दृष्ट्वा हनुमन्तं महाबलम् ।
रथेनातिरथः शीघ्रं नीलं प्रति समभ्यगात् ॥ ७३ ॥
राक्षसानामधिपतिर्दशग्रीवः प्रतापवान् ।
पन्नगप्रतिमैर्भीमैः परमर्मातिभेदिभिः ॥ ७४ ॥
शरैरादीपयामास नीलं हरिचमूपतिम् ॥ ७५ ॥

स शरौघसमायस्तो नीलः कपिचमूपतिः ।
करेणैकेन शैलाग्रं रक्षोधिपतयेऽसृजत् ॥ ७६ ॥

हनुमानपि तेजस्वी समाश्वस्तो महामनाः ।
विप्रेक्षमाणो युद्धेप्सुः सरोषमिदमब्रवीत् ॥ ७७ ॥

नीलेन सह संयुक्तं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
अन्येन युध्यमानस्य न युक्तमभिधावनम् ॥ ७८ ॥

रावणोऽपि महातेजास्तच्छृङ्गं सप्तभिः शरैः ।
आजघान सुतीक्ष्णाग्रैस्तद्विकीर्णं पपात ह ॥ ७९ ॥

तद्विकीर्णं गिरेः शृङ्गं दृष्ट्वा हरिचमूपतिः ।
कालाग्निरिव जज्वाल क्रोधेन परवीरहा ॥ ८० ॥

सोऽश्वकर्णान्धवान्सालांश्चूतांश्चापि सुपुष्पितान् ।
अन्यांश्च विविधान्वृक्षान्नीलश्चिक्षेप संयुगे ॥ ८१ ॥

स तान्वृक्षान्समासाद्य प्रतिचिच्छेद रावणः ।
अभ्यवर्षत्सुघोरेण शरवर्षेण पावकिम् ॥ ८२ ॥

अभिवृष्टः शरौघेण मेघेनेव महाचलः ।
ह्रस्वं कृत्वा तदा रूपं ध्वजाग्रे निपपात ह ॥ ८३ ॥

पावकात्मजमालोक्य ध्वजाग्रे समुपस्थितम् ।
जज्वाल रावणः क्रोधात्ततो नीलो ननाद च ॥ ८४ ॥

ध्वजाग्रे धनुषश्चाग्रे किरीटाग्रे च तं हरिम् ।
लक्ष्मणोऽथ हनूमांश्च दृष्ट्वा रामश्च विस्मिताः ॥ ८५ ॥

रावणोऽपि महातेजाः कपिलाघवविस्मितः ।
अस्त्रमाहारयामास दीप्तमाग्नेयमद्भुतम् ॥ ८६ ॥

ततस्ते चुक्रुशुर्हृष्टा लब्धलक्षाः प्लवङ्गमाः ।
नीललाघवसंभ्रान्तं दृष्ट्वा रावणमाहवे ॥ ८७ ॥

वानराणां च नादेन संरब्धो रावणस्तदा ।
संभ्रमाविष्टहृदयो न किंचित्प्रत्यपद्यत ॥ ८८ ॥

आग्नेयेनाथ संयुक्तं गृहीत्वा रावणः शरम् ।
ध्वजशीर्षस्थितं नीलमुदैक्षत निशाचरः ॥ ८९ ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ९० ॥

कपे लाघवयुक्तोऽसि मायया परयाऽनया ।
जीवितं खलु रक्षस्व यदि शक्तोऽसि वानर ॥ ९१ ॥

तानि तान्यात्मरूपाणि सृजसि त्वमनेकशः ।
तथापि त्वां मया मुक्तः सायकोऽस्त्रप्रयोजितः ॥ ९२ ॥

जीवितं परिरक्षन्तं जीविताद्भ्रंशयिष्यति ॥ ९३ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुं रावणो राक्षसेश्वरः ।
संधाय बाणमस्त्रेण चमूपतिमताडयत् ॥ ९४ ॥

सोऽस्त्रयुक्तेन बाणेन नीलो वक्षसि ताडितः ।
निर्दह्यमानः सहसा निपपात महीतले ॥ ९५ ॥

पितृमाहात्म्यसंयोगादात्मनश्चापि तेजसा ।
जानुभ्यामपतद्भूमौ न च प्राणैर्व्ययुज्यत ॥ ९६ ॥

विसंज्ञं वानरं दृष्ट्वा दशग्रीवो रणोत्सुकः ।
रथेनाम्बुदनादेन सौमित्रिमभिदुद्रुवे ॥ ९७ ॥

आसाद्य रणमध्ये तु वारयित्वा स्थितो ज्वलन् ।
धनुर्विस्फारयामास कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ९८ ॥

तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो विस्फारयन्तं धनुरप्रमेयम् ।
अभ्येहि मामेव निशाचरेन्द्र न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हः ॥

स तस्य वाक्यं प्रतिपूर्णघोषं ज्याशब्दमुग्रं च निशम्य राजा ।
आसाद्य सौमित्रिमवस्थितं तं कोपान्वितो वाक्यमुवाच रक्षः ॥

दिष्ट्याऽसि मे राघव दृष्टिमार्गं प्राप्तोऽन्तगामी विपरीतबुद्धिः ।
अस्मिन्क्षणे यास्यसि मृत्युदेशं संसाद्यमानो मम बाणजालैः ॥

तमाह सौमित्रिरविस्मयानो गर्जन्तमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम् ।
राजन्न गर्जन्ति महाप्रभावा विकत्थसे पापकृतां वरिष्ठ ॥

जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र बलं प्रतापं च पराक्रमं च ।
अवस्थितोऽहं शरचापपाणिरागच्छ किं मोघविकत्थनेन ॥

स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज रक्षोधिपः सप्त शरान्सुपुङ्खान् ।
तांल्लक्ष्मणः काञ्चनचित्रपुङ्खैश्चिच्छेद बाणैर्निशिताग्रधारैः ॥

तान्प्रेक्षमाणः सहसा निकृत्तान्निकृत्तभोगानिव पन्नगेन्द्रान् ।
लङ्केश्वरः क्रोधवशं जगाम ससर्ज चान्यान्निशितान्पृषत्कान् ॥

स बाणवर्षं तु ववर्ष तीव्रं रामानुजः कार्मुकसंप्रयुक्तम् ।
क्षुरार्धचन्द्रोत्तमकर्णिभल्लैः शरांश्च चिच्छेद न चुक्षुभे च ॥

स बाणजालान्यथ तानि तानि मोघानि पश्यंस्त्रिदशारिराजः।
विसिष्मिये लक्ष्मणलाघवेन पुनश्च बाणान्निशितान्मुमोच ॥

स लक्ष्मणश्चाशु शराञ्छिताग्रान्महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगान्।
संधाय चापे ज्वलनप्रकाशान्ससर्ज रक्षोधिपतेर्वधाय ॥

स तान्प्रचिच्छेद हि राक्षसेन्द्रश्छित्त्वा च तांल्लक्ष्मणमाजघान।
शरेण कालाग्निसमप्रभेण स्वयम्भुदत्तेन ललाटदेशे ॥

स लक्ष्मणो रावणसायकार्तश्चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य ।
पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्राच्चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः॥

निकृत्तचापं त्रिभिराजघान बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रैः ।
स सायकार्तो विचचाल राजा कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद॥

स कृत्तचापः शरताडितश्च मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः ।
जग्राह शक्तिं समुदग्रशक्तिः स्वयम्भुदत्तां युधि देवशत्रुः ॥

स तां विधूमानलसन्निकाशां वित्रासिनीं वानरवाहिनीनाम्।
चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः ॥

तामापतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रैर्जघान बाणैश्च हुताग्निकल्पैः ।
तथाऽपि सा तस्य विवेश शक्तिर्बाह्वन्तरं दाशरथेर्विशालम् ॥

स शक्तिमाञ्छक्तिसमाहतः सन्मुहुः प्रजज्वाल रघुप्रवीरः ।
तं विह्वलन्तं सहसाऽभ्युपेत्य जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम्॥

हिमवान्मन्दरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः ।
शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्तुं न संख्ये भरतानुजः ॥ ११६ ॥

शक्त्या ब्राह्मयापि सौमित्रिस्ताडितस्तु स्तनान्तरे ।
विष्णोरचिन्त्यं स्वं भागमात्मानं प्रत्यनुस्मरत् ॥ ११७ ॥
ततो दानवदर्पघ्नं सौमित्रिं देवकण्टकः ।
तं पीडयित्वा बाहुभ्यामप्रभुर्लङ्घनेऽभवत् ॥ ११८ ॥
अथैवं वैष्णवं भागं मानुषं देहमास्थितम् ।
विसंज्ञं लक्ष्मणं दृष्ट्वा रावणो विस्मितोऽभवत् ॥ ११९ ॥
अथ वायुसुतः क्रुद्धो रावणं समभिद्रवत् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ १२० ॥
तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः ।
जानुभ्यामपतद्भूमौ चचाल च पपात च ॥ १२१ ॥
आस्यैः स नेत्रश्रवणैर्ववाम रुधिरं बहु ॥ १२२ ॥
विघूर्णमानो निश्चेष्टो रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसंज्ञो मूर्छितश्चासीन्न च स्थानं समालभत् ॥ १२३ ॥
विसंज्ञं रावणं दृष्ट्वा समरे भीमविक्रमम् ।
ऋषयो वानराः सर्वे नेदुर्देवाः सवासवाः ॥ १२४ ॥
हनुमानपि तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम् ।
अनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ॥ १२५ ॥
वायुसूनोः सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च सः ।
शत्रूणामप्रकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत्कपेः ॥ १२६ ॥
तं समुत्सृज्य सा शक्तिः सौमित्रिं युधि दुर्जयम् ।
रावणस्य रथे तस्मिंस्थानं पुनरुपागता ॥ १२७ ॥

आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः ।
विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥ १२८ ॥
रावणोऽपि महातेजाः प्राप्य संज्ञां महाहवे ।
आददे निशितान्बाणाञ्जग्राह च महद्धनुः ॥ १२९ ॥
निपातितमहावीरां वानराणां महाचमूम् ।
न्यहनत् स च संक्रुद्धो वानराणां महाचमूम् ॥ १३० ॥
ते हन्यमाना रौद्रेण क्षिप्रहस्तेन रक्षसा ।
राघवं शरणं जग्मुः प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ १३१ ॥
राघवोऽपि रणे दृष्ट्वा कर्म रौद्रस्य रक्षसः ।
धनुः सज्यमुपादाय चामीकरविभूषितम् ॥ १३२ ॥
रथस्थं समरे शूरमभिदुद्राव रावणम् ॥ १३३ ॥
निपातितमहावीरां द्रवन्तीं वानरीं चमूम् ।
राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत् ॥ १३४ ॥
अथैनमुपसंगम्य हनुमान्वाक्यमब्रवीत् ।
मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि ॥ १३५ ॥
विष्णुर्यथा गरुत्मन्तं बलवन्तं समाहितः ।
तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं वायुपुत्रेण भाषितम् ॥ १३६ ॥
आरुरोह महाशूरो बलवन्तं महाकपिम् ॥ १३७ ॥
रथस्थं रावणं संख्ये ददर्श मनुजाधिपः ॥ १३८ ॥
तमालोक्य महातेजाः प्रदुद्राव स राघवः ।
वैरोचनिमिव क्रुद्धो विष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥ १३९ ॥

ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं वज्रनिष्पेषनिस्वनम् ।
गिरा गम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥ १४० ॥
तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
क्व नु राक्षसशार्दूल गतो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ १४१ ॥

यदीन्द्रवैवस्वतभास्करान्वा
स्वयम्भुवैश्वानरशङ्करान्वा ।
गमिष्यसि त्वं दश वा दिशोऽथवा
तथाऽपि मे नाद्य गतो विमोक्ष्यसे ॥

यश्चैव शक्त्याऽभिहतस्त्वयाऽद्य इच्छन्विषादं सहसाऽभ्युपेतः ।
स एव रक्षोगणराज मृत्युः सपुत्रदारस्य तवाद्य युद्धे ॥

एतेन चात्यद्भुतदर्शनानि शरैर्जनस्थानकृतालयानि ।
चतुर्दशान्यात्तवरायुधानि रक्षःसहस्राणि निषूदितानि ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाकपिम् ।
वायुपुत्रं महावीर्यं वहन्तं राघवं रणे ॥
आजघान शरैस्तीक्ष्णैः कालानलशिखोपमैः ॥ १४५ ॥
राक्षसेनाहवे तस्य ताडितस्यापि सायकैः ।
स्वभावतेजोयुक्तस्य भूयस्तेजोऽभ्यवर्धत ॥ १४६ ॥
ततो रामो महातेजा रावणेन कृतव्रणम् ।
दृष्ट्वा प्लवगशार्दूलं कोपस्य वशमेयिवान् ॥ १४७ ॥

तस्याभिसंक्रम्य रथं सचक्रं साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ।
ससारथिं साशनिशूलखङ्गं रामः प्रचिच्छेद शरैः सुपुङ्खैः ॥

अथेन्द्रशत्रुं तरसा जघान बाणेन वज्राशनिसन्निभेन ।
भुजान्तरे व्यूढसुजातरूपे वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्रः ॥
यो वज्रपाताशनिसन्निपातान्न चुक्षुभे नापि चचाल राजा ।
स रामबाणाभिहतो भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥
तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः समाददे दीप्तमथार्धचन्द्रम् ।
तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा ॥
तं निर्विषाशीविषसन्निकाशं शान्तार्चिषं सूर्यमिवाप्रकाशम् ।
गतश्रियं कृत्तकिरीटकूटमुवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥
कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमं हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाऽहम् ।
तस्मात्परिश्रान्त इव व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥
गच्छानुजानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिञ्चरराज लङ्काम् ।
आश्वास्य निर्याहि रथी च धन्वी तदा बलं द्रक्ष्यसि मे रथस्थः ॥
स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो निकृत्तचापः स हताश्वसूतः ।
शरार्दितः कृत्तमहाकिरीटो विवेश लङ्कां सहसा स राजा ॥
तस्मिन्प्रविष्टे रजनीचरेन्द्रे महाबले दानवदेवशत्रौ ।
हरीन् विशल्यान् सह लक्ष्मणेन चकार रामः परमाहवाग्रे ॥
तस्मिन् प्रभिन्ने त्रिदशेन्द्रशत्रौ सुरासुरा भूतगणा दिशश्च ।
ससागराः सर्षिमहोरगाश्च तथैव भूम्यम्बुचराश्च हृष्टाः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17165 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2590

## षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

### कुम्भकर्णप्रबोधनम् ॥

स प्रविश्य पुरीं लङ्कां रामबाणभयार्दितः ।
भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥

मातङ्ग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः ।
अभिभूतोऽभवद्राजा राघवेण महात्मना ॥ २ ॥

ब्रह्मदण्डप्रकाशानां विद्युत्सदृशवर्चसाम् ।
स्मरन्राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥

स काञ्चनमयं दिव्यमाश्रित्य परमासनम् ।
विप्रेक्षमाणो रक्षांसि रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥

सर्वं तत्खलु मे मोघं यत्तप्तं परमं तपः ।
यत्समानो महेन्द्रेण मानुषेणास्मि निर्जितः ॥ ५ ॥

इदं तद्ब्रह्मणो घोरं वाक्यं मामभ्युपस्थितम् ।
मानुषेभ्यो विजानीहि भयं त्वमिति तत्तथा ॥ ६ ॥

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः ।
अवध्यत्वं मया प्राप्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ॥ ७ ॥

विदितं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।
इक्ष्वाकुकुलनाथेन अनरण्येन यत्पुरा ॥ ८ ॥

उत्पत्स्यते हि मद्वंशे पुरुषो राक्षसाधम ।
यस्त्वां सपुत्रं सामात्यं सबलं साश्वसारथिम् ॥ ९ ॥

निहनिष्यति सङ्ग्रामे त्वां कुलाधम दुर्मते ॥ १० ॥

शप्तोऽहं वेदवत्या च यदा सा धर्षिता पुरा ।
सेयं सीता महाभागा जाता जनकनन्दिनी ॥ ११ ॥

उमा नन्दीश्वरश्चापि रम्भा वरुणकन्यका ।
यथोक्तास्तपसा प्राप्तं न मिथ्या ऋषिभाषितम् ॥ १२ ॥

एतदेवाभ्युपागम्य यत्नं कर्तुमिहार्हथ ।
राक्षसाश्चापि तिष्ठन्तु चर्यागोपुरमूर्धसु ॥ १३ ॥

स चाप्रतिमगम्भीरो देवदानवदर्पहा ।
ब्रह्मशापाभिभूतस्तु कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ॥ १४ ॥

स पराजितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम् ।
ज्ञात्वा रक्षोबलं भीममादिदेश महाबलः ॥ १५ ॥

द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम् ।
निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ॥ १६ ॥

सुखं स्वपिति निश्चिन्तः कालोपहतचेतनः ।
नव षट् सप्त चाष्टौ च मासान्स्वपिति राक्षसः ॥ १७ ॥

मन्त्रं कृत्वा प्रसुप्तोऽयमितस्तु नवमेऽहनि ।
तं तु बोधयत क्षिप्रं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ १८ ॥

स तु संख्ये महाबाहुः ककुदः सर्वरक्षसाम् ।
वानरान्राजपुत्रौ च क्षिप्रमेव वधिष्यति ॥ १९ ॥

एष केतुः परः संख्ये मुख्यो वै सर्वरक्षसाम् ।
कुम्भकर्णः सदा शेते मूढो ग्राम्यसुखे रतः ॥ २० ॥

रामेण हि निरस्तस्य संग्रामेऽस्मिन्सुदारुणे ।
भविष्यति न मे शोकः कुम्भकर्णे विबोधिते ॥ २१ ॥

किं करिष्याम्यहं तेन शक्रतुल्यबलेन हि ।
ईदृशे व्यसने प्राप्ते यो न साह्याय कल्पते ॥ २२ ॥

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ।
जग्मुः परमसंभ्रान्ताः कुम्भकर्णनिवेशनम् ॥ २३ ॥

ते रावणसमादिष्टा मांसशोणितभोजनाः ।
गन्धमाल्यांस्तथा भक्ष्यानादाय सहसा ययुः ॥ २४ ॥

मृगान् मद्यस्य च घटान् घोरान् क्षतजमेव च ।
आसाद्य च गृहं तस्य प्रविश्य च नृपाज्ञया ॥ २५ ॥

तां प्रविश्य महाद्वारां सर्वतो योजनायताम् ।
कुम्भकर्णगुहां रम्यां सर्वगन्धप्रवाहिनीम् ॥ २६ ॥

कुम्भकर्णस्य निश्वासादवधूता महाबलाः ।
प्रतिष्ठमानाः कृच्छ्रेण यत्नात्प्रविविशुर्गुहाम् ॥ २७ ॥

तां प्रविश्य गुहां रम्यां शुभां काञ्चनकुट्टिमाम् ।
ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रं शयानं भीमदर्शनम् ॥ २८ ॥

ते तु तं विकृतं सुप्तं विकीर्णमिव पर्वतम् ।
कुम्भकर्णं महानिद्रं सहिताः प्रत्यबोधयन् ॥ २९ ॥

ऊर्ध्वरोमाञ्चिततनुं श्वसन्तमिव पन्नगम् ।
त्रासयन्तं महाश्वासैः शयानं भीमदर्शनम् ॥ ३० ॥

भीमनासापुटं तं तु पातालविपुलाननम् ।
शय्यायां न्यस्तसर्वाङ्गं मेदोरुधिरगन्धिनम् ॥ ३१ ॥

काञ्चनाङ्गदनद्धाङ्गं किरीटिनमरिन्दमम् ।
ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ३२ ॥

ततश्चक्रुर्महात्मानः कुम्भकर्णाग्रतस्तदा ।
मांसानां मेरुसङ्काशं राशिं परमतर्पणम् ॥ ३३ ॥

मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च सञ्चयान् ।
चक्रुर्नैर्ऋतशार्दूला राशिमन्नस्य चाद्भुतम् ॥ ३४ ॥

ततः शोणितकुम्भांश्च मद्यानि विविधानि च ।
पुरस्तात्कुम्भकर्णस्य चक्रुस्त्रिदशशत्रवः ॥ ३५ ॥

लिलिपुश्च परार्ध्येन चन्दनेन परंतपम् ।
दिव्यैराच्छादयामासुर्माल्यैर्गन्धैः सुगन्धिभिः ॥ ३६ ॥

धूपं सुगन्धं ससृजुस्तुष्टुवुश्च परन्तपम् ।
जलदा इव चोन्नेदुर्यातुधानास्ततस्ततः ॥ ३७ ॥

शङ्खानापूरयामासुः शशाङ्कसदृशप्रभान् ।
तुमुलं युगपच्चापि विनेदुश्चाप्यमर्षिताः ॥ ३८ ॥

नेदुरास्फोटयामासुश्चिक्षिपुस्ते निशाचराः ।
कुम्भकर्णविबोधार्थं चक्रुस्ते विपुलं स्वनम् ॥ ३९ ॥

सशङ्खभेरीपणवप्रणादमास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादम् ।
दिशो द्रवन्तस्त्रिदिवं किरन्तः श्रुत्वा विहङ्गाः सहसा निपेतुः ॥

यदा भृशार्तैर्निनदैर्महात्मा न कुम्भकर्णो बुबुधे प्रसुप्तः ।
ततो भुसुण्ठीर्मुसलानि सर्वे रक्षोगणास्ते जगृहुर्गदाश्च ॥

तं शैलशृङ्गैर्मुसलैर्गदाभिर्वृक्षैस्तलैर्मुद्गरमुष्टिभिश्च ।
सुखप्रसुप्तं भुवि कुम्भकर्णं रक्षांस्युदग्राणि तदा निजघ्नुः ॥

तस्य निश्वासवातेन कुम्भकर्णस्य रक्षसः ।
राक्षसा बलवन्तोऽपि स्थातुं नाशक्नुवन्पुरः ॥ ४३ ॥

ततः परिहिता गाढं राक्षसा भीमविक्रमाः ॥ ४४ ॥

मृदङ्गपणवान्भेरीः शङ्खकुम्भगणांस्तदा ।
दश राक्षससाहस्रा युगपत्पर्यवादयन् ॥ ४५ ॥

नीलाञ्जनचयाकारास्ते तु तं प्रत्यबोधयन् ।
अभिघ्नन्तो नदन्तश्च नैव संविविदे तु सः ॥ ४६ ॥

यदा चैनं न शेकुस्ते प्रतिबोधयितुं तदा ।
ततो गुरुतरं यत्नं दारुणं समुपाक्रमन् ॥ ४७ ॥

अश्वानुष्ट्रान्खरान्नागाञ्जघ्नुर्दण्डकशाङ्कुशैः ।
भेरीशङ्खमृदङ्गांश्च सर्वप्राणैरवादयन् ॥ ४८ ॥

निजघ्नुश्चास्य गात्राणि महाकाष्ठकटङ्करैः ।
मुद्गरैर्मुसलैश्चैव सर्वप्राणसमुद्यतैः ॥ ४९ ॥

तेन शब्देन महता लङ्का समभिपूरिता ।
सपर्वतवना सर्वा सोऽपि नैव प्रबुध्यते ॥ ५० ॥

ततः सहस्रं भेरीणां युगपत्समहन्यत ।
मृष्टकाञ्चनकोणानामासक्तानां समन्ततः ॥ ५१ ॥

एवमप्यतिनिद्रस्तु यदा नैव प्रबुध्यते ।
शापस्य वशमापन्नस्ततः क्रुद्धा निशाचराः ॥ ५२ ॥

महाक्रोधसमाविष्टाः सर्वे भीमपराक्रमाः ।
तद्रक्षो बोधयिष्यन्तश्चक्रुरन्ये पराक्रमम् ॥ ५३ ॥

अन्ये भेरीः समाजघ्नुरन्ये चक्रुर्महास्वनम् ।
केशानन्ये प्रलुलुपुः कर्णावन्ये दशन्ति च ॥ ५४ ॥

उदकुम्भशतानन्ये समसिञ्चन्त कर्णयोः ॥ ५५ ॥

अन्ये च बलिनस्तस्य कूटमुद्गरपाणयः ।
मूर्ध्नि वक्षसि गात्रेषु पातयन्कूटमुद्गरान् ॥ ५६ ॥

रज्जुबन्धनबद्धाभिः शतघ्नीभिश्च सर्वतः ।
वध्यमानो महाकायो न प्राबुध्यत राक्षसः ॥ ५७ ॥

वारणानां सहस्रं तु शरीरेऽस्य प्रधावितम् ।
विनेदुश्च सहस्राणि राक्षसानां त्रयोदश ॥ ५८ ॥

अथ खिन्नेषु रक्षःसु यत्नेन महता शनैः ।
कुम्भकर्णस्ततो बुद्धः स्पर्शं परमबुध्यत ॥ ५९ ॥

स पात्यमानैर्गिरिशृङ्गवृक्षैरचिन्तयंस्तान्विपुलान्प्रहारान् ।
निद्राक्षयात्क्षुद्भयपीडितश्च विजृम्भमाणः सहसोत्पपात ॥

स नागभोगाचलशृङ्गकल्पौ निक्षिप्य बाहू गिरिशृङ्गसारौ ।
विवृत्य वक्त्रं बडवामुखाभं निशाचरोऽसौ विकृतं जजृम्भे ॥

तस्य जाजृम्भमाणस्य वक्त्रं पातालसन्निभम् ।
ददृशे मेरुशृङ्गाग्रे दिवाकर इवोदितः ॥ ६२ ॥

स जृम्भमाणोऽतिबलः प्रतिबुद्धो निशाचरः ।
निश्वासश्चास्य संजज्ञे पर्वतादिव मारुतः ॥ ६३ ॥

रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद्बभौ ।
तपान्ते सबलाकस्य मेघस्येव विवर्षतः ॥ ६४ ॥

ततः स कालसङ्काश उत्पतन् समुदैक्षत ॥ ६५ ॥

तस्य दीप्ताग्निसदृशे विद्युत्सदृशवर्चसी ।
ददृशाते महानेत्रे दीप्ताविव महाग्रहौ ॥ ६६ ॥

ततस्त्वदर्शयन्सर्वान्भक्ष्यांश्च विविधान्बहून् ।
वराहान्महिषांश्चैव स बभक्ष महाबलः ॥ ६७ ॥

अदन्बुभुक्षितो मांसं शोणितं तृषितः पिबन् ।
मेदःकुम्भांश्च मद्यं च पपौ शक्ररिपुस्तदा ॥ ६८ ॥

ततस्तृप्त इति ज्ञात्वा समुत्पेतुर्निशाचराः ।
शिरोभिश्च प्रणम्यैनं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६९ ॥

निद्राऽविशदनेत्रस्तु कलुषीकृतलोचनः ।
चारयन्सर्वतो दृष्टिं तान्ददर्श निशाचरान् ॥ ७० ॥

स सर्वान्सान्त्वयामास नैर्ऋतान्नैर्ऋतर्षभः ।
बोधनाद्विस्मितश्चापि राक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ७१ ॥

किमर्थमहमादृत्य भवद्भिः प्रतिबोधितः ।
कच्चित्सुकुशलं राज्ञो भयं वा नेह विद्यते ॥ ७२ ॥

अथवा ध्रुवमन्येभ्यो भयं परमुपस्थितम् ।
यदर्थमेवं त्वरितैर्भवद्भिः प्रतिबोधितः ॥ ७३ ॥

अद्य राक्षसराजस्य भयमुत्पाटयाम्यहम् ।
पातयिष्ये महेन्द्रं वा शातयिष्ये तथाऽनलम् ॥ ७४ ॥

न ह्यल्पकारणे सुप्तं बोधयिष्यति मां गुरुः ।
तदाख्यातार्थतत्त्वेन मत्प्रबोधनकारणम् ॥ ७५ ॥

एवं ब्रुवाणं संरब्धं कुम्भकर्णमरिन्दमम् ।
यूपाक्षः सचिवो राज्ञः कृताञ्जलिरुवाच ह ॥ ७६ ॥

न नो दैवकृतं किंचिद्भयमस्ति कदाचन ।
मानुषान्नो भयं राजंस्तुमुलं संप्रबाधते ॥ ७७ ॥

न दैत्यदानवेभ्यो वा भयमस्ति हि तादृशम् ।
यादृशं मानुषं राजन्भयमस्मानुपस्थितम् ॥ ७८ ॥

वानरैः पर्वताकारैर्लङ्केयं परिवारिता ।
सीताहरणसन्तप्ताद्रामान्नस्तुमुलं भयम् ॥ ७९ ॥

एकेन वानरेणेयं पूर्वं दग्धा महापुरी ।
कुमारो निहतश्चाक्षः सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥ ८० ॥

स्वयं रक्षोधिपश्चापि पौलस्त्यो देवकण्टकः ।
मृतेऽतिसंयुगे मुक्तो रामेणादित्यतेजसा ॥ ८१ ॥

यन्न देवैः कृतो राजा नापि दैत्यैर्न दानवैः ।
कृतः स इह रामेण विमुक्तः प्राणसंशयात् ॥ ८२ ॥

स यूपाक्षवचः श्रुत्वा भ्रातुर्युधि पराजयम् ।
कुम्भकर्णो विवृत्ताक्षो यूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥ ८३ ॥

सर्वमद्यैव यूपाक्ष हरिसैन्यं सलक्ष्मणम् ।
राघवं च रणे हत्वा पश्चाद्द्रक्ष्यामि रावणम् ॥ ८४ ॥

राक्षसांस्तर्पयिष्यामि हरीणां मांसशोणितैः ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि स्वयं पास्यामि शोणितम् ॥ ८५ ॥

तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य सगर्वितं रोषविवृद्धदोषम् ।
महोदरो नैर्ऋतयोधमुख्यः कृताञ्जलिर्वाक्यमिदं बभाषे ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा गुणदोषौ विमृश्य च ।
पश्चादपि महाबाहो शत्रून्युधि विजेष्यसि ॥ ८७ ॥

त्वद्दर्शनपरं तावद्भ्रातरं द्रष्टुमर्हसि ॥ ८८ ॥

महोदरवचः श्रुत्वा राक्षसैः परिवारितः ।
कुम्भकर्णो महातेजाः संप्रतस्थे महाबलः ॥ ८९ ॥

तं समुत्थाप्य भीमाक्षं भीमरूपपराक्रमम् ।
राक्षसास्त्वरिता जग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम् ॥ ९० ॥

ततो गत्वा दशग्रीवमासीनं परमासने ।
ऊचुर्बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे एव निशाचराः ॥ ९१ ॥

प्रबुद्धः कुम्भकर्णोऽयं भ्राता ते राक्षसर्षभ ।
कथं तत्रैव निर्यातु द्रक्ष्यस्येनमिहागतम् ॥ ९२ ॥

रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टो राक्षसांस्तानुपस्थितान् ।
द्रष्टुमेनमिहेच्छामि यथान्यायं च पूज्यताम् ॥ ९३ ॥

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे पुनरागम्य राक्षसाः ।
कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचू रावणचोदिताः ॥ ९४ ॥

द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा सर्वराक्षसपुङ्गवः ।
गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं संप्रहर्षय ॥ ९५ ॥

कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम् ।
तथेत्युक्त्वा महाबाहुः शयनादुत्पपात ह ॥ ९६ ॥

प्रक्षाल्य वदनं हृष्टः स्नातः परमभूषितः ।
पिपासुस्त्वरयामास पानं बलसमीरणम् ॥ ९७ ॥

ततस्ते त्वरितास्तस्य राक्षसा रावणाज्ञया ।
मद्यकुम्भांश्च विविधान् क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥ ९८ ॥

प्रहर्षणार्थं मनसो दीप्तास्यो दीप्तलोचनः ॥ ९९ ॥

पीत्वा घटसहस्रे द्वे गमनायोपचक्रमे ।
ईषत्समुत्कटो मत्तस्तेजोबलसमन्वितः ॥ १०० ॥

कुम्भकर्णो बभौ हृष्टः कालान्तकयमोपमः ॥ १०१ ॥

भ्रातुः स भवनं गच्छन्रक्षोगणसमन्वितः ।
कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ १०२ ॥

स राजमार्गं वपुषा प्रकाशयन् सहस्ररश्मिर्धरणीमिवांशुभिः ।
जगाम तत्राञ्जलिमालया वृतः शतक्रतुर्गेहमिव स्वयंभुवः ॥

तं राजमार्गस्थममित्रघातिनं वनौकसस्ते सहसा बहिः स्थिताः ।
दृष्ट्वाऽप्रमेयं गिरिशृङ्गकल्पं वितत्रसुस्ते हरियूथपालाः ॥

केचिच्छरण्यं शरणं स्म रामम्
व्रजन्ति केचिद्व्यथिताः पतन्ति ।
केचिद्दिशः स्म व्यथिताः प्रयान्ति
केचिद्भयार्ता भुवि शेरते स्म ॥ १०५ ॥

तमद्रिशृङ्गप्रतिमं किरीटिनम्
स्पृशन्तमादित्यमिवात्मतेजसा ।
वनौकसः प्रेक्ष्य विवृद्धमद्भुतम्
भयार्दिता दुद्रुविरे ततस्ततः ॥ १०६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17271 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2596

## एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

### श्रीरामाय कुम्भकर्णवर्णनम् ॥

ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ।
किरीटिनं महाकायं कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥ १ ॥

तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं पर्वताकारदर्शनम् ।
क्रममाणमिवाकाशं पुरा नारायणं प्रभुम् ॥ २ ॥
सतोयाम्बुदसङ्काशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा पुनः प्रदुद्राव वानराणां महाचमूः ॥ ४ ॥
विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वर्धमानं च राक्षसम् ।
सविस्मयमिदं रामो विभीषणमुवाच ह ॥ ५ ॥
कोऽसौ पर्वतसङ्काशः किरीटी हरिलोचनः ।
लङ्कायां दृश्यते वीर सविद्युदिव तोयदः ॥ ६ ॥
पृथिव्याः केतुभूतोऽसौ महानेकोऽत्र दृश्यते ।
यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे विद्रवन्ति ततस्ततः ॥ ७ ॥
आचक्ष्व मे महान्कोऽसौ रक्षो वा यदि वाऽसुरः ।
न मयैवंविधं भूतं दृष्टपूर्वं कदाचन ॥ ८ ॥
स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
विभीषणो महाप्राज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥
येन वैवस्वतो युद्धे वासवश्च पराजितः ।
सैष विश्रवसः पुत्रः कुम्भकर्णः प्रतापवान् ॥ १० ॥
अस्य प्रमाणात्सदृशो राक्षसोऽन्यो न विद्यते ॥ ११ ॥

एतेन देव युधि दानवाश्च यक्षा भुजङ्गाः पिशिताशनाश्च।
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराश्च सहस्रशो राघव संप्रभग्नाः ॥
शूलपाणिं विरूपाक्षं कुम्भकर्णं महाबलम् ।
हन्तुं न शेकुस्त्रिदशाः कालोऽयमिति मोहिताः ॥ १३ ॥
प्रकृत्या ह्येष तेजस्वी कुम्भकर्णो महाबलः ।
अन्येषां राक्षसेन्द्राणां वरदानकृतं बलम् ॥ १४ ॥
एतेन जातमात्रेण क्षुधार्तेन महात्मना ।
भक्षितानि सहस्राणि सत्त्वानां सुबहून्यपि ॥ १५ ॥
तेषु संभक्ष्यमाणेषु प्रजा भयनिपीडिताः ।
यान्ति स्म शरणं शक्रं तमप्यर्थं न्यवेदयन् ॥ १६ ॥
स कुम्भकर्णं कुपितो महेन्द्रो जघान वज्रेण शितेन वज्री ।
स शक्रवज्राभिहतो महात्मा चचाल कोपाच्च भृशं ननाद ॥
तस्य नानद्यमानस्य कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
श्रुत्वाऽतिनादं वित्रस्ता भूयो भूमिर्वितत्रसे ॥ १८ ॥
तत्र कोपान्महेन्द्रस्य कुम्भकर्णो महाबलः ।
विकृष्यैरावताद्दन्तं जघानोरसि वासवम् ॥ १९ ॥
कुम्भकर्णप्रहारार्तो विजज्वाल स वासवः ।
ततो विषेदुः सहसा देवब्रह्मर्षिदानवाः ॥ २० ॥
प्रजाभिः सह शक्रश्च ययौ स्थानं स्वयंभुवः ।
कुम्भकर्णस्य दौरात्म्यं शशंसुस्ते प्रजापतेः ॥ २१ ॥
प्रजानां भक्षणं चापि देवानां चापि धर्षणम् ।
आश्रमध्वंसनं चापि परस्त्रीहरणं तथा ॥ २२ ॥

एवं प्रजा यदि त्वेष भक्षयिष्यति नित्यशः ।
अचिरेणैव कालेन शून्यो लोको भविष्यति ॥ २३ ॥
वासवस्य वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः ।
रक्षांस्यावाहयामास कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥ २४ ॥
कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव वितत्रास प्रजापतिः ।
दृष्ट्वा विश्वास्य चैवेदं स्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ २५ ॥
ध्रुवं लोकविनाशाय पौलस्त्येनासि निर्मितः ।
तस्मात्त्वमद्यप्रभृति मृतकल्पः शयिष्यसे ॥ २६ ॥
ब्रह्मशापाभिभूतोऽथ निपपाताग्रतः प्रभोः ।
ततः परमसंभ्रान्तो रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २७ ॥
विवृद्धः काञ्चनो वृक्षः फलकाले निकृत्यते ।
न नप्तारं स्वकं न्याय्यं शप्तुमेवं प्रजापते ॥ २८ ॥
न मिथ्यावचनश्च त्वं स्वप्स्यत्येष न संशयः ।
कालस्तु क्रियतामस्य शयने जागरे तथा ॥ २९ ॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा स्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ ३० ॥
शयिता ह्येष षण्मासानेकाहं जागरिष्यति ।
एकेनाह्ना त्वसौ वीरश्चरन्भूमिं बुभुक्षितः ॥ ३१ ॥
व्यात्तास्यो भक्षयेल्लोकान् संक्रुद्ध इव पावकः ॥ ३२ ॥
सोऽसौ व्यसनमापन्नः कुम्भकर्णमबोधयत् ।
त्वत्पराक्रमभीतश्च राजा संप्रति रावणः ॥ ३३ ॥
स एष निर्गतो वीरः शिबिराद्भीमविक्रमः ।
वानरान् भृशसंक्रुद्धो भक्षयन् परिधावति ॥ ३४ ॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव हरयोऽद्य प्रविद्रुताः ।
कथमेनं रणे क्रुद्धं वारयिष्यन्ति वानराः ॥ ३५ ॥
उच्यन्तां वानराः सर्वे यन्त्रमेतत्समुच्छ्रितम् ।
इति विज्ञाय हरयो भविष्यन्तीह निर्भयाः ॥ ३६ ॥
विभीषणवचः श्रुत्वा हेतुमत्सुमुखेरितम् ।
उवाच राघवो वाक्यं नीलं सेनापतिं तदा ॥ ३७ ॥
गच्छ सैन्यानि सर्वाणि व्यूह्य तिष्ठस्व पावके ।
द्वाराण्यादाय लङ्कायाश्चर्याश्चाप्यथ संक्रमान् ॥ ३८ ॥
शैलशृङ्गाणि वृक्षांश्च शिलाश्चाप्युपसंहर ।
तिष्ठन्तु वानराः सर्वे सायुधाः शैलपाणयः ॥ ३९ ॥
राघवेण समादिष्टो नीलो हरिचमूपतिः ।
शशास वानरानीकं यथावत्कपिकुञ्जरः ॥ ४० ॥
ततो गवाक्षः शरभो हनुमानङ्गदस्तथा ।
शैलशृङ्गाणि शैलाभा गृहीत्वा द्वारमभ्ययुः ॥ ४१ ॥
रामवाक्यमुपश्रुत्य हरयो जितकाशिनः ।
पादपैरर्दयन्वीरा वानराः परवाहिनीम् ॥ ४२ ॥
ततो हरीणां तदनीकमुग्रं रराज शैलोद्यतदीप्तहस्तम् ।
गिरेः समीपानुगतं यथैव महन्महाम्भोधरजालमुग्रम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17314 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2639

## द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

### कुम्भकर्णसान्त्वनम् ॥

स तु राक्षसशार्दूलो निद्रामदसमाकुलः ।
राजमार्गं श्रिया जुष्टं ययौ विपुलविक्रमः ॥ १ ॥

राक्षसानां सहस्रैश्च वृतः परमदुर्जयः ।
गृहेभ्यः पुष्पवर्षेण कीर्यमाणस्तदा ययौ ॥ २ ॥

स हेमजालविततं भानुभास्वरदर्शनम् ।
ददर्श विपुलं रम्यं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ ३ ॥

स तत्तदा सूर्य इवाभ्रजालं
प्रविश्य रक्षोऽधिपतेर्निवेशम् ।
ददर्श दूरेऽग्रजमासनस्थं
स्वयंभुवं शक्र इवासनस्थम् ॥ ४ ॥

भ्रातुः स भवनं गच्छन्रक्षोगणसमन्वितम् ।
कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ५ ॥

सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च ।
ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम् ॥ ६ ॥

अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम् ।
तूर्णमुत्थाय संहृष्टः सन्निकर्षमुपानयत् ॥ ७ ॥

अथासीनस्य पर्यङ्के कुम्भकर्णो महाबलः ।
भ्रातुर्ववन्दे चरणौ किं कृत्यमिति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

उत्पत्य चैनं मुदितो रावणः परिषस्वजे ।
स भ्रात्रा संपरिष्वक्तो यथावच्चाभिनन्दितः ॥ ९ ॥
कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् ॥ १० ॥

स तदासनमाश्रित्य कुम्भकर्णो महाबलः ।
संरक्तनयनः कोपाद्रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥

किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन्विबोधितः ।
शंस कस्माद्भयं तेऽस्ति कोऽद्य प्रेतो भविष्यति ॥ १२ ॥

न मे वीर्ये बले तुल्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
यदीन्द्रात्ते भयं राजन् यदि वा ते स्वयंभुवः ॥ १३ ॥

भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम् ।
ईषत्तु परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥

अद्य ते सुमहान् कालः शयानस्य महाबल ।
सुखितस्त्वं न जानीषे मम रामकृतं भयम् ॥ १५ ॥

एष दाशरथी रामः सुग्रीवसहितो बली ।
समुद्रं सबलस्तीर्त्वा मूलं नः परिकृन्तति ॥ १६ ॥

हन्त पश्यस्व लङ्कायां वनान्युपवनानि च ।
सेतुना सुखमागम्य वानरैकार्णवीकृतम् ॥ १७ ॥

ये रक्षसां मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि ।
लङ्का तावन्महाबाहो बालवृद्धावशेषिता ॥ १८ ॥
वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कदाचन ॥ १९ ॥

न चापि वानरा युद्धे जितपूर्वाः कदाचन ॥ २० ॥
तदेतद्भयमुत्पन्नं त्रायस्वेमां महाबल ।
नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान् ॥ २१ ॥
शत्रुणा रुद्धनगरं युद्धे हतसुहृज्जनम् ॥ २२ ॥
सर्वक्षपितकोशं च स त्वमभ्यवपद्य माम् ।
त्रायस्वेमां पुरीं लङ्कां बालवृद्धावशेषिताम् ॥ २३ ॥
भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम् ।
मयैवं नोक्तपूर्वो हि कश्चिद्भ्रातः परंतप ॥ २४ ॥
त्वय्यस्ति तु मम स्नेहः परा संभावना च मे ।
दैवासुरेषु युद्धेषु बहुशो राक्षसर्षभ ॥ २५ ॥
त्वया देवाः प्रतिव्यूह्य निर्जिताश्चासुरा युधि ॥ २६ ॥
तदेतत्सर्वमातिष्ठ वीर्यं भीमपराक्रम ।
न हि ते सर्वभूतेषु दृश्यते सदृशो बली ॥ २७ ॥

कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तमं
यथाप्रियं प्रियरण बान्धवप्रिय ।
स्वतेजसा विधम सपत्नवाहिनीं
शरद्घनं पवन इवोद्यतो महान् ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17342 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2767

## त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

### कुम्भकर्णोपदेशः ॥

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णो बभाषेदं वचनं प्रजहास च ॥ १ ॥

दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये ।
हितेष्वनभिरक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया ॥ २ ॥

शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मणः ।
निरयेष्वेव पतनं यथा दुष्कृतकर्मणः ॥ ३ ॥

प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम् ।
केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः ॥ ४ ॥

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः ।
पूर्वं चापरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ ५ ॥

देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ६ ॥

त्रयाणां पञ्चधा योगं कर्मणां यः प्रपद्यते ।
सचिवैः समयं कृत्वा स सभ्ये वर्तते पथि ॥ ७ ॥

यथागमं च यो राजा समयं विचिकीर्षति ।
बुध्यते सचिवान् बुद्ध्या सुहृदश्चानुपश्यति ॥ ८ ॥

धर्ममर्थं च कामं च सर्वान्वा रक्षसां पते ।
भजेत पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः ॥ ९ ॥

त्रिषु चैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते ।
राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम् ॥ १० ॥

उपप्रधानं सान्त्वं वा भेदं काले च विक्रमम् ।
योगं च रक्षसां श्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ ॥ ११ ॥

काले धर्मार्थकामान् यः संमन्त्र्य सचिवैः सह ।
निषेवेतात्मवांल्लोके न स व्यसनमाप्नुयात् ॥ १२ ॥

हितानुबन्धमालोच्य कार्याकार्यमिहात्मनः ।
राजा सहार्थतत्त्वज्ञैः सचिवैः स हि जीवति ॥ १३ ॥

अनभिज्ञाय शास्त्रार्थान् पुरुषाः पशुबुद्धयः ।
प्रागल्भ्याद्वक्तुमिच्छन्ति मन्त्रेष्वभ्यन्तरीकृताः ॥ १४ ॥

अशास्त्रविदुषां तेषां न कार्यमहितं वचः ।
अर्थशास्त्रानभिज्ञानां विपुलां श्रियमिच्छताम् ॥ १५ ॥

अहितं च हिताकारं धाष्ट्र्याज्जल्पन्ति ये नराः ।
अवेक्ष्य मन्त्रबाह्यास्ते कर्तव्याः कृत्यदूषणाः ॥ १६ ॥

विनाशयन्तो भर्तारं सहिताः शत्रुभिर्बुधैः ।
विपरीतानि कृत्यानि कारयन्तीह मन्त्रिणः ॥ १७ ॥

तान्भर्ता मित्रसङ्काशानमित्रान्मन्त्रनिर्णये ।
व्यवहारेण जानीयात्सचिवानुपसंहितान् ॥ १८ ॥

चपलस्येह कृत्यानि सहसाऽनुप्रधावतः ।
छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥ १९ ॥

यो हि शत्रुमभिज्ञाय नात्मानमभिरक्षति ।
अवाप्नोति हि सोऽनर्थान्स्थानाच्च व्यपरोप्यते ॥ २० ॥
यदुक्तमिह ते पूर्वं क्रियतामनुजेन च ।
तदेव नो हितं कार्यं यदिच्छसि च तत्कुरु ॥ २१ ॥
तत्तु श्रुत्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णस्य भाषितम् ।
भ्रुकुटिं चैव सञ्चक्रे क्रुद्धश्चैनमभाषत ॥ २२ ॥
मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससि ।
किमेवं वाक्छ्रमं कृत्वा काले युक्तं विधीयताम् ॥ २३ ॥
विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वा बलवीर्याश्रयेण वा ।
नाभिपन्नमिदानीं यद्व्यर्थास्तस्य पुनः कथाः ॥ २४ ॥
अस्मिन्काले तु यद्युक्तं तदिदानीं विधीयताम् ।
गतं तु नानुशोचन्ति गतं तु गतमेव हि ॥ २५ ॥
ममापनयजं दोषं विक्रमेण समीकुरु ।
यदि खल्वस्ति मे स्नेहो विक्रमं वाऽवगच्छसि ॥ २६ ॥
यदि वा कार्यमेतत्ते हृदि कार्यतमं मतम् ॥ २७ ॥
स सुहृद्यो विपन्नार्थं दीनमभ्यवपद्यते ।
स बन्धुर्योपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते ॥ २८ ॥
तमथैवं ब्रुवाणं तु वचनं धीरदारुणम् ।
रुष्टोऽयमिति विज्ञाय शनैः श्लक्ष्णमुवाच ह ॥ २९ ॥
अतीव हि समालक्ष्य भ्रातरं क्षुभितेन्द्रियम् ।
कुम्भकर्णः शनैर्वाक्यं बभाषे परिसान्त्वयन् ॥ ३० ॥

अलं राक्षसराजेन्द्र सन्तापमुपपद्य ते ।
रोषं च संपरित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥ ३१ ॥
नैतन्मनसि कर्तव्यं मयि जीवति पार्थिव ।
तमहं नाशयिष्यामि यत्कृते परितप्यसे ॥ ३२ ॥
अवश्यं तु हितं वाच्यं सर्वावस्थं मया तव ।
बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ॥ ३३ ॥
सदृशं यत्तु कालेऽस्मिन्कर्तुं स्निग्धेन बन्धुना ।
शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणं मया रणे ॥ ३४ ॥
अद्य पश्य महाबाहो मया समरमूर्धनि ।
हते रामे सह भ्रात्रा द्रवन्तीं परवाहिनीम् ॥ ३५ ॥
अद्य रामस्य तद्दृष्ट्वा मयाऽऽनीतं रणाच्छिरः ।
सुखी भव महाबाहो सीता भवतु दुःखिता ॥ ३६ ॥
अद्य रामस्य पश्यन्तु निधनं सुमहत्प्रियम् ।
लङ्कायां राक्षसाः सर्वे ये ते निहतबान्धवाः ॥ ३७ ॥
अद्य शोकपरीतानां स्वबन्धुवधकारणात् ।
शत्रोर्युधि विनाशेन करोम्यास्रप्रमार्जनम् ॥ ३८ ॥
अद्य पर्वतसङ्काशं ससूर्यमिव तोयदम् ।
विकीर्णं पश्य समरे सुग्रीवं प्लवगोत्तमम् ॥ ३९ ॥
कथं त्वं राक्षसैरेभिर्मया च परिरक्षितः ।
जिघांसुभिर्दाशरथिं वध्यसे त्वमिहानघ ॥ ४० ॥
अथ पूर्वं हते तेन मयि त्वां हन्ति राघवः ।
नाहमात्मनि सन्तापं गच्छेयं राक्षसाधिप ॥ ४१ ॥

कामं त्विदानीमपि मां व्यादिश त्वं परन्तप ।
न परः प्रेषणीयस्ते युद्धायातुलविक्रम ॥ ४२ ॥
अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबल ॥ ४३ ॥
यदि शक्रो यदि यमो यदि पावकमारुतौ ।
तानहं योधयिष्यामि कुबेरवरुणावपि ॥ ४४ ॥
गिरिमात्रशरीरस्य शितशूलधरस्य मे ।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभीयाच्च पुरन्दरः ॥ ४५ ॥
अथ वा त्यक्तशस्त्रस्य मृद्नतस्तरसा रिपून् ।
न मे प्रतिमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो जिजीविषुः ॥ ४६ ॥
नैव शक्त्या न गदया नासिना निशितैः शरैः ।
हस्ताभ्यामेव संरब्धो हनिष्याम्यपि वज्रिणम् ॥ ४७ ॥
यदि मे मुष्टिवेगं स राघवोऽद्य सहिष्यते ।
ततः पास्यन्ति बाणौघा रुधिरं राघवस्य तु ॥ ४८ ॥
अचिन्तयित्वा बाणौघान्रुधिरं राघवस्य च ।
लक्ष्मणस्य च पास्यामि चिरकालं पिपासितः ॥ ४९ ॥
चिन्तया बाध्यसे राजन्किमर्थं मयि तिष्ठति ।
सोऽहं शत्रुविनाशाय तव निर्यातुमुद्यतः ॥ ५० ॥
मुञ्च रामाद्भयं राजन्हनिष्यामीह संयुगे ।
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं च महाबलम् ॥
हनुमन्तं च रक्षोघ्नं लङ्का येन प्रदीपिता ॥ ५१ ॥
हरींश्चापि हनिष्यामि संयुगे समवस्थितान् ।
असाधारणमिच्छामि तव दातुं महद्यशः ॥ ५२ ॥

यदि चेन्द्राद्भयं राजन्यदि वाऽपि स्वयम्भुवः ।
तत्तेऽहं नाशयिष्यामि नैशं तम इवांशुमान् ॥ ५३ ॥
अपि देवाः शयिष्यन्ते क्रुद्धे मयि महीतले ।
यमं च शमयिष्यामि भक्षयिष्यामि पावकम् ॥
आदित्यं पातयिष्यामि सनक्षत्रं महीतले ॥ ५४ ॥
शतक्रतुं वधिष्यामि पास्यामि वरुणालयम् ।
पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम् ॥ ५५ ॥
दीर्घकालं प्रसुप्तस्य कुम्भकर्णस्य विक्रमम् ।
अद्य पश्यन्तु भूतानि भक्ष्यमाणानि सर्वशः ॥ ५६ ॥
नन्विदं त्रिदिवं सर्वमाहारस्य न पूर्यते ॥ ५७ ॥

वधेन ते दाशरथेः सुखार्हं
सुखं समाहर्तुमहं व्रजामि ।
निहत्य रामं सह लक्ष्मणेन
खादामि सर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ५८ ॥
रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारुणीं
कुरुष्व कृत्यानि विनीयतां ज्वरः ।
मयाऽद्य रामे गमिते यमक्षयं
चिराय सीता वशगा भविष्यति ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17401 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2726

## चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

### महोदरेण कुम्भकर्णभर्त्सनम् ॥

तदुक्तमतिकायस्य बलिनो बाहुशालिनः ।
कुम्भकर्णस्य वचनं श्रुत्वोवाच महोदरः ॥ १ ॥

कुम्भकर्ण कुले जातो धृष्टः प्राकृतदर्शनः ।
अवलिप्तो न शक्नोषि कृत्यं सर्वत्र वेदितुम् ॥ २ ॥

न हि राजा न जानीते कुम्भकर्ण नयानयौ ।
त्वं तु कैशोरकाद्धृष्टः केवलं वक्तुमिच्छसि ॥ ३ ॥

स्थानं वृद्धिं च हानिं च देशकालविभागवित् ।
आत्मनश्च परेषां च बुध्यते राक्षसर्षभः ॥ ४ ॥

यत्त्वशक्यं बलवता कर्तुं प्राकृतबुद्धिना ।
अनुपासितवृद्धेन कः कुर्यात्तादृशं बुधः ॥ ५ ॥

यांस्तु धर्मार्थकामांस्त्वं ब्रवीषि पृथगाश्रयान् ।
अनुबोद्धुं स्वभावे तान्नहि लक्षणमस्ति ते ॥ ३ ॥

कर्म चैव हि सर्वेषां कारणानां प्रयोजनम् ।
श्रेयः पापीयसां चात्र फलं भवति कर्मणाम् ॥ ७ ॥

निःश्रेयसफलावेव धर्मार्थावितरावपि ।
अधर्मानर्थयोः प्राप्तिः फलं च प्रत्यवायिकम् ॥ ८ ॥

ऐहलौकिकपारत्रं कर्म पुंभिर्निषेव्यते ।
कर्माण्यपि तु कल्यानि लभते काममास्थितः ॥ ९ ॥

तत्र क्लृप्तमिदं राज्ञा हृदि कार्यं मतं च नः ।
शत्रौ हि साहसं यत्स्यात्किमिवात्रापनीयताम् ॥ १० ॥

एकस्यैवाभियाने तु हेतुर्यः प्रकृतस्त्वया ।
तत्राप्यनुपपन्नं ते वक्ष्यामि यद्साधु च ॥ ११ ॥

येन पूर्वं जनस्थाने बहवोऽतिबला हताः ।
राक्षसा राघवं तं त्वं कथमेको जयिष्यसि ॥ १२ ॥

ये पुरा निर्जितास्तेन जनस्थाने महौजसः ।
राक्षसांस्तान्पुरे सर्वान्भीतानद्यापि पश्यसि ॥ १३ ॥

तं सिंहमिव संक्रुद्धं रामं दशरथात्मजम् ।
सर्पं सुप्तमिवाबुध्य प्रबोधयितुमिच्छसि ॥ १४ ॥

ज्वलन्तं तेजसा नित्यं क्रोधेन च दुरासदम् ।
कस्तं मृत्युमिवासह्यमासादयितुमर्हति ॥ १५ ॥

संशयस्थमिदं सर्वं शत्रोः प्रतिसमासने ।
एकस्य गमनं तत्र न हि मे रोचते भृशम् ॥ १६ ॥

हीनार्थः सुसमृद्धार्थं को रिपुं प्राकृतं यथा ।
निश्चित्य जीवितत्यागे वशमानेतुमिच्छति ॥ १७ ॥

यस्य नास्ति मनुष्येषु सदृशो राक्षसोत्तम ।
कथमाशंससे योद्धुं तुल्येनेन्द्रविवस्वतोः ॥ १८ ॥

एवमुक्त्वा तु संरब्धः कुम्भकर्णं महोदरः ।
उवाच रक्षसां मध्ये रावणं लोकरावणम् ॥ १९ ॥

लब्ध्वा पुनस्तां वैदेहीं किमर्थं संप्रजल्पसि ।
यदीच्छसि तदा सीता वशगा ते भविष्यति ॥ २० ॥

दृष्टः कश्चिदुपायो मे सीतोपस्थानकारकः ।
रुचिरश्चेत्त्वया बुद्ध्या राक्षसेश्वर तं शृणु ॥ २१ ॥

अहं द्विजिह्वः संह्रादी कुम्भकर्णो वितर्दनः ।
पञ्च रामवधायैते निर्यान्तीत्यवघोषय ॥ २२ ॥

ततो गत्वा वयं युद्धं दास्यामस्तस्य यत्नतः ।
जेष्यामो यदि ते शत्रून्नोपायैः कृत्यमस्ति नः ॥ २३ ॥

अथ जीवति नः शत्रुर्वयं च कृतसंयुगाः ।
ततस्तदभिपत्स्यामो मनसा यत्समीक्षितम् ॥ २४ ॥

वयं युद्धादिहैष्यामो रुधिरेण समुक्षिताः ।
विदार्य स्वतनुं बाणै रामनामाङ्कितैः शितैः ॥ २५ ॥

भक्षितो राघवोऽस्माभिर्लक्ष्मणश्चेति वादिनः ।
तव पादौ ग्रहीष्यामस्त्वं नः कामं प्रपूरय ॥ २६ ॥

ततोऽवघोषय पुरे गजस्कन्धेन पार्थिव ।
हतो रामः सह भ्रात्रा ससैन्य इति सर्वतः ॥ २७ ॥

प्रीतो नाम ततो भूत्वा भृत्यानां त्वमरिन्दम ।
भोगांश्च परिवारांश्च कामांश्च वसु दापय ॥ २८ ॥

ततो माल्यानि वासांसि वीराणामनुलेपनम् ।
पेयं च बहु योधेभ्यः स्वयं च मुदितः पिब ॥ २९ ॥

ततोऽस्मिन्बहुलीभूते कौलीने सर्वतो गते ।
भक्षितःससुहृद्रामो राक्षसैरिति विश्रुते ॥ ३० ॥

प्रविश्याश्वास्य चापि त्वं सीतां रहसि सान्त्वय ।
धनधान्यैश्च कामैश्च रत्नैश्चैनां प्रलोभय ॥ ३१ ॥

अनयोपधया राजन्भयशोकानुबन्धया ।
अकामा त्वद्वशं सीता नष्टनाथा गमिष्यति ॥ ३२ ॥

रञ्जनीयं हि भर्तारं विनष्टमवगम्य सा ।
नैराश्यात्स्त्रीलघुत्वाच्च त्वद्वशं प्रतिपत्स्यते ॥ ३३ ॥

सा पुरा सुखसंवृद्धा सुखार्हा दुःखकर्शिता ।
त्वय्यधीनं सुखं ज्ञात्वा सर्वथोपगमिष्यति ॥ ३४ ॥

एतत्सुनीतं मम दर्शनेन रामं हि दृष्ट्वैव भवेदनर्थः ।
इहैव ते सेत्स्यति मोत्सुको भूर्महानयुद्धेन सुखस्य लाभः ॥

अदृष्टसैन्यो ह्यनवाप्तसंशयो रिपूनयुद्धेन जयन्नराधिपः ।
यशश्च पुण्यं च महन्महीपते श्रियं च कीर्तिं च चिरं समश्नुते॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17437 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2762

## पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

### युद्धाय कुम्भकर्णनिर्याणम् ॥

स तथोक्तस्तु निर्भर्त्स्य कुम्भकर्णो महोदरम् ।
अब्रवीद्राक्षसश्रेष्ठं भ्रातरं रावणं ततः ॥ १ ॥

सोऽहं तव भयं घोरं वधात्तस्य दुरात्मनः ।
रामस्याद्य प्रमार्जामि निर्वैरो हि सुखी भव ॥ २ ॥

गर्जन्ति न वृथा शूरा निर्जला इव तोयदाः ।
पश्य सम्पाद्यमानं तु गर्जितं युधि कर्मणा ॥ ३ ॥

न मर्षयन्ति चात्मानं संभावयति नात्मना ।
अदर्शयित्वा शूरास्तु कर्म कुर्वन्ति दुष्करम् ॥ ४ ॥

विक्लबानामबुद्धीनां राज्ञा पण्डितमानिनाम् ।
शृण्वता सादितमिदं त्वद्विधानां महोदर ॥ ५ ॥

युद्धे कापुरुषैर्नित्यं भवद्भिः प्रियवादिभिः ।
राजानमनुगच्छद्भिः कृत्यमेतद्धि सादितम् ॥ ६ ॥

राजशेषा कृता लङ्का क्षीणः कोशो बलं हतम् ।
राजानमिममासाद्य सुहृच्चिह्नममित्रकम् ॥ ७ ॥

एष निर्याम्यहं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये ।
दुर्नयं भवतामद्य समीकर्तुमिहाहवे ॥ ८ ॥

एवमुक्तवतो वाक्यं कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं प्रहसन्राक्षसाधिपः ॥ ९ ॥

महोदरोऽयं रामात्तु परित्रस्तो न संशयः ।
न हि रोचयते तात युद्धं युद्धविशारद ॥ १० ॥

कश्चिन्मे त्वत्समो नास्ति सौहृदेन बलेन च ।
गच्छ शत्रुवधाय त्वं कुम्भकर्ण जयाय च ॥ ११ ॥

शयानः शत्रुनाशार्थं भवान्संबोधितो मया ।
अयं हि कालः सुहृदां राक्षसानामरिन्दम ॥ १२ ॥

तद्गच्छ शूलमादाय पाशहस्त इवान्तकः ।
वानरान्राजपुत्रौ च भक्षयादित्यतेजसौ ॥ १३ ॥

समालोक्य तु ते रूपं विद्रविष्यन्ति वानराः ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि हृदये प्रस्फुटिष्यतः ॥ १४ ॥

एवमुक्त्वा महाराजः कुम्भकर्णं महाबलम् ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने राक्षसपुङ्गवः ॥ १५ ॥

कुम्भकर्णबलाभिज्ञो जानंस्तस्य पराक्रमम् ।
बभूव मुदितो राजा शशाङ्क इव निर्मलः ॥ १६ ॥

इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः ॥ १७ ॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कुम्भकर्णः समुद्यतः ।
आददे निशितं शूलं वेगाच्छत्रुनिबर्हणम् ॥ १८ ॥

सर्वकालायसं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
इन्द्राशनिसमं भीमं वज्रप्रतिमगौरवम् ॥ १९ ॥

देवदानवगन्धर्वयक्षकिन्नरसूदनम् ।
रक्तमाल्यं महाधाम स्वतश्चोद्गतपावकम् ॥ २० ॥

आदाय निशितं शूलं शत्रुशोणितरञ्जितम् ।
कुम्भकर्णो महातेजा रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥

गमिष्याम्यहमेकाकी तिष्ठत्विह बलं मम ।
अद्य तान्क्षुभितान्क्रुद्धो भक्षयिष्यामि वानरान् ॥ २२ ॥

कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥

सैन्यैः परिवृतो गच्छ शूलमुद्गरपाणिभिः ।
वानरा हि महात्मानः शीघ्राः सुव्यवसायिनः ॥ २४ ॥

एकाकिनं प्रमत्तं वा नयेयुर्दशनैः क्षयम् ।
तस्मात्परमदुर्धर्षैः सैन्यैः परिवृतो व्रज ॥ २५ ॥

रक्षसामहितं सर्वं शत्रुपक्षं निषूदय ॥ २६ ॥

अथासनात्समुत्पत्य स्रजं मणिकृतान्तराम् ।
आबबन्ध महातेजाः कुम्भकर्णस्य रावणः ॥ २७ ॥

अङ्गदान्यङ्गुलीवेष्टान्वराण्याभरणानि च ।
हारं च शशिसङ्काशमाबबन्ध महात्मनः ॥ २८ ॥

दिव्यानि च सुगन्धीनि माल्यदामानि रावणः ।
श्रोत्रे चासञ्जयामास श्रीमती चास्य कुण्डले ॥ २९ ॥

काञ्चनाङ्गदकेयूरनिष्काभरणभूषितः ।
कुम्भकर्णो बृहत्कर्णः सुहुतोऽग्निरिवाबभौ ॥ ३० ॥

श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन व्यराजत ।
अमृतोत्पादने नद्धो भुजङ्गेनेव मन्दरः ॥ ३१ ॥
स काञ्चनं भारसहं निवातं विद्युत्प्रभं दीप्तमिवात्मभासा ।
आबध्यमानः कवचं रराजे संध्याभ्रसंवीत इवाद्रिराजः ॥
सर्वाभरणसर्वाङ्गः शूलपाणिः स राक्षसः ।
त्रिविक्रमकृतोत्साहो नारायण इवाबभौ ॥ ३३ ॥
भ्रातरं संपरिष्वज्य कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
प्रणम्य शिरसा तस्मै संप्रतस्थे महाबलः ॥ ३४ ॥
निष्पतन्तं महाकायं महानादं महाबलम् ।
तमाशीभिः प्रशस्ताभिः प्रेषयामास रावणः ॥ ३५ ॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः सैन्यैश्चापि वरायुधैः ।
तं गजैश्च तुरङ्गैश्च स्यन्दनैश्चाम्बुदस्वनैः ॥ ३६ ॥
अनुजग्मुर्महात्मानं रथिनो रथिनां वरम् ॥ ३७ ॥
सर्पैरुष्ट्रैः खरैरश्वैः सिंहद्विपमृगद्विजैः ।
अनुजग्मुश्च तं घोरं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ३८ ॥
स पुष्पवर्षैरवकीर्यमाणो धृतातपत्रः शितशूलपाणिः ।
मदोत्कटः शोणितगन्धमत्तो विनिर्ययौ दानवदेवशत्रुः ॥
पदातयश्च बहवो महानादा महाबलाः ।
अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षाः शस्त्रपाणयः ॥ ४० ॥
रक्ताक्षाः सुमहाकाया नीलाञ्जनचयोपमाः ।
शूलानुद्यम्य खड्गांश्च निशितांश्च परश्वधान् ॥ ४१ ॥
बहुव्यामांश्च परिघान्गदाश्च मुसलानि च ।

तालस्कन्धांश्च विपुलान्क्षेपणीयान्दुरासदान् ॥ ४२ ॥
अथान्यद्वपुरादाय दारुणं घोरदर्शनम् ।
निष्पपात महातेजाः कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ४३ ॥
धनुःशतपरीणाहः स षट्छतसमुच्छ्रितः ।
रौद्रः शकटचक्राक्षो महापर्वतसन्निभः ॥ ४४ ॥
संनिपत्य च रक्षांसि दग्धशैलोपमो महान् ।
कुम्भकर्णो महावक्त्रः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४५ ॥
अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः ।
निर्दहिष्यामि संक्रुद्धः शलभानिव पावकः ॥ ४६ ॥
नापराध्यन्ति मे कामं वानरा वनचारिणः ।
जातिरस्मद्विधानां सा पुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४७ ॥
पुररोधस्य मूलं तु राघवः सहलक्ष्मणः ।
हते तस्मिन्हतं सर्वं तं वधिष्यामि संयुगे ॥ ४८ ॥
एवं तस्य ब्रुवाणस्य कुम्भकर्णस्य राक्षसाः ।
नादं चक्रुर्महाघोरं कम्पयन्त इवार्णवम् ॥ ४९ ॥
तस्य निष्पततस्तूर्णं कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
बभूवुर्घोररूपाणि निमित्तानि समन्ततः ॥ ५० ॥
उल्काशनियुता मेघा बभूवुर्गर्दभारुणाः ।
ससागरवना चैव वसुधा समकम्पत ॥ ५१ ॥
घोररूपाः शिवा नेदुः सज्वालकबलैर्मुखैः ।
मण्डलान्यपसव्यानि बबन्धुश्च विहङ्गमाः ॥ ५२ ॥

निष्पपात च मालेव गृध्रोऽस्य पथि गच्छतः ।
प्रास्फुरन्नयनं चास्य सव्यो बाहुश्च कम्पते ॥ ५३ ॥
निष्पपात तदा चोल्का ज्वलन्ती भीमनिस्वना ।
आदित्यो निष्प्रभश्चासीन्न प्रवाति सुखोऽनिलः ॥ ५४ ॥
अचिन्तयन्महोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान् ।
निर्ययौ कुम्भकर्णस्तु कृतान्तबलचोदितः ॥ ५५ ॥
स लङ्घयित्वा प्राकारं पद्भ्यां पर्वतसन्निभः ।
ददर्शाभ्रघनप्रख्यं वानरानीकमद्भुतम् ॥ ५६ ॥
ते दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं वानराः पर्वतोपमम् ।
वायुनुन्ना इव घना ययुः सर्वा दिशस्तदा ॥ ५७ ॥
तद्वानरानीकमतिप्रचण्डं दिशो द्रवच्छिन्नमिवाभ्रजालम् ।
स कुम्भकर्णः समवेक्ष्य हर्षान्ननाद भूयो घनवद्घनाभः ॥
ते तस्य घोरं निनदं निशम्य यथा निनादं दिवि वारिदस्य।
पेतुर्धरण्यां बहवः प्लवङ्गा निकृत्तमूला इव सालवृक्षाः ॥

विपुलपरिघवान्स कुम्भकर्णो
रिपुनिधनाय विनिःसृतो महात्मा ।
कपिगणभयमाददत्सुभीमं
प्रभुरिव किङ्करदण्डवान्युगान्ते ॥ ६० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17497 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2822

## षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

### कुम्भकर्णयुद्धम् ॥

स लङ्घयित्वा प्राकारं गिरिकूटोपमो महान् ।
निर्ययौ नगरात्तूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १ ॥

स ननाद महानादं समुद्रमभिनादयन् ।
जनयन्निव निर्घातान्विधमन्निव पर्वतान् ॥ २ ॥

तमवध्यं मघवता यमेन वरुणेन वा ।
प्रेक्ष्य भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवुः ॥ ३ ॥

तांस्तु विप्रद्रुतान्दृष्ट्वा वालिपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् ।
नलं नीलं गवाक्षं च कुमुदं च महाबलम् ॥ ४ ॥

आत्मानमत्र विस्मृत्य वीर्याण्यभिजनानि च ।
क्व गच्छथ भयत्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा ॥ ५ ॥

साधु सौम्या निवर्तध्वं किं प्राणान्परिरक्षथ ।
नालं युद्धाय वै रक्षो महतीयं विभीषिका ॥ ६ ॥

महतीमुत्थितामेनां राक्षसानां विभीषिकाम् ।
विक्रमाद्विधमिष्यामो निवर्तध्वं प्लवङ्गमाः ॥ ७ ॥

कृच्छ्रेण तु समाश्वास्य सङ्गम्य च ततस्ततः ।
वृक्षाद्रिहस्ता हरयः संप्रतस्थू रणाजिरम् ॥ ८ ॥

ते निवृत्य तु संक्रुद्धाः कुम्भकर्णं वनौकसः ।
निजघ्नुः परमक्रुद्धाः समदा इव कुञ्जराः ॥ ९ ॥

प्रांशुभिर्गिरिशृङ्गैश्च शिलाभिश्च महाबलः ।
पादपैः पुष्पिताग्रैश्च हन्यमानो न कम्पते ॥ १० ॥

तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्ते शतशः शिलाः ।
पादपाः पुष्पिताग्राश्च भग्नाः पेतुर्महीतले ॥ ११ ॥

सोऽपि सैन्यानि संक्रुद्धो वानराणां महौजसाम् ।
ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ १२ ॥

लोहितार्द्रास्तु बहवः शेरते वानरर्षभाः ।
निरस्ताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥ १३ ॥

लङ्घयन्तः प्रधावन्तो वानरा नावलोकयन् ॥ १४ ॥

केचित्समुद्रे पतिताः केचिद्गगनमाश्रिताः ।
वध्यमानास्तु ते वीरा राक्षसेन बलीयसा ॥ १५ ॥

सागरं येन ते तीर्णाः पथा तेन प्रदुद्रुवुः ॥ १६ ॥

ते स्थलानि तथा निम्नं विषण्णवदनाः भयात् ।
ऋक्षा वृक्षान्समारूढाः केचित्पर्वतमाश्रिताः ॥ १७ ॥

ममज्जुरर्णवे केचिद्गुहाः केचित्समाश्रिताः ।
निषेदुः प्लवगाः केचित्केचिन्नैवावतस्थिरे ॥ १८ ॥

केचिद्भूमौ निपतिताः केचित्सुप्ता मृता इव ।
तान्समीक्ष्याङ्गदो भग्नान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

अवतिष्ठत युध्यामो निवर्तध्वं प्लवङ्गमाः ।
भग्नानां वो न पश्यामि परिगम्य महीमिमाम् ॥ २० ॥

स्थानं सर्वे निवर्तध्वं किं प्राणान्परिरक्षथ ॥ २१ ॥

निरायुधानां द्रवतामसङ्गगतिपौरुषाः ।
दारा ह्यपहसिष्यन्ति स वै घातस्तु जीविनाम् ॥ २२ ॥

कुलेषु जाताः सर्वे स्म विस्तीर्णेषु महत्सु च ।
क्व गच्छथ भयत्रस्ता हरयः प्राकृता यथा ॥ २३ ॥

अनार्याः खलु यद्भीतास्त्यक्त्वा वीर्यं प्रधावत ॥ २४ ॥

विकत्थनानि वो यानि तदा वै जनसंसदि ।
तानि वः क्व नु यातानि सोदग्राणि महान्ति च ॥

भीरुप्रवादाः श्रूयन्ते यस्तु जीवति धिक्कृतः ।
मार्गः सत्पुरुषैर्जुष्टः सेव्यतां त्यज्यतां भयम् ॥ २६ ॥

शयामहेऽथ निहताः पृथिव्यामल्पजीविताः ।
दुष्प्रापं ब्रह्मलोकं वा प्राप्नुमो युधि सूदिताः ॥ २७ ॥

संप्राप्नुयामः कीर्तिं वा निहत्वा शत्रुमाहवे ।
जीवितं वीरलोकस्य मोक्ष्यामो वसु वानराः ॥ २८ ॥

न कुम्भकर्णः काकुत्स्थं दृष्ट्वा जीवन्गमिष्यति ।
दीप्यमानमिवासाद्य पतङ्गो ज्वलनं यथा ॥ २९ ॥

पलायनेन चोद्दिष्टाः प्राणान्रक्षामहे वयम् ।
एकेन बहवो भग्ना यशो नाशं गमिष्यति ॥ ३० ॥

एवं ब्रुवाणं तं शूरमङ्गदं कनकाङ्गदम् ।
द्रवमाणास्ततो वाक्यमूचुः शूरविगर्हितम् ॥ ३१ ॥

कृतं नः कदनं घोरं कुम्भकर्णेन रक्षसा ।
न स्थानकालो गच्छामो दयितं जीवितं हि नः ॥

एतावदुक्त्वा वचनं सर्वे ते भेजिरे दिशः ।
भीमं भीमाक्षमायान्तं दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥ ३३ ॥

द्रवमाणास्तु ते वीरा अङ्गदेन वलीमुखाः ।
सान्त्वैश्चैवानुमानैश्च ततः सर्वे निवर्तिताः ॥ ३४ ॥

प्रहर्षमुपनीताश्च वालिपुत्रेण धीमता ।
आज्ञाप्रतीक्षास्तस्थुश्च सर्वे वानरयूथपाः ॥ ३५ ॥

ऋषभशरभमैन्दधूम्रनीलाः
कुमुदसुषेणगवाक्षरम्भताराः ।
द्विविदपनसवायुपुत्रमुख्या-
स्त्वरिततराभिमुखं रणं प्रयाताः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17533 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 2858

## सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

### कुम्भकर्णवधः ॥

ते निवृत्ता महाकायाः श्रुत्वाऽङ्गदवचस्तदा ।
नैष्ठिकीं बुद्धिमादाय सर्वे संग्रामकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

समुदीरितवीर्याश्च समारोपितविक्रमाः ।
पर्यवस्थापिता वाक्यैरङ्गदेन वलीमुखाः ॥ २ ॥

प्रयाताश्च गता हर्षं मरणे कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः सुतुमुलं युद्धं वानरास्त्यक्तजीविताः ॥ ३ ॥

अथ वृक्षान्महाकायाः सानूनि सुमहान्ति च ।
वानरास्तूर्णमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिद्रुताः ॥ ४ ॥

स कुम्भकर्णः संक्रुद्धो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
अर्दयन्सुमहाकायः समन्ताद्व्याक्षिपद्रिपून् ॥ ५ ॥

शतानि सप्त चाष्टौ च सहस्राणि च वानराः ।
प्रकीर्णाः शेरते भूमौ कुम्भकर्णेन पोथिताः ॥ ६ ॥

षोडशाष्टौ च दश च विंशत्त्रिंशत्तथैव च ।
परिक्षिप्य च बाहुभ्यां खादन्विपरिधावति ॥ ७ ॥

भक्षयन्भृशसंक्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ॥ ८ ॥

कृच्छ्रेण च समाश्वस्ताः संगम्य च ततस्ततः ।
वृक्षाद्रिहस्ता हरयस्तस्थुः सङ्ग्राममूर्धनि ॥ ९ ॥

ततः पर्वतमुत्पाट्य द्विविदः प्लवगर्षभः ।
दुद्राव गिरिशृङ्गाभं विलंब इव तोयदः ॥ १० ॥

तं समुत्पत्य चिक्षेप कुम्भकर्णस्य वानरः ।
तमप्राप्तो महाशैलस्तस्य सैन्येऽपतत्तदा ॥ ११ ॥

ममर्दाश्वान्गजांश्चापि रथांश्चैव नगोत्तमः ।
तानि चान्यानि रक्षांसि पुनश्चान्यद्गिरेः शिरः ॥ १२ ॥

उत्पाट्य द्विविदो वेगान्ममर्द प्लवगर्षभः ॥ १३ ॥

तच्छैलशृङ्गाभिहतं हताश्वं हतसारथि ।
रक्षसां रुधिरक्लिन्नं बभूवायोधनं महत् ॥ १४ ॥

रथिनो वानरेन्द्राणां शरैः कालान्तकोपमैः ।
शिरांसि नदतां जह्रुः सहसा भीमनिस्वनाः ॥ १५ ॥

वानराश्च महात्मानः समुत्पाट्य महाद्रुमान् ।
रथानश्वान्गजानुष्ट्रान्राक्षसानभ्यसूदयन् ॥ १६ ॥

हनुमाञ्छैलशृङ्गाणि वृक्षांश्च विविधान्बहून् ।
ववर्ष कुम्भकर्णस्य शिरस्यम्बरमास्थितः ॥ १७ ॥

तानि पर्वतशृङ्गाणि शूलेन स बिभेद ह ।
बभञ्ज वृक्षवर्षं च कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १८ ॥

ततो हरीणां तदनीकमुग्रं दुद्राव शूलं निशितं प्रगृह्य ।
तस्थौ ततोऽस्यापततः पुरस्तान् महीधराग्रं हनुमान्प्रगृह्य ॥

स कुम्भकर्णं कुपितो जघान वेगेन शैलोत्तमभीमकायम् ।
स चुक्षुभे तेन तदाऽभिभूतो मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः ॥

स शूलमाविध्य तडित्प्रकाशं गिरिं यथा प्रज्वलिताग्रशृङ्गम् ।
बाह्वन्तरे मारुतिमाजघान गुहोऽचलं क्रौञ्चमिवोग्रशक्त्या ॥

स शूलनिर्भिन्नमहाभुजान्तरः प्रविह्वलः शोणितमुद्वमन्मुखात् ।
ननाद भीमं हनुमान्महाहवे युगान्तमेघस्तनितस्वनोपमम् ॥

ततो विनेदुः सहसा प्रहृष्टा रक्षोगणास्तं व्यथितं समीक्ष्य ।
प्लवङ्गमास्तु व्यथिता भयार्ताः प्रदुद्रुवुः संयति कुम्भकर्णात् ॥

ततस्तु नीलो बलवान्पर्यवस्थापयन्बलम् ।
प्रविचिक्षेप शैलाग्रं कुम्भकर्णाय धीमते ॥ २४ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य मुष्टिनाऽभिजघान ह ।
मुष्टिप्रहाराभिहतं तच्छैलाग्रं व्यशीर्यत ॥ २५ ॥

सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात महीतले ॥ २६ ॥

ऋषभः शरभो नीलो गवाक्षो गन्धमादनः ।
पञ्च वानरशार्दूलाः कुम्भकर्णमुपाद्रवन् ॥ २७ ॥

शैलैर्वृक्षैस्तलैः पादैर्मुष्टिभिश्च महाबलाः ।
कुम्भकर्णं महाकायं सर्वतोऽभिप्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥

स्पर्शानिव प्रहारांस्तान्वेदयानो न विव्यथे ।
ऋषभं तु महावेगं बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २९ ॥

कुम्भकर्णभुजाभ्यां तु पीडितो वानरर्षभः ।
निपपातर्षभो भीमः प्रमुखाद्वान्तशोणितः ॥ ३० ॥

मुष्टिना शरभं हत्वा जानुना नीलमाहवे ।
आजघान गवाक्षं तु तलेनेन्द्ररिपुस्तदा ॥ ३१ ॥

पादेनाभ्यहनत्क्रुद्धस्तरसा गन्धमादनम् ।
दत्तप्रहारव्यथिता मुमुहुः शोणितोक्षिताः ॥ ३२ ॥

निपेतुस्ते तु मेदिन्यां निकृत्ता इव किंशुकाः ॥ ३३ ॥

तेषु वानरमुख्येषु पतितेषु महात्मसु ।
वानराणां सहस्राणि कुम्भकर्णं प्रदुद्रुवुः ॥ ३४ ॥

तं शैलमिव शैलाभाः सर्वे ते प्लवगर्षभाः ।
समारुह्य समुत्पत्य ददंशुश्च महाबलाः ॥ ३५ ॥

तं नखैर्दशनैश्चापि मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ।
कुम्भकर्णं महाकायं ते जघ्नुः प्लवगर्षभाः ॥ ३६ ॥

स वानरसहस्रैस्तैराचितः पर्वतोपमः ।
रराज राक्षसव्याघ्रो गिरिरात्मरुहैरिव ॥ ३७ ॥

बाहुभ्यां वानरान्सर्वान्प्रगृह्य सुमहाबलः ।
भक्षयामास संक्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ॥ ३८ ॥

प्रक्षिप्ताः कुम्भकर्णेन वक्त्रे पातालसन्निभे ।
नासापुटाभ्यां निर्जग्मुः कर्णाभ्यां चैव वानराः ॥ ३९ ॥

भक्षयन्भृशसंक्रुद्धो हरीन्पर्वतसन्निभः ।
न जज्ञे पर्वताग्राणां निपातं राक्षसोत्तमः ॥ ४० ॥

बभञ्ज वानरान् सर्वान् संक्रुद्धो राक्षसोत्तमः ॥ ४१ ॥

मांसशोणितसंक्लेदां भूमिं कुर्वन्स राक्षसः ।
चचार हरिसैन्येषु कालाग्निरिव मूर्च्छितः ॥ ४२ ॥

वज्रहस्तो यथा शक्रः पाशहस्त इवान्तकः ।
शूलहस्तो बभौ संख्ये कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ४३ ॥

यथा शुष्काण्यरण्यानि ग्रीष्मे दहति पावकः ।
तथा वानरसैन्यानि कुम्भकर्णो विनिर्दहत् ॥ ४४ ॥

ततस्ते वध्यमानास्तु हतयूथा विनायकाः ।
वानरा भयसंविग्ना विनेदुर्विस्वरं भृशम् ॥ ४५ ॥

अनेकशो वध्यमानाः कुम्भकर्णेन वानराः ।
राघवं शरणं जग्मुर्व्यथिताः खिन्नचेतसः ॥ ४६ ॥

प्रभग्नान्वानरान्दृष्ट्वा वज्रहस्तसुतात्मजः ।
अभ्यधावत वेगेन कुम्भकर्णं महाहवे ॥ ४७ ॥

शैलशृङ्गं महद्गृह्य विनदंश्च मुहुर्मुहुः ।
त्रासयन्राक्षसान्सर्वान्कुम्भकर्णपदानुगान् ॥ ४८ ॥

चिक्षेप शैलशिखरं कुम्भकर्णस्य मूर्धनि ॥ ४९ ॥

स तेनाभिहतोऽत्यर्थं गिरिशृङ्गेण मूर्धनि ।
कुम्भकर्णः प्रजज्वाल कोपेन महता तदा ॥ ५० ॥

सोऽभ्यधावत वेगेन वालिपुत्रममर्षणः ।
कुम्भकर्णो महानादस्त्रासयन्सर्ववानरान् ॥ ५१ ॥

शूलं ससर्ज वै रोषादङ्गदे स महाबलः ॥ ५२ ॥

तमापतन्तं बुद्ध्वा तु युद्धमार्गविशारदः ।
लाघवान्मोचयामास बलवान्वानरर्षभः ॥ ५३ ॥

उत्पत्य चैनं सहसा तलेनोरस्यताडयत् ।
स तेनाभिहतः कोपात्प्रमुमोहाचलोपमः ॥ ५४ ॥

स लब्धसंज्ञो बलवान्मुष्टिमावर्त्य राक्षसः ।
अपहासेन चिक्षेप विसंज्ञः स पपात ह ॥ ५५ ॥

तस्मिन्प्लवगशार्दूले विसंज्ञे पतिते भुवि ।
तच्छूलं समुपादाय सुग्रीवमभिदुद्रुवे ॥ ५६ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य कुम्भकर्णं महाबलम् ।
उत्पपात तदा वीरः सुग्रीवो वानराधिपः ॥ ५७ ॥

पर्वताग्रं समुत्क्षिप्य समाविध्य महाकपिः ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ५८ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य कुम्भकर्णः प्लवङ्गमम् ।
तस्थौ विकृतसर्वाङ्गो वानरेन्द्रसमुन्मुखः ॥ ५९ ॥

कपिशोणितदिग्धाङ्गं भक्षयन्तं प्लवङ्गमान् ।
कुम्भकर्णं स्थितं दृष्ट्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६० ॥

पातिताश्च त्वया वीराः कृतं कर्म सुदुष्करम् ।
भक्षितानि च सैन्यानि प्राप्तं ते परमं यशः ॥ ६१ ॥

त्यज तद्वानरानीकं प्राकृतैः किं करिष्यसि ।
सहस्वैकनिपातं मे पर्वतस्यास्य राक्षस ॥ ६२ ॥

तद्वाक्यं हरिराजस्य सत्त्वधैर्यसमन्वितम् ।
श्रुत्वा राक्षसशार्दूलः कुम्भकर्णोऽब्रवीद्वचः ॥ ६३ ॥

प्रजापतेस्तु पौत्रस्त्वं तथैवर्क्षरजःसुतः ।
श्रुतपौरुषसंपन्नः कस्माद्गर्जसि वानर ॥ ६४ ॥

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य व्याविध्य शैलं सहसा मुमोच।
तेनाजघानोरसि कुम्भकर्णं शैलेन वज्राशनिसंनिभेन ॥

तच्छैलशृङ्गं सहसा विशीर्णं भुजान्तरे तस्य तदा विशाले ।
ततो विषेदुः सहसा प्लवङ्गा रक्षोगणाश्चापि मुदा विनेदुः ॥

स शैलशृङ्गाभिहतश्चुकोप ननाद कोपाच्च विवृत्य वक्त्रम् ।
व्याविध्य शूलं च तडित्प्रकाशं चिक्षेप हर्यृक्षपतेर्वधाय ॥

तत्कुम्भकर्णस्य भुजप्रविद्धं शूलं शितं काञ्चनधामजुष्टम् ।
क्षिप्रं समुत्पत्य निगृह्य दोर्भ्यां बभञ्ज वेगेन सुतोऽनिलस्य॥

कृतं भारसहस्रस्य शूलं कालायसं महत् ।
बभञ्ज जानुन्यारोप्य प्रहृष्टः प्लवगर्षभः ॥ ६९ ॥

शूलं भग्नं हनुमता दृष्ट्वा वानरवाहिनी ।
हृष्टा ननाद बहुशः सर्वतश्चापि दुद्रुवे ॥ ७० ॥

सिंहनादं च ते चक्रुः प्रहृष्टा वनगोचराः ।
मारुतिं पूजयांचक्रुर्दृष्ट्वा शूलं तथागतम् ॥ ७१ ॥

कालायसं भारसहस्रसारं शूलं शरत्सूर्यसमानकान्तिम् ।
भग्नं समीक्ष्य प्रसभं क्षणेन हृष्टा विनेदुः प्लवगाः समन्तात् ॥

स तत्तदा भग्नमवेक्ष्य शूलं चुकोप रक्षोधिपतिर्महात्मा ।
उत्पाट्य लङ्कामलयात्स शृङ्गं जघान सुग्रीवमुपेत्य तेन ॥

स शैलशृङ्गाभिहतो विसंज्ञः पपात भूमौ युधि वानरेन्द्रः ।
तं प्रेक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं नेदुः प्रहृष्टास्त्वथ यातुधानाः ॥

तमभ्युपेत्याद्भुतघोरवीर्यं स कुम्भकर्णो युधि वानरेन्द्रम् ।
जहार सुग्रीवमभिप्रगृह्य यथाऽनिलो मेघमतिप्रचण्डः ॥

स तं महामेघनिकाशरूपमुत्पाट्य गच्छन्युधि कुम्भकर्णः ।
रराज मेरुप्रतिमानरूपो मेरुर्यथाऽभ्युच्छ्रितघोरशृङ्गः ॥

ततस्तमुत्पाट्य जगाम वीरः संस्तूयमानो युधि राक्षसेन्द्रैः ।
शृण्वन्निनादं त्रिदशालयानां प्लवङ्गराजग्रहविस्मितानाम् ॥

ततस्तमादाय तदा स मेने हरीन्द्रमिन्द्रोपममिन्द्रवीर्यः ।
अस्मिन्हृते सर्वमिदं हृतं स्यात्सराघवं सैन्यमितीन्द्रशत्रुः ॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वानराणां ततस्ततः ।
कुम्भकर्णेन सुग्रीवं गृहीतं चापि वानरम् ॥ ७९ ॥

हनुमांश्चिन्तयामास मतिमान्मारुतात्मजः ।
एवं गृहीते सुग्रीवे किं कर्तव्यं मया भवेत् ॥ ८० ॥

यद्वै न्याय्यं मया कर्तुं तत्करिष्यामि सर्वथा ।
भूत्वा पर्वतसङ्काशो नाशयिष्यामि राक्षसम् ॥ ८१ ॥

मया हते संयति कुम्भकर्णे महाबले मुष्टिविकीर्णदेहे ।
विमोचिते वानरपार्थिवे च भवन्तु हृष्टाः प्लवगाः समस्ताः॥

अथवा स्वयमप्येष मोक्षं प्राप्स्यति पार्थिवः ।
गृहीतोऽयं यदि भवेत्त्रिदशैः सासुरोरगैः ॥ ८३ ॥

मन्ये न तावदात्मानं बुध्यते वानराधिपः ।
शैलप्रहाराभिहतः कुम्भकर्णेन संयुगे ॥ ८४ ॥

अयं मुहूर्तात्सुग्रीवो लब्धसंज्ञो महाहवे ।
आत्मनो वानराणां च यत्पथ्यं तत्करिष्यति ॥ ८५ ॥

मया तु मोक्षितस्यास्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
अप्रीतिश्च भवेत्कष्टा कीर्तिनाशश्च शाश्वतः ॥ ८६ ॥

तस्मान्मुहूर्तं काङ्क्षिष्ये विक्रमं पार्थिवस्य तु ।
भिन्नं च वानरानीकं तावदाश्वासयाम्यहम् ॥ ८७ ॥

इत्येवं चिन्तयित्वा तु हनुमान्मारुतात्मजः ।
भूयस्संस्तम्भयामास वानराणां महाचमूम् ॥ ८८ ॥

स कुम्भकर्णोऽथ विवेश लङ्कां स्फुरन्तमादाय महाकपिं तम् ।
विमानचर्यागृहगोपुरस्थैः पुष्पाग्र्यवर्षैरवकीर्यमाणः ॥

लाजगन्धोदवर्षैस्तु सिच्यमानः शनैः शनैः ।
राजमार्गस्य शीतत्वात्संज्ञामाप महाबलः ॥ ९० ॥

ततः स संज्ञामुपलभ्य कृच्छ्राद्बलीयसस्तस्य भुजान्तरस्थः ।
अवेक्षमाणः पुरराजमार्गं विचिन्तयामास मुहुर्महात्मा ॥

एवं गृहीतेन कथं नु नाम शक्यं मया संप्रति कर्तुमद्य ।
तथा करिष्यामि यथा हरीणां भविष्यतीष्टं च हितं च कार्यम्॥

ततः कराग्रैः सहसा समेत्य राजा हरीणाममरेन्द्रशत्रुम् ।
खरैश्च कर्णौ दशनैश्च नासां ददंश पार्श्वेषु च कुम्भकर्णम् ॥

स कुम्भकर्णो हृतकर्णनासो विदारितस्तेन विमर्दितश्च ।
रोषाभिभूतः क्षतजार्द्रगात्रः सुग्रीवमाविध्य पिपेष भूमौ ॥

स भूतले भीमबलाभिपिष्टः सुरारिभिस्तैरभिहन्यमानः ।
जगाम खं वेगवदभ्युपेत्य पुनश्च रामेण समाजगाम ॥

कर्णनासाविहीनस्तु कुम्भकर्णो महाबलः ।
रराज शोणितैः सिक्तो गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥ ९६ ॥

शोणितार्द्रो महाकायो राक्षसो भीमविक्रमः ।
युद्धायाभिमुखो भूयो मनश्चक्रे महाबलः ॥ ९७ ॥

अमर्षाच्छोणितोद्गारी शुशुभे रावणानुजः ।
नीलाञ्जनचयप्रख्यः ससंन्ध्य इव तोयदः ॥ ९८ ॥

गते तु तस्मिन्सुरराजशत्रुः क्रोधात्प्रदुद्राव रणाय भूयः ।
अनायुधोऽस्मीति विचिन्त्य रौद्रो घोरं तदा मुद्गरमाससाद ॥

ततः स पुर्याः सहसा महौजा निष्क्रम्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ।
तेनैव रूपेण बभञ्ज रुष्टः प्रहारमुष्ट्या च पदेन सद्यः ॥

बभक्ष रक्षो युधि कुम्भकर्णः प्रजा युगान्ताग्निरिव प्रदीप्तः ॥
बुभुक्षितः शोणितमांसगृध्नुः प्रविश्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ।
चखाद रक्षांसि हरीन्पिशाचानृक्षांश्च मोहाद्युधि कुम्भकर्णः ॥
यथैव मृत्युर्हरते युगान्ते स भक्षयामास हरींश्च मुख्यान् ॥

एकं द्वे त्रीन्बहून्क्रुद्धो वानरान्सह राक्षसैः ।
समादायैकहस्तेन प्रचिक्षेप त्वरन्मुखे ॥ १०४ ॥

संप्रस्रवंस्तदा मेदः शोणितं च महाबलः ।
वध्यमानो नगेन्द्राग्रैर्भक्षयामास वानरान् ॥ १०५ ॥

ते भक्ष्यमाणा हरयो रामं जग्मुस्तदा गतिम् ॥ १०६ ॥

कुम्भकर्णो भृशं क्रुद्धः कपीन्खादन्प्रधावति ॥ १०७ ॥

शतानि सप्त चाष्टौ च विंशत्त्रिंशत्तथैव च ।
संपरिष्वज्य बाहुभ्यां खादन्विपरिधावति ॥ १०८ ॥

मेदोवसाशोणितदिग्धगात्रः कर्णावसक्तग्रथितान्त्रमालः ।
ववर्ष शूलानि सुतीक्ष्णदंष्ट्रः कालो युगान्तस्थ इव प्रवृद्धः ॥

तस्मिन्काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः ।
चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरञ्जयः ॥ ११० ॥

स कुम्भकर्णस्य शराञ्छरीरे सप्त वीर्यवान् ।
निचखानाददे बाणान्विससर्ज च लक्ष्मणः ॥ १११ ॥

पीड्यमानस्तदस्त्रं तु विशेषं तत्स राक्षसः ।
ततश्चुकोप बलवान्सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ११२ ॥

अथास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनदमयं शुभम् ।
प्रच्छादयामास शरैः सन्ध्याभ्रमिव मारुतः ॥ ११३ ॥

नीलाञ्जनचयप्रख्यः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
आपीड्यमानः शुशुभे मेघैः सूर्य इवांशुमान् ॥ ११४ ॥

ततः स राक्षसो भीमः सुमित्रानन्दवर्धनम् ।
सावज्ञमेव प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिस्वनः ॥ ११५ ॥

अन्तकस्याप्यकृष्टेन युधि जेतारमाहवे ।
युध्यता मामभीतेन ख्यापिता वीरता त्वया ॥ ११६ ॥

प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिव महामृधे ।
तिष्ठन्नप्यग्रतः पूज्यः किमु युद्धप्रदायकः ॥ ११७ ॥

ऐरावतं समारूढो वृतः सर्वामरैः प्रभुः ।
नैव शक्रोऽपि समरे स्थितपूर्वः कदाचन ॥ ११८ ॥

अद्य त्वयाऽहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमैः ।
तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनुज्ञाप्य राघवम् ॥ ११९ ॥

यत्तु वीर्यबलोत्साहैस्तोषितोऽहं रणे त्वया ।
राममेवैकमिच्छामि हन्तुं यस्मिन्हते हतम् ॥ १२० ॥

रामे मयाऽत्र निहते येऽन्ये स्थास्यन्ति संयुगे ।
तानहं योधयिष्यामि स्वबलेन प्रमाथिना ॥ १२१ ॥

इत्युक्तवाक्यं तद्रक्षः प्रोवाच स्तुतिसंहितम् ।
मृधे घोरतरं वाक्यं सौमित्रिः प्रहसन्निव ॥ १२२ ॥

यस्त्वं शक्रादिभिर्देवैरसह्यः प्राप्य पौरुषम् ।
तत्सत्यं नान्यथा वीर दृष्टस्तेऽद्य पराक्रमः ॥ १२३ ॥

एष दाशरथी रामस्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः ।
इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मणं स निशाचरः ॥ १२४ ॥

अतिक्रम्य च सौमित्रिं कुम्भकर्णो महाबलः ।
राममेवाभिदुद्राव दारयन्निव मेदिनीम् ॥ १२५ ॥

अथ दाशरथी रामो रौद्रमस्त्रं प्रयोजनम् ।
कुम्भकर्णस्य हृदये ससर्ज निशिताञ्छरान् ॥ १२६ ॥

तस्य रामेण विद्धस्य सहसाभिप्रधावतः ।
अङ्गारमित्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥ १२७ ॥

रामास्त्रविद्धो घोरं वै नदन्राक्षसपुङ्गवः ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो हरीन्विद्रावयन्रणे ॥ १२८ ॥

तस्योरसि निमग्नाश्च शरा बर्हिणवाससः ।
रेजुर्नीलाद्रिकटके नृत्यन्त इव बर्हिणः ॥ १२९ ॥

हस्ताच्चापि परिभ्रष्टा पपातोर्व्यां महागदा ।
आयुधानि च सर्वाणि विप्राकीर्यन्त भूतले ॥ १३० ॥

स निरायुधमात्मानं यदा मेने महाबलः ।
मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च चकार कदनं महत् ॥ १३१ ॥

स बाणैरतिविद्धाङ्गः क्षतजेन समुक्षितः ।
रुधिरं प्रतिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणं यथा ॥ १३२ ॥

स तीव्रेण च कोपेन रुधिरेण च मूर्च्छितः ।
वानरान्राक्षसानृक्षान्खादन्विपरिधावति ॥ १३३ ॥

अथ शृङ्गं समाविध्य भीमं भीमपराक्रमः ।
चिक्षेप राममुद्दिश्य बलवानन्तकोपमः ॥ १३४ ॥

अप्राप्तमन्तरा रामः सप्तभिस्तैरजिह्मगैः ।
चिच्छेद रामो धर्मात्मा शैलशृङ्गं महत्तदा ॥ १३५ ॥

तदस्तु रामो धर्मात्मा तस्य वर्म महत्तदा ।
शरैः काञ्चनचित्राङ्गैश्चिच्छेद पुरुषर्षभः ॥ १३६ ॥

तन्मेरुशिखराकारं द्योतमानमिव श्रिया ।
द्वे शते वानरेन्द्राणां पतमानमपातयत् ॥ १३७ ॥

तस्मिन्काले स धर्मात्मा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
कुम्भकर्णवधे युक्तो योगान्परिमृशन्बहून् ॥ १३८ ॥

नैवायं वानरान्राजन्नापि जानाति राक्षसान् ।
मत्तः शोणितगन्धेन स्वान्परांश्चैव खादति ॥ १३९ ॥

साध्वेनमधिरोहन्तु सर्वे ते वानरर्षभाः ।
यूथपाश्च यथा मुख्यास्तिष्ठन्त्वस्य समन्ततः ॥ १४० ॥

अप्ययं दुर्मतिः काले गुरुभारप्रपीडितः ।
प्रपतन्राक्षसो भूमौ नान्यान्हन्यात्प्लवङ्गमान् ॥ १४१ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ।
ते समारुरुहुर्हृष्टाः कुम्भकर्णं प्लवङ्गमाः ॥ १४२ ॥

कुम्भकर्णस्तु संक्रुद्धः समारूढः प्लवङ्गमैः ।
व्यधूनयत्तान्वेगेन दुष्टहस्तीव हस्तिपान् ॥ १४३ ॥

तान्दृष्ट्वा निर्धुतान्रामो दुष्टोऽयमिति राक्षसः ।
समुत्पपात वेगेन धनुरुत्तममाददे ॥ १४४ ॥

क्रोधताम्रेक्षणो वीरो निर्दहन्निव चक्षुषा ।
राघवो राक्षसं रोषादभिदुद्राव वेगितः ॥
यूथपान्हर्षयन्सर्वान्कुम्भकर्णभयार्दितान् ॥ १४५ ॥

स चापमादाय भुजङ्गकल्पं दृढज्यमुग्रं तपनीयचित्रम् ।
हरीन्समाश्वास्य समुत्पपात रामो निबद्धोत्तमतूणबाणः ॥

स वानरगणैस्तैस्तु वृतः परमदुर्जयः ।
लक्ष्मणानुचरो रामः संप्रतस्थे महाबलः ॥ १४७ ॥

स ददर्श महात्मानं किरीटिनमरिंदमम् ।
शोणिताप्लुतसर्वाङ्गं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ १४८ ॥

सर्वान्समभिधावन्तं यथा रुष्टं दिशागजम् ।
मार्गमाणं हरीन्क्रुद्धं राक्षसैः परिवारितम् ॥ १४९ ॥

विन्ध्यमन्दरसङ्काशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् ।
स्रवन्तं रुधिरं वक्त्राद्वर्षमेघमिवोत्थितम् ॥ १५० ॥

जिह्वया परिलिह्यन्तं शोणितं शोणितेक्षणम् ।
मृद्नन्तं वानरानीकं कालान्तकयमोपमम् ॥ १५१ ॥

तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं प्रदीप्तानलवर्चसम् ।
विस्फारयामास तदा कार्मुकं पुरुषर्षभः ॥ १५२ ॥

स तस्य चापनिर्घोषात्कुपितो राक्षसर्षभः ।
अमृष्यमाणस्तं घोषमभिदुद्राव राघवम् ॥ १५३ ॥

ततस्तु वातोद्धतमेघकल्पं भुजङ्गराजोत्तमभोगबाहुम् ।
तमापतन्तं धरणीधराभमुवाच रामो युधि कुम्भकर्णम् ॥

आगच्छ रक्षोधिप मा विषादमवस्थितोऽहं प्रगृहीतचापः ।
अवेहि मां शक्रसपत्न राममया मुहूर्ताद्भविता विचेताः ॥

रामोऽयमिति विज्ञाय जहास विकृतस्वनम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो हरीन्विद्रावयन्रणे ॥
पातयन्निव सर्वेषां हृदयानि वनौकसाम् ॥ १५६ ॥

प्रहस्य विकृतं भीमं स मेघस्तनितोपमम् ।
कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १५७ ॥

नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च ।
न वाली न च मारीचः कुम्भकर्णोऽहमागतः॥ १५८ ॥

पश्य मे मुद्गरं घोरं सर्वकालायसं महत् ।
अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च पुरा मया ॥ १५९ ॥

विकर्णनास इति मां नावज्ञातुं त्वमर्हसि ।
स्वल्पाऽपि हि न मे पीडा कर्णनासाविनाशनात् ॥

दर्शयेक्ष्वाकुशार्दूल वीर्यं गात्रेषु मे लघु ।
ततस्त्वां भक्षयिष्यामि दृष्टपौरुषविक्रमम् ॥ १६१ ॥

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य रामः सुपुङ्खान्विससर्ज बाणान् ।
तैराहतो वज्रसमग्रवेगैर्न चुक्षुभे न व्यथते सुरारिः ॥१६२॥

यैः सायकैः सालवरा निकृत्ता वाली हतो वानरपुङ्गवश्च ।
ते कुम्भकर्णस्य तदा शरीरे वज्रोपमा न व्यथयांप्रचक्रुः ॥

स वारिधारा इव सायकांस्तान्पिबञ्छरीरेण महेन्द्रशत्रुः ।
जघान रामस्य शरप्रवेगं व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगम् ॥१६४॥

ततस्तु रक्षः क्षतजानुलिप्तं वित्रासनं देवमहाचमूनाम् ।
विव्याध तं मुद्गरमुग्रवेगं विद्रावयामास चमूं हरीणाम् ॥

वायव्यमादाय ततो वरास्त्रं रामः प्रचिक्षेप निशाचराय ।
समुद्गरं तेन जघान बाहुं स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद ॥१६६॥

स तस्य बाहुर्गिरिशृङ्गकल्पः समुद्गरो राघवबाणकृत्तः ।
पपात तस्मिन्हरिराजसैन्ये जघान तां वानरवाहिनीं च ॥

ते वानरा भग्नहतावशेषाः पर्यन्तमाश्रित्य तदा विषण्णाः ।
प्रवेपिताङ्गं ददृशुः सुघोरं नरेन्द्ररक्षोधिपसन्निपातम् ॥

स कुम्भकर्णोऽस्त्रनिकृत्तबाहुर्महान्निकृत्ताग्र इवाचलेन्द्रः ।
उत्पाटयामास करेण वृक्षं ततोऽभिदुद्राव रणे नरेन्द्रम् ॥

स तस्य बाहुं सहसालवृक्षं समुद्यतं पन्नगभोगकल्पम् ।
ऐन्द्रास्त्रयुक्तेन जघान रामो बाणेन जाम्बूनदचित्रितेन ॥

स कुम्भकर्णस्य भुजो निकृत्तः पपात भूमौ गिरिसन्निकाशः।
विवेष्टमानोऽभिजघान वृक्षाञ्छैलाञ्छिला वानरराक्षसांश्च॥

तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः समापतन्तं सहसा नदन्तम् ।
द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य ॥

तौ तस्य पादौ प्रदिशो दिशश्च गिरीन्गुहाश्चैव महार्णवं च ।
लङ्कां च सेनां कपिराक्षसानां विनादयन्तौ विनिपेततुश्च ॥

निकृत्तबाहुर्विनिकृत्तपादो विदार्य वक्त्रं बडबामुखाभम् ।
दुद्राव रामं सहसाऽभिगर्जन्राहुर्यथा चन्द्रमिवान्तरिक्षे ॥

अपूरयत्तस्य मुखं शिताग्रै रामः शरैर्हेमपिनद्धपुङ्खैः ।
स पूर्णवक्त्रो न शशाक वक्तुं चुकूज कृच्छ्रेण मुमोह चापि॥

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं स ब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम् ।
अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं रामः शरं मारुततुल्यवेगम् ॥

तं वज्रजाम्बूनदचारुपुङ्खं प्रदीप्तसूर्यज्वलनप्रकाशम् ।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगं रामः प्रचिक्षेप निशाचराय ॥

स सायको राघवबाहुचोदितो
दिशः स्वभासा दश संप्रकाशयन् ।
सधूमवैश्वानरदीप्तदर्शनो
जगाम शक्राशनिवीर्यविक्रमः ॥ १७८ ॥

स तन्महापर्वतकूटसन्निभं विवृत्तदंष्ट्रं चलचारुकुण्डलम् ।
चकर्त रक्षोधिपतेः शिरस्तथा यथैव वृत्रस्य पुरा पुरंदरः ॥

तद्रामबाणाभिहतं पपात रक्षःशिरः पर्वतसन्निकाशम् ।
बभञ्ज चर्यागृहगोपुराणि प्राकारमुच्चं तमपातयच्च ॥

तच्चातिकायं हिमवत्प्रकाशं रक्षस्ततस्तोयनिधौ पपात ।
ग्राहान्वरान्मीनवरान्भुजङ्गान्ममर्द भूमिं च तदा विवेश ॥

तस्मिन्हते ब्राह्मणदेवशत्रौ महाबले संयति कुम्भकर्णे ।
चचाल भूर्भूमिधराश्च सर्वे हर्षाच्च देवास्तुमुलं प्रणेदुः ॥

ततस्तु देवर्षिमहर्षिपन्नगाः सुराश्च भूतानि सुपर्णगुह्यकाः ।
सयक्षगन्धर्वगणा नभोगताः प्रहर्षिता रामपराक्रमेण ॥

ततस्तु ते तस्य वधेन भूरिणा मनस्विनो नैर्ऋतराजबान्धवाः।
विनेदुरुच्चैर्व्यथिता रघूत्तमं हरिं समीक्ष्यैव यथा सुरार्दिताः॥

स देवलोकस्य तमो निहत्य सूर्यो यथा राहुमुखाद्विमुक्तः ।
तथा व्यभासीद्भुवि वानरौघे निहत्य रामो युधि कुम्भकर्णम्॥

प्रहर्षमीयुर्बहवस्तु वानराः प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः ।
अपूजयन्राघवमिष्टभागिनं हते रिपौ भीमबले दुरासदे ॥

स कुम्भकर्णं सुरसङ्घमर्दनं महत्सु युद्धेषु पराजितश्रमम् ।
ननन्द हत्वा भरताग्रजो रणे महासुरं वृत्रमिवामराधिपः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17720 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3045

## अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

### रावणप्रलापः ॥

कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ १ ॥

राजन्स कालसङ्काशः संयुक्तः कालकर्मणा ।
विद्राव्य वानरीं सेनां भक्षयित्वा च वानरान् ॥ २ ॥

प्रतपित्वा मुहूर्तं च प्रशान्तो रामतेजसा ।
कायेनार्धप्रविष्टेन समुद्रं भीमदर्शनम् ॥ ३ ॥

निकृत्तकण्ठोरुभुजो विक्षरन्रुधिरं बहु ।
रुद्ध्वा द्वारं शरीरेण लङ्कायाः पर्वतोपमः ॥ ४ ॥

कुम्भकर्णस्तव भ्राता काकुत्स्थशरपीडितः ।
लगण्डभूतो विकृतो दावदग्ध इव द्रुमः ॥ ५ ॥

तं श्रुत्वा निहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम् ।
रावणः शोकसन्तप्तो मुमोह च पपात च ॥ ६ ॥

पितृव्यं निहतं श्रुत्वा देवान्तकनरान्तकौ ।
त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीडिताः ॥ ७ ॥

भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः ॥ ८ ॥

ततः कृच्छ्रात्समासाद्य संज्ञां राक्षसपुङ्गवः ।
कुम्भकर्णवधादीनो विललाप स रावणः ॥ ९ ॥

हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल ।
त्वं मां विहाय वै दैवाद्यातोऽसि यमसादनम् ॥ १० ॥

मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल ।
शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकस्त्वं मां संत्यज्य गच्छसि ॥ ११ ॥

इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे दक्षिणो भुजः ।
पतितो यं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरात् ॥ १२ ॥

कथमेवंविधो वीरो देवदानवदर्पहा ।
कालाग्निरुद्रप्रतिमो रणे रामेण वै हतः ॥ १३ ॥

यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद्व्यसनं सदा ।
स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोऽसि महीतले ॥ १४ ॥

एते देवगणाः सार्धमृषिभिर्गगने स्थिताः ।
निहतं त्वां रणे दृष्ट्वा निनदन्ति प्रहर्षिताः ॥ १५ ॥

ध्रुवमद्यैव संहृष्टा लब्धलक्षाः प्लवङ्गमाः ।
आरोक्ष्यन्ति हि दुर्गाणि लङ्काद्वाराणि सर्वशः ॥ १६ ॥

राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया ।
कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे रतिः ॥ १७ ॥

यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम् ।
ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम् ॥ १८ ॥

अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम ।
न हि भ्रातॄन्समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे ॥ १९ ॥

देवा हि मां हसिष्यन्ति दृष्ट्वा पूर्वापकारिणम् ।
कथमिन्द्रं जयिष्यामि कुम्भकर्ण हते त्वयि ॥ २० ॥

तदिदं मामनुप्राप्तं विभीषणवचः शुभम् ।
यदज्ञानान्मया तस्य न गृहीतं महात्मनः ॥ २१ ॥

विभीषणवचो यावत्कुम्भकर्णप्रहस्तयोः ।
विनाशोऽयं समुत्पन्नो मां व्रीडयति दारुणः ॥ २२ ॥

तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः ।
यन्मया धार्मिकः श्रीमान्स निरस्तो विभीषणः ॥ २३ ॥

इति बहुविधमाकुलान्तरात्मा
कृपणमतीव विलप्य कुम्भकर्णम् ।
न्यपतदथ दशाननो भृशार्त-
स्तमनुजमिन्द्ररिपुं हतं विदित्वा ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः **17744** युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः **3069**

## एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

### नरान्तकवधः ॥

एवं विलपमानस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
श्रुत्वा शोकाभितप्तस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

एवमेव महावीर्यो हतो नस्तातमध्यमः ।
न तु सत्पुरुषा राजन्विलपन्ति यथा भवान् ॥ २ ॥

नूनं त्रिभुवनस्यापि पर्याप्तस्त्वमसि प्रभो ।
स कस्मात्प्राकृत इव शोचस्यात्मानमीदृशम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मदत्ताऽस्ति ते शक्तिः कवचः सायको धनुः ।
सहस्रखरसंयुक्तो रथो मेघस्वनो महान् ॥ ४ ॥

त्वयाऽसकृद्विशस्त्रेण विशस्ता देवदानवाः ।
स सर्वायुधसंपन्नो राघवं शास्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्यहं रणम् ।
उद्धरिष्यामि ते शत्रून्गरुडः पन्नगानिव ॥ ६ ॥

शम्बरो देवराजेन नरको विष्णुना यथा ।
तथाऽद्य शयिता रामो मया युधि निपातितः ॥ ७ ॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥ ८ ॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ ।
अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥ ९ ॥

ततोऽहमहमित्येव गर्जन्तो नैर्ऋतर्षभाः ।
रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ १० ॥

अन्तरिक्षगताः सर्वे सर्वे मायाविशारदाः ।
सर्वे त्रिदशदर्पघ्नाः सर्वे च रणदुर्जयाः ॥ ११ ॥

सर्वे सुबलसंपन्नाः सर्वे विस्तीर्णकीर्तयः ।
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते पराजिताः ॥ १२ ॥

देवैरपि सगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ॥ १३ ॥

सर्वे च विदुषो वीराः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सर्वे प्रवरविज्ञानाः सर्वे लब्धवरास्तथा ॥ १४ ॥

स तैस्तदा भास्करतुल्यवर्चसैः सुतैर्वृतः शत्रुबलप्रमर्दनैः ।
रराज राजा मघवान्यथाऽमरैर्वृतो महादानवदर्पनाशनैः ॥

स पुत्रान्संपरिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः ।
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास संयुगे ॥ १६ ॥

युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः ।
रक्षणार्थं कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे ॥ १७ ॥

तेऽभिवाद्य महात्मानं रावणं रिपुरावणम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं चैव महाकायाः प्रतस्थिरे ॥ १८ ॥

सर्वौषधीभिर्गन्धैश्च समालभ्य महाबलाः ।
निर्जग्मुर्नैर्ऋतश्रेष्ठाः षडेते युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १९ ॥

त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
महोदरमहापार्श्वौ निर्जग्मुः कालचोदिताः ॥ २० ॥

ततः सुदर्शनं नाम नीलजीमूतसन्निभम् ।
ऐरावतकुले जातमारुरोह महोदरः ॥ २१ ॥

सर्वायुधसमायुक्तं तूणीभिश्च स्वलङ्कृतम् ।
रराज गजमास्थाय सवितेवास्तमूर्धनि ॥ २२ ॥

हयोत्तमसमायुक्तं सर्वायुधसमाकुलम् ।
आरुरोह रथश्रेष्ठं त्रिशिरा रावणात्मजः ॥ २३ ॥

त्रिशिरा रथमास्थाय विरराज धनुर्धरः ।
सविद्युदुल्कः शैलाग्रे सेन्द्रचाप इवाम्बुदः ॥ २४ ॥

त्रिभिः किरीटैः शुशुभे त्रिशिराः स रथोत्तमे ।
हिमवानिव शैलेन्द्रस्त्रिभिः काञ्चनपर्वतैः ॥ २५ ॥

अतिकायोऽपि तेजस्वी राक्षसेन्द्रसुतस्तदा ।
आरुरोह रथश्रेष्ठं श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ २६ ॥

सुचक्राक्षं सुसंयुक्तं स्वनुकर्षं सुकूबरम् ।
तूणीबाणासनैर्दीप्तं प्रासासिपरिघाकुलम् ॥ २७ ॥

स काञ्चनविचित्रेण मकुटेन विराजता ।
भूषणैश्च बभौ मेरुः किरणैरिव भासयन् ॥ २८ ॥

स रराज रथे तस्मिन्राजसूनुर्महाबलः ।
वृतो नैर्ऋतशार्दूलैर्वज्रपाणिरिवामरैः ॥ २९ ॥

हयमुच्चैःश्रवःप्रख्यं श्वेतं कनकभूषणम् ।
मनोजवं महाकायमारुरोह नरान्तकः ॥ ३० ॥

गृहीत्वा प्रासमुल्काभं विरराज नरान्तकः ।
शक्तिमादाय तेजस्वी गुहः शिखिगतो यथा ॥ ३१ ॥

देवान्तकः समादाय परिघं वज्रभूषणम् ।
परिगृह्य गिरिं दोर्भ्यां वपुर्विष्णोर्विडम्बयन् ॥ ३२ ॥

महापार्श्वो महाकायो गदामादाय वीर्यवान् ।
विरराज गदापाणिः कुबेर इव संयुगे ॥ ३३ ॥

प्रतस्थिरे महात्मानो बलैरप्रतिमैर्वृताः ॥ ३४ ॥

तान्गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चाम्बुदनिस्वनैः ।
अनुजग्मुर्महात्मानो राक्षसाः प्रवरायुधाः ॥ ३५ ॥

ते विरेजुर्महात्मानः कुमाराः सूर्यवर्चसः ।
किरीटिनः श्रिया जुष्टा ग्रहा दीप्ता इवाम्बरे ॥ ३६ ॥

प्रगृहीता बभौ तेषां शस्त्राणामावलिः सिता ।
शारदाभ्रप्रतीकाशा हंसावलिरिवाम्बरे ॥ ३७ ॥

मरणं वाऽपि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम् ॥ ३८ ॥

इति कृत्वा मतिं वीरा निर्जग्मुः संयुगार्थिनः ॥ ३९ ॥

जगर्जुश्च प्रणेदुश्च चिक्षिपुश्चापि सायकान् ।
जगृहुश्चापि ते वीरा निर्यान्तो युद्धदुर्मदाः ॥ ४० ॥

क्ष्वेलितास्फोटनिनदैश्चचाल च वसुन्धरा ।
रक्षसां सिंहनादैश्च पुस्फोटेव तदाऽम्बरम् ॥ ४१ ॥

तेऽभिनिष्क्रम्य मुदिता राक्षसेन्द्रा महाबलाः ।
ददृशुर्वानरानीकं समुद्यतशिलानगम् ॥ ४२ ॥

हरयोऽपि महात्मानो ददृशुर्नैर्ऋतं बलम् ।
हस्त्यश्वरथसंबाधं किङ्किणीशतनादितम् ॥ ४३ ॥

नीलजीमूतसङ्काशं समुद्यतमहायुधम् ।
दीप्तानलरविप्रख्यैः सर्वतो नैर्ऋतैर्वृतम् ॥ ४४ ॥

तद्दृष्ट्वा बलमायान्तं लब्धलक्षाः प्लवङ्गमाः ।
समुद्यतमहाशैलाः संप्रणेदुर्महाबलाः ॥ ४५ ॥

अमृष्यमाणा रक्षांसि प्रतिनर्दन्ति वानराः ॥ ४६ ॥

ततः समुद्घुष्टरवं निशम्य रक्षोगणा वानरयूथपानाम् ।
अमृष्यमाणाः परहर्षमुग्रं महाबला भीमतरं विनेदुः॥४७॥

ते राक्षसबलं घोरं प्रविश्य हरियूथपाः ।
विचेरुरुद्यतैः शैलैर्नगाः शिखरिणो यथा ॥ ४८ ॥

केचिदाकाशमाविश्य केचिदुर्व्यां प्लवङ्गमाः ।
रक्षःसैन्येषु संक्रुद्धाश्चेरुर्द्रुमशिलायुधाः ॥ ४९ ॥

द्रुमांश्च विपुलस्कन्धान्गृह्य वानरपुङ्गवाः ॥ ५० ॥

तद्युद्धमभवद्घोरं रक्षोवानरसंकुलम् ॥ ५१ ॥

ते पादपशिलाशैलैश्चक्रुर्वृष्टिमनूपमाम् ।
बाणौघैर्वार्यमाणाश्च हरयो भीमविक्रमाः ॥ ५२ ॥

सिंहनादान्विनेदुश्च रणे वानरराक्षसाः ।
शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यातुधानान्प्लवङ्गमाः ॥ ५३ ॥

निजघ्नुः संयुगे क्रुद्धाः कवचाभरणावृतान् ।
केचिद्रथगतान्वीरान्गजवाजिगतानपि ॥ ५४ ॥

निजघ्नुः सहसाऽऽप्लुत्य यातुधानान्प्लवङ्गमाः ।
शैलशृङ्गाचिताङ्गाश्च मुष्टिभिर्वान्तलोचनाः ॥ ५५ ॥

चेरुः पेतुश्च नेदुश्च तत्र राक्षसपुङ्गवाः ।
राक्षसाश्च शरैस्तीक्ष्णैर्बिभिदुः कपिकुञ्जरान् ॥ ५६ ॥

शूलमुद्गरखड्गैश्च जघ्नुः प्रासैश्च शक्तिभिः ।
अन्योन्यं पातयामासुः परस्परजयैषिणः ॥ ५७ ॥

रिपुशोणितदिग्धाङ्गास्तत्र वानरराक्षसाः ।
ततः शैलैश्च खड्गैश्च विसृष्टैर्हरिराक्षसैः ॥ ५८ ॥

मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणिताप्लुता ।
विकीर्णपर्वताकारै रक्षोभिररिमर्दनैः ॥ ५९ ॥

आसीद्वसुमती पूर्णा तदा युद्धमदान्वितैः ॥ ६० ॥

आक्षिप्ताः क्षिप्यमाणाश्च भग्नशूलाश्च वानरैः ।
पुनरङ्गैस्तथा चक्रुरासन्ना युद्धमद्भुतम् ॥ ६१ ॥

वानरान्वानरैरेव जघ्नुस्ते रजनीचराः ।
राक्षसान्राक्षसैरेव जघ्नुस्ते वानरा अपि ॥ ६२ ॥

आक्षिप्य च शिलास्तेषां निजघ्नू राक्षसा हरीन् ।
तेषां चाच्छिद्य शस्त्राणि जघ्नू रक्षांसि वानराः॥ ६३ ॥

निजघ्नुः शैलशूलास्त्रैर्बिभिदुश्च परस्परम् ।
सिंहनादान्विनेदुश्च रणे वानरराक्षसाः ॥ ६४ ॥

छिन्नवर्मतनुत्राणा राक्षसा वानरैर्हताः ।
रुधिरं प्रस्रुतास्तत्र रससारमिव द्रुमाः ॥ ६५ ॥

रथेन च रथं चापि वारणेनैव वारणम् ॥ ६६ ॥

हयेन च हयं केचिन्निजघ्नुर्वानरा रणे ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे प्रगृहीतमनश्शिलाः ॥ ६७ ॥

हरयो राक्षसाञ्जघ्नुर्द्रुमैश्च बहुशाखिभिः ।
तद्युद्धमभवद्धोरं रक्षोवानरसङ्कुलम् ॥ ६८ ॥

क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च भल्लैश्च निशितैः शरैः ।
राक्षसा वानरेन्द्राणां चिच्छिदुः पादपाञ्छिलाः ॥६९॥

विकीर्णैः पर्वताग्रैश्च द्रुमैश्छिन्नैश्च संयुगे ।
हतैश्च कपिरक्षोभिर्दुर्गमा वसुधाऽभवत् ॥ ७० ॥

ते वानरा गर्वितहृष्टचेष्टाः संग्राममासाद्य भयं विमुच्य ।
युद्धं तु सर्वे सह राक्षसैस्तैर्नानायुधाश्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥

तस्मिन्प्रवृत्ते तुमुले विमर्दे प्रहृष्यमाणेषु वलीमुखेषु ।
निपात्यमानेषु च राक्षसेषु महर्षयो देवगणाश्च नेदुः ॥

ततो हयं मारुततुल्यवेगमारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य ।
नरान्तको वानरराजसैन्यं महार्णवं मीन इवाविवेश ॥

स वानरान्सप्त शतानि वीरः प्रासेन दीप्तेन विनिर्बिभेद ।
एकक्षणेनेन्द्ररिपुर्महात्मा जघान सैन्यं हरिपुङ्गवानाम् ॥

ददृशुश्च महात्मानं हयपृष्ठे प्रतिष्ठितम् ।
चरन्तं हरिसैन्येषु विद्याधरमहर्षयः ॥ ७५ ॥

स तस्य ददृशे मार्गो मांसशोणितकर्दमः ।
पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥ ७६ ॥

यावद्विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुङ्गवाः ।
तावदेतानतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः ॥ ७७ ॥

ज्वलन्तं प्रासमुद्यम्य सङ्ग्रामाग्रे नरान्तकः ।
ददाह हरिसैन्यानि वनानीव विभावसुः ॥ ७८ ॥

यावदुत्पाटयामासुर्वृक्षाञ्छैलान्वनौकसः ।
तावत्प्रासहताः पेतुर्वज्रकृत्ता इवाचलाः ॥ ७९ ॥

दिक्षु सर्वासु बलवान्विचचार नरान्तकः ।
प्रमृद्नन्सर्वतो युद्धे प्रावृट्काले यथाऽनिलः ॥ ८० ॥

न शेकुर्धावितुं वीरा न स्थातुं स्पन्दितुं भयात् ।
उत्पतन्तं स्थितं यान्तं सर्वान्विव्याध वीर्यवान् ॥ ८१ ॥

एकेनान्तककल्पेन प्रासेनादित्यतेजसा ।
भिन्नानि हरिसैन्यानि निपेतुर्धरणीतले ॥ ८२ ॥

वज्रनिष्पेषसदृशं प्रासस्याभिनिपातनम् ।
न शेकुर्वानराः सोढुं ते विनेदुर्महास्वनम् ॥ ८३ ॥

पततां हरिवीराणां रूपाणि प्रचकाशिरे ।
वज्रभिन्नाग्रकूटानां शैलानां पतताम् इव ॥ ८४ ॥

ये तु पूर्वं महात्मानः कुम्भकर्णेन पातिताः ।
ते स्वस्था वानरश्रेष्ठाः सुग्रीवमुपतस्थिरे ॥ ८५ ॥

विप्रेक्षमाणः सुग्रीवो ददर्श हरिवाहिनीम् ।
नरान्तकभयत्रस्तां विद्रवन्तीमितस्ततः ॥ ८६ ॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम् ।
गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठे प्रतिष्ठितम् ॥ ८७ ॥

अथोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ।
कुमारमङ्गदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥ ८८ ॥

गच्छ त्वं राक्षसं वीरो योऽसौ तुरगमास्थितः ।
क्षोभयन्तं हरिबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय ॥ ८९ ॥

स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पपाताङ्गदस्ततः ।
अनीकान्मेघसङ्काशान्मेघानीकादिवांशुमान् ॥ ९० ॥

शैलसङ्घातसङ्काशो हरीणामुत्तमोऽङ्गदः ।
रराजाङ्गदसन्नद्धः सधातुरिव पर्वतः ॥ ९१ ॥

निरायुधो महातेजाः केवलं नखदंष्ट्रवान् ।
नरान्तकमभिक्रम्य वालिपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥ ९२ ॥

तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि ।
अस्मिन्वज्रसमस्पर्शं प्रासं क्षिप ममोरसि ॥ ९३ ॥

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः ।
सन्दश्य दशनैरोष्ठं विनिश्वस्य भुजङ्गवत् ॥ ९४ ॥

अभिगम्याङ्गदं क्रुद्धो वालिपुत्रं नरान्तकः ॥ ९५ ॥

प्रासं समाविध्य तदाऽङ्गदाय समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज ।
स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ ॥

तं प्रासमालोक्य तदा विभग्नं सुपर्णकृत्तोरगभोगकल्पम् ।
तलं समुद्यम्य स वालिपुत्रस्तुरङ्गमं तस्य जघान मूर्ध्नि ॥

निमग्नतालुः स्फुटिताक्षितारो निष्क्रान्तजिह्वोऽचलसंनिकाशः।
स तस्य वाजी निपपात भूमौ तलप्रहारेण विशीर्णमूर्धा ॥

नरान्तकः क्रोधवशं जगाम हतं तुरङ्गं पतितं निरीक्ष्य ।
स मुष्टिमुद्यम्य महाप्रभावो जघान शीर्षे युधि वालिपुत्रम् ॥

अथाङ्गदो मुष्टिविभिन्नमूर्धा सुस्राव तीव्रं रुधिरं भृशोष्णम् ।
मुहुर्विजज्वाल मुमोह चापि संज्ञां समासाद्य विसिष्मिये च॥

अथाङ्गदो वज्रसमानवेगं संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम् ।
निपातयामास तदा महात्मा नरान्तकस्योरसि वालिपुत्रः ॥

स मुष्टिनिर्ष्पिष्टविभिन्नवक्षा ज्वालावमच्छोणितदिग्धगात्रः ।
नरान्तको भूमितले पपात यथाऽचलो वज्रनिपातभग्नः ॥

अथान्तरिक्षे त्रिदशोत्तमानां वनौकसां चैव महाप्रणादः ।
बभूव तस्मिन्निहतेऽग्र्यवीरे नरान्तके वालिसुतेन संख्ये ॥

अथाङ्गदो राममनःप्रहर्षणं सुदुष्करं तत्कृवान्हि विक्रमम् ।
विसिष्मिये सोऽप्यतिवीर्यविक्रमः पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17848 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3273

## सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

देवान्तकादिवधः ॥

नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः ।
देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः ॥ १ ॥

आरूढो मेघसङ्काशं वारणेन्द्रं महोदरः ।
वालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वीर्यवान् ॥ २ ॥

भ्रातृव्यसनसन्तप्तस्तथा देवान्तको बली ।
आदाय परिघं दीप्तमङ्गदं समभिद्रवत् ॥ ३ ॥

रथमादित्यसङ्काशं युक्तं परमवाजिभिः ।
आस्थाय त्रिशिरा वीरो वालिपुत्रमथाभ्ययात् ॥ ४ ॥

स त्रिभिर्देवदर्पघ्नैर्नैर्ऋतेन्द्रैरभिद्रुतः ।
वृक्षमुत्पाटयामास महाविटपमङ्गदः ॥ ५ ॥

देवान्तकाय तं वीरश्चिक्षेप सहसाऽङ्गदः ।
महावृक्षं महाशाखं शक्रो दीप्तमिवाशनिम् ॥ ६ ॥

त्रिशिरास्तं प्रचिच्छेद शरैराशीविषोपमैः ।
स वृक्षं कृत्तमालोक्य उत्पपात तदाङ्गदः ॥ ७ ॥

स ववर्ष ततो वृक्षाञ्छैलांश्च कपिकुञ्जरः ।
तान्प्रचिच्छेद संक्रुद्धस्त्रिशिरा निशितैः शरैः ॥ ८ ॥

परिघाग्रेण तान्वृक्षान्बभञ्ज च सुरान्तकः ।
त्रिशिराश्चाङ्गदं वीरमभिदुद्राव सायकैः ॥ ९ ॥

गजेन समभिद्रुत्य वालिपुत्रं महोदरः ।
जघानोरसि संक्रुद्धस्तोमरैर्वज्रसन्निभैः ॥ १० ॥

देवान्तकश्च संक्रुद्धः परिघेण तदाऽङ्गदम् ।
उपगम्याभिहत्याशु व्यपचक्राम वेगवान् ॥ ११ ॥

स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत्समभिद्रुतः ।
न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ १२ ॥

स वेगवान्महावेगं कृत्वा परमदुर्जयः ।
तलेन भृशमुत्पत्य जघानास्य महागजम् ॥ १३ ॥

तस्य तेन प्रहारेण नागराजस्य संयुगे ।
पेततुर्लोचने तस्य विननाद स वारणः ॥ १४ ॥

विषाणं चास्य निष्कृष्य वालिपुत्रो महाबलः ।
देवान्तकमभिप्लुत्य ताडयामास संयुगे ॥ १५ ॥

स विह्वलितसर्वाङ्गो वातोद्धूत इव द्रुमः ।
लाक्षारससवर्णं च सुस्राव रुधिरं मुखात् ॥ १६ ॥

अथाश्वास्य महातेजाः कृच्छ्राद्देवान्तको बली ।
आविध्य परिघं घोरमाजघान तदाऽङ्गदम् ॥ १७ ॥

परिघाभिहतश्चापि वानरेन्द्रात्मजस्तदा ।
जानुभ्यां पतितो भूमौ पुनरेवोत्पपात ह ॥ १८ ॥

तमुत्पतन्तं त्रिशिरास्त्रिभिर्बाणैरजिह्मगैः ।
घोरैर्हरिपतेः पुत्रं ललाटेऽभिजघान ह ॥ १९ ॥

ततोऽङ्गदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुङ्गवैः ।
हनुमानपि विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः ॥ २० ॥

ततश्चिक्षेप शैलाग्रं नीलस्त्रिशिरसे तदा ।
तद्रावणसुतो धीमान्बिभेद निशितैः शरैः ॥ २१ ॥

तद्बाणशतनिर्भिन्नं विदारितशिलातलम् ।
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात गिरेः शिरः ॥ २२ ॥

ततो जृम्भितमालोक्य हर्षाद्देवान्तकस्तदा ।
परिघेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे ॥ २३ ॥

तमापतन्तमुत्प्लुत्य हनुमान् मारुतात्मजः ।
आजघान तदा मूर्ध्नि वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ २४ ॥

शिरसि प्रहरन्वीरस्तदा वायुसुतो बली ।
नादेनाकम्पयच्चैव राक्षसान् स महाकपिः ॥ २५ ॥

स मुष्टिनिष्पिष्टविकीर्णमूर्धा निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः ।
देवान्तको राक्षसराजसूनुर्गतासुरुर्व्यां सहसा पपात ॥ २६ ॥

तस्मिन्हते राक्षसयोधमुख्ये महाबले संयति देवशत्रौ ।
क्रुद्धस्त्रिमूर्धा निशिताग्रमुग्रं ववर्ष नीलोरसि बाणवर्षम् ॥

महोदरस्तु संक्रुद्धः कुञ्जरं पर्वतोपमम् ।
भूयः समधिरुह्याशु मन्दरं रश्मिवानिव ॥ २८ ॥

ततो बाणमयं वर्षं नीलस्योरस्यपातयत् ।
गिरौ वर्षं तडिच्चक्रचापवानिव तोयदः ॥ २९ ॥

ततः शरौघैरभिवर्ष्यमाणो विभिन्नगात्रः कपिसैन्यपालः ।
नीलो बभूवाथ निसृष्टगात्रो विष्टम्भितस्तेन महाबलेन ॥ ३० ॥

ततस्तु नीलः प्रतिलभ्य संज्ञां शैलं समुत्पाट्य सवृक्षषण्डम् ।
ततः समुत्पत्य भृशोग्रवेगो महोदरं तेन जघान मूर्ध्नि ॥

ततः स शैलेन्द्रनिपातभग्नो महोदरस्तेन महाद्विपेन ।
विपोथितो भूमितले गतासुः पपात वज्राभिहतो यथाऽद्रिः ॥

पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे ।
हनुमन्तं च संक्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥

स वायुसूनुः कुपितश्चिक्षेप शिखरं गिरेः ।
त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्बिभेद बहुधा बली ॥ ३४ ॥

तद्व्यर्थं शिखरं दृष्ट्वा द्रुमवर्षं महाकपिः ।
विससर्ज रणे तस्मिन् रावणस्य सुतं प्रति ॥ ३५ ॥

तमापतन्तमाकाशे द्रुमवर्षं प्रतापवान् ।
त्रिशिरा निशितैर्बाणैश्चिच्छेद च ननाद च ॥ ३६ ॥

ततो हनूमानुत्प्लुत्य हयांस्त्रिशिरसस्तदा ।
विददार नखैः क्रुद्धो गजेन्द्रं मृगराडिव ॥ ३७ ॥

अथ शक्तिं समादाय कालरात्रिमिवान्तकः ।
चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः ॥ ३८ ॥

दिवः क्षिप्तामिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्तामसङ्गताम् ।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च ॥ ३९ ॥

तां दृष्ट्वा घोरसङ्काशां शक्तिं भग्नां हनूमता ।
प्रहृष्टा वानरगणा विनेदुर्जलदा इव ॥ ४० ॥

ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः ।
निजघान तदा व्यूढे वायुपुत्रस्य वक्षसि ॥ ४१ ॥

खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान् मारुतात्मजः ।
आजघान त्रिशिरसं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ४२ ॥

स तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्तायुधो भुवि ।
निपपात महातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥ ४३ ॥

स तस्य पततः खड्गं समाच्छिद्य महाकपिः ।
ननाद गिरिसङ्काशस्त्रासयन् सर्वनैर्ऋतान् ॥ ४४ ॥

अमृष्यमाणस्तं घोषमुत्पपात निशाचरः ।
उत्पत्य च हनूमन्तं ताडयामास मुष्टिना ॥ ४५ ॥

तेन मुष्टिप्रहारेण संचुकोप महाकपिः ।
कुपितश्च निजग्राह किरीटे राक्षसर्षभम् ॥
हनुमान् रोषताम्राक्षो राक्षसं परवीरहा ॥ ४६ ॥

स तस्य शीर्षाण्यसिना शितेन किरीटजुष्टानि सकुण्डलानि ।
क्रुद्धः प्रचिच्छेद सुतोऽनिलस्य त्वष्टुः सुतस्येव शिरांसि शक्रः ॥

तान्यायताक्षाण्यगसन्निभानि
प्रदीप्तवैश्वानरलोचनानि ।
पेतुः शिरांसीन्द्ररिपोर्धरण्यां
ज्योतींषि मुक्तानि यथाऽर्कमार्गात् ॥ ४८ ॥

तस्मिन् हते देवरिपौ त्रिशीर्षे हनूमता शक्रपराक्रमेण ।
नेदुः प्लवङ्गाः प्रचचाल भूमी रक्षांस्यथो दुद्रुविरे समन्तात् ॥

हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा तथैव च महोदरम् ।
हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥ ५० ॥

चुकोप परमामर्षी मत्तो राक्षसपुङ्गवः ।
जग्राहार्चिष्मतीं घोरां गदां सर्वायसीं शुभाम् ॥ ५१ ॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तां मांसशोणितफेनिलाम् ।
विराजमानां वपुषा शत्रुशोणितरञ्जिताम् ॥ ५२ ॥

तेजसा संप्रदीप्ताग्रां रक्तमाल्यविभूषिताम् ।
ऐरावतमहापद्मसार्वभौमभयावहाम् ॥ ५३ ॥

गदामादाय संक्रुद्धो मत्तो राक्षसपुङ्गवः ।
हरीन् समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ ५४ ॥

अथर्षभः समुत्पत्य वानरो रावणानुजम् ।
मत्तानीकमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥ ५५ ॥

तं पुरस्तात्स्थितं दृष्ट्वा वानरं पर्वतोपमम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो गदया वज्रकल्पया ॥ ५६ ॥

स तयाऽभिहतस्तेन गदया वानरर्षभः ।
भिन्नवक्षाः समाधूतः सुस्राव रुधिरं बहु ॥ ५७ ॥

स संप्राप्य चिरात्संज्ञामृषभो वानरर्षभः ।
क्रुद्धो विस्फुरमाणोष्ठो महापार्श्वमुदैक्षत ॥ ५८ ॥

स वेगवान् वेगवदभ्युपेत्य तं राक्षसं वानरवीरमुख्यः ।
संवर्त्य मुष्टिं सहसा जघान बाह्वन्तरे शैलनिकाशरूपः ॥

स कृत्तमूलः सहसेव वृक्षः क्षितौ पपात क्षतजोक्षिताङ्गः ।
तां चास्य घोरां यमदण्डकल्पां गदां प्रगृह्याशु तदा ननाद ॥

मुहूर्तमासीत्स गतासुकल्पः प्रत्यागतात्मा सहसा सुरारिः ।
उत्पत्य सन्ध्याभ्रसमानवर्णस्तं वारिराजात्मजमाजघान ॥

स मूर्च्छितो भूमितले पपात मुहूर्तमुत्पत्य पुनः ससंज्ञः ।
तामेव तस्याद्रिवराद्रिकल्पां गदां समाविध्य जघान संख्ये ॥

सा तस्य रौद्रा समुपेत्य देहं रौद्रस्य देवाध्वरविप्रशत्रोः ।
बिभेद वक्षः क्षतजं च भूरि सुस्राव धात्वंभ इवाद्रिराजः ॥

सोऽभिदुद्राव वेगेन गदां तस्य महात्मनः ॥ ६४ ॥

गृहीत्वा तां गदां भीमामाविध्य च पुनः पुनः ।
मत्तानीकं महात्मानं जघान रणमूर्धनि ॥ ६५ ॥

स स्वया गदया भग्नो विशीर्णदशनेक्षणः ।
निपपात ततो मत्तो वज्राहत इवाचलः ॥ ६६ ॥

विशीर्णनयने भूमौ गतसत्त्वे गतायुषि ।
पतिते राक्षसे तस्मिन्विद्रुतं राक्षसं बलम् ॥ ६७ ॥

तस्मिन्हते भ्रातरि रावणस्य तन्नैर्ऋतानां बलमर्णवाभम् ।
त्यक्तायुधं केवलजीवितार्थं दुद्राव भिन्नार्णवसन्निकाशम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 17916 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3241

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे द्वाविंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥

॥ श्रीरामजयः ॥

# ॥ श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम् ॥

## युद्धकाण्डम्

### द्वितीयखण्डः

धर्मालयसंस्करणः ।

***The Dharmalaya Edition.***


Edited by

The Late Rao Sahib P. S. KRISHNASWAMI IYER,

*Dharmalaya, Mylapore.*



Published with the aid of

Sri. M. N. RAMASWAMY IYER,

*Banker, Palghat.*

By

**R. Subrahmanya Vadhyar & Sons,**

**BOOK-SELLERS & PUBLISHERS,**

**KALPATHI-PALGHAT**

Library Edition.] 1941 [Price Rs. 1—8—0

PRINTED AT
THE SCHOLAR PRESS,
PALGHAT.

॥ श्रीः ॥

## ॥ विषयानुक्रमणिका ॥


| सर्गः | विषयः | | श्लोकसङ्ख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|---|
| 71. | अतिकायवधः | ... | 115 | 1 |
| 72. | रावणोद्वेगः | ... | 20 | 13 |
| 73. | ब्रह्मास्त्रबन्धः | ... | 74 | 15 |
| 74. | ब्रह्मास्त्रबन्धविमुक्तिः | ... | 80 | 22 |
| 75. | रात्रौ लङ्कादाहः | ... | 73 | 31 |
| 76. | कुम्भादिवधः | ... | 98 | 38 |
| 77. | निकुम्भवधः | .... | 25 | 48 |
| 78. | मकराक्षनिर्गमः | ... | 21 | 51 |
| 79. | मकराक्षवधः | ... | 43 | 53 |
| 80. | इन्द्रजिन्निर्गमः | ... | 44 | 58 |
| 81. | मायासीतावधः | ... | 38 | 62 |
| 82. | इन्द्रजिता निकुम्भिलायां होमारम्भः | | 29 | 66 |
| 83. | मायासीतावधमूर्च्छितरामसान्त्वनम् | | 44 | 69 |
| 84. | इन्द्रजिद्वधोपायदर्शनम् | ... | 23 | 74 |
| 85. | इन्द्रजिद्वधाय लक्ष्मणनिर्गमनम् | | 39 | 77 |
| 86. | इन्द्रजिद्युद्धारंभः | ... | 36 | 81 |
| 87. | इन्द्रजिद्विभीषणसंवादः | | 35 | 84 |
| 88. | इन्द्रजिल्लक्ष्मणयुद्धम् | ... | 41 | 88 |
| 89. | इन्द्रजिल्लक्ष्मणयोः सुमहान् संप्रहारः | | 44 | 93 |
| 90. | इन्द्रजितो रथभङ्गः | ... | 56 | 97 |


त्रयोविंशतितमेऽह्नि गीताः श्लोकाः 978

| सर्गः | विषयः | | श्लोकसङ्ख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|---|
| 91. | इन्द्रजिद्वधः | ... | 101 | 103 |
| 92. | लक्ष्मणश्लाघनम् | ... | 32 | 113 |
| 93. | रावणविलापः | ... | 70 | 116 |
| 94. | मूलबलयुद्धम् | ... | 39 | 123 |
| 95. | राक्षसीनां प्रलापः | ... | 44 | 127 |
| 96. | रावणनिर्याणम् | ... | 52 | 131 |
| 97. | विरूपाक्षवधः | ... | 35 | 137 |
| 98. | महोदरवधः | ... | 46 | 141 |
| 99. | महापार्श्ववधः | ... | 26 | 145 |
| 100. | रामरावणयुद्धारंभः | .... | 50 | 148 |
| 101. | शक्त्या लक्ष्मणस्य पतनम् | | 65 | 153 |
| 102. | लक्ष्मणसञ्जीवनम् | ... | 54 | 160 |
| 103. | इन्द्ररथमारुह्य संग्रामः | ... | 36 | 165 |
| 104. | रावणशूलोद्धरणम् | ... | 37 | 169 |
| 105. | युद्धाद्रावणरथापवाहनम् | | 33 | 172 |
| 106. | रावणरथप्रत्यानयनम् | .... | 29 | 176 |
| 107. | आदित्यहृदयोपदेशः | ... | 32 | 179 |
| 108. | रावणदुर्निमित्तानि | ... | 39 | 182 |
| 109. | रामरावणयोः समसमरः | | 31 | 186 |
| 110. | रावणशिरश्छेदः | ... | 40 | 190 |
| 111. | रावणवधः | ... | 34 | 194 |
| | चतुर्विंशतितमेऽह्नि गीताः श्लोकाः | | 925 | |
| 112. | विभीषणविलापः | ... | 26 | 198 |
| 113. | रावणान्तःपुरस्त्रीविलापः | | 28 | 201 |

| सर्गः | विषयः | | श्लोकसङ्ख्या | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|---|
| 114. | मण्डोदरीविलापः रावणसंस्कारश्च | | 127 | 204 |
| 115. | विभीषणाभिषेकः | ... | 25 | 216 |
| 116. | हनुमत्सीतासंवादः | ... | 56 | 218 |
| 117. | सीतानयनम् | ... | 37 | 224 |
| 118. | श्रीरामपरुषोक्तिः | ... | 26 | 228 |
| 119. | सीताग्निप्रवेशः | ... | 35 | 231 |
| 120. | श्रीरामस्तवः | ... | 36 | 234 |
| 121. | सीतास्वीकारः | ... | 23 | 238 |
| 122. | दशरथानुशासनम् | ... | 37 | 240 |
| 123. | वानरोज्जीवनम् | ... | 25 | 244 |
| 124. | श्रीरामस्य विभीषणसत्कारः | | 29 | 247 |
| 125. | वानरसेनासंमाननम् | ... | 28 | 250 |
| 126 | सीतायै तत्तद्देशप्रदर्शनम् | | 58 | 253 |
| 127. | भरद्वाजाश्रमप्राप्तिः | .... | 24 | 259 |
| 128. | भरतं प्रति हनुमत्प्रेषणम् | | 46 | 261 |
| 129. | हनुमता श्रीरामवृत्तान्तनिवेदनम् | | 57 | 266 |
| 130. | श्रीरामभरतसमागमः | ... | 62 | 272 |
| 131. | श्रीरामपट्टाभिषेकः | .... | 121 | 278 |


पञ्चविंशेऽह्नि गीताः श्लोकाः 905

ॐ

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीसीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्नहनुमत्समेतश्रीरामचन्द्रस्वामिने नमः ॥

# ॥ श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम् ॥

## युद्धकाण्डम्

### द्वितीयखण्डः ॥

[पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे द्वाविंशति
दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे त्रयोविंशतितमेऽह्नि युद्धकाण्डे
एकसप्ततितमसर्गमारभ्य नवतितमसर्गपर्यन्तं
(17917–18894 श्लोकाः) गीतम् ।
तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाश्च 978.]

### एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

अतिकायवधः ॥

स्वबलं व्यथितं दृष्ट्वा तुमुलं रोमहर्षणम् ।
भ्रातॄंश्च निहतान्दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ १ ॥

पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे संनिषूदितौ ।
युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ राक्षसर्षभौ ॥ २ ॥

चुकोप च महातेजा ब्रह्मदत्तवरो युधि ।
अतिकायोऽद्रिसङ्काशो देवदानवदर्पहा ॥ ३ ॥

स भास्करसहस्रस्य सङ्घातमिव भास्वरम् ।
रथमास्थाय शक्रारिरभिदुद्राव वानरान् ॥ ४ ॥

स विस्फार्य महच्चापं किरीटी मृष्टकुण्डलः ।
नाम विश्रावयामास ननाद च महास्वनम् ॥ ५ ॥

तेन सिंहप्रणादेन नामविश्रावणेन च ।
ज्याशब्देन च भीमेन त्रासयामास वानरान् ॥ ६ ॥

ते दृष्ट्वा देहमाहात्म्यं कुम्भकर्णोऽयमुत्थितः ।
भयार्ता वानराः सर्वे संश्रयन्ते परस्परम् ॥ ७ ॥

ते तस्य रूपमालोक्य यथा विष्णोस्त्रिविक्रमे ।
भयाद्वानरयूथास्ते विद्रवन्ति ततस्ततः ॥ ८ ॥

तेऽतिकायं समासाद्य वानरा मूढचेतसः ।
शरण्यं शरणं जग्मुर्लक्ष्मणाग्रजमाहवे ॥ ९ ॥

ततोऽतिकायं काकुत्स्थो रथस्थं पर्वतोपमम् ।
ददर्श धन्विनं दूराद्गर्जन्तं कालमेघवत् ॥ १० ॥

स तं दृष्ट्वा महात्मानं राघवस्तु विसिष्मिये ।
वानरान् सान्त्वयित्वाऽथ विभीषणमुवाच ह ॥ ११ ॥

कोऽसौ पर्वतसङ्काशो धनुष्मान् हरिलोचनः ।
युक्ते हयसहस्रेण विशाले स्यन्दने स्थितः ॥ १२ ॥

य एष निशितैः शूलैः सुतीक्ष्णैः प्रासतोमरैः ।
अर्चिष्मद्भिर्वृतो भाति भूतैरिव महेश्वरः ॥ १३ ॥

कालजिह्वाप्रकाशाभिर्य एषोऽतिविराजते ।
आवृतो रथशक्तीभिर्विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ १४ ॥

धनूंषि चास्य सज्यानि हेमपृष्ठानि सर्वशः ।
शोभयन्ति रथश्रेष्ठं शक्रचाप इवाम्बरम् ॥ १५ ॥

क एष रक्षःशार्दूलो रणभूमिं विराजयन् ।
अभ्येति रथिनां श्रेष्ठो रथेनादित्यतेजसा ॥ १६ ॥

ध्वजशृङ्गप्रतिष्ठेन राहुणाऽभिविराजते ।
सूर्यरश्मिनिभैर्बाणैर्दिशो दश विराजयन् ॥ १७ ॥

त्रिणतं मेघनिर्ह्रादं हेमपृष्ठमलंकृतम् ।
शतक्रतुधनुःप्रख्यं धनुश्चास्य विराजते ॥ १८ ॥

सध्वजः सपताकश्च सानुकर्षो महारथः ।
चतुःसादिसमायुक्तो मेघस्तनितनिस्वनः ॥ १९ ॥

विंशतिर्दश चाष्टौ च तूण्योऽस्य रथमास्थिताः ।
कार्मुकानि च भीमानि ज्याश्च काञ्चनपिङ्गलाः ॥ २० ॥

द्वौ च खड्गौ रथगतौ पार्श्वस्थौ पार्श्वशोभितौ ।
चतुर्हस्तत्सरुयुतौ व्यक्तहस्तदशायतौ ॥ २१ ॥

रक्तकण्ठगुणो धीरो महापर्वतसन्निभः ।
कालः कालमहावक्त्रो मेघस्थ इव भास्करः ॥ २२ ॥

काञ्चनाङ्गदनद्धाभ्यां भुजाभ्यामेष शोभते ।
शृङ्गाभ्यामिव तुङ्गाभ्यां हिमवान् पर्वतोत्तमः ॥ २३ ॥

कुण्डलाभ्यां तु यस्यैतद्भाति वक्त्रं शुभेक्षणम् ।
पुनर्वस्वन्तरगतं पूर्णं बिम्बमिवैन्दवम् ॥ २४ ॥

आचक्ष्व मे महाबाहो त्वमेनं राक्षसोत्तमम् ।
यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे भयार्ता विद्रुता दिशः ॥ २५ ॥

स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणामिततेजसा ।
आचचक्षे महातेजा राघवाय विभीषणः ॥ २६ ॥

दशग्रीवो महातेजा राजा वैश्रवणानुजः ।
भीमकर्मा महोत्साहो रावणो राक्षसाधिपः ॥ २७ ॥

तस्यासीद्वीर्यवान् पुत्रो रावणप्रतिमो रणे ।
वृद्धसेवी श्रुतिधरः सर्वास्त्रविदुषां वरः ॥ २८ ॥

अश्वपृष्ठे रथे नागे खड्गे धनुषि कर्षणे ।
भेदे सान्त्वे च दाने च नये मन्त्रे च सम्मतः ॥ २९ ॥

यस्य बाहू समाश्रित्य लङ्का वसति निर्भया ।
तनयं धान्यमालिन्या अतिकायमिमं विदुः ॥ ३० ॥

एतेनाराधितो ब्रह्मा तपसा भावितात्मना ।
अस्त्राणि चाप्यवाप्तानि रिपवश्च पराजिताः ॥ ३१ ॥

सुरासुरैरवध्यत्वं दत्तमस्मै स्वयंभुवा ।
एतच्च कवचं दिव्यं रथश्चैषोऽर्कभास्वरः ॥ ३२ ॥

एतेन शतशो देवा दानवाश्च पराजिताः ।
रक्षितानि च रक्षांसि यक्षाश्चापि निषूदिताः ॥ ३३ ॥

वज्रं विष्टम्भितं येन बाणैरिन्द्रस्य धीमतः ।
पाशः सलिलराजस्य रणे प्रतिहतस्तथा ॥ ३४ ॥

एषोऽतिकायो बलवान् राक्षसानामथर्षभः ।
रावणस्य सुतो धीमान् देवदानवदर्पहा ॥ ३५ ॥

तदस्मिन् क्रियतां यत्नः क्षिप्रं पुरुषपुङ्गव ।
पुरा वानरसैन्यानि क्षयं नयति सायकैः ॥ ३६ ॥

ततोऽतिकायो बलवान् प्रविश्य हरिवाहिनीम् ।
विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुनः पुनः ॥ ३७ ॥

तं भीमवपुषं दृष्ट्वा रथस्थं रथिनां वरम् ।
अभिपेतुर्महात्मानो ये प्रधाना वनौकसः ॥ ३८ ॥

कुमुदो द्विविदो मैन्दो नीलः शरभ एव च ।
पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च युगपत्समभिद्रवन् ॥ ३९ ॥

तेषां वृक्षांश्च शैलांश्च शरैः काञ्चनभूषणैः ।
अतिकायो महातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदां वरः ॥ ४० ॥

तांश्चैव सर्वान्स हरीञ्छरैः सर्वायसैर्बली ।
विव्याधाभिमुखः संख्ये भीमकायो निशाचरः ॥ ४१ ॥

तेऽर्दिता बाणवर्षेण भग्नगात्राः प्लवङ्गमाः ।
न शेकुरतिकायस्य प्रतिकर्तुं महारणे ॥ ४२ ॥

तत्सैन्यं हरिवीराणां त्रासयामास राक्षसः ।
मृगयूथमिव क्रुद्धो हरिर्यौवनदर्पितः ॥ ४३ ॥

स राक्षसेन्द्रो हरिसैन्यमध्ये नायुध्यमानं निजघान कञ्चित्।
उपेत्य रामं सधनुः कलापी सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे ॥

रथे स्थितोऽहं शरचापपाणिर्न प्राकृतं कञ्चन योधयामि ।
यश्चास्ति कश्चिद्व्यवसाययुक्तो ददातु मे क्षिप्रमिहाद्य युद्धम्॥

तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता ।
अमृष्यमाणश्च समुत्पपात जग्राह चापं च ततः स्मयित्वा ॥

क्रुद्धः सौमित्रिरुत्पत्य तूणादाक्षिप्य सायकम् ।
पुरस्तादतिकायस्य विचकर्ष महद्धनुः ॥ ४७ ॥

पूरयन्स महीं शैलानाकाशं सागरं दिशः ।
ज्याशब्दो लक्ष्मणस्योग्रस्त्रासयन्रजनीचरान् ॥ ४८ ॥

सौमित्रेश्चापनिर्घोषं श्रुत्वा प्रतिभयं तदा ।
विसिष्मिये महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥ ४९ ॥

अथातिकायः कुपितो दृष्ट्वा लक्ष्मणमुत्थितम् ।
आदाय निशितं बाणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५० ॥

बालस्त्वमसि सौमित्रे विक्रमेष्वविचक्षणः ।
गच्छ किं कालसदृशं मां योधयितुमिच्छसि ॥ ५१ ॥

न हि मद्बाहुसृष्टानामस्त्राणां हिमवानपि ।
सोढुमुत्सहते वेगमन्तरिक्षमथो मही ॥ ५२ ॥

सुखप्रसुप्तं कालाग्निं निबोधयितुमिच्छसि ।
न्यस्य चापं निवर्तस्व मा प्राणाञ्जहि मद्गतः ॥ ५३ ॥

अथवा त्वं प्रतिष्टब्धो न निवर्तितुमिच्छसि ।
तिष्ठ प्राणान्परित्यज्य गमिष्यसि यमक्षयम् ॥ ५४ ॥

पश्य मे निशितान्बाणानरिदर्पनिषूदनान् ।
ईश्वरायुधसङ्काशांस्तप्तकाञ्चनभूषणान् ॥ ५५ ॥

एष ते सर्पसंकाशो बाणः पास्यति शोणितम् ।
मृगराज इव क्रुद्धो नागराजस्य शोणितम् ॥ ५६ ॥

इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धः शरं धनुषि संदधे ॥ ५७ ॥

श्रुत्वाऽतिकायस्य वचः सरोषं सगर्वितं संयति राजपुत्रः ।
स संचुकोपातिबलो बृहच्छ्रीरुवाच वाक्यं च ततो महार्थम्॥

न वाक्यमात्रेण भवान्प्रधानो न कत्थनात्सत्पुरुषा भवन्ति ।
मयि स्थिते धन्विनि बाणपाणौ निदर्शय स्वात्मबलं दुरात्मन्॥

कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि ।
पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥ ६० ॥

सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः ।
शरैर्वा यदि वाऽप्यस्त्रैर्दर्शयस्व पराक्रमम् ॥ ६१ ॥

ततः शिरस्ते निशितैः पातयिष्याम्यहं शरैः ।
मारुतः कालसंपक्वं वृन्तात्तालफलं यथा ॥ ६२ ॥

अद्य ते मामका बाणास्तप्तकाञ्चनभूषणाः ।
पास्यन्ति रुधिरं गात्राद्बाणशल्यान्तरोत्थितम् ॥ ६३ ॥

बालोऽयमिति विज्ञाय न माऽवज्ञातुमर्हसि ॥ ६४ ॥

बालो वा यदि वा वृद्धो मृत्युं जानीहि संयुगे ।
बालेन विष्णुना लोकास्त्रयः क्रान्तास्त्रिभिः क्रमैः ॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवत् ।
अतिकायः प्रचुक्रोध बाणं चोत्तममाददे ॥ ६६ ॥

ततो विद्याधरा भूता देवा दैत्या महर्षयः ।
गुह्यकाश्च महात्मानस्तद्युद्धं द्रष्टुमागमन् ॥ ६७ ॥

ततोऽतिकायः कुपितश्चापमारोप्य सायकम् ।
लक्ष्मणाय प्रचिक्षेप संक्षिपन्निव चाम्बरम् ॥ ६८ ॥

तमापतन्तं निशितं शरमाशीविषोपमम्
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ६९ ॥

तं निकृत्तं शरं दृष्ट्वा कृत्तभोगमिवोरगम् ।
अतिकायो भृशं क्रुद्धः पञ्च बाणान् समाददे ॥ ७० ॥

ताञ्छरान् संप्रचिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ॥ ७१ ॥

तानप्राप्ताञ्छरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भरतानुजः ॥ ७२ ॥

स तांश्छित्त्वा शरैस्तीक्ष्णैर्लक्ष्मणः परवीरहा ।
आददे निशितं बाणं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ७३ ॥

तमादाय धनुःश्रेष्ठे योजयामास लक्ष्मणः ।
विचकर्ष च वेगेन विससर्ज च वीर्यवान् ॥ ७४ ॥

पूर्णायतविसृष्टेन शरेण नतपर्वणा ।
ललाटे राक्षसश्रेष्ठमाजघान स वीर्यवान् ॥ ७५ ॥

स ललाटे शरो मग्नस्तस्य भीमस्य रक्षसः ।
ददृशे शोणितेनाक्तः पन्नगेन्द्र इवाचले ॥ ७६ ॥

राक्षसः प्रचकम्पे च लक्ष्मणेषुप्रपीडितः ।
रुद्रबाणाहतं घोरं यथा त्रिपुरगोपुरम् ॥ ७७ ॥

चिन्तयामास चाश्वास्य विमृश्य च महाबलः ।
साधु बाणनिपातेन श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः ॥ ७८ ॥

विधायैवं विनम्यास्यं नियम्य च भुजावुभौ ।
स रथोपस्थमास्थाय रथे च प्रचचार ह ॥ ७९ ॥

एकं त्रीन्पञ्च सप्तेति सायकान्राक्षसर्षभः ।
आददे संदधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च ॥ ८० ॥

ते बाणाः कालसङ्काशा राक्षसेन्द्रधनुश्च्युताः ।
हेमपुङ्खा रविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवाम्बरम् ॥ ८१ ॥

ततस्तान्राक्षसोत्सृष्टाञ्छरौघान्राघवानुजः ।
असंभ्रान्तः प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः ॥ ८२ ॥

ताञ्छरान्युधि संप्रेक्ष्य निकृत्तान्रावणात्मजः ।
चुकोप त्रिदशेन्द्रारिर्जग्राह निशितं शरम् ॥ ८३ ॥

स सन्धाय महातेजास्तं बाणं सहसोत्सृजत् ।
ततः सौमित्रिमायान्तमाजघान स्तनान्तरे ॥ ८४ ॥

अतिकायेन सौमित्रिस्ताडितो युधि वक्षसि ।
सुस्राव रुधिरं तीव्रं मदं मत्त इव द्विपः ॥ ८५ ॥

स चकार तदाऽऽत्मानं विशल्यं सहसा विभुः ।
जग्राह च शरं तीक्ष्णमस्त्रेणापि च सन्दधे ॥ ८६ ॥

आग्नेयेन तदाऽस्त्रेण योजयामास सायकम् ।
स जज्वाल तदा बाणो धनुष्यस्य महात्मनः ॥ ८७ ॥

अतिकायोऽपि तेजस्वी सौरमस्त्रं समादधे ।
तेन बाणं भुजङ्गाभं हेमपुङ्खमयोजयत् ॥ ८८ ॥

तदस्त्रं ज्वलितं घोरं लक्ष्मणः शरमाहितम् ।
अतिकायाय चिक्षेप कालदण्डमिवान्तकः ॥ ८९ ॥

आग्नेयेनाभिसंयुक्तं दृष्ट्वा बाणं निशाचरः ।
उत्ससर्ज तदा बाणं दीप्तं सूर्यास्त्रयोजितम् ॥ ९० ॥

तावुभावम्बरे बाणावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
तेजसा संप्रदीप्ताग्रौ क्रुद्धाविव भुजङ्गमौ ॥ ९१ ॥

तावन्योन्यं विनिर्दह्य पेततुः पृथिवीतले ।
निरर्चिषौ भस्मकृतौ न भ्राजेते शरोत्तमौ ॥ ९२ ॥

तावुभौ दीप्यमानौ स्म न भ्राजेते महाहवे ॥ ९३ ॥

ततोऽतिकायः संक्रुद्धस्त्वस्त्रमैषीकमुत्सृजत् ।
तत्प्रचिच्छेद सौमित्रिरस्त्रेणैन्द्रेण वीर्यवान् ॥ ९४ ॥

ऐषीकं निहतं दृष्ट्वा रुषितो रावणात्मजः ।
याम्येनास्त्रेण संक्रुद्धो योजयामास सायकम् ॥ ९५ ॥

ततस्तदस्त्रं चिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ।
वायव्येन तदस्त्रेण निजघान स लक्ष्मणः ॥ ९६ ॥
अथैनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदः ।
अभ्यवर्षत्सुसंक्रुद्धो लक्ष्मणो रावणात्मजम् ॥ ९७ ॥
तेऽतिकायं समासाद्य कवचे वज्रभूषिते ।
भग्नाग्रशल्याः सहसा पेतुर्बाणा महीतले ॥ ९८ ॥
तान्मोघानभिसंप्रेक्ष्य लक्ष्मणः परवीरहा ।
अभ्यवर्षन्महेषूणां सहस्रेण महायशाः ॥ ९९ ॥
स वृष्यमाणो बाणौघैरतिकायो महाबलः ।
अवध्यकवचः संख्ये राक्षसो नैव विव्यथे ॥ १०० ॥
न शशाक रुजं कर्तुं युधि तस्य शरोत्तमः ॥ १०१ ॥
अथैनमभ्युपागम्य वायुर्वाक्यमुवाच ह ।
ब्रह्मदत्तवरो ह्येष अवध्यकवचावृतः ॥ १०२ ॥
ब्राह्मेणास्त्रेण भिन्ध्येनमेष वध्यो हि नान्यथा ।
अवध्य एष ह्यन्येषामस्त्राणां कवची बली ॥ १०३ ॥

ततस्तु वायोर्वचनं निशम्य सौमित्रिरिन्द्रप्रतिमानवीर्यः ।
समाददे बाणममोघवेगं तद्ब्राह्ममस्त्रं सहसा नियोज्य ॥
तस्मिन्महास्त्रे तु नियुज्यमाने सौमित्रिणा बाणवरे शिताग्रे ।
दिशश्च चन्द्रार्कमहाग्रहाश्च नभश्च तत्रास चचाल चोर्वी ॥
तं ब्रह्मणोऽस्त्रेण नियोज्य चापे शरं सुपुङ्खं यमदूतकल्पम् ।
सौमित्रिरिन्द्रारिसुतस्य तस्य ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम् ॥

तं लक्ष्मणोत्सृष्टममोघवेगं समापतन्तं ज्वलनप्रकाशम् ।
सुवर्णवज्रोत्तमचित्रपुङ्खं तदाऽतिकायः समरे ददर्श ॥
तं प्रेक्षमाणः सहसातिऽकायो जघान बाणैर्निशितैरनेकैः ।
स सायकस्तस्य सुपर्णवेगस्तदाऽतिकायस्य जगाम पार्श्वम्॥
तमागतं प्रेक्ष्य तदाऽतिकायो बाणं प्रदीप्तान्तककालकल्पम् ।
जघान शक्त्यृष्टिगदाकुठारैः शूलैर्हलैश्चाप्यविपन्नचेताः ॥
तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि मोघानि कृत्वा स शरोऽग्निदीप्तः।
प्रगृह्य तस्यैव किरीटजुष्टं ततोऽतिकायस्य शिरो जहार ॥

तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषुप्रपीडितम् ।
पपात सहसा भूमौ शृङ्गं हिमवतो यथा ॥ १११ ॥
तं तु भूमौ निपतितं दृष्ट्वा विक्षिप्तभूषणम् ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे हतशेषा निशाचराः ॥ ११२ ॥
ते विषण्णमुखा दीनाः प्रहारजनितश्रमाः ।
विनेदुरुच्चैर्बहवः सहसा विस्वरैः स्वरैः ॥ ११३ ॥
ततस्ते त्वरितं याता निरपेक्षा निशाचराः ।
पुरीमभिमुखा भीता द्रवन्तो नायके हते ॥ ११४ ॥
प्रहर्षयुक्ता बहवस्तु वानराः प्रबुद्धपद्मप्रतिमाननास्तदा ।
अपूजयंल्लक्ष्मणमिष्टभागिनं हते रिपौ भीमबले दुरासदे ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18031 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3356

## द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

### रावणोद्वेगः ॥

अतिकायं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महौजसा ।
उद्वेगमगमद्राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

धूम्राक्षः परमामर्षी धन्वी शस्त्रभृतां वरः ।
अकम्पनः प्रहस्तश्च कुम्भकर्णस्तथैव च ॥ २ ॥

एते महाबला वीरा राक्षसा युद्धकाङ्क्षिणः ।
जेतारः परसैन्यानां परैर्नित्यापराजिताः ॥ ३ ॥

निहतास्ते महावीर्या रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
राक्षसाः सुमहाकाया नानाशस्त्रविशारदाः ॥
अन्ये च बहवः शूरा महात्मानो निपातिताः ॥ ४ ॥

प्रख्यातबलवीर्येण पुत्रेणेन्द्रजिता मम ।
यौ हि तौ भ्रातरौ वीरौ बद्धौ दत्तवरैः शरैः ॥ ५ ॥

यन्न शक्यं सुरैः सर्वैरसुरैर्वा महाबलैः ।
मोक्तुं तद्बन्धनं घोरं यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ॥ ६ ॥

तन्न जाने प्रभावैर्वा मायया मोहनेन वा ।
शरबन्धाद्विमुक्तौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥

ये योधा निर्गताः शूरा राक्षसा मम शासनात् ।
ते सर्वे निहता युद्धे वानरैः सुमहाबलैः ॥ ८ ॥

तं न पश्याम्यहं युद्धे योऽद्य रामं सलक्ष्मणम् ।
शासयेत्सबलं वीरं ससुग्रीवविभीषणम् ॥ ९ ॥

अहो नु बलवान् रामो महदस्त्रबलं च वै ॥ १० ॥
यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः ।
तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥ ११ ॥
तद्भयाद्धि पुरी लङ्का पिहितद्वारतोरणा ॥ १२ ॥
अप्रमत्तैश्च सर्वत्र गुप्तौ रक्ष्या पुरी त्वियम् ॥ १३ ॥
अशोकवनिकायां च यत्र सीताऽभिरक्ष्यते ।
निष्क्रामो वा प्रवेशो वा ज्ञातव्यः सर्वथैव नः ॥ १४ ॥
यत्र यत्र भवेद्गुल्मस्तत्र तत्र पुनः पुनः ।
सर्वतश्चापि तिष्ठध्वं स्वैः स्वैः परिवृता बलैः ॥ १५ ॥
द्रष्टव्यं च पदं तेषां वानराणां निशाचराः ।
प्रदोषे वाऽर्धरात्रे वा प्रत्यूषे वाऽपि सर्वतः ॥ १६ ॥
नावज्ञा तत्र कर्तव्या वानरेषु कदाचन ।
द्विषतां बलमुद्युक्तमापतत्किं स्थितं सदा ॥ १७ ॥
ततस्ते राक्षसाः सर्वे श्रुत्वा लङ्काधिपस्य तत् ।
वचनं सर्वमातिष्ठन्यथावत्तु महाबलाः ॥ १८ ॥
स तान्सर्वान् समादिश्य रावणो राक्षसाधिपः ।
मन्युशल्यं वहन्दीनः प्रविवेश स्वमालयम् ॥ १९ ॥
ततः स संदीपितकोपवह्निर्निशाचराणामधिपो महाबलः ।
तदेव पुत्रव्यसनं विचिन्तयन्मुहुर्मुहुश्चैव तदा व्यनिश्वसत् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18051 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3376

## त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

ब्रह्मास्त्रबन्धनः ॥

ततो हतान्राक्षसपुङ्गवांस्तान्देवान्तकादित्रिशिरोऽतिकायान्।
रक्षोगणास्तत्र हतावशिष्टास्ते रावणाय त्वरितं शशंसुः ॥१॥

ततो हतांस्तान्सहसा निशम्य राजा मुमोहाश्रुपरिप्लुताक्षः ।
पुत्रक्षयं भ्रातृवधं च घोरं विचिन्त्य राजा विपुलं प्रदध्यौ ॥

ततस्तु राजानमुदीक्ष्य दीनं शोकार्णवे संपरिपुप्लुवानम् ।
रथर्षभो राक्षसराजसूनुस्तमिन्द्रजिद्वाक्यमिदं बभाषे ॥ ३ ॥

न तात मोहं प्रतिगन्तुमर्हसि यत्रेन्द्रजिज्जीवति राक्षसेन्द्र ।
तद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहाः प्राणैर्विमुक्तास्समरे पतन्ति ॥४॥

नेन्द्रारिबाणाभिहतो हि कश्चित्प्राणान्समर्थः समरेऽभिपातुम्।

पश्याद्य रामं सह लक्ष्मणेन मद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम् ।
गतायुषं भूमितले शयानं शितैः शरैराचितसर्वगात्रम् ॥ ६ ॥

इमां प्रतिज्ञां शृणु शक्रशत्रोः सुनिश्चितां पौरुषदैवयुक्ताम् ।
अद्यैव रामं सह लक्ष्मणेन संतर्पयिष्यामि शरैरमोघैः ॥ ७ ॥

अद्येन्द्रवैवस्वतविष्णुरुद्रसाध्याश्विवैश्वानरचन्द्रसूर्याः ।
द्रक्ष्यन्तु मे विक्रममप्रमेयं विष्णोरिवोग्रं बलियज्ञवाटे ॥ ८ ॥

स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्रशत्रुरापृच्छ्य राजानमदीनसत्त्वः ।
समारुरोहानिलतुल्यवेगं रथं खरश्रेष्ठसमाधियुक्तम् ॥ ९ ॥

तमास्थाय महातेजा रथं हरिरथोपमम् ।
जगाम सहसा तत्र यत्र युद्धं प्रवर्तते ॥ १० ॥

तं प्रस्थितं महात्मानमनुजग्मुर्महाबलाः ।
संहर्षमाणा बहवो धनुःप्रवरपाणयः ॥ ११ ॥

गजस्कन्धगताः केचित्केचित्प्रवरवाजिभिः ॥ १२ ॥

प्रासमुद्गरनिस्त्रिंशपरश्वधगदाधरः ।
भुशुण्डिमुद्गरायष्टिशतघ्नीपरिघायुधः ॥ १३ ॥

स शङ्खनिनदैः पूर्णैर्भेरीणां चापि निस्वनैः ।
जगाम त्रिदशेन्द्रारिर्महासैन्येन वीर्यवान् ॥ १४ ॥

स शङ्खशशिवर्णेन छत्रेण रिपुसूदनः ।
रराज निशि पूर्णेन नभश्चन्द्रमसा यथा ॥ १५ ॥

अवीज्यत ततो वीरो हैमैर्हेमविभूषितैः ।
चारुचामरमुख्यैश्च मुख्यः सर्वधनुष्मताम् ॥ १६ ॥

ततस्त्विन्द्रजिता लङ्का सूर्यप्रतिमतेजसा ।
रराजाप्रतिवीरेण द्यौरिवार्केण भास्वता ॥ १७ ॥

स संप्राप्य महातेजा युद्धभूमिमरिन्दमः ।
स्थापयामास रक्षांसि रथं प्रति समन्ततः ॥ १८ ॥

ततस्तु हुतभोक्तारं हुतभुक्सदृशप्रभः ।
जुहाव राक्षसश्रेष्ठो मन्त्रवद्विधिवत्तदा ॥ १९ ॥

स हविर्लाजसंस्कारैर्माल्यगन्धपुरस्कृतैः ।
जुहुवे पावकं तत्र राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ २० ॥

शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतकाः ।
लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा ॥ २१ ॥

स तत्राग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः ।
छागस्य कृष्णवर्णस्य गलं जग्राह जीवतः ॥ २२ ॥

सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः ।
बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं [illegible] ॥ २३ ॥

प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तकाञ्चनसन्निभः ।
हविस्तत्प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ॥ २४ ॥

सोऽस्त्रमाहारयामास ब्राह्ममस्त्रविशारदः ।
धनुश्चात्मरथं चैव सर्वं तत्राभ्यमन्त्रयत् ॥ २५ ॥

तस्मिन्नाहूयमानेऽस्त्रे हूयमाने च पावके ।
सार्कग्रहेन्दुनक्षत्रं वितत्रास नभःस्थलम् ॥ २६ ॥

स पावकं पावकदीप्ततेजा हुत्वा महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ।
स चापबाणासिरथाश्वसूतः खेऽन्तर्दधे राक्षसराजसूनुः॥

ततो हयरथाकीर्णं पताकाध्वजशोभितम् ।
निर्ययौ राक्षसबलं नर्दमानं युयुत्सया ॥ २८ ॥

अशोभत बलं घोरं किङ्किणीशतनादितम् ॥ २९ ॥

ते शरैर्बहुभिश्चित्रैस्तीक्ष्णवेगैरलङ्कृतैः ।
तोमरैरङ्कुशैश्चापि वानराञ्जघ्नुराहवे ॥ ३० ॥

रावणिस्तु ततः क्रुद्धस्तान्निरीक्ष्य निशाचरान् ।
हृष्टा भवन्तो युद्ध्यन्तु वानराणां जिघांसया ॥ ३१ ॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे नर्दन्तो जयकाङ्क्षिणः ।
अभ्यवर्षंस्ततो घोरान्वानराञ्छरवृष्टिभिः ॥ ३२ ॥

स तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैरपि ।
रक्षोभिः संवृतः संख्ये वानरान्विचकर्त ह ॥ ३३ ॥

ते वध्यमानाः समरे वानराः पादपायुधाः ।
अभ्यद्रवन्त सहिता रावणिं रणकर्कशम् ॥ ३४ ॥

इन्द्रजित्तु ततः क्रुद्धो महातेजा महाबलः ।
वानराणां शरीराणि व्यधमद्रावणात्मजः ॥ ३५ ॥

शरेणैकेन च हरीन्नव पञ्च च सप्त च ।
बिभेद समरे क्रुद्धो राक्षसान्संप्रहर्षयन् ॥ ३६ ॥

स शरैः सूर्यसङ्काशैः शातकुम्भविभूषितैः ।
वानरान्समरे वीरः प्रममाथ सुदुर्जयः ॥ ३७ ॥

ते भिन्नगात्राः समरे वानराः शरपीडिताः ।
पेतुर्मथितसङ्कल्पाः सुरैरिव महासुराः ॥ ३८ ॥

तं तपन्तमिवादित्यं घोरैर्बाणगभस्तिभिः ।
अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः संयुगे वानरर्षभाः ॥ ३९ ॥

ततस्तु वानराः सर्वे भिन्नदेहा विचेतसः ।
व्यथिता विद्रवन्ति स्म रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ४० ॥

रामस्यार्थे पराक्रम्य वानरास्त्यक्तजीविताः ।
नर्दन्तस्तेऽभिवृत्तास्तु समरे सशिलायुधाः ॥ ४१ ॥

ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च शिलाभिश्च प्लवङ्गमाः ।
अभ्यवर्षन्त समरे रावणिं पर्यवस्थिताः ॥ ४२ ॥

तद्द्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् ।
व्यपोहत महातेजा रावणिः समितिञ्जयः ॥ ४३ ॥

ततः पावकसङ्काशैः शरैराशीविषोपमैः ।
वानराणामनीकानि बिभेद समरे प्रभुः ॥ ४४ ॥

अष्टादशशरैस्तीक्ष्णैः स विद्ध्वा गन्धमादनम् ।
विव्याध नवभिश्चैव नलं दूरादवस्थितम् ॥ ४५ ॥

सप्तभिस्तु महावीर्यो मैन्दं मर्मविदारणैः ।
पञ्चभिर्विशिखैश्चैव गजं विव्याध संयुगे ॥ ४६ ॥

जाम्बवन्तं तु दशभिर्नीलं त्रिंशद्भिरेव च ।
सुग्रीवमृषभं चैव सोऽङ्गदं द्विविदं तथा ॥
घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत्तदा ॥ ४७ ॥

अन्यानपि तदा मुख्यान्वानरान्बहुभिः शरैः ।
अर्दयामास संक्रुद्धः कालाग्निरिव मूर्च्छितः ॥ ४८ ॥

स शरैः सूर्यसङ्काशैः सुमुक्तैः शीघ्रगामिभिः ।
वानराणामनीकानि निर्ममन्थ महारणे ॥ ४९ ॥

आकुलां वानरीं सेनां शरजालेन मोहिताम् ।
हृष्टः स परया प्रीत्या ददर्श क्षतजोक्षिताम् ॥ ५० ॥

पुनरेव महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ।
ससर्ज बाणवर्षं च शस्त्रवर्षं च दारुणम् ॥ ५१ ॥

ममर्द वानरानीकमिन्द्रजित्त्वरितो बली ॥ ५२ ॥

स्वसैन्यमुत्सृज्य समेत्य तूर्णं महारणे वानरवाहिनीषु ।
अदृश्यमानः शरजालमुग्रं ववर्ष नीलाम्बुधरो यथाम्बु ॥

ते शक्रजिद्बाणविशीर्णदेहा मायाहता विस्वरमुन्नदन्तः ।
रणे निपेतुर्हरयोऽद्रिकल्पा यथेन्द्रवज्राभिहता नगेन्द्राः ॥

ते केवलं संददृशुः शिताग्रान्बाणान्रणे वानरवाहिनीषु ।
मायानिगूढं तु सुरेन्द्रशत्रुं न चावृतं राक्षसमभ्यपश्यन् ॥

ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा सर्वा दिशो बाणगणैः शिताग्रैः ।
प्रच्छादयामास रविप्रकाशैर्विषादयामास च वानरेन्द्रान् ॥

स शूलनिस्त्रिंशपरश्वधानि व्याविध्य दीप्तानलसन्निभानि ।
सविस्फुलिङ्गोज्ज्वलपावकानि ववर्ष तीव्रं प्लवगेन्द्रसैन्ये ॥

गदाश्च शक्तीः परिघं शतघ्नीर्ववर्ष तीव्रं प्लवगेन्द्रसैन्ये ॥

ततो ज्वलनसङ्काशैः शरैर्वानरयूथपाः ।
ताडिताः शक्रजिद्बाणैः प्रफुल्ला इव किंशुकाः ॥ ५९ ॥

तेऽन्योन्यमभिसर्पन्तो निनदन्तश्च विस्वरम् ।
राक्षसेन्द्रास्त्रनिर्भिन्ना निपेतुर्वानरर्षभाः ॥ ६० ॥

उदीक्षमाणा गगनं केचिन्नेत्रेषु ताडिताः ।
शरैर्विविशुरन्योन्यं पेतुश्च जगतीतले ॥ ६१ ॥

हनुमन्तं च सुग्रीवमङ्गदं गन्धमादनम् ।
जाम्बवन्तं सुषेणं च वेगदर्शिनमेव च ॥ ६२ ॥

मैन्दं च द्विविदं नीलं गवाक्षं गजगोमुखौ ।
केसरिं हरिलोमानं विद्युद्दंष्ट्रं च वानरम् ॥ ६३ ॥

सूर्याननं ज्योतिमुखं तथा दधिमुखं हरिम् ।
पावकाक्षं नलं चैव कुमुदं चैव वानरम् ॥ ६४ ॥

प्रासैः शूलैः शितैर्बाणैरिन्द्रजिन्मन्त्रसंहितैः ।
विव्याध हरिशार्दूलान्सर्वांस्तान्राक्षसोत्तमः ॥ ६५ ॥

स वै गदाभिर्हरियूथमुख्यान्निर्भिद्य बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ।
ववर्ष रामं शरवृष्टिजालैः सलक्ष्मणं भास्कररश्मिकल्पैः ॥

स बाणवर्षैरभिवर्ष्यमाणो धारानिपातानिव ताननचिन्त्य ।
समीक्षमाणः परमाद्भुतश्री रामस्तदा लक्ष्मणमित्युवाच ॥

असौ पुनर्लक्ष्मण राक्षसेन्द्रो ब्रह्मास्त्रमाश्रित्य सुरेन्द्रशत्रुः ।
निपातयित्वा हरिसैन्यमुग्रमस्माञ्छरैरर्दयति प्रसक्तः ॥

स्वयम्भुवा दत्तवरो महात्मा खमास्थितोऽन्तर्हितभीमकायः ।
कथं नु शक्यो युधि नष्टदेहो निहन्तुमद्येन्द्रजिदुद्यतास्त्रः ॥

मन्ये स्वयम्भूर्भगवानचिन्त्यो यस्यैतदस्त्रं प्रभवश्च योऽस्य ।
बाणावपातांस्त्वमिहाद्य धीमन्मया सहाव्यग्रमनाः सहस्व ॥

प्रच्छादयत्येष हि राक्षसेन्द्रः सर्वा दिशः सायकवृष्टिजालैः।
एतच्च सर्वं पतिताग्र्यशूरं न भ्राजते वानरराजसैन्यम् ॥

आवां तु दृष्ट्वा पतितौ विसंज्ञौ निवृत्तयुद्धौ गतरोषहर्षौ ।
ध्रुवं प्रवेक्ष्यत्यमरारिवासमसौ समादाय रणाग्रलक्ष्मीम् ॥

ततस्तु ताविन्द्रजिदस्त्रजालैर्बभूवतुस्तत्र तथा विशस्तौ ।
स चापि तौ तत्र विदर्शयित्वा ननाद हर्षाद्युधि राक्षसेन्द्रः॥

स तत्तदा वानरसैन्यमेवं रामं च सङ्ख्ये सह लक्ष्मणेन ।
विषादयित्वा सहसा विवेश पुरीं दशग्रीवभुजाभिगुप्ताम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18125 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3450

## चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

### ब्रह्मास्त्रबन्धविमुक्तिः ॥

तयोस्तदा सादितयो रणाग्रे मुमोह सैन्यं हरिपुङ्गवानाम् ॥
सुग्रीवनीलाङ्गदजाम्बवन्तो न चापि किञ्चित्प्रतिपेदिरे ते ॥

ततो विषण्णं समवेक्ष्य सैन्यं विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ।
उवाच शाखामृगराजवीरानाश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥

मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकालो यदार्यपुत्रौ ह्यवशौ विषण्णौ।
स्वयंभुवो वाक्यमथोद्वहन्तौ यत्सादिताविन्द्रजिदस्त्रजालैः ॥
विभीषणस्तत्र वराद्विधातुरासादितोऽस्त्रेण निरीक्षमाणः ।
सेनां हरीणां द्रुहिणास्त्रदूनां स्वस्थं हनूमन्तमुवाच दृष्ट्वा ॥
तस्मै तु दत्तं परमास्त्रमेतत्स्वयम्भुवा ब्राह्मममोघवेगम् ।
तन्मानयन्तौ युधि राजपुत्रौ निपातितौ कोऽत्र विषादकालः॥

ब्राह्ममस्त्रं ततो धीमान्मानयित्वा तु मारुतिः ।
विभीषणवचः श्रुत्वा हनुमांस्तमथाब्रवीत् ॥ ७ ॥

एतस्मिन्निहते सैन्ये वानराणां तरस्विनां ।
यो यो धारयते प्राणांस्तं तमाश्वासयावहै ॥ ८ ॥

तावुभौ युगपद्वीरौ हनुमद्राक्षसोत्तमौ ।
उल्काहस्तौ तदा रात्रौ रणशीर्षे विचेरतुः ॥ ९ ॥

भिन्नलाङ्गूलहस्तोरुपादांगुलिशिरोधरैः ।
स्रवद्भिः क्षतजं गात्रैः प्रस्रवद्भिस्समन्ततः ॥ १० ॥

पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंकुलाम् ।
शस्त्रैश्च पतितैर्दीप्तैर्ददृशाते वसुन्धराम् ॥ ११ ॥

सुग्रीवमङ्गदं नीलं शरभं गन्धमादनम् ।
जाम्बवन्तं सुषेणं च वेगदर्शिनमाहुकम् ॥ १२ ॥

मैन्दं नलं ज्योतिर्मुखं द्विविदं पनसं तथा ।
विभीषणहनूमन्तौ ददृशाते हतान्रणे ॥ १३ ॥

सप्तषष्टिर्हताः कोट्यो वानराणां तरस्विनाम् ।
अह्नः पञ्चमशेषेण वल्लभेन स्वयम्भुवः ॥ १४ ॥

सागरौघनिभं भीमं दृष्ट्वा बाणार्दितं बलम् ।
मार्गते जाम्बवन्तं स हनुमान् सविभीषणः ॥ १५ ॥

स्वभावजरया युक्तं वृद्धं शरशतैश्चितम् ।
प्रजापतिसुतं वीरं शाम्यन्तमिव पावकम् ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा तमुपसङ्क्रम्य पौलस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ।
कच्चिदार्य शरैस्तीक्ष्णैः प्राणा न ध्वंसितास्तव ॥ १७ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवानृक्षपुङ्गवः ।
कृच्छ्रादभ्युद्गिरन् वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥

नैर्ऋतेन्द्र महावीर्य स्वरेण त्वाभिलक्षये ।
पीड्यमानः शितैर्बाणैर्न त्वां पश्यामि चक्षुषा ॥ १९ ॥

अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च नैर्ऋत ।
हनुमान् वानरश्रेष्ठः प्राणान् धारयते क्वचित् ॥ २० ॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेदं विभीषणः ।
आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात्पृच्छसि मारुतिम् ॥ २१ ॥

नैव राजनि सुग्रीवे नाङ्गदे नापि राघवे ।
आर्य संदर्शितः स्नेहो यथा वायुसुते परः ॥ २२ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवान्वाक्यमब्रवीत् ।
शृणु नैर्ऋतशार्दूल यस्मात्पृच्छामि मारुतिम् ॥ २३ ॥

तस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम् ।
हनुमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि वयं हताः ॥ २४ ॥

धरते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि ।
वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत् ॥ २५ ॥

ततो वृद्धमुपागम्य नियमेनाभ्यवादयत् ।
गृह्य जाम्बवतः पादौ हनुमान्मारुतात्मजः ॥ २६ ॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं तथाऽपि व्यथितेन्द्रियः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते स्मर्क्षपुङ्गवः ॥ २७ ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा हनुमन्तं स जाम्बवान् ।
आगच्छ हरिशार्दूल वानरांस्त्रातुमर्हसि ॥ २८ ॥

नान्यो विक्रमपर्याप्तस्त्वमेषां परमः सखा ।
त्वत्पराक्रमकालोऽयं नान्यं पश्यामि कञ्चन ॥ २९ ॥

ऋक्षवानरवीराणामनीकानि प्रहर्षय ।
विशल्यौ कुरु चाप्येतौ सादितौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३० ॥

गत्वा परममध्वानमुपर्युपरि सागरम् ।
हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनुमन्गन्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥

ततः काञ्चनमत्युच्चमृषभं पर्वतोत्तमम् ।
कैलासशिखरं चापि द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥ ३२ ॥

तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम् ।
सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥ ३३ ॥

तस्य वानरशार्दूल चतस्रो मूर्ध्नि संभवाः ।
द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्त्यो दिशो दश ॥ ३४ ॥

मृतसञ्जीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि ।
सावर्ण्यकरणीं चैव सन्धानकरणीं तथा ॥ ३५ ॥

ताः सर्वा हनुमन्गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ।
आश्वासय हरीन्प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज ॥ ३६ ॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनुमान्हरिपुङ्गवः ।
आपूर्यत बलोद्धर्षैस्तोयवेगैरिवार्णवः ॥ ३७ ॥

स पर्वततटाग्रस्थः पीडयन्पर्वतोत्तमम् ।
हनुमान्दृश्यते वीरो द्वितीय इव पर्वतः ॥ ३८ ॥

हरिपादविनिर्भग्नो निषसाद स पर्वतः ।
न शशाक तदाऽऽत्मानं सोढुं भृशनिपीडितः ॥ ३९ ॥

तस्य पेतुर्नगा भूमौ हरिवेगाच्च जज्वलुः ।
शृङ्गाणि च व्यशीर्यन्त पीडितस्य हनूमता ॥ ४० ॥

तस्मिन्संपीड्यमाने तु भग्नद्रुमशिलातले ।
न शेकुर्वानराः स्थातुं घूर्णमाने नगोत्तमे ॥ ४१ ॥

सा घूर्णितमहाद्वारा प्रभग्नगृहगोपुरा ।
लङ्का त्रासाकुला रात्रौ प्रनृत्तेवाभवत्तदा ॥ ४२ ॥

पृथिवीधरसङ्काशो निपीड्य धरणीधरम् ।
पृथिवीं क्षोभयामास सार्णवां मारुतात्मजः ॥ ४३ ॥

आरुरोह तदा श्रीमान् हरिर्मलयपर्वतम् ।
मेरुमन्दरसङ्काशं नानाप्रस्रवणाकुलम् ॥ ४४ ॥

नानाद्रुमलताकीर्णं विकासिकमलोत्पलम् ।
सेवितं देवगन्धर्वैः षष्टियोजनमुच्छ्रितम् ॥ ४५ ॥

विद्याधरैर्मुनिगणैरप्सरोभिर्निषेवितम् ।
नानामृगगणाकीर्णं बहुकन्दरशोभितम् ॥ ४६ ॥

सर्वानाकुलयंस्तत्र यक्षगन्धर्वकिन्नरान् ।
हनुमान्मेघसङ्काशो ववृधे मारुतात्मजः ॥ ४७ ॥

पद्भ्यां तु शैलमापीड्य बडबामुखवन्मुखम् ।
विवृत्योग्रं ननादोच्चैस्त्रासयन्निव राक्षसान् ॥ ४८ ॥

तस्य नानद्यमानस्य श्रुत्वा निनदमद्भुतम् ।
लङ्कास्था राक्षसाः सर्वे न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ॥

नमस्कृत्वाऽथ रामाय मारुतिर्भीमविक्रमः ।
राघवार्थे परं कर्म समीहत परन्तपः ॥ ५० ॥

स पुच्छमुद्यम्य भुजङ्गकल्पं विनम्य पृष्ठं श्रवणे निकुञ्च्य ।
विवृत्य वक्त्रं बडबामुखाभमापुप्लुवे व्योमनि चण्डवेगः ॥

स वृक्षषण्डांस्तरसाऽऽजहार शैलाञ्छिलाः प्राकृतवानरांश्च ।
बाहूरुवेगोद्धतसंप्रणुन्नास्ते क्षीणवेगाः सलिले निपेतुः ॥

स तौ प्रसार्योरगभोगकल्पौ भुजौ भुजङ्गारिनिकाशवीर्यः ।
जगाम मेरुं नगराजमग्र्यं दिशः प्रकर्षन्निव वायुसूनुः ॥

स सागरं घूर्णितवीचिमालं तदा भृशं भ्रामितसर्वसत्त्वम् ।
समीक्षमाणः सहसा जगाम चक्रं यथा विष्णुकराग्रमुक्तम् ॥

स पर्वतान्वृक्षगणान्सरांसि नदीस्तटाकानि पुरोत्तमानि ।
स्फीताञ्जनान्तानपि संप्रवीक्ष्य जगाम वेगात्पितृतुल्यवेगः ॥

आदित्यपथमाश्रित्य जगाम स गतक्लमः ।
हनुमांस्त्वरितो वीरः पितृतुल्यपराक्रमः ॥ ५६ ॥

जवेन महता युक्तो मारुतिर्मारुतो यथा ।
जगाम हरिशार्दूलो दिशः शब्देन पूरयन् ॥ ५७ ॥

स्मरञ्जाम्बवतो वाक्यं मारुतिर्वातरंहसा ।
ददर्श सहसा चापि हिमवन्तं महाकपिः ॥ ५८ ॥

नानाप्रस्रवणोपेतं बहुकन्दरनिर्झरम् ।
श्वेताभ्रचयसङ्काशैः शिखरैश्चारुदर्शनैः ॥
शोभितं विविधैर्वृक्षैरगमत्पर्वतोत्तमम् ॥ ५९ ॥

स तं समासाद्य महानगेन्द्रमतिप्रवृद्धोत्तमघोरशृङ्गम् ।
ददर्श पुण्यानि महाश्रमाणि सुरर्षिसङ्घोत्तमसेवितानि ॥

स ब्रह्मकोशं रजतालयं च शक्रालयं रुद्रशरप्रमोक्षम् ।
हयाननं ब्रह्मशिरश्च दीप्तं ददर्श वैवस्वतकिङ्करांश्च ॥

वज्रालयं वैश्रवणालयं च सूर्यप्रभं सूर्यनिबन्धनं च ।
ब्रह्मासनं शङ्करकार्मुकं च ददर्श नाभिं च वसुन्धरायाः॥

कैलासमग्र्यं हिमवच्छिलां च तथर्षभं काञ्चनशैलमग्र्यम्।
सन्दीप्तसर्वौषधिसंप्रदीप्तं ददर्श सर्वौषधिपर्वतेन्द्रम् ॥

स तं समीक्ष्यानलरश्मिदीप्तं विसिष्मिये वासवदूतसूनुः॥
आप्लुत्य तं चौषधिपर्वतेन्द्रं तत्रौषधीनां विचयं चकार ॥

स योजनसहस्राणि समतीत्य महाकपिः ।
दिव्यौषधिधरं शैलं व्यचरन्मारुतात्मजः ॥ ६६ ॥

महौषध्यस्ततः सर्वास्तस्मिन्पर्वतसत्तमे ।
विज्ञायार्थिनमायान्तं ततो जग्मुरदर्शनम् ॥ ६७ ॥

स ता महात्मा हनुमानपश्यंश्चुकोप कोपाच्च भृशं ननाद ।
अमृष्यमाणोऽग्निनिकाशचक्षुर्महीधरेन्द्रं तमुवाच वाक्यम् ॥

किमेतदेवं सुविनिश्चितं ते यद्राघवे नासि कृतानुकम्पः ।
पश्याद्य मद्बाहुबलाभिभूतो विकीर्णमात्मानमथो नगेन्द्र ॥

स तस्य शृङ्गं सनगं सनागं सकाञ्चनं धातुसहस्रजुष्टम् ।
विकीर्णकूटज्वलिताग्रसानुं प्रगृह्य वेगात्सहसोन्ममाथ ॥

स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात वित्रास्य लोकान्ससुरासुरेन्द्रान्।
संस्तूयमानः खचरैरनेकैर्जगाम वेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥

स भास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तं भास्कराभं शिखरं प्रगृह्य ।
बभौ तदा भास्करसन्निकाशो रवेः समीपे प्रतिभास्कराभः॥

स तेन शैलेन भृशं रराज शैलोपमो गन्धवहात्मजस्तु ।
सहस्रधारेण सपावकेन चक्रेण खे विष्णुरिवार्पितेन ॥

तं वानराः प्रेक्ष्य विनेदुरुच्चैः स तानपि प्रेक्ष्य मुदा ननाद ।
तेषां समुद्घुष्टरवं निशम्य लङ्कालया भीमतरं विनेदुः ॥

ततो महात्मा निपपात तस्मिञ्च्छैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये ।
हर्युत्तमेभ्यः शिरसाऽभिवाद्य विभीषणं तत्र स सस्वजे च ॥

तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम् ।
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः ॥

सर्वे विशल्या विरुजः क्षणेन हरिप्रवीरा निहताश्च ये स्युः ।
गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां सुप्ता निशान्तेष्विव संप्रबुद्धाः ॥

यदाप्रभृति लङ्कायां युध्यन्ते कपिराक्षसाः ।
तदाप्रभृति मानार्थमाज्ञया रावणस्य च ॥ ७८ ॥

ये हन्यन्ते रणे तत्र राक्षसाः कपिकुञ्जरैः ।
हताहतास्तु क्षिप्यन्ते सर्व एव तु सागरे ॥ ७९ ॥

ततो हरिर्गन्धवहात्मजस्तु तमोषधीशैलमुदग्रवीर्यः ।
निनाय वेगाद्धिमवन्तमेव पुनश्च रामेण समाजगाम ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18205 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3530

## पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

### रात्रौ लङ्कादाहः ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ।
अर्थ्यं विज्ञापयंश्चापि हनुमन्तमिदं वचः ॥ १ ॥

यतो हतः कुम्भकर्णः कुमाराश्च निषूदिताः ।
नेदानीमुपनिर्हारं रावणो दातुमर्हति ॥ २ ॥

ये ये महाबलाः सन्ति लघवश्च प्लवङ्गमाः ।
लङ्कामभ्युत्पतन्त्वाशु गृह्योल्काः प्लवगर्षभाः ॥ ३ ॥

ततोऽस्तंगत आदित्ये रौद्रे तस्मिन्निशामुखे ।
लङ्कामभिमुखाः सोल्का जग्मुस्ते प्लवगर्षभाः ॥ ४ ॥

उल्काहस्तैर्हरिगणैः सर्वतः समभिद्रुताः ।
आरक्षस्था विरूपाक्षाः सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥

गोपुराट्टप्रतोलीषु चर्यासु विविधासु च ।
प्रासादेषु च संहृष्टाः ससृजुस्ते हुताशनम् ॥ ६ ॥

तेषां गृहसहस्राणि ददाह हुतभुक्तदा ॥ ७ ॥

प्रासादाः पर्वताकाराः पतन्ति धरणीतले ।
अगरुर्दह्यते तत्र वरं च हरिचन्दनम् ॥ ८ ॥

मौक्तिका मणयः स्निग्धा वज्रं चापि प्रवालकम् ।
क्षौमं च दह्यते तत्र कौशेयं चापि शोभनम् ॥ ९ ॥

आविकं विविधं चौर्णं काञ्चनं भाण्डमायुधम् ।
नानाविकृतसंस्थानं वाजिभाण्डपरिच्छदम् ॥ १० ॥

गजग्रैवेयकक्ष्याश्च रथभाण्डाश्च संस्कृताः ।
तनुत्राणि च योधानां हस्त्यश्वानां च वर्म च ॥ ११ ॥

खड्गा धनूंषि ज्या बाणास्तोमराङ्कुशशक्तयः ।
रोमजं वालजं चर्म व्याघ्रजं चाण्डजं बहु ॥ १२ ॥

मुक्तामणिविचित्रांश्च प्रासादांश्च समन्ततः ।
विविधानस्त्रसंयोगानग्निर्दहति तत्र वै ॥ १३ ॥

नानाविधान्गृहच्छन्दान्ददाह हुतभुक्तदा ।
आवासान्राक्षसानां च सर्वेषां गृहगर्धिनाम् ॥ १४ ॥

हेमचित्रतनुत्राणां स्रग्दामाम्बरधारिणाम् ।
शीधुपानचलाक्षाणां मदविह्वलगामिनाम् ॥ १५ ॥

कान्तालम्बितवस्त्राणां शत्रुसञ्जातमन्युनाम् ।
गदाशूलासिहस्तानां खादतां पिबतामपि ॥ १६ ॥

शयनेषु महार्हेषु प्रसुप्तानां प्रियैः सह ।
त्रस्तानां गच्छतां तूर्णं पुत्रानादाय सर्वतः ॥ १७ ॥

तेषां शतसहस्राणि तदा लङ्कानिवासिनाम् ।
अदहत्पावकस्तत्र जज्वाल च पुनः पुनः ॥ १८ ॥

सारवन्ति महार्हाणि गम्भीरगुणवन्ति च ।
हेमचन्द्रार्धचन्द्राणि चन्द्रशालोन्नतानि च ॥ १९ ॥

रत्नचित्रगवाक्षाणि साधिष्ठानानि सर्वशः ।
मणिविद्रुमचित्राणि स्पृशन्तीव दिवाकरम् ॥ २० ॥

क्रौञ्चबर्हिणवीणानां भूषणानां च निस्वनैः ।
नादितान्यचलाभानि वेश्मान्यग्निर्ददाह सः ॥ २१ ॥

ज्वलनेन परीतानि तोरणानि चकाशिरे ।
विद्युद्भिरिव नद्धानि मेघजालानि घर्मगे ॥ २२ ॥

ज्वलनेन परीतानि निपेतुर्भवनान्यथ ।
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि महागिरेः ॥ २३ ॥

विमानेषु प्रसुप्ताश्च दह्यमाना वराङ्गनाः ।
त्यक्ताभरणसर्वाङ्गा हा हेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः ॥ २४ ॥

तानि निर्दह्यमानानि दूरतः प्रचकाशिरे ।
हिमवच्छिखराणीव दीप्तौषधिवनानि च ॥ २५ ॥

हर्म्याग्रैर्दह्यमानैश्च ज्वालाप्रज्वलितैरपि ।
रात्रौ सा दृश्यते लङ्का पुष्पितैरिव किंशुकैः ॥ २६ ॥

हस्त्यध्यक्षैर्गजैर्मुक्तैर्मुक्तैश्च तुरगैरपि ।
बभूव लङ्का लोकान्ते भ्रान्तग्राह इवार्णवः ॥ २७ ॥

अश्वं मुक्तं गजो दृष्ट्वा कचिद्भीतोऽपसर्पति ।
भीतो भीतं गजं दृष्ट्वा कचिदश्वो निवर्तते ॥ २८ ॥

लङ्कायां दह्यमानायां शुशुभे स महार्णवः ।
छायासंसक्तसलिलो लोहितोद इवार्णवः ॥ २९ ॥

सा बभूव मुहूर्तेन हरिभिर्दीपिता पुरी ।
लोकस्यास्य क्षये घोरे प्रदीप्तेव वसुन्धरा ॥ ३० ॥

नारीजनस्य धूमेन व्याप्तस्योच्चैर्विनेदुषः ।
स्वनो ज्वलनतप्तस्य शुश्रुवे दशयोजनम् ॥ ३१ ॥

प्रदग्धकायानपरान्राक्षसान्निर्गतान्बहिः ।
सहसाऽभ्युत्पतन्ति स्म हरयोऽथ युयुत्सवः ॥ ३२ ॥

उद्घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निस्वनः ।
दिशो दश समुद्रं च पृथिवीं चान्वनादयत् ॥ ३३ ॥

विशल्यौ तु महात्मानौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
असंभ्रान्तौ जगृहतुस्तदोभे धनुषी वरे ॥ ३४ ॥

ततो विस्फारयानस्य रामस्य धनुरुत्तमम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो राक्षसानां भयावहः ॥ ३५ ॥

अशोभत तदा रामो धनुर्विस्फारयन्महत् ।
भगवानिव संक्रुद्धो भवो वेदमयं धनुः ॥ ३६ ॥

उद्घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निस्वनम् ।
ज्याशब्दस्तावुभौ शब्दावति रामस्य शुश्रुवे ॥ ३७ ॥

वानरोद्घुष्टघोषश्च राक्षसानां च निस्वनः ।
ज्याशब्दश्चापि रामस्य त्रयं व्याप दिशो दश ॥ ३८ ॥

तस्य कार्मुकमुक्तैश्च शरैस्तत्पुरगोपुरम् ।
कैलासशृङ्गप्रतिमं विकीर्णमपतद्भुवि ॥ ३९ ॥

ततो रामशरान्दृष्ट्वा विमानेषु गृहेषु च ।
सन्नाहो राक्षसेन्द्राणां तुमुलः समपद्यत ॥ ४० ॥

तेषां सन्नह्यमानानां सिंहनादं च कुर्वताम् ।
शर्वरी राक्षसेन्द्राणां रौद्रीव समपद्यत ॥ ४१ ॥

आदिष्टा वानरेन्द्रास्तु सुग्रीवेण महात्मना ।
आसन्नद्वारमासाद्य युध्यध्वं प्लवगर्षभाः ॥ ४२ ॥

यश्च वो वितथं कुर्यात्तत्र तत्र ह्युपस्थितः ।
स हन्तव्यो हि संप्लुत्य राजशासनदूषकः ॥ ४३ ॥

तेषु वानरमुख्येषु दीप्तोल्कोज्ज्वलपाणिषु ।
स्थितेषु द्वारमासाद्य रावणं मन्युराविशत् ॥ ४४ ॥

तस्य जृम्भितविक्षेपाद्व्यामिश्रा वै दिशो दश ।
रूपवानिव रुद्रस्य मन्युर्गात्रेष्वदृश्यत ॥ ४५ ॥

स निकुम्भं च कुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ
प्रेषयामास संक्रुद्धो राक्षसैर्बहुभिः सह ॥ ४६ ॥

यूपाक्षः शोणिताक्षश्च प्रजङ्घः कम्पनस्तथा ।
निर्ययुः कौम्भकर्णिभ्यां सह रावणशासनात् ॥ ४७ ॥

शशास चैव तान्सर्वान्राक्षसान्सुमहाबलान् ।
राक्षसा गच्छताद्यैव सिंहनादं च नादयन् ॥ ४८ ॥

ततस्तु चोदितास्तेन राक्षसा ज्वलितायुधाः ।
लङ्काया निर्ययुर्वीराः प्रणदन्तः पुनः पुनः ॥ ४९ ॥

रक्षसां भूषणस्थाभिर्भाभिः स्वाभिश्च सर्वशः ।
चक्रुस्ते सप्रभं व्योम हरयश्चाग्निभिः सह ॥ ५० ॥

तत्र ताराधिपस्याभा ताराणां च तथैव च ।
तयोराभरणस्था च बलयोर्द्यामभासयन् ॥ ५१ ॥

चन्द्राभा भूषणाभा च गृहाणां ज्वलतां च भा ।
हरिराक्षससैन्यानि भ्राजयामास सर्वतः ॥ ५२ ॥

तत्र चोर्ध्वं प्रदीप्तानां गृहाणां सागरः पुनः ।
भाभिः संसक्तपातालश्चलोर्मिः शुशुभेऽधिकम् ॥ ५३ ॥

पताकाध्वजसंसक्तमुत्तमासिपरश्वधम् ।
भीमाश्वरथमातङ्गं नानापत्तिसमाकुलम् ॥ ५४ ॥

दीप्तशूलगदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् ।
तद्राक्षसबलं घोरं भीमविक्रमपौरुषम् ॥ ५५ ॥

ददृशे ज्वलितप्रासं किङ्किणीशतनादितम् ।
हेमजालाचितभुजं व्यामिश्रितपरश्वधम् ॥ ५६ ॥

व्याघूर्णितमहाशस्त्रं बाणसंसक्तकार्मुकम् ।
गन्धमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥

घोरं शूरजनाकीर्णं महाम्बुधरनिस्वनम् ॥ ५८ ॥

तद्दृष्ट्वा बलमायान्तं राक्षसानां सुदारुणम् ।
सञ्चचाल प्लवङ्गानां बलमुच्चैर्ननाद च ॥ ५९ ॥

जवेनाप्लुत्य च पुनस्तद्बलं रक्षसां महत् ।
अभ्ययात्प्रत्यरिबलं पतङ्गा इव पावकम् ॥ ६० ॥

तेषां भुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाशनि ।
राक्षसानां बलं श्रेष्ठं भूयस्तरमशोभत ॥ ६१ ॥
तत्रोन्मत्ता इवोत्पेतुर्हरयोऽथ युयुत्सवः ।
तरुशैलैरभिघ्नन्तो मुष्टिभिश्च निशाचरान् ॥ ६२ ॥
तथैवापततां तेषां कपीनामसिभिः शितैः ।
शिरांसि सहसा जह्रू राक्षसा भीमदर्शनाः ॥ ६३ ॥
दशनैर्हृतकर्णाश्च मुष्टिनिष्कीर्णमस्तकाः ।
शिलाप्रहारभग्नाङ्गा विचेरुस्तत्र राक्षसाः ॥ ६४ ॥
तथैवाप्यपरे तेषां कपीनामभिलक्षिताः ।
प्रवीरानभितो जघ्नू राक्षसानां तरस्विनाम् ॥ ६५ ॥
अभिपेतुर्महाकायाः प्रतियुक्ता महाबलाः ।
राक्षसा वानरात्रोषादसिबाणगदाधराः ॥ ६६ ॥
तथैवाप्यपरे तेषां कपीनामसिभिः शितैः ।
हरिवीरान्निजघ्नुश्च घोररूपा निशाचराः ॥ ६७ ॥
घ्नन्तमन्यं जघानान्यः पातयन्तमपातयत् ।
गर्हमाणं जगर्हेऽन्यो दशन्तमपरोऽदशत् ॥ ६८ ॥
देहीत्यन्यो ददात्यन्यो ददामीत्यपरः पुनः ।
किं क्लेशयसि तिष्ठेति तत्रान्योन्यं बभाषिरे ॥ ६९ ॥
विप्रलम्बितवस्त्रं च विमुक्तकवचायुधम् ।
समुद्यतमहाप्रासं यष्टिशूलासिसङ्कुलम् ॥
प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् ॥ ७० ॥

वानरान्दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे ॥ ७१ ॥

राक्षसान्दश सप्तेति वानराश्चाभ्यपातयन् ॥ ७२ ॥

विस्रस्तकेशवसनं विध्वस्तकवचध्वजम् ।
बलं राक्षसमालम्ब्य वानराः पर्यवारयन् ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18278 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3603

## षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

कुम्भादिवधः ॥

प्रवृत्ते सङ्कुले तस्मिन्घोरे वीरजनक्षये ।
अङ्गदं कम्पनो वीरमाससाद रणोत्सुकः ॥ १ ॥

आहूय सोऽङ्गदं कोपात्ताडयामास वेगितः ।
गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः ॥ २ ॥

स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखरं गिरेः ।
अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि ॥ ३ ॥

ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे ।
रथेनाभ्यपतत्क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत् ॥ ४ ॥

सोऽङ्गदं निशितैर्बाणैस्तदा विव्याध वेगितः ।
शरीरदारणैस्तीक्ष्णैः कालाग्निसमविग्रहैः ॥ ५ ॥

क्षुरक्षुरप्रैर्नाराचैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ।
कर्णिशल्यविपाठैश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ॥ ६ ॥

अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रः प्रतापवान् ।
धनुरुग्रं रथं बाणान्ममर्द तरसा बली ॥ ७ ॥

शोणिताक्षस्ततः क्षिप्रमसिचर्म समाददे ।
उत्पपात रथात् क्रुद्धो वेगवानविचारयन् ॥ ८ ॥

तं क्षिप्रतरमाप्लुत्य परामृश्याङ्गदो बली ।
करेण तस्य तं खड्गं समाच्छिद्य ननाद च ॥ ९ ॥

तस्यांसफलके खड्गं निजघान ततोऽङ्गदः ।
यज्ञोपवीतवच्चैनं चिच्छेद कपिकुञ्जरः ॥ १० ॥

तं प्रगृह्य महाखड्गं निनद्य च पुनः पुनः ।
वालिपुत्रोऽभिदुद्राव रणशीर्षेऽपरानरीन् ॥ ११ ॥

आयसीं तु गदां वीरः प्रगृह्य कनकाङ्गदः ।
शोणिताक्षः समाश्वास्य तमेवानुपपात ह ॥ १२ ॥

प्रजङ्घसहितो वीरो यूपाक्षस्तु ततो बली ।
रथेनाभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्रं महाबलम् ॥ १३ ॥

तयोर्मध्ये कपिश्रेष्ठः शोणिताक्षप्रजङ्घयोः ।
विशाखयोर्मध्यगतः पूर्णचन्द्र इवाभवत् ॥ १४ ॥

अङ्गदं परिरक्षन्तौ मैन्दो द्विविद एव च ।
तस्य तस्थतुरभ्याशे परस्परदिदृक्षया ॥ १५ ॥

अभिपेतुर्महाकाया: प्रतियत्ता महाबला: ।
राक्षसा वानरान्रोषादसिचर्मगदाधरा: ॥ १६ ॥

त्रयाणां वानरेन्द्राणां त्रिभी राक्षसपुङ्गवै: ।
संसक्तानां महद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥ १७ ॥

ते तु वृक्षान्समादाय संप्रचिक्षिपुराहवे ॥ १८ ॥

खड्गेन प्रतिचिच्छेद तान्प्रजङ्घो महाबल: ॥ १९ ॥

रथानश्वान्द्रुमै: शैलैस्ते प्रचिक्षिपुराहवे ॥ २० ॥

शरौघै: प्रतिचिच्छेद यूपाक्षस्तान्निशाचर: ॥ २१ ॥

सृष्टान्द्विविदमैन्दाभ्यां द्रुमानुत्पाट्य वीर्यवान् ।
बभञ्ज गदया मध्ये शोणिताक्ष: प्रतापवान् ॥ २२ ॥

उद्यम्य विपुलं खड्गं परमर्मविदारणम् ।
प्रजङ्घो वालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगित: ॥ २३ ॥

तमभ्याशगतं दृष्ट्वा वानरेन्द्रो महाबल: ।
आजघानाश्वकर्णेन द्रुमेणातिबलस्तदा ॥ २४ ॥

बाहुं चास्य सनिस्त्रिंशमाजघान स मुष्टिना ।
वालिपुत्रस्य घातेन स पपात क्षितावसि: ॥ २५ ॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ खड्गं मुसलसन्निभम् ।
मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबल: ॥ २६ ॥

ललाटे स महावीर्यमङ्गदं वानरर्षभम् ।
आजघान महातेजा: स मुहूर्तं चचाल ह ॥ २७ ॥

स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी वालिपुत्रः प्रतापवान् ।
प्रजङ्घस्य शिरः कायात्पातयामास वीर्यवान् ॥ २८ ॥

स यूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षः पितृव्ये निहते रणे ।
अवरुह्य रथात्क्षिप्रं क्षीणेषुः खड्गमाददे ॥ २९ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य यूपाक्षं द्विविदस्त्वरन् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो जग्राह च बलाद्बली ॥ ३० ॥

गृहीतं भ्रातरं दृष्ट्वा शोणिताक्षो महाबलः ।
आजघान गदाग्रेण वक्षसि द्विविदं ततः ॥ ३१ ॥

स गदाभिहतस्तेन चचाल च महाबलः ।
उद्यतां च पुनस्तस्य जहार द्विविदो गदाम् ॥ ३२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो मैन्दो वानरयूथपः ।
यूपाक्षं ताडयामास तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ३३ ॥

तौ शोणिताक्षयूपाक्षौ प्लवङ्गाभ्यां तरस्विनौ ।
चक्रतुः समरे तीव्रमाकर्षोत्पाटनं भृशम् ॥ ३४ ॥

द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे ।
निष्पिपेष च वेगेन क्षितावाविध्य वीर्यवान् ॥ ३५ ॥

यूपाक्षमपि संक्रुद्धो मैन्दो वानरयूथपः ।
पीडयामास बाहुभ्यां स पपात हतः क्षितौ ॥ ३६ ॥

हतप्रवीरा व्यथिता राक्षसेन्द्रचमूस्तदा ।
जगामाभिमुखी सा तु कुम्भकर्णसुतो यतः ॥ ३७ ॥

आपतन्तीं च वेगेन कुम्भस्तां सान्त्वयच्चमूम् ॥ ३८ ॥
अथोत्कृष्टं महावीर्यैर्लब्धलक्षैः प्लवङ्गमैः ।

निपातितमहावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं ततः ॥
कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम् ॥ ३९ ॥

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य सुसमाहितः ।
मुमोचाशीविषप्रख्याञ्छरान्देहविदारणान् ॥ ४० ॥

तस्य तच्छुशुभे भूयः सशरं धनुरुत्तमम् ।
विद्युदैरावतार्चिष्मद्द्वितीयेन्द्रधनुर्यथा ॥ ४१ ॥

आकर्णाकृष्टमुक्तेन जघान द्विविदं तदा ।
तेन हाटकपुङ्खेन पत्रिणा पत्रवाससा ॥ ४२ ॥

सहसाऽभिहतस्तेन विप्रमुक्तपदः स्फुरन् ।
निपपाताद्रिकूटाभो विह्वलः प्लवगोत्तमः ॥ ४३ ॥

मैन्दस्तु भ्रातरं दृष्ट्वा भग्नं तत्र महाहवे ।
अभिदुद्राव वेगेन प्रगृह्य महतीं शिलाम् ॥ ४४ ॥

तां शिलां तु प्रचिक्षेप राक्षसाय महाबलः ॥ ४५ ॥

बिभेद तां शिलां कुम्भः प्रसन्नैः पञ्चभिः शरैः ॥ ४६ ॥

सन्धाय चान्यं सुमुखं शरमाशीविषोपमम् ।
आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदाग्रजम् ॥ ४७ ॥

स तु तेन प्रहारेण मैन्दो वानरयूथपः ।
मर्मण्यभिहतस्तेन पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ ४८ ॥

अङ्गदो मातुलौ दृष्ट्वा पतितौ तु महाबलौ ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥ ४९ ॥

तमापतन्तं विव्याध कुम्भः पञ्चभिरायसैः ।
त्रिभिश्चान्यैः शितैर्बाणैर्मातङ्गमिव तोमरैः ॥ ५० ॥

सोऽङ्गदं विविधैर्बाणैः कुम्भो विव्याध वीर्यवान् ।
अकुण्ठधारैर्निशितैस्तीक्ष्णैः कनकभूषणैः ॥ ५१ ॥

अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रो न कम्पते ।
शिलापादपवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि ववर्ष ह ॥ ५२ ॥

स प्रचिच्छेद तान्सर्वान्बिभेद च पुनः शिलाः ।
कुम्भकर्णात्मजः श्रीमान्वालिपुत्रसमारितान् ॥ ५३ ॥

आपतन्तं च संप्रेक्ष्य कुम्भो वानरयूथपम् ।
भ्रुवोर्विव्याध बाणाभ्यामुल्काभ्यामिव कुञ्जरम् ॥

तस्य सुस्राव रुधिरं पिहिते चास्य लोचने ॥ ५५ ॥

अङ्गदः पाणिना नेत्रे पिधाय रुधिरोक्षिते ।
सालमासन्नमेकेन परिजग्राह पाणिना ॥ ५६ ॥

संपीड्य चोरसि स्कन्धं करेणाभिनिवेश्य च ।
किंचिदभ्यवनम्यैनमुन्ममाथ यथा गजः ॥ ५७ ॥

तमिन्द्रकेतुप्रतिमं वृक्षं मन्दरसन्निभम् ।
समुत्सृजन्तं वेगेन पश्यतां सर्वरक्षसाम् ॥
स बिभेद शितैर्बाणैः सप्तभिः कायभेदनैः ॥ ५८ ॥

अङ्गदो विव्यथेऽभीक्ष्णं ससाद च मुमोह च ॥ ५९ ॥
अङ्गदं व्यथितं दृष्ट्वा सीदन्तमिव सागरे ।
दुरासदं हरिश्रेष्ठं रामायान्ये न्यवेदयन् ॥ ६० ॥
रामस्तु व्यथितं श्रुत्वा वालिपुत्रं रणाजिरे ।
व्यादिदेश हरिश्रेष्ठाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्ततः ॥ ६१ ॥
ते तु वानरशार्दूलाः श्रुत्वा रामस्य शासनम् ।
अभिपेतुः सुसंक्रुद्धाः कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥ ६२ ॥
ततो द्रुमशिलाहस्ताः कोपसंरक्तलोचनाः ।
रिरक्षिषन्तोऽभ्यपतन्नङ्गदं वानरर्षभाः ॥ ६३ ॥
जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
कुम्भकर्णात्मजं वीरं क्रुद्धाः समभिदुद्रुवुः ॥ ६४ ॥
समीक्ष्यापततस्तांस्तु वानरेन्द्रान्महाबलान् ।
आववार शरौघेण नगेनेव जलाशयम् ॥ ६५ ॥
तस्य बाणपथं प्राप्य न शेकुरतिवर्तितुम् ।
वानरेन्द्रा महात्मानो वेलामिव महोदधिः ॥ ६६ ॥
तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणाञ्छरवृष्टिभिरर्दितान् ।
अङ्गदं पृष्ठतः कृत्वा भ्रातृजं प्लवगेश्वरः ॥ ६७ ॥
अभिदुद्राव वेगेन सुग्रीवः कुम्भमाहवे ।
शैलसानुचरं नागं वेगवानिव केसरी ॥ ६८ ॥
उत्पाट्य च महाशैलानश्वकर्णान्धवान्बहून् ।
अन्यांश्च विविधान्वृक्षांश्चिक्षेप च महाबलः ॥ ३९ ॥

तां छादयन्तीमाकाशं वृक्षवृष्टिं दुरासदाम् ।
कुम्भकर्णात्मजः शीघ्रं चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ ७० ॥

अभिलक्ष्येण तीव्रेण कुम्भेन निशितैः शरैः ।
आचितास्ते द्रुमा रेजुर्यथा घोराः शतघ्नयः ॥ ७१ ॥

द्रुमवर्षं तु तच्छिन्नं दृष्ट्वा कुम्भेन वीर्यवान् ।
वानराधिपतिः श्रीमान्महासत्त्वो न विव्यथे ॥ ७२ ॥

निर्भिद्यमानः सहसा सहमानश्च ताञ्छरान् ।
कुम्भस्य धनुराक्षिप्य बभञ्जेन्द्रधनुष्प्रभम् ॥ ७३ ॥

अवप्लुत्य ततः शीघ्रं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
अब्रवीत्कुपितः कुम्भं भग्नशृङ्गमिव द्विपम् ॥ ७४ ॥

निकुम्भाग्रज वीर्यं ते बाणवेगवदद्भुतम् ।
सन्नतिश्च प्रभावश्च तव वा रावणस्य वा ॥ ७५ ॥

प्रह्लादबलिवृत्रघ्नकुबेरवरुणोपम ।
एकस्त्वमनुजातोऽसि पितरं बलवृत्ततः ॥ ७६ ॥

त्वामेवैकं महाबाहुं चापहस्तमरिन्दमम् ।
त्रिदशा नातिवर्तन्ते जितेन्द्रियमिवाधयः ॥ ७७ ॥

विक्रमस्व महाबुद्धे कर्माणि मम पश्य च ॥ ७८ ॥

वरदानात्पितृव्यस्ते सहते देवदानवान् ।
कुम्भकर्णस्तु वीर्येण सहते च सुरासुरान् ॥ ७९ ॥

धनुषीन्द्रजितस्तुल्यः प्रतापे रावणस्य च ।
त्वमद्य रक्षसां लोके श्रेष्ठोऽसि बलवीर्यतः ॥ ८० ॥

महाविमर्दं समरे मया सह तवाद्भुतम् ।
अद्य भूतानि पश्यन्तु शक्रशम्बरयोरिव ॥ ८१ ॥

कृतमप्रतिमं कर्म दर्शितं चास्त्रकौशलम् ।
पातिता हरिवीराश्च त्वया वै भीमविक्रमाः ॥ ८२ ॥

उपालम्भभयाच्चापि नासि वीर मया हतः ।
कृतकर्मा परिश्रान्तो विश्रान्तः पश्य मे बलम् ॥ ८३ ॥

तेन सुग्रीववाक्येन सावमानेन मानितः ।
अग्नेराज्याहुतस्येव तेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥ ८४ ॥

ततः कुम्भस्तु सुग्रीवं बाहुभ्यां जगृहे तदा ॥ ८५ ॥

गजाविवाहितमदौ निश्वसन्तौ मुहुर्मुहुः ।
अन्योन्यगात्रग्रथितौ कर्षन्ताावितरेतरम् ॥
सधूमां मुखतो ज्वालां विसृजन्तौ परिश्रमात् ॥ ८६ ॥

तयोः पादाभिघाताच्च निमग्ना चाभवन्मही ।
व्याघूर्णिततरङ्गश्च चुक्षुभे वरुणालयः ॥ ८७ ॥

ततः कुम्भं समुत्क्षिप्य सुग्रीवो लवणाम्भसि ।
पातयामास वेगेन दर्शयन्नुदधेस्तलम् ॥ ८८ ॥

ततः कुम्भनिपातेन जलराशिः समुत्थितः ।
विन्ध्यमन्दरसङ्काशो विससर्प समन्ततः ॥ ८९ ॥

ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमभिपत्य च ।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगेन मुष्टिना ॥ ९० ॥
तस्य चर्म च पुस्फोट सञ्जज्ञे चास्य शोणितम् ।
स च मुष्टिर्महावेगः प्रतिजघ्नेऽस्थिमण्डले ॥ ९१ ॥
तदा वेगेन तत्रासीत्तेजः प्रज्वलितं मुहुः ।
वज्रनिष्पेषसञ्जाता ज्वाला मेरौ यथा गिरौ ॥ ९२ ॥
स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः ।
मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥ ९३ ॥
अर्चिःसहस्रविकचं रविमण्डलसप्रभम् ।
स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥ ९४ ॥
स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशताडितः ।
निपपात तदा कुम्भो गतार्चिरिव पावकः ॥ ९५ ॥
मुष्टिनाभिहतस्तेन निपपाताशु राक्षसः ।
लोहिताङ्ग इवाकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ ९६ ॥
कुम्भस्य पततो रूपं भग्नस्योरसि मुष्टिना ।
बभौ रुद्राभिपन्नस्य यथा रूपं गवांपतेः ॥ ९८ ॥
तस्मिन्हते भीमपराक्रमेण प्लवङ्गमानामृषभेण युद्धे ।
मही सशैला सवना चचाल भयं च रक्षांस्यधिकं विवेश ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18376 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3701

## सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

### निकुम्भवधः ॥

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् ।
प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमवैक्षत ॥ १ ॥

ततः स्रग्दामसन्नद्धं दत्तपञ्चाङ्गुलं शुभम् ।
आददे परिघं वीरो नगेन्द्रशिखरोपमम् ॥ २ ॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तं वज्रविद्रुमभूषितम् ।
यमदण्डोपमं भीमं रक्षसां भयनाशनम् ॥ ३ ॥

तमाविध्य महातेजाः शक्रध्वजसमं तदा ।
विननाद विवृत्तास्यो निकुम्भो भीमविक्रमः ॥ ४ ॥

उरोगतेन निष्केण भुजस्थैरङ्गदैरपि ।
कुण्डलाभ्यां च चित्राभ्यां मालया च विचित्रया ॥

निकुम्भो भूषणैर्भाति तेन स्म परिघेण च ।
यथेन्द्रधनुषा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान ॥ ६ ॥

परिघाग्रेण पुस्फोट वातग्रन्थिर्महात्मनः ।
प्रजज्वाल सघोषश्च विधूम इव पावकः ॥ ७ ॥

नगर्या विटपावत्या गन्धर्वभवनोत्तमैः ।
सह चैवामरावत्या सर्वैश्च भवनैः सह ॥ ८ ॥

सताराग्रहनक्षत्रं सचन्द्रं समहाग्रहम् ।
निकुम्भपरिघाघूर्णं भ्रमतीव नभःस्थलम् ॥ ९ ॥

दुरासदश्च सञ्जज्ञे परिघाभरणप्रभः ।
कपीनां स निकुम्भाग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १० ॥

राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ।
हनुमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥ ११ ॥

परिघोपमबाहुस्तु परिघं भास्करप्रभम् ।
बली बलवतस्तस्य पातयामास वक्षसि ॥ १२ ॥

स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघः शतधा कृतः ।
विशीर्यमाणः सहसा उल्काशतमिवाम्बरे ॥ १३ ॥

स तु तेन प्रहारेण विचचाल महाकपिः ।
परिघेण समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ॥ १४ ॥

स तदाऽभिहतस्तेन हनुमान् प्लवगोत्तमः ।
मुष्टिं संवर्तयामास बलेनातिमहाबलः ॥ १५ ॥

तमुद्यम्य महातेजा निकुम्भोरसि वीर्यवान् ।
अभिचिक्षेप वेगेन वेगवान् वायुविक्रमः ॥ १६ ॥

ततः पुस्फोट चर्मास्य प्रसुस्राव च शोणितम् ।
मुष्टिना तेन सञ्जज्ञे ज्वाला विद्युदिवोत्थिता ॥ १७ ॥

स तु तेन प्रहारेण निकुम्भो विचचाल ह ।
स्वस्थश्चापि निजग्राह हनुमन्तं महाबलम् ॥ १८ ॥

विचुक्रुशुस्तदा संख्ये भीमं लङ्कानिवासिनः ।
निकुम्भेनोद्यतं दृष्ट्वा हनुमन्तं महाबलम् ॥ १९ ॥

स तदा ह्रियमाणोऽपि कुम्भकर्णात्मजेन ह ।
आजघानानिलसुतो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ २० ॥

आत्मानं मोचयित्वाऽथ क्षितावभ्यवपद्यत ।
हनुमानुन्ममाथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः ॥ २१ ॥

निक्षिप्य परमायत्तो निकुम्भं निष्पिपेष ह ।
उत्पत्य चास्य वेगेन पपातोरसि वीर्यवान् ॥ २२ ॥

परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम् ।
उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत् ॥ २३ ॥

अथ विनदति सादिते निकुम्भे
पवनसुतेन रणे बभूव युद्धम् ।
दशरथसुतराक्षसेन्द्रसून्वो-
र्भृशतरमागतरोषयोः सुभीमम् ॥ २४ ॥

व्यपेते तु जीवे निकुम्भस्य हृष्टा
विनेदुः प्लवङ्गा दिशः सस्वनुश्च ।
चचालेव चोर्वी पफालेव च द्यौ-
र्भयं राक्षसानां बलं चाविवेश ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18401 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3726

## अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

### मकराक्षनिर्गमः ॥

निकुम्भं च हतं श्रुत्वा कुम्भं च विनिपातितम् ।
रावणः परमामर्षी प्रजज्वालानलो यथा ॥ १ ॥

नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्च्छितः ।
खरपुत्रं विशालाक्षं मकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥

गच्छ पुत्र मयाऽऽज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः ।
राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तांश्च वनौकसः ॥ ३ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा शूरमानी खरात्मजः ।
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टो मकराक्षो निशाचरः ॥ ४ ॥

सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञया बली ॥ ५ ॥

समीपस्थं बलाध्यक्षं खरपुत्रोऽब्रवीदिदम् ।
रथश्चानीयतां शीघ्रं सैन्यं चाहूयतां त्वरात् ॥ ६ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो निशाचरः ।
स्यन्दनं च बलं चैव समीपं प्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥

प्रदक्षिणं रथं कृत्वा आरुरोह निशाचरः ।
सूतं सञ्चोदयामास शीघ्रं मे रथमावह ॥ ८ ॥

अथ तान्राक्षसान्सर्वान्मकराक्षोऽब्रवीदिदम् ।
यूयं सर्वे प्रयुध्यध्वं पुरस्तान्मम राक्षसाः ॥ ९ ॥

अहं राक्षसराजेन रावणेन महात्मना ।
आज्ञप्तः समरे हन्तुं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

अद्य रामं वधिष्यामि लक्ष्मणं च निशाचराः ।
शाखामृगं च सुग्रीवं वानरांश्च शरोत्तमैः ॥ ११ ॥

अद्य शूलनिपातैश्च वानराणां महाचमूम् ।
प्रदहिष्यामि संप्राप्तः शुष्केन्धनमिवानलः ॥ १२ ॥

मकराक्षस्य तच्छ्रुत्वा वचनं ते निशाचराः ।
सर्वे नानायुधोपेता बलवन्तः समागताः ॥ १३ ॥

ते कामरूपिणः सर्वे दंष्ट्रिणः पिङ्गलेक्षणाः ।
मातङ्गा इव नर्दन्तो ध्वस्तकेशा भयानकाः ॥ १४ ॥

परिवार्य महाकाया महाकायं खरात्मजम् ।
अभिजग्मुस्ततो हृष्टाश्चालयन्तो वसुन्धराम् ॥ १५ ॥

शङ्खभेरीसहस्राणामाहतानां समन्ततः ।
क्ष्वेलितास्फोटितानां च ततः शब्दो महानभूत् ॥ १६ ॥

प्रभ्रष्टोऽथ करात्तस्य प्रतोदः सारथेस्तदा ।
पपात सहसा चैव ध्वजस्तस्य च रक्षसः ॥ १७ ॥

तस्य ते रथयुक्ताश्च हया विक्रमवर्जिताः ।
चरणैराकुलैर्गत्वा दीनाः सास्रमुखा ययुः ॥ १८ ॥

प्रवाति पवनस्तस्मिन्सपांसुः खरदारुणः ।
निर्याणे तस्य रौद्रस्य मकराक्षस्य दुर्मतेः ॥ १९ ॥

तानि दृष्ट्वा निमित्तानि राक्षसा वीर्यवत्तमाः ।
अचिन्त्य निर्गताः सर्वे यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥ २० ॥

घनगजमहिषाङ्गतुल्यवर्णाः
समरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः ।
अहमहमिति युद्धकौशलास्ते
रजनिचराः परिबभ्रमुर्नदन्तः ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18422 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3747

## एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

### मकराक्षवधः ॥

निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरयूथपाः ।
आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा व्यवस्थिताः ॥ १ ॥

ततः प्रवृत्तं सुमहत्तद्युद्धं रोमहर्षणम् ।
निशाचरैः प्लवङ्गानां देवानां दानवैरिव ॥ २ ॥

वृक्षशूलनिपातैश्च शिलापरिघपातनैः ।
अन्योन्यं मर्दयन्ति स्म तदा कपिनिशाचराः ॥ ३ ॥

शक्तिखड्गगदाकुन्तैस्तोमरैश्च निशाचराः ।
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च बाणापातैः समन्ततः ॥ ४ ॥

पाशमुद्गरदण्डैश्च निखातैश्चापरे तदा ।
कदनं कपिवीराणां चक्रुस्ते रजनीचराः ॥ ५ ॥

बाणौघैरर्दिताश्चापि खरपुत्रेण वानराः ।
संभ्रान्तमनसः सर्वे दुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥ ६ ॥

तान्दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे द्रवमाणान्वलीमुखान् ।
नेदुस्ते सिंहवद्धृष्टा राक्षसा जितकाशिनः ॥ ७ ॥

विद्रवत्सु तदा तेषु वानरेषु समन्ततः ।
रामस्तान्वारयामास शरवर्षेण राक्षसान् ॥ ८ ॥

वारितान्राक्षसान्दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः ।
क्रोधानलसमाविष्टो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

तिष्ठ राम मया सार्धं द्वन्द्वयुद्धं ददामि ते ।
त्याजयिष्यामि ते प्राणान्धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ॥ १० ॥

यत्तदा दण्डकारण्ये पितरं हतवान्मम ।
मदग्रतः स्वकर्मस्थं दृष्ट्वा रोषोऽभिवर्धते ॥ ११ ॥

दह्यन्ते भृशमङ्गानि दुरात्मन्मम राघव ।
यन्मयाऽसि न दृष्टस्त्वं तस्मिन्काले महावने ॥ १२ ॥

दिष्ट्याऽसि दर्शनं राम मम त्वं प्राप्तवानिह ।
काङ्क्षितोऽसि क्षुधार्तस्य सिंहस्येवेतरो मृगः ॥ १३ ॥

अद्य मद्बाणवेगेन प्रेतराड्विषयं गतः ।
ये त्वया निहता वीराः सह तैश्च समेष्यसि ॥ १४ ॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन शृणु राम वचो मम ।
पश्यन्तु सकला लोकास्त्वां मां चैव रणाजिरे ॥ १५ ॥

अस्त्रैर्वा गदया वापि बाहुभ्यां वा महाहवे ।
अभ्यस्तं येन वा राम तेनैव युधि वर्तताम् ॥ १६ ॥

मकराक्षवचः श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ।
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम् ॥ १७ ॥

कत्थसे किं वृथा रक्षो बहून्यसदृशानि तु ।
न रणे शक्यते जेतुं विना युद्धेन वाग्बलात् ॥ १८ ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां त्वत्पिता च यः ।
त्रिशिरा दूषणश्चैव दण्डके निहता मया ॥ १९ ॥

स्वाशितास्तव मांसेन गृध्रगोमायुवायसाः ।
भविष्यन्त्यद्य वै पाप तीक्ष्णतुण्डनखाङ्कुराः ॥ २० ॥

रुधिरार्द्रमुखा हृष्टा रक्तपक्षाण्डजाश्च ये ।
खे गता वसुधायां च भ्रमिष्यन्ति समन्ततः ॥ २१ ॥

राघवेणैवमुक्तस्तु खरपुत्रो निशाचरः ।
बाणौघानमुचत्तस्मै राघवाय रणाजिरे ॥ २२ ॥

ताञ्छराञ्छरवर्षेण रामश्चिच्छेद नैकधा ।
निपेतुर्भुवि ते छिन्ना रुक्मपुङ्खाः सहस्रशः ॥ २३ ॥

तद्युद्धमभवत्तत्र समेत्यान्योन्यमोजसा ।
रक्षसः खरपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च ॥ २४ ॥

जीमूतयोरिवाकाशे शब्दो ज्यातलयोस्तदा ।
धनुर्मुक्तः स्वनोत्कृष्टः श्रूयते च रणाजिरे ॥ २५ ॥

देवदानवगन्धर्वाः किन्नराश्च महोरगाः ।
अन्तरिक्षगताः सर्वे द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥ २६ ॥

विद्धमन्योन्यगात्रेषु द्विगुणं वर्धते परम् ।
कृतप्रतिकृतान्योन्यं कुरुतां तौ रणाजिरे ॥ २७ ॥

राममुक्तांस्तु बाणौघान्राक्षसस्त्वच्छिनद्रणे ॥ २८ ॥

रक्षोमुक्तांस्तु रामो वै नैकधा प्राच्छिनच्छरैः ॥ २९ ॥

बाणौघैर्विततः सर्वा दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
संच्छन्ना वसुधा चैव समन्तान्न प्रकाशते ॥ ३० ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद रक्षसः ।
अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः ॥ ३१ ॥

भित्त्वा शरै रथं रामो रथाश्वान्समपातयत् ।
विरथो वसुधां तिष्ठन्मकराक्षो निशाचरः ॥ ३२ ॥

अतिष्ठद्वसुधां रक्षः शूलं जग्राह पाणिना ।
त्रासनं सर्वभूतानां युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥ ३३ ॥

दुरावापं महच्छूलं रुद्रदत्तं भयङ्करम् ।
जाज्वल्यमानमाकाशे संहारास्त्रमिवापरम् ॥
यं दृष्ट्वा देवताः सर्वा भयार्ता विद्रुता दिशः ॥ ३४ ॥

विभ्राम्य तु महच्छूलं प्रज्वलत्तन्निशाचरः ।
स क्रोधात्प्राहिणोत्तस्मै राघवाय महाहवे ॥ ३५ ॥
तमापतन्तं ज्वलितं खरपुत्रकराच्च्युतम् ।
बाणैस्तु त्रिभिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः ॥ ३६ ॥
स छिन्नो नैकधा शूलो दिव्यहाटकमण्डितः ।
व्यशीर्यत महोल्केव रामबाणार्दितो भुवि ॥ ३७ ॥
तच्छूलं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
साधु साध्विति भूतानि व्याहरन्ति नभोगता ॥ ३८ ॥
तं दृष्ट्वा निहतं शूलं मकराक्षो निशाचरः ।
मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३९ ॥
स तं दृष्ट्वा पतन्तं वै प्रहस्य रघुनन्दनः ।
पावकास्त्रं ततो रामः सन्दधे तु शरासने ॥ ४० ॥
तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे ।
संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च ॥ ४१ ॥
दृष्ट्वा ते राक्षसाः सर्वे मकराक्षस्य पातनम् ।
लङ्कामेवाभ्यधावन्त रामबाणार्दितास्तदा ॥ ४२ ॥
दशरथनृपपुत्रबाणवेगै रजनिचरं निहतं खरात्मजं तम् ।
ददृशुरथ सुरा भृशं प्रहृष्टा गिरिमिव वज्रहतं यथा विकीर्णम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः **18465** युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः **3790**

## अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

### इन्द्रजिन्निर्गमः ॥

मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिञ्जयः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो दन्तान्कटकटापयन् ॥ १ ॥

कुपितश्च तदा तत्र किं कार्यमिति चिन्तयन् ।
आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम् ॥ २ ॥

जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः ॥ ३ ॥

त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे ।
किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यसि संयुगे ॥ ४ ॥

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः ।
यज्ञभूमौ स विधिवत्पावकं जुहवेन्द्रजित् ॥ ५ ॥

जुह्वतश्चापि तत्राग्निं रक्तोष्णीषधराः स्त्रियः ।
आजग्मुस्तत्र संभ्रान्ता राक्षस्यो यत्र रावणिः ॥ ६ ॥

शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतकाः ।
लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा ॥ ७ ॥

सर्वतोऽग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः ।
छागस्य कृष्णवर्णस्य गलं जग्राह जीवतः ॥ ८ ॥

शरहोमसमिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः ।
बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं दर्शयन्ति च ॥ ९ ॥

प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तहाटकसन्निभः ।
हविस्तत्प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ॥ १० ॥

हुत्वाऽग्निं तर्पयित्वा च देवदानवराक्षसान् ।
आरुरोह रथश्रेष्ठमन्तर्धानगतं शुभम् ॥ ११ ॥

स वाजिभिश्चतुर्भिश्च बाणैश्च निशितैर्युतः ।
आरोपितमहाचापः शुशुभे स्यन्दनोत्तमः ॥ १२ ॥

जाज्वल्यमानो वपुषा तपनीयपरिच्छदः ।
मृगैश्चन्द्रार्धचन्द्रैश्च स रथः समलङ्कृतः ॥ १३ ॥

जाम्बूनदमहाकम्बुर्दीप्तपावकसन्निभः ।
बभूवेन्द्रजितः केतुर्वैडूर्यसमलङ्कृतः ॥ १४ ॥

तेन चादित्यकल्पेन ब्रह्मास्त्रेण च पालितः ।
स बभूव दुराधर्षो रावणिः सुमहाबलः ॥ १५ ॥

सोऽभिनिर्याय नगरादिन्द्रजित्समितिंजयः ।
हुत्वाऽग्निं राक्षसैर्मन्त्रैरन्तर्धानगतोऽब्रवीत् ॥ १६ ॥

अद्य हत्वा रणे यौ तौ मिथ्याप्रव्राजितौ वने ।
जयं पित्रे प्रदास्यामि रावणाय रणार्जितम् ॥ १७ ॥

कृत्वा निर्वानरामुर्वीं हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ।
करिष्ये परमप्रीतिमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥ १८ ॥

आपपाताथ संक्रुद्धो दशग्रीवेण चोदितः ।
तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णस्त्विन्द्ररिपू रणे ॥ १९ ॥

स ददर्श महावीर्यौ नागौ त्रिशिरसाविव ।
सृजन्ताविषुजालानि वीरौ वानरमध्यगौ ॥ २० ॥

इमौ ताविति सञ्चिन्त्य सज्यं कृत्वा च कार्मुकम् ।
सन्ततानेषुधाराभिः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २१ ॥

स तु वैहायसं प्राप्य सरथो रामलक्ष्मणौ ।
अचक्षुर्विषये तिष्ठन्विव्याध निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

तौ तस्य शरवेगेन परीतौ रामलक्ष्मणौ ।
धनुषी सशरे कृत्वा दिव्यमस्त्रं प्रचक्रतुः ॥ २३ ॥

प्रच्छादयन्तौ गगनं शरजालैर्महाबलौ ।
तमस्त्रैः सूर्यसङ्काशैर्नैव पस्पृशतुः शरैः ॥ २४ ॥

स हि धूमान्धकारं च चक्रे प्रच्छादयन्नभः ।
दिशश्चान्तर्दधे श्रीमान्नीहारतमसा वृताः ॥ २५ ॥

नैव ज्यातलनिर्घोषो न च नेमिखुरस्वनः ।
शुश्रुवे चरतस्तस्य न च रूपं प्रकाशते ॥ २६ ॥

घनान्धकारे तिमिरे शिलावर्षमिवाद्भुतम् ।
स ववर्ष महाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः ॥ २७ ॥

स रामं सूर्यसङ्काशैः शरैर्दत्तवरो भृशम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु रावणिः ॥ २८ ॥

तौ हन्यमानौ नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतौ ।
हेमपुङ्खान्नरव्याघ्रौ तिग्मान्मुमुचतुः शरान् ॥ २९ ॥

अन्तरिक्षे समासाद्य रावणिं कङ्कपत्रिणः ।
निकृत्य पतगा भूमौ पेतुस्ते शोणिताप्लुताः ॥ ३० ॥

अतिमात्रं शरौघेण पीड्यमानौ नरोत्तमौ ।
तानिषून्पततो भल्लैरनेकैर्निचकृन्ततुः ॥ ३१ ॥

यतो हि ददृशाते तौ शरान्निपततः शितान् ।
ततस्तु तौ दाशरथी ससृजातेऽस्त्रमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

रावणिस्तु दिशः सर्वा रथेनातिरथः पतन् ।
विव्याध तौ दाशरथी लघ्वस्त्रो निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥

तेनातिविद्धौ तौ वीरौ रुक्मपुङ्खैः सुसंहितैः ।
बभूवतुर्दाशरथी पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३४ ॥

नास्य वेद गतिं कश्चिन्न च रूपं धनुः शरान् ।
न चान्यद्विदितं किंचित्सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥ ३५ ॥

तेन विद्धाश्च हरयो निहताश्च गतासवः ।
बभूवुः शतशस्तत्र पतिता धरणीतले ॥ ३६ ॥

लक्ष्मणस्तु सुसंक्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् ।
ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥ ३७ ॥

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ ३८ ॥

नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि ॥ ३९ ॥

अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम् ।
पलायन्तं प्रमत्तं वा न त्वं हन्तुमिहार्हसि ॥ ४० ॥

अस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यावो महाबल ।
आदेक्ष्यावो महावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥ ४१ ॥

तमेनं मायिनं क्षुद्रमन्तर्हितरथं बलात् ।
राक्षसं निहनिष्यन्ति दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥ ४२ ॥

यद्येष भूमिं विशते दिवं वा रसातलं वाऽपि नभःस्थलं वा ।
एवं निगूढोऽपि ममास्त्रदग्धः पतिष्यते भूमितले गतासुः ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा रघुप्रवीरः प्लवगर्षभैर्वृतः ।
वधाय रौद्रस्य नृशंसकर्मणस्तदा महात्मा त्वरितं निरीक्षते ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18509 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3834

## एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

### मायासीतावधः

विज्ञाय तु मनस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।
संनिवृत्त्याहवात्तस्मात्संविवेश पुरं ततः ॥ १ ॥

सोऽनुस्मृत्य वधं तेषां राक्षसानां तरस्विनाम् ।
क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगाम महाद्युतिः ॥ २ ॥

स पश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ राक्षसैर्वृतः ।
इन्द्रजित्तु महावीर्यः पौलस्त्यो देवकण्टकः ॥ ३ ॥

इन्द्रजित्तु ततो दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रणायाभ्युद्यतौ वीरौ मायां प्रादुष्करोत्तदा ॥ ४ ॥

इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं ततः ।
बलेन महताऽऽवृत्य तस्या वधमरोचयत् ॥ ५ ॥

मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुदुर्मतिः ।
हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ ॥ ६ ॥

तं दृष्ट्वा त्वभिनिर्यान्तं नगर्याः काननौकसः ।
उत्पेतुरभिसंक्रुद्धाः शिलाहस्ता युयुत्सवः ॥ ७ ॥

हनुमान्पुरतस्तेषां जगाम कपिकुञ्जरः ।
प्रगृह्य सुमहच्छृङ्गं पर्वतस्य दुरासदम् ॥ ८ ॥

स ददर्श हतानन्दां सीतामिन्द्रजितो रथे ।
एकवेणीधरां दीनामुपवासकृशाननाम् ॥ ९ ॥

परिक्लिष्टैकवसनाममृजां राघवप्रियाम् ।
रजोमलाभ्यामालिप्तैः सर्वगात्रैर्वरस्त्रियम् ॥ १० ॥

तां निरीक्ष्य मुहूर्तं तु मैथिलीत्यध्यवस्य तु ।
बभूवाचिरदृष्टा हि तेन सा जनकात्मजा ॥ ११ ॥

तां दीनां मलदिग्धाङ्गीं रथस्थां दृश्य मैथिलीम् ।
बाष्पपर्याकुलमुखो हनुमान्व्यथितोऽभवत् ॥ १२ ॥

अब्रवीत्तां तु शोकार्तां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
सीतां रथस्थितां दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रसुताश्रिताम् ॥
किं समस्थितमस्येति चिन्तयन् स महाकपिः ॥ १३ ॥

सह तैर्वानरश्रेष्ठैरभ्यधावत रावणिम् ॥ १४ ॥

तद्वानरबलं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
कृत्वा विकोशं निस्त्रिंशं मूर्ध्नि सीतां प्रकर्षयत् ॥ १५ ॥

तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास रावणिः ।
क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥ १६ ॥

गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनुमान् दैन्यमागतः ।
शोकजं वारि नेत्राभ्यामसृजन्मारुतात्मजः ॥ १७ ॥

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं क्रोधाद्रक्षोधिपात्मजम् ॥ १८ ॥

दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे परामृशः ।
ब्रह्मर्षीणां कुले जातो राक्षसीं योनिमाश्रितः ॥ १९ ॥

धिक् त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी ।
नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्र पापपराक्रम ॥
अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण ॥ २० ॥

च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली ।
किं तवैषाऽपराद्धा हि यदेनां हन्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥

सीतां च हत्वा न चिरं जीविष्यसि कथञ्चन ॥ २२ ॥

वधार्हकर्मणाऽनेन मम हस्तगतो ह्यसि ॥ २३ ॥

ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्येषु कुत्सिताः ।
इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान्प्रतिपत्स्यसे ॥ २४ ॥

इति ब्रुवाणो हनुमान्सायुधैर्हरिभिर्वृतः ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ २५ ॥

आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम् ।
रक्षसां भीमवेगानामनीकं तु न्यवारयत् ॥ २६ ॥

स तां बाणसहस्रेण विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ।
हरिश्रेष्ठं हनूमन्तमिन्द्रजित्प्रत्युवाच ह ॥ २७ ॥

सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः ।
तां हनिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः ॥ २८ ॥

इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर ।
सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम् ॥ २९ ॥

न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम ।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात्कर्तव्यमेव तत् ॥ ३० ॥

तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं तदा ।
शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम् ॥ ३१ ॥

यज्ञोपवीतमार्गेण भिन्ना तेन तपस्विनी ।
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥ ३२ ॥

तामिन्द्रजित्स्वयं हत्वा हनूमन्तमुवाच ह ॥ ३३ ॥

मया रामस्य पश्येमां प्रियां कोपेन सूदिताम् ॥ ३४ ॥

एषा विशस्ता वैदेही विफलो वः परिश्रमः ॥ ३५ ॥

ततः खड्गेन महता हत्वा तामिन्द्रजित्स्वयम् ।
हृष्टः स रथमास्थाय विननाद महास्वनम् ॥ ३६ ॥

वानराः शुश्रुवुः शब्दमदूरे प्रत्यवस्थिताः ।
व्यादितास्यस्य नदतस्तद्दुर्गं संश्रितस्य च ॥ ३७ ॥

तथा तु सीतां विनिहत्य दुर्मतिः
प्रहृष्टचेताः स बभूव रावणिः ।
तं हृष्टरूपं समुदीक्ष्य वानरा
विषण्णरूपाः समभिप्रदुद्रुवुः ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18547 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3872

## द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

इन्द्रजिता निकुम्भिलायां होमारम्भः ॥

श्रुत्वा तु भीमनिर्ह्रादं शक्राशनिसमस्वनम् ।
वीक्षमाणा दिशः सर्वा दुद्रुवुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥

तानुवाच ततः सर्वान्हनुमान्मारुतात्मजः ।
विषण्णवदनान्दीनांस्त्रस्तान्विद्रवतः पृथक् ॥ २ ॥

कस्माद्विषण्णवदना विद्रवध्वे प्लवङ्गमाः ।
त्यक्तयुद्धसमुत्साहाः शूरत्वं क्व नु वो गतम् ॥ ३ ॥

पृष्ठतोऽनुव्रजध्वं मामग्रतो यान्तमाहवे ।
शूरैरभिजनोपेतैरयुक्तं हि निवर्तितुम् ॥ ४ ॥

एवमुक्ताः सुसंहृष्टा वायुपुत्रेण वानराः ।
शैलशृङ्गाण्यगांश्चैव जगृहुर्हृष्टमानसाः ॥ ५ ॥

अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान्वानरर्षभाः ।
परिवार्य हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे ॥ ६ ॥

स तैर्वानरमुख्यैश्च हनुमान्सर्वतो वृतः ।
हुताशन इवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ ७ ॥

स राक्षसानां कदनं चकार सुमहाकपिः ।
वृतो वानरसैन्येन कालान्तकयमोपमः ॥ ८ ॥

स तु कोपेन चाविष्टः शोकेन च महाकपिः ।
हनुमान्रावणिरथेऽपातयन्महतीं शिलाम् ॥ ९ ॥

तामापतन्तीं दृष्ट्वैव रथः सारथिना तदा ।
विधेयाश्वसमायुक्तः सुदूरमपवाहितः ॥ १० ॥

तमिन्द्रजितमप्राप्य रथस्थं सहसारथिम् ।
विवेश धरणीं भित्त्वा सा शिला व्यर्थमुद्यता ॥ ११ ॥

पातितायां शिलायां तु रक्षसां व्यथिता चमूः ।
निपतन्त्या च शिलया राक्षसा मथिता भृशम् ॥ १२ ॥

तमभ्यधावञ्छतशो नदन्तः काननौकसः ॥ १३ ॥

ते द्रुमांश्च महावीर्या गिरिशृङ्गाणि चोद्यताः ।
क्षिपन्तीन्द्रजितः संख्ये वानरा भीमविक्रमाः ॥ १४ ॥

वृक्षशैलमहावर्षं विसृजन्तः प्लवङ्गमाः ।
शत्रूणां कदनं चक्रुर्नेदुश्च विविधैः स्वरैः ॥ १५ ॥

वानरैस्तैर्महावीर्यैर्घोररूपा निशाचराः ।
वीर्यादभिहता वृक्षैर्व्यवेष्टन्त रणाजिरे ॥ १६ ॥

स्वसैन्यमभिवीक्ष्याथ वानरार्दितमिन्द्रजित् ।
प्रगृहीतायुधः क्रुद्धः परानभिमुखो ययौ ॥ १७ ॥

स शरौघानवसृजन्स्वसैन्येनाभिसंवृतः ।
जघान कपिशार्दूलान्स बहून्दृष्टविक्रमः ॥ १८ ॥

शूलैरशनिभिः खड्गैः पट्टिशैः कूटमुद्गरैः ।
ते चाप्यनुचरास्तस्य वानराञ्जघ्नुरोजसा ॥ १९ ॥

सस्कन्धविटपैः सालैः शिलाभिश्च महाबलः ।
हनुमान्कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ २० ॥

स निवार्य परानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः ।
हनुमान्संनिवर्तध्वं न नः साध्यमिदं बलम् ॥ २१ ॥

त्यक्त्वा प्राणान्विवेष्टन्तो रामप्रियचिकीर्षवः ।
यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा ॥ २२ ॥

इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च ।
तौ यत्प्रतिविधास्येते तत्करिष्यामहे वयम् ॥ २३ ॥

इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन्सर्ववानरान् ।
शनैः शनैरसंत्रस्तः सबलः संन्यवर्तत ॥ २४ ॥

ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं यत्र राघवः ।
स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यनिकुम्भिलाम् ॥ २५ ॥

निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जुहुवेन्द्रजित् ॥ २६ ॥

यज्ञभूम्यां तु विधिवत्पावकस्तेन रक्षसा ।
हूयमानः प्रजज्वाल मांसशोणितभुक्तदा ॥ २७ ॥

सोऽर्चिःपिनद्धो ददृशे होमशोणिततर्पितः ।
सन्ध्यागत इवादित्यः सुतीव्रोऽग्निः समुत्थितः ॥ २८ ॥

अथेन्द्रजिद्राक्षसभूतये तु जुहाव हव्यं विधिना विधानवित् ।
दृष्ट्वा व्यतिष्ठन्त च राक्षसास्ते महासमूहेषु नयानयज्ञाः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18576 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3901

## त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

मायासीतावधमूर्च्छितरामसान्त्वनम् ॥

राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम् ।
श्रुत्वा सङ्ग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥ १ ॥

सौम्य नूनं हनुमता क्रियते कर्म दुष्करम् ।
श्रूयते हि यथा भीमः सुमहानायुधस्वनः ॥ २ ॥

तद्गच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः ।
क्षिप्रमृक्षपते तस्य कपिश्रेष्ठस्य युध्यतः ॥ ३ ॥

ऋक्षराजस्तथोक्तस्तु स्वेनानीकेन संवृतः ।
आगच्छत्पश्चिमं द्वारं हनुमान् यत्र वानरः ॥ ४ ॥

अथायान्तं हनूमन्तं ददर्शर्क्षपतिः पथि ।
वानरैः कृतसङ्ग्रामैः श्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृक्षबलमुद्यतम् ।
नीलमेघनिभं भीमं संनिवार्य न्यवर्तत ॥ ६ ॥

स तेन हरिसैन्येन संनिकर्षं महायशाः ।
शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

समरे युद्ध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां पुरः ।
जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥ ८ ॥

उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिन्दम ।
तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः ॥ ९ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः ।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ १० ॥

तं भूमौ देवसङ्काशं पतितं प्रेक्ष्य राघवम् ।
अभिपेतुः समुत्पत्य सर्वतः कपिसत्तमाः ॥ ११ ॥

असिञ्चन् सलिलैश्चैनं पद्मोत्पलसुगन्धिभिः ।
प्रदहन्तमनासाद्यं सहसाऽग्निमिवोच्छिखम् ॥ १२ ॥

तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः ।
उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वर्थसंयुतम् ॥ १३ ॥

शुभे वर्त्मनि तिष्ठन्तं त्वामार्य विजितेन्द्रियम् ।
अनर्थेभ्यो न शक्नोति त्रातुं धर्मो निरर्थकः ॥ १४ ॥

भूतानां स्थावराणां च जङ्गमानां च दर्शनम् ।
यथाऽस्ति न तथा धर्मस्तेन नास्तीति मे मतिः ॥ १५ ॥

यथैव स्थावरं व्यक्तं जङ्गमं च तथाविधम् ।
नायमर्थस्तथा युक्तस्त्वद्विधो न विपद्यते ॥ १६ ॥

यद्यधर्मो भवेद्भूतो रावणो नरकं व्रजेत् ।
भवांश्च धर्मयुक्तो वै नैवं व्यसनमाप्नुयात् ॥ १७ ॥

तस्य च व्यसनाभावाद्व्यसनं च गते त्वयि ।
धर्मो भवत्यधर्मश्च परस्परविरोधिनौ ॥ १८ ॥

धर्मेणोपलभेद्धर्ममधर्मं चाप्यधर्मतः ।
यद्यधर्मेण युज्येयुर्येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १९ ॥

यदि धर्मेण युज्येरन्नधर्मरुचयो जनाः ।
धर्मेण चरतां धर्मस्तथा चैषां फलं भवेत् ॥ २० ॥

यस्मादर्था विवर्धन्ते येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः ।
क्लिश्यन्ते धर्मशीलाश्च तस्मादेतौ निरर्थकौ ॥ २१ ॥

वध्यन्ते पापकर्माणो यद्यधर्मेण राघव ।
वधकर्महतोऽधर्मः स हतः कं वधिष्यति ॥ २२ ॥

अथ वा विहितेनायं हन्यते हन्ति वा परम् ।
विधिरालिप्यते तेन न स पापेन कर्मणा ॥ २३ ॥

अदृष्टप्रतिकारेण त्वव्यक्तेनासता सता ।
कथं शक्यं परं प्राप्तुं धर्मेणारिविकर्शन ॥ २४ ॥

यदि सत्स्यात्सतां मुख्य नासत्स्यात्तव किञ्चन ।
त्वया यदीदृशं प्राप्तं तस्मात्सन्नोपपद्यते ॥ २५ ॥

अथवा दुर्बलः क्लीबो बलं धर्मोऽनुवर्तते ।
दुर्बलो हतमर्यादो न सेव्य इति मे मतिः ॥ २६ ॥

बलस्य यदि चेद्धर्मो गुणभूतः पराक्रमे ।
धर्ममुत्सृज्य वर्तस्व यथा धर्मे तथा बले ॥ २७ ॥

अथ चेत्सत्यवचनं धर्मः किल परन्तप ।
अनृतस्त्वय्यकरुणः किं न बद्धस्त्वया पिता ॥ २८ ॥

यदि धर्मो भवेद्भूतो अधर्मो वा परन्तप ।
न स्म हत्वा मुनिं वज्री कुर्यादिज्यां शतक्रतुः ॥ २९ ॥

अधर्मसंश्रितो धर्मो विनाशयति राघव ।
सर्वमेतद्यथाकामं काकुत्स्थ कुरुते नरः ॥ ३० ॥

मम चेदं मतं तात धर्मोऽयमिति राघव ।
धर्ममूलं त्वया छिन्नं राज्यमुत्सृजता तदा ॥ ३१ ॥

अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः ।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥ ३२ ॥

अर्थेन हि वियुक्तस्य पुरुषस्याल्पतेजसः ।
व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥

सोऽयमर्थं परित्यज्य सुखकामः सुखैधितः ।
पापमारभते कर्तुं ततो दोषः प्रवर्तते ॥ ३४ ॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥

यस्यार्थाः स च विक्रान्तो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान् ।
यस्यार्थाः स महाभागो यस्यार्थाः स महागुणः॥ ३६ ॥

अर्थस्यैते परित्यागे दोषाः प्रव्याहृता मया ।
राज्यमुत्सृजता वीर येन बुद्धिस्त्वया कृता ॥ ३७ ॥

यस्यार्था धर्मकामार्थास्तस्य सर्वं प्रदक्षिणम् ।
अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यो विचिन्वता ॥ ३८ ॥

हर्षः कामश्च दर्पश्च धर्मः क्रोधः शमो दमः ।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप ॥ ३९ ॥

येषां नश्यत्ययं लोकश्चरतां धर्मचारिणाम् ।
तेऽर्थास्त्वयि न दृश्यन्ते दुर्दिनेषु यथा ग्रहाः ॥ ४० ॥

त्वयि प्रव्राजिते वीर गुरोश्च वचने स्थिते ।
रक्षसाऽपहृता भार्या प्राणैः प्रियतरा तव ॥ ४१ ॥

तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम् ।
कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव ॥ ४२ ॥

उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो दृढव्रत ।
किमात्मानं महात्मानमात्मानं नावबुध्यसे ॥ ४३ ॥

अयमनघ तवोदितः प्रियार्थं
जनकसुतानिधनं निरीक्ष्य रुष्टः ।
सहयगजरथां सराक्षसेन्द्रां
भृशमिषुभिर्विनिपातयामि लङ्काम् ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18620 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3945

## चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

### इन्द्रजिद्वधोपायदर्शनम्

राममाश्वासयाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले ।
निक्षिप्य गुल्मान्स्वस्थाने तत्रागच्छद्विभीषणः ॥ १ ॥

नानाप्रहरणैर्वीरैश्चतुर्भिः सचिवैर्वृतः ।
नीलाञ्जनचयाकारैर्मातङ्गैरिव यूथपः ॥ २ ॥

सोऽभिगम्य महात्मानं राघवं शोकलालसम् ।
वानरांश्चैव ददृशे बाष्पपर्याकुलेक्षणान् ॥ ३ ॥

राघवं च महात्मानमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ।
ददर्श मोहमापन्नं लक्ष्मणस्याङ्कमासितम् ॥ ४ ॥

व्रीडितं शोकसन्तप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः ।
अन्तर्दुःखेन दीनात्मा किमेतदिति सोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

विभीषणमुखं दृष्ट्वा सुग्रीवं तांश्च वानरान् ।
लक्ष्मणोवाच मन्दार्थमिदं बाष्पपरिप्लुतः ॥ ६ ॥

हतामिन्द्रजिता सीतामिह श्रुत्वैव राघवः ।
हनुमद्वचनात्सौम्य ततो मोहमुपागतः ॥ ७ ॥

कथयन्तं तु सौमित्रिं सन्निवार्य विभीषणः ।
पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसंज्ञं राममब्रवीत् ॥ ८ ॥

मनुजेन्द्रार्तरूपेण यदुक्तं च हनूमता ।
तदयुक्तमहं मन्ये सागरस्येव शोषणम् ॥ ९ ॥

अभिप्रायं तु जानामि रावणस्य दुरात्मनः ।
सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति ॥ १० ॥

याच्यमानस्तु बहुशो मया हितचिकीर्षुणा ।
वैदेहीमुत्सृजस्वेति न च तत्कृतवान्वचः ॥ ११ ॥

नैव साम्ना न दानेन न भेदेन कुतो युधा ।
सा द्रष्टुमपि शक्येत नैव चान्येन केनचित् ॥ १२ ॥

वानरान्मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः ।
चैत्यं निकुम्भिलां नाम यत्र होमं करिष्यति ॥ १३ ॥

हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः ।
दुराधर्षो भवत्येव सङ्ग्रामे रावणात्मजः ॥ १४ ॥

तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता ।
विघ्नमन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे ॥ १५ ॥

ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते ।
त्यजेमं नरशार्दूल मिथ्या सन्तापमागतम् ॥ १६ ॥

सीदते हि बलं सर्वं दृष्ट्वा त्वां शोककर्शितम् ॥ १७ ॥

इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्त्वसमुच्छ्रितः ।
लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः ॥ १८ ॥

एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः ।
त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो वध्यो भविष्यति ॥ १९ ॥

तस्यैते निशितास्तीक्ष्णाः पत्रिपत्राङ्गवाजिनः ।
पतत्रिण इवासौम्याः शराः पास्यन्ति शोणितम् ॥२०॥

तं संदिश महाबाहो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
राक्षसस्य विनाशाय वज्रं वज्रधरो यथा ॥ २१ ॥

मनुजवर न कालविप्रकर्षो रिपुनिधनं प्रति यत्क्षमोऽद्य कर्तुम् ।
त्वमतिसृज रिपोर्वधाय वाणीममररिपोर्मथने यथा महेन्द्रः ॥

समाप्तकर्मा हि स राक्षसाधिपो भवत्यदृश्यः समरे सुरासुरैः ।
युयुत्सता तेन समाप्तकर्मणा भवेत्सुराणामपि संशयो महान् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18643 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3968

## पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

### इन्द्रजिद्वधाय लक्ष्मणनिर्गमनम्

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोककर्शितः ।
नोपधारयते व्यक्तं यदुक्तं तेन रक्षसा ॥ १ ॥

ततो धैर्यमवष्टभ्य रामः परपुरञ्जयः ।
विभीषणमुपासीनमुवाच कपिसन्निधौ ॥ २ ॥

नैर्ऋताधिपते वाक्यं यदुक्तं ते विभीषण ।
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ ३ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ।
यत्तत्पुनरिदं वाक्यं बभाषे स विभीषणः ॥ ४ ॥

यथाऽऽज्ञप्तं महाबाहो त्वया गुल्मनिवेशनम् ।
तत्तथाऽनुष्ठितं वीर त्वद्वाक्यसमनन्तरम् ॥ ५ ॥

तान्यनीकानि सर्वाणि विभक्तानि समन्ततः ।
विन्यस्ता यूथपाश्चैव यथान्यायं विभागशः ॥ ६ ॥

भूयस्तु मम विज्ञाप्यं तच्छृणुष्व महायशः ॥ ७ ॥

त्वय्यकारणसन्तप्ते सन्तप्तहृदया वयम् ।
त्यज राजन्निमं शोकं मिथ्या सन्तापमागतम् ॥ ८ ॥

तदियं त्यज्यतां चिन्ता शत्रुहर्षविवर्धनी ।
उद्यमः क्रियतां वीर हर्षः समुपसेव्यताम् ॥ ९ ॥

प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्याश्च निशाचराः ।
रघुनन्दन वक्ष्यामि श्रूयतां मे हितं वचः ॥ १० ॥

साध्वयं यातु सौमित्रिर्बलेन महता वृतः ।
निकुम्भिलायां संप्राप्य हन्तुं रावणिमाहवे ॥ ११ ॥

धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैराशीविषविषोपमैः ।
शरैर्हन्तुं महेष्वासो रावणिं समितिञ्जयः ॥ १२ ॥

तेन वीर्येण तपसा वरदानात्स्वयंभुवः ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरः प्राप्तं कामगाश्च तुरङ्गमाः ॥ १३ ॥

स एष सह सैन्येन प्राप्तः किल निकुम्भिलाम् ।
यद्युत्तिष्ठेत्कृतं कर्म हतान्सर्वांश्च विद्धि नः ॥ १४ ॥

निकुम्भिलामसंप्राप्तमहुताग्निं च यो रिपुः ।
त्वामाततायिनं हन्यादिन्द्रशत्रोः स ते वधः ॥ १५ ॥

वरो दत्तो महाबाहो सर्वलोकेश्वरेण वै ॥ १६ ॥

इत्येवं विहितो राजन्वधस्तस्यैष धीमतः ।
वधायेन्द्रजितो राम संदिशस्व महाबल ॥ १७ ॥

हते तस्मिन्हतं विद्धि रावणं ससुहृज्जनम् ॥ १८ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ १९ ॥

जानामि तस्य रौद्रस्य मायां सत्यपराक्रम ॥ २० ॥

स हि ब्रह्मास्त्रवित्प्राज्ञो महामायो महाबलः ।
करोत्यसंज्ञान्सङ्ग्रामे देवान्सवरुणानपि ॥ २१ ॥

तस्यान्तरिक्षे चरतो रथस्थस्य महायशः ।
न गतिर्ज्ञायते तस्य सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥ २२ ॥

राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः ।
लक्ष्मणं कीर्तिसंपन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥

यद्वानरेन्द्रस्य बलं तेन सर्वेण संवृतः ।
हनुमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मण ॥ २४ ॥

जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः ।
जहि तं राक्षससुतं मायाबलविशारदम् ॥ २५ ॥

अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः ।
अभिज्ञस्तस्य देशस्य पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ॥ २६ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः ।
जग्राह कार्मुकश्रेष्ठमत्यद्भुतपराक्रमः ॥ २७ ॥

सन्नद्धः कवची खड्गी सशरो हेमचापधृत् ।
रामपादावुपस्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥ २८ ॥

अद्य मत्कार्मुकोन्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम् ।
लङ्कामभिपतिष्यन्ति हंसाः पुष्करिणीमिव ॥ २९ ॥

अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः ।
विधमिष्यन्ति भित्त्वा तं महाचापगुणच्युताः ॥ ३० ॥

स एवमुक्त्वा द्युतिमान् वचनं भ्रातुरग्रतः ।
स रावणिवधाकाङ्क्षी लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ॥ ३१ ॥

सोऽभिवाद्य गुरोः पादौ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निकुम्भिलामभिययौ चैत्यं रावणपालितम् ॥ ३२ ॥

विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् ।
कृतस्वस्त्ययनो भ्रात्रा लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ॥ ३३ ॥

वानराणां सहस्रैस्तु हनुमान् बहुभिर्वृतः ।
विभीषणश्च सामात्यस्तदा लक्ष्मणमन्वगात् ॥ ३४ ॥

महता हरिसैन्येन सवेगमभिसंवृतः ।
ऋक्षराजबलं चैव ददर्श पथि विष्ठितम् ॥ ३५ ॥

स गत्वा दूरमध्वानं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
राक्षसेन्द्रबलं दूरादपश्यद्व्यूहमास्थितम् ॥ ३६ ॥

स तं प्राप्य धनुष्पाणिर्मायायोगमरिंदमः ।
तस्थौ ब्रह्मविधानेन विजेतुं रघुनन्दनः ॥ ३७ ॥

विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् ।
अङ्गदेन च वीरेण तथाऽनिलसुतेन च ॥ ३८ ॥

विविधममलशस्त्रभास्वरं तद्ध्वजगहनं विपुलं महारथैश्च ।
प्रतिभयतममप्रमेयवेगं तिमिरमिव द्विषतां बलं विवेश ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18682 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 3907

## षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

### इन्द्रजिद्युद्धारंभः ॥

अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः ।
परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत् ॥ १ ॥

यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते ।
एतदायोध्यतां शीघ्रं कपिभिः पादपायुधैः ॥ २ ॥

अस्यानीकस्य महतो भेदने यत लक्ष्मण ।
राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यत्र भिन्नो दृश्यो भविष्यति ॥ ३ ॥

स त्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैरवकिरन्परान् ।
अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥ ४ ॥

जहि वीर दुरात्मानं मायापरमधार्मिकम् ।
रावणिं क्रूरकर्माणं सर्वलोकभयावहम् ॥ ५ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ ६ ॥

ऋक्षाः शाखामृगाश्चापि द्रुमाद्रिनखयोधिनः ।
अभ्यधावन्त सहितास्तदनीकमवस्थितम् ॥ ७ ॥

राक्षसाश्च शितैर्बाणैरसिभिः शक्तितोमरैः ।
उद्यतैः समवर्तन्त कपिसैन्यजिघांसवः ॥ ८ ॥

स संप्रहारस्तुमुलः सञ्जज्ञे कपिरक्षसाम् ।
शब्देन महता लङ्कां नादयन्वै समन्ततः ॥ ९ ॥

शस्त्रैश्च बहुधाकारैः शितैर्बाणैश्च पादपैः ।
उद्यतैर्गिरिशृङ्गैश्च घोरैराकाशमावृतम् ॥ १० ॥

ते राक्षसा वानरेषु विकृताननबाहवः ।
निवेशयन्तः शस्त्राणि चक्रुस्ते सुमहद्भयम् ॥ ११ ॥

तथैव सकलैर्वृक्षैर्गिरिशृङ्गैश्च वानराः ।
अभिजघ्नुर्निजघ्नुश्च समरे राक्षसर्षभान् ॥ १२ ॥

ऋक्षवानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः ।
रक्षसां वध्यमानानां महद्भयमजायत ॥ १३ ॥

स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम् ।
उदतिष्ठत दुर्धर्षस्तत्कर्मण्यननुष्ठिते ॥ १४ ॥

वृक्षान्धकारान्निर्गत्य जातक्रोधः स रावणिः ।
आरुरोह रथं सज्जं पूर्वयुक्तं स राक्षसः ॥ १५ ॥

स भीमकार्मुकधरः कृष्णाञ्जनचयोपमः ।
रक्तास्यनयनः क्रुद्धो बभौ मृत्युरिवान्तकः ॥ १६ ॥

दृष्ट्वैव तु रथस्थं तं पर्यवर्तत तद्बलम् ।
रक्षसां भीमवेगानां लक्ष्मणेन युयुत्सताम् ॥ १७ ॥

तस्मिन्काले तु हनुमानुद्यम्य सुदुरासदम् ।
धरणीधरसङ्काशो महावृक्षमरिंदमः ॥ १८ ॥

स राक्षसानां तत्सैन्यं कालाग्निरिव निर्दहन् ।
चकार बहुभिर्वृक्षैर्निःसंज्ञं युधि वानरः ॥ १९ ॥

विध्वंसयन्तं तरसा दृष्ट्वैव पवनात्मजम् ।
राक्षसानां सहस्राणि हनुमन्तमवाकिरन् ॥ २० ॥
शितशूलधराः शूलैरसिभिश्चासिपाणयः ।
शक्तिभिः शक्तिहस्ताश्च पट्टिशैः पट्टिशायुधाः ॥ २१ ॥
परिघैश्च गदाभिश्च चक्रैश्च शुभदर्शनैः ।
शतशश्च शतघ्नीभिरायसैरपि मुद्गरैः ॥ २२ ॥
घोरैः परश्वधैश्चैव भिन्दिपालैश्च राक्षसाः ।
मुष्टिभिर्वज्रकल्पैश्च तलैरशनिसन्निभैः ॥
अभिजघ्नुः समासाद्य समन्तात्पर्वतोपमम् ॥ २३ ॥
तेषामपि च संक्रुद्धश्चकार कदनं महत् ॥ २४ ॥
स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित् ।
सूदयन्तममित्रघ्नममित्रान्पवनात्मजम् ॥ २५ ॥
स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष वानरः ।
क्षयमेष हि नः कुर्याद्राक्षसानामुपेक्षितः ॥ २६ ॥
इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स मारुतिः ।
वहन्परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रथे ॥ २७ ॥
अभ्युपेत्य शरान्खड्गान्पट्टिशासिपरश्वधान् ।
अभ्यवर्षत दुर्धर्षः कपिमूर्ध्नि स राक्षसः ॥ २८ ॥
तानि शस्त्राणि घोराणि प्रतिगृह्य स मारुतिः ।
रोषेण महताऽऽविष्टो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २९ ॥
युध्यस्व यदि शूरोऽसि रावणात्मज दुर्मते ॥ ३० ॥

वायुपुत्रं समासाद्य जीवन्न प्रतियास्यसि ॥ ३१ ॥

बाहुभ्यां प्रतियुध्यस्व यदि मे द्वन्द्वमाहवे ।
वेगं सहस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं रक्षसां वरः ॥ ३२ ॥

हनुमन्तं जिघांसन्तं समुद्यतशरासनम् ।
रावणात्मजमाचष्टे लक्ष्मणाय विभीषणः ॥ ३३ ॥

यः स वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसंभवः ।
स एष रथमास्थाय हनुमन्तं जिघांसति ॥ ३४ ॥

तमप्रतिमसंस्थानैः शरैः शत्रुविदारणैः ।
जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि ॥ ३५ ॥

इत्येवमुक्तस्तु तदा महात्मा विभीषणेनारिविभीषणेन ।
ददर्श तं पर्वतसन्निकाशं रणे स्थितं भीमबलं नदन्तम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षडशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18718 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4043

## सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

इन्द्रजिद्विभीषणसंवादः ॥

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं जातहर्षो विभीषणः ।
धनुष्पाणिनमादाय त्वरमाणो जगाम ह ॥ १ ॥

अविदूरं ततो गत्वा प्रविश्य च महद्वनम् ।
दर्शयामास तत्कर्म लक्ष्मणाय विभीषणः ॥ २ ॥

नीलजीमूतसङ्काशं न्यग्रोधं भीमदर्शनम् ।
तेजस्वी रावणभ्राता लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥ ३ ॥

इहोपहारं भूतानां बलवान्रावणात्मजः ।
उपहृत्य ततः पश्चात्सङ्ग्राममभिवर्तते ॥ ४ ॥

अदृश्यः सर्वभूतानां ततो भवति राक्षसः ।
निहन्ति समरे शत्रून्बध्नाति च शरोत्तमैः ॥ ५ ॥

तमप्रविष्टन्यग्रोधं बलिनं रावणात्मजम् ।
विध्वंसय शरैस्तीक्ष्णैः सरथं साश्वसारथिम् ॥ ६ ॥

तथेत्युक्त्वा महातेजाः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
बभूवावस्थितस्तत्र चित्रं विस्फारयन्धनुः ॥ ७ ॥

स रथेनाग्निवर्णेन बलवान्रावणात्मजः ।
इन्द्रजित्कवची धन्वी सध्वजः प्रत्यदृश्यत ॥ ८ ॥

तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम् ।
समाह्वये त्वां समरे सम्यग्युद्धं प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥

एवमुक्तो महातेजा मनस्वी रावणात्मजः ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ॥ १० ॥

इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद्भ्राता पितुर्मम ।
कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥ ११ ॥

न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते ।
प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण ॥ १२ ॥

शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः ।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥ १३ ॥

नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम् ।
क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीचपराश्रयः ॥ १४ ॥

गुणवान्वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान्यः परः पर एव सः ॥ १५ ॥

यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते ।
स स्वपक्षे क्षयं प्राप्ते पश्चात्तैरेव हन्यते ॥ १६ ॥

तस्माच्छृणुष्व दुर्बुद्धे राक्षसानां कुलाधम ।
त्वां गृह्य बन्धुरूपेण रामो बुद्धिमतां वरः ॥
ज्ञात्वोपायं त्वया पूर्वं जेतुमस्मान्स राघवः ॥ १७ ॥

जित्वाऽस्मान्युधि शक्तश्चेत्पश्चात्त्वां च वधिष्यति ॥
शत्रुस्त्वमसि रामस्य रावणस्यानुजोऽसि यत् ॥ १९ ॥

निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर ।
स्वजनेन त्वया शक्यं परुषं रावणानुज ॥ २० ॥

इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः ॥ २१ ॥

अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे ।
राक्षसेन्द्रसुतासाधो पारुष्यं त्यज गौरवात् ॥ २२ ॥

कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम् ।
गुणोऽयं प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम् ॥ २३ ॥

न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे ।
भ्रात्रा विषमशीलेन कथं भ्राता निरस्यते ॥ २४ ॥

धर्मात्प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम् ।
त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ॥ २५ ॥

हिंसापरस्वहरणे परदाराभिमर्शनम् ।
त्याज्यमाहुर्दुराचारं वेश्म प्रज्वलितं यथा ॥ २६ ॥

परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥ २७ ॥

महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः ।
अभिमानश्च कोपश्च वैरित्वं प्रतिकूलता ॥ २८ ॥

एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः ।
गुणान्प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः ॥ २९ ॥

दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव ।
नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता ॥ ३० ॥

अतिमानी च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस ।
बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥ ३१ ॥

अद्य ते व्यसनं प्राप्तं किं मां त्वमिह वक्ष्यसि ।
प्रवेष्टुं न त्वया शक्यो न्यग्रोधो राक्षसाधम ॥ ३२ ॥

धर्षयित्वा च काकुत्स्थौ न शक्यं जीवितुं त्वया ।
युद्ध्यस्व नरदेवेन लक्ष्मणेन रणे सह ॥ ३३ ॥

हतस्त्वं देवताकार्यं करिष्यसि यमक्षये ॥ ३४ ॥

निदर्शय स्वात्मबलं समुद्यतं
कुरुष्व सर्वायुधसायकव्ययम् ।
न लक्ष्मणस्यैत्य हि बाणगोचरं
त्वमद्य जीवन्सबलो गमिष्यसि ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18753 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4078

## अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

इन्द्रजिल्लक्ष्मणयुद्धम् ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं वेगेनाभ्युत्पपात ह ॥ १ ॥

उद्यतायुधनिस्त्रिंशो रथे सुसमलङ्कृते ।
कालाश्वयुक्ते महति स्थितः कालान्तकोपमः ॥ २ ॥

महाप्रमाणमुद्यम्य विपुलं वेगवद्दृढम् ।
धनुर्भीमं परामृश्य शरांश्चामित्रशातनान् ॥ ३ ॥

तं ददर्श महेष्वासो रथे सुसमलङ्कृतः ।
अलङ्कृतममित्रघ्नं राघवस्यानुजं बली ॥
हनुमत्पृष्ठमासीनमुदयस्थरविप्रभम् ॥ ४ ॥

उवाचैनं समारब्धः सौमित्रिं सविभीषणम् ।
तांश्च वानरशार्दूलान्पश्यध्वं मे पराक्रमम् ॥ ५ ॥

अद्य मत्कार्मुकोत्सृष्टं शरवर्षं दुरासदम् ।
मुक्तं वर्षमिवाकाशे वारयिष्यथ संयुगे ॥ ६ ॥

अद्य वो मामका बाणा महाकार्मुकनिःसृताः ।
विधमिष्यन्ति गात्राणि तूलराशिमिवानलः ॥ ७ ॥

तीक्ष्णसायकनिर्भिन्नाञ्छूलशक्त्यृष्टितोमरैः ।
अद्य वो गमयिष्यामि सर्वानेव यमक्षयम् ॥ ८ ॥

क्षिपतः शरवर्षाणि क्षिप्रहस्तस्य मे युधि ।
जीमूतस्येव नदतः कः स्थास्यति ममाग्रतः ॥ ९ ॥

रात्रियुद्धे मया पूर्वं वज्राशनिसमैः शरैः ।
शायितौ स्थो मया भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥ १० ॥

स्मृतिर्न तेऽस्ति वा मन्ये व्यक्तं वा यमसादनम् ।
आशीविषमिव क्रुद्धं यन्मां योद्धुं व्यवस्थितः ॥ ११ ॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य गर्जितं लक्ष्मणस्तदा ।
अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

उक्तश्च दुर्गमः पारः कार्याणां राक्षस त्वया ।
कार्याणां कर्मणा पारं यो गच्छति स बुद्धिमान् ॥ १३ ॥

स त्वमर्थस्य हीनार्थो दुरवापस्य केनचित् ।
वचो व्याहृत्य जानीषे कृतार्थोऽस्मीति दुर्मते ॥ १४ ॥

अन्तर्धानगतेनाजौ यस्त्वयाऽऽचरितस्तदा ।
तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ॥ १५ ॥

यथा बाणपथं प्राप्य स्थितोऽहं तव राक्षस ।
दर्शयस्वाद्य तत्तेजो वाचा त्वं किं विकत्थसे ॥ १६ ॥

एवमुक्तो धनुर्भीमं परामृश्य महाबलः ।
ससर्ज निशितान्बाणानिन्द्रजित्समितिंजयः ॥ १७ ॥

ते निसृष्टा महावेगाः शराः सर्पविषोपमाः ।
संप्राप्य लक्ष्मण पेतुः श्वसन्त इव पन्नगाः ॥ १८ ॥

शरैरतिमहावेगैर्वेगवान्रावणात्मजः ।
सौमित्रिमिन्द्रजिद्युद्धे विव्याध शुभलक्षणम् ॥ १९ ॥

स शरैरतिविद्धाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः ।
शुशुभे लक्ष्मणः श्रीमान्विधूम इव पावकः ॥ २० ॥

इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म प्रसमीक्ष्याधिगम्य च ।
विनद्य सुमहानादमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥

पत्रिणः शितधारास्ते शरा मत्कार्मुकच्युताः ।
आदास्यन्तेऽद्य सौमित्रे जीवितं जीवितान्तगाः ॥ २२ ॥

अद्य गोमायुसङ्घाश्च श्येनसङ्घाश्च लक्ष्मण ।
गृध्राश्च निपतन्तु त्वां गतासुं निहतं मया ॥ २३ ॥

क्षत्रबन्धुं सदाऽनार्यं रामः परमदुर्मतिः ।
भक्तं भ्रातरमद्यैव त्वां द्रक्ष्यति मया हतम् ॥ २४ ॥

विशस्तकवचं भूमौ व्यपविद्धशरासनम् ।
हृतोत्तमाङ्गं सौमित्रे त्वामद्य निहतं मया ॥ २५ ॥

इति ब्रुवाणं संरब्धं परुषं रावणात्मजम् ।
हेतुमद्वाक्यमत्यर्थं लक्ष्मणः प्रत्युवाच ह ॥ २६ ॥

वाग्बलं त्यज दुर्बुद्धे क्रूरकर्माऽसि राक्षस ।
अथ कस्माद्वदस्येतत्संपादय सुकर्मणा ॥ २७ ॥

अकृत्वा कत्थसे कर्म किमर्थमिह राक्षस ॥ २८ ॥

कुरु तत्कर्म येनाहं श्रद्दध्यां तव कत्थनम् ॥ २९ ॥

अनुक्त्वा परुषं वाक्यं किंचिदप्यनवक्षिपन् ।
अविकत्थन्वधिष्यामि त्वां पश्य पुरुषाधम ॥ ३० ॥

इत्युक्त्वा पञ्च नाराचानाकर्णापूरिताञ्छितान् ।
निजघान महावेगांल्लक्ष्मणो राक्षसोपरि ॥ ३१ ॥

सुपत्रवाजिता बाणा ज्वलिता इव पन्नगाः ।
नैर्ऋतोरस्यभासन्त सवितू रश्मयो यथा ॥ ३२ ॥

स शरैराहतस्तेन सरोषो रावणात्मजः ।
सुप्रयुक्तैस्त्रिभिर्बाणैः प्रतिविव्याध लक्ष्मणम् ॥ ३३ ॥

स बभूव तदा भीमो नरराक्षससिंहयोः ।
विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परजयैषिणोः ॥ ३४ ॥

उभौ हि बलसंपन्नावुभौ विक्रमशालिनौ ।
उभावपि सुविक्रान्तौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ ॥ ३५ ॥

उभौ परमदुर्जेयावतुल्यबलतेजसौ ॥ ३६ ॥

युयुधाते तदा वीरौ ग्रहाविव नभोगतौ ॥ ३७ ॥

बलवृत्राविवाभीतौ युधि तौ दुष्प्रधर्षणौ ।
युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव ॥ ३८ ॥

बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौघानवस्थितौ ।
नरराक्षससिंहौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ॥ ३९ ॥

सुसंप्रहृष्टौ नरराक्षसोत्तमौ
जयैषिणौ मार्गणचापधारिणौ ।
परस्परं तौ प्रववर्षतुर्भृशं
शरौघवर्षेण बलाहकाविव ॥ ४० ॥

अभिप्रवृद्धौ युधि युद्धकोविदौ
शरासिचण्डौ शितशस्त्रधारिणौ ।
अभीक्ष्णमाविव्यधतुर्महाबलौ
महाहवे शम्बरवासवाविव ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टाशीतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18794 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4119

## एकोनननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

### इन्द्रजिल्लक्ष्मणयोः सुमहान् संप्रहारः ॥

ततः शरं दाशरथिः संधायामित्रकर्शनः ।
ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥ १ ॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं स श्रुत्वा रावणात्मजः ।
विवर्णवदनो भूत्वा लक्ष्मणं समुदैक्षत ॥ २ ॥

तं विवर्णमुखं दृष्ट्वा राक्षसं रावणात्मजम् ।
सौमित्रिं युद्धसंयुक्तं प्रत्युवाच विभीषणः ॥ ३ ॥

निमित्तान्यनुपश्यामि यान्यस्मिन्रावणात्मजे ।
त्वर तेन महाबाहो भग्न एष न संशयः ॥ ४ ॥

ततः संधाय सौमित्रिर्बाणानग्निशिखोपमान् ।
मुमोच निशितांस्तस्मिन्सर्पानिव महाविषान् ॥ ५ ॥

शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः ।
मुहूर्तमभवन्मूढः सर्वसंक्षुभितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

उपलभ्य मुहूर्तेन संज्ञां प्रत्यागतेन्द्रियः ।
ददर्शावस्थितं वीरं वीरो दशरथात्मजम् ॥ ७ ॥

सोऽभिचक्राम सौमित्रिं रोषात्संरक्तलोचनः ॥ ८ ॥

अब्रवीच्चैनमासाद्य पुनः स परुषं वचः ॥ ९ ॥

किं न स्मरसि तद्युद्धे प्रथमे मत्पराक्रमम् ।
निबद्धस्त्वं सह भ्रात्रा यदा भुवि विचेष्टसे ॥ १० ॥

युवां खलु महायुद्धे शक्राशनिसमैः शरैः ।
शायितौ प्रथमं भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥ ११ ॥

स्मृतिर्वा नास्ति ते मन्ये व्यक्तं वा यमसादनम् ।
गन्तुमिच्छसि यस्मात्त्वं मां धर्षयितुमिच्छसि ॥ १२ ॥

यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मत्पराक्रमः ।
अद्य ते दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् ।
दशभिस्तु हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः ॥ १४ ॥

ततः शरशतेनैव सुप्रयुक्तेन वीर्यवान् ।
क्रोधाद्द्विगुणसंरब्धो निर्बिभेद विभीषणम् ॥ १५ ॥

तद्दृष्ट्वेन्द्रजिता कर्म कृतं रामानुजस्तदा ।
अचिन्तयित्वा प्रहसन्नैतत्किंचिदिति ब्रुवन् ॥
मुमोच स शरान्घोरान्संगृह्य नरपुङ्गवः ॥ १६ ॥

अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं लक्ष्मणो युधि ।
नैवं रणगताः शूराः प्रहरन्ते निशाचर ॥ १७ ॥

लघवश्चाल्पवीर्याश्च सुखा हीमे शरास्तव ।
नैवं शूरास्तु युध्यन्ते समरे जयकाङ्क्षिणः ॥ १८ ॥

इत्येवं तं ब्रुवाणस्तु शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥

तस्य बाणैः सुविध्वस्तं कवचं हेमभूषितम् ।
व्यशीर्यत रथोपस्थे ताराजालमिवाम्बरात् ॥ २० ॥

विधूतवर्मा नाराचैर्बभूव स कृतव्रणः ।
इन्द्रजित्समरे वीरः प्ररूढ इव सानुमान् ॥ २१ ॥

ततः शरसहस्रेण संक्रुद्धो रावणात्मजः ।
बिभेद समरे वीरं लक्ष्मणं भीमविक्रमः ॥ २२ ॥

व्यशीर्यत महादिव्यं कवचं लक्ष्मणस्य च ॥ २३ ॥

कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुरभिद्रुतौ ॥ २४ ॥

अभीक्ष्णं निश्वसन्तौ तौ युद्ध्येतां तुमुलं युधि ।
शरसंकृत्तसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥ २५ ॥

सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः ।
ततक्षतुर्महात्मानौ रणकर्मविशारदौ ॥ २६ ॥

बभूवतुश्चात्मजये यत्तौ भीमपराक्रमौ ।
तौ शरौघैस्तदा कीर्णौ निकृत्तकवचध्वजौ ॥
स्रवन्तौ रुधिरं चोष्णं जलं प्रस्रवणाविव ॥ २७ ॥

शरवर्षं ततो घोरं मुञ्चतोर्भीमनिस्वनम् ।
सासारयोरिवाकाशे नीलयोः कालमेघयोः ॥ २८ ॥

तयोरथ महान्कालो व्यत्ययाद्युध्यमानयोः ।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाऽप्युपजग्मतुः ॥ २९ ॥

अस्त्राण्यस्त्रविदां श्रेष्ठौ दर्शयन्तौ पुनः पुनः ।
शरानुच्चावचाकारानन्तरिक्षे बबन्धतुः ॥ ३० ॥

व्यपेतदोषावस्यन्तौ लघु चित्रं च सुष्ठु च ।
उभौ तौ तुमुलं घोरं चक्रतुर्नरराक्षसौ ॥ ३१ ॥

तयोः पृथक् पृथग्भीमः शुश्रुवे तलनिस्वनः ।
स कम्पं जनयामास निर्घात इव दारुणः ॥ ३२ ॥

स तयोर्भ्राजते शब्दस्तदा समरसक्तयोः ।
सुघोरयोर्निस्वनतोर्गगने मेघयोर्यथा ॥ ३३ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैर्बलवन्तौ कृतव्रणौ ।
प्रसुस्रुवाते रुधिरं कीर्तिमन्तौ जये धृतौ ॥ ३४ ॥

ते गात्रयोर्निपतिता रुक्मपुङ्खाः शरा युधि ।
असृग्दिग्धा विनिष्पेतुर्विविशुर्धरणीतलम् ॥ ३५ ॥

अन्ये सुनिशितैः शस्त्रैराकाशे संजघट्टिरे ।
बभञ्जुश्चिच्छिदुश्चान्ये तयोर्बाणाः सहस्रशः ॥ ३६ ॥

स बभूव रणो घोरस्तयोर्बाणमयश्चयः ।
अग्निभ्यामिव दीप्ताभ्यां सत्रे कुशमयश्चयः ॥ ३७ ॥

तयोः कृतव्रणौ देहौ शुशुभाते महात्मनोः ।
सपुष्पाविव निष्पत्रौ वने शाल्मलिकिंशुकौ ॥ ३८ ॥

चक्रतुस्तुमुलं घोरं सन्निपातं मुहुर्मुहुः ।
इन्द्रजिल्लक्ष्मणौ वीरौ परस्परजयैषिणौ ॥ ३९ ॥

लक्ष्मणो रावणिं युद्धे रावणिश्चापि लक्ष्मणम् ।
अन्योन्यं तावभिघ्नन्तौ न श्रमं प्रत्यपद्यताम् ॥ ४० ॥
बाणजालैः शरीरस्थैरवगाढैस्तरस्विनौ ।
शुशुभाते महावीर्यौ प्ररूढाविव पर्वतौ ॥ ४१ ॥
तया रुधिरसिक्तानि संवृतानि शरैर्भृशम् ।
बभ्राजुः सर्वगात्राणि ज्वलन्त इव पावकाः ॥ ४२ ॥
तयोरथ महान्कालो व्यत्ययाद्युध्यमानयोः ।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाऽप्युपजग्मतुः ॥ ४३ ॥
अथ समरपरिश्रमं निहन्तुं समरमुखेष्वजितस्य लक्ष्मणस्य ।
प्रियहितमुपपादयन्महौजाः समरमुपेत्य विभीषणोऽवतस्थे ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18838 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4163

## नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

### इन्द्रजितो रथभङ्गः ॥

युध्यमानौ तु तौ दृष्ट्वा प्रसक्तौ नरराक्षसौ ।
प्रभिन्नाविव मातङ्गौ परस्परजयैषिणौ ॥ १ ॥
तौ द्रष्टुकामः सङ्ग्रामे परस्परगतौ बली ।
शूरः स रावणभ्राता तस्थौ सङ्ग्राममूर्धनि ॥ २ ॥
ततो विस्फारयामास महद्धनुरवस्थितः ।
उत्ससर्ज च तीक्ष्णाग्रान्राक्षसेषु महाशरान् ॥ ३ ॥

ते शराः शिखिसङ्काशा निपतन्तः समाहिताः ।
राक्षसान्दारयामासुर्वज्राणीव महागिरीन् ॥ ४ ॥
विभीषणस्यानुचरास्तेऽपि शूलासिपट्टिशैः ।
चिच्छिदुः समरे वीरान्राक्षसान्राक्षसोत्तमाः ॥ ५ ॥
राक्षसैस्तैः परिवृतः स तदा तु विभीषणः ।
बभौ मध्ये प्रहृष्टानां कलभानामिव द्विपः ॥ ६ ॥
ततः संचोदयानो वै हरीन्रक्षोवधप्रियान् ।
उवाच वचनं काले कालज्ञो रक्षसां वरः ॥ ७ ॥
एकोऽयं राक्षसेन्द्रस्य परायणमिव स्थितः ।
एतच्छेषं बलं तस्य किं तिष्ठत हरीश्वराः ॥ ८ ॥
तस्मिन्विनिहते पापे राक्षसे रणमूर्धनि ।
रावणं वर्जयित्वा तु शेषमस्य हतं बलम् ॥ ९ ॥
प्रहस्तो निहतो वीरो निकुम्भश्च महाबलः ।
कुम्भकर्णश्च कुम्भश्च धूम्राक्षश्च निशाचरः ॥ १० ॥
जम्बुमाली महामाली तीक्ष्णवेगोऽशनिप्रभः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च वज्रदंष्ट्रश्च राक्षसः ॥ ११ ॥
संह्रादी विकटो निघ्नस्तपनो मन्द एव च ।
प्रघासः प्रघसश्चैव प्रजङ्घो जङ्घ एव च ॥ १२ ॥
अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च वीर्यवान् ।
विद्युज्जिह्वो द्विजिह्वश्च सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥ १३ ॥
अकम्पनः सुपार्श्वश्च चक्रमाली च राक्षसः ।
कम्पनः सत्त्ववन्तौ तौ देवान्तकनरान्तकौ ॥ १४ ॥

एतान्निहत्यातिबलान्बहून्राक्षससत्तमान् ।
बाहुभ्यां सागरं तीर्त्वा लङ्घ्यतां गोष्पदं लघु ॥ १५ ॥
एतावदेव शेषं वो जेतव्यमिह वानराः ।
हताः सर्वे समागम्य राक्षसा बलदर्पिताः ॥ १६ ॥
अयुक्तं निधनं कर्तुं पुत्रस्य जनितुर्मम ।
घृणामपास्य रामार्थे निहन्यां भ्रातुरात्मजम् ॥ १७ ॥
हन्तुकामस्य मे बाष्पं चक्षुश्चैव निरुद्ध्यति ।
तमेवैष महाबाहुर्लक्ष्मणः शमयिष्यति ॥ १८ ॥
वानरा घ्नत संभूय भृत्यानस्य समीपगान् ॥ १९ ॥
इति तेनातियशसा राक्षसेनाभिचोदिताः ।
वानरेन्द्रा जहृषिरे लाङ्गूलानि च विव्यधुः ॥ २० ॥
ततस्ते कपिशार्दूलाः क्ष्वेलन्तश्च मुहुर्मुहुः ।
मुमुचुर्विविधान्नादान्मेघान्दृष्ट्वेव बर्हिणः ॥ २१ ॥
जाम्बवानपि तैः सर्वैः स्वयूथैरपि संवृतः ।
अश्मभिस्ताडयामास नखैर्दन्तैश्च राक्षसान् ॥ २२ ॥
निघ्नन्तमृक्षाधिपतिं राक्षसास्ते महाबलाः ।
परिवव्रुर्भयं त्यक्त्वा तमनेकविधायुधाः ॥ २३ ॥
शरैः परशुभिस्तीक्ष्णैः पट्टिशैर्यष्टितोमरैः ।
जाम्बवन्तं मृधे जघ्नुर्निघ्नन्तं राक्षसीं चमूम् ॥ २४ ॥
स संप्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम् ।
देवासुराणां क्रुद्धानां यथा भीमो महास्वनः ॥ २५ ॥

हनुमानपि संक्रुद्धः सानुमुत्पाट्य वीर्यवान् ।
रक्षसां कदनं चक्रे समासाद्य सहस्रशः ॥ २६ ॥
स दत्त्वा तुमुलं युद्धं पितृव्यस्येन्द्रजिद्युधि ।
लक्ष्मणं परवीरघ्नं पुनरेवाभ्यधावत ॥ २७ ॥
तौ प्रयुद्धौ तदा वीरौ मृधे लक्ष्मणराक्षसौ ।
शरौघानभिवर्षन्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम् ॥ २८ ॥
अभीक्ष्णमन्तर्दधतुः शरजालैर्महाबलौ ।
चन्द्रादित्याविवोष्णान्ते यथा मेघैस्तरस्विनौ ॥ २९ ॥
न ह्यादानं न सन्धानं धनुषो वा परिग्रहः ।
न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः ॥ ३० ॥
न मुष्टिप्रतिसन्धानं न लक्ष्यप्रतिपादनम् ।
अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात् ॥ ३१ ॥
चापवेगविनिर्मुक्तबाणजालैः समन्ततः ।
अन्तरिक्षे हि सञ्छन्ने न रूपाणि चकाशिरे ॥ ३२ ॥
लक्ष्मणो रावणिं प्राप्य रावणिश्चापि लक्ष्मणम् ।
अव्यवस्था भवत्युग्रा ताभ्यामन्योन्यविग्रहे ॥ ३३ ॥
ताभ्यामुभाभ्यां तरसा विसृष्टैर्विशिखैः शितैः ।
निरन्तरमिवाकाशं बभूव तमसाऽऽवृतम् ॥ ३४ ॥
तैः पतद्भिश्च बहुभिस्तयोः शरशतैः शितैः ।
दिशश्च प्रदिशश्चैव बभूवुः शरसंकुलाः ॥ ३५ ॥
तमसा संवृतं सर्वमासीद्भीमतरं महत् ।
अस्तं गते सहस्रांशौ संवृतं तमसेव हि ॥ ३६ ॥

रुधिरौघमहानद्यः प्रावर्तन्त सहस्रशः ।
क्रव्यादा दारुणा वाग्भिश्चिक्षिपुर्भीमनिस्वनम् ॥ ३७ ॥
न तदानीं ववौ वायुर्न च जज्वाल पावकः ॥ ३८ ॥
स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जजल्पुश्च महर्षयः ॥ ३९ ॥
संपेतुश्चात्र संप्राप्ता गन्धर्वाः सह चारणैः ॥ ४० ॥
अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान्कनकभूषणान् ।
शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान् ॥ ४१ ॥
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
संपूर्णायतमुक्तेन सुपत्रेण सुवर्चसा ॥ ४२ ॥
महेन्द्राशनिकल्पेन सूतस्य विचरिष्यतः ।
स तेन बाणाशनिना तलशब्दानुनादिना ॥
लाघवाद्राघवः श्रीमाञ्छिरः कायादपाहरत् ॥ ४३ ॥
स यन्तरि महातेजा हते मन्दोदरीसुतः ।
स्वयं सारथ्यमकरोत्पुनश्च धनुरस्पृशत् ॥ ४४ ॥
तदद्भुतमभूत्तत्र सामर्थ्यं पश्यतां युधि ॥ ४५ ॥
हयेषु व्यग्रहस्तं तं विव्याध निशितैः शरैः ।
धनुष्यथ पुनर्व्यग्रे हयेषु मुमुचे शरान् ॥ ४६ ॥
छिद्रेषु तेषु बाणेषु सौमित्रिः शीघ्रकृत्तमः ।
अर्दयामास समरे विचरन्तमभीतवत् ॥ ४७ ॥
निहतं सारथिं दृष्ट्वा समरे रावणात्मजः ।
प्रजहौ समरोद्धर्षं विषण्णः स बभूव ह ॥ ४८ ॥

विषण्णवदनं दृष्ट्वा राक्षसं हरियूथपाः ।
ततः परमसंहृष्टा लक्ष्मणं चाभ्यपूजयन् ॥ ४९ ॥
ततः प्रमाथी शरभो रभसो गन्धमादनः ।
अमृष्यमाणाश्चत्वारश्चक्रुर्वेगं हरीश्वराः ॥ ५० ॥
ते चास्य हयमुख्येषु तूर्णमुत्प्लुत्य वानराः ।
चतुर्षु सुमहावीर्या निपेतुर्भीमविक्रमाः ॥ ५१ ॥
तेषामधिष्ठितानां तैर्वानरैः पर्वतोपमैः ।
मुखेभ्यो रुधिरं व्यक्तं हयानां समवर्तत ॥ ५२ ॥
ते हया मथिता भग्ना व्यसवो धरणीं गताः ॥ ५३ ॥
ते निहत्य हयांस्तस्य प्रमथ्य च महारथम् ।
पुनरुत्पत्य वेगेन तस्थुर्लक्ष्मणपार्श्वतः ॥ ५४ ॥
स हताश्वादवप्लुत्य रथान्मथितसारथेः ।
शरवर्षेण सौमित्रिमभ्यधावत रावणिः ॥ ५५ ॥

ततो महेन्द्रप्रतिमः स लक्ष्मणः
पदातिनं तं निहतैर्हयोत्तमैः ।
सृजन्तमाजौ निशिताञ्छरोत्तमान्
भृशं तदा बाणगणैर्न्यवारयत् ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे नवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18894 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4219

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे त्रयोविंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥

[पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे द्वात्रिंशति दिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे चतुर्विंशतितमेऽह्नि युद्धकाण्डे एकनवतितमसर्गमारभ्य एकादशोत्तरशततमसर्गपर्यन्तं (18895—19819 श्लोकाः) गीतम्।
तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाः 925]

## एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

### इन्द्रजिद्वधः ॥

स हताश्वो महातेजा भूमौ तिष्ठन्निशाचरः ।
इन्द्रजित्परमक्रुद्धः संप्रजज्वाल तेजसा ॥ १ ॥

तौ धन्विनौ जिघांसन्तावन्योन्यमिषुभिर्भृशम् ।
विजयेनाभिनिष्क्रान्तौ वने गजवृषाविव ॥ २ ॥

निबर्हयन्तश्चान्योन्यं ते राक्षस वनौकसः ।
भर्तारं न जहुर्युद्धे संपतन्तस्ततस्ततः ॥ ३ ॥

ततस्तान्राक्षसान्सर्वान्हर्षयन्रावणात्मजः ।
स्तुन्वानो हर्षमाणश्च इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

तमसा बहुलेनेमाः संसक्ताः सर्वतो दिशः ।
नेह विज्ञायते स्वो वा परो वा राक्षसोत्तमाः ॥ ५ ॥
धृष्टा भवन्तो युध्यन्तु हरीणां मोहनाय वै ॥ ६ ॥
अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि संयुगे ॥ ७ ॥
तथा भवन्तः कुर्वन्तु यथेमे काननौकसः ।
न बुद्ध्येयुर्दुरात्मानः प्रविष्टे नगरं मयि ॥ ८ ॥

इत्युक्त्वा रावणसुतो वञ्चयित्वा वनौकसः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रथहेतोरमित्रहा ॥ ९ ॥

स रथं भूषयित्वा तु रुचिरं हेमभूषितम् ।
प्रासासिशतसंपूर्णं युक्तं परमवाजिभिः ॥ १० ॥

अधिष्ठितं हयज्ञेन सूतेनाप्तोपदेशिना ।
आरुरोह महातेजा रावणिः समितिञ्जयः ॥ ११ ॥

स राक्षसगणैर्मुख्यैर्वृतो मन्दोदरीसुतः ।
निर्ययौ नगरात्तूर्णं कृतान्तबलचोदितः ॥ १२ ॥

सोऽभिनिष्क्रम्य नगरादिन्द्रजित्परवीरहा ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्लक्ष्मणं सविभीषणम् ॥ १३ ॥

ततो रथस्थमालोक्य सौमित्री रावणात्मजम् ।
वानराश्च महावीर्या राक्षसश्च विभीषणः ॥
विस्मयं परमं जग्मुर्लाघवात्तस्य धीमतः ॥ १४ ॥

रावणिश्चापि संक्रुद्धो रणे वानरयूथपान् ।
पातयामास बाणौघैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १५ ॥

स मण्डलीकृतधनू रावणिः समितिञ्जयः ।
हरीनभ्यहनत्क्रुद्धः परं लाघवमास्थितः ॥ १६ ॥

ते वध्यमाना हरयो नाराचैर्भीमविक्रमाः ।
सौमित्रिं शरणं प्राप्ताः प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ १७ ॥

ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः ।
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ १८ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्यं चक्रे त्वरन्निव ।
तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणो निरकृन्तत ॥ १९ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानमाशीविषविषोपमैः ।
विव्याधोरसि सौमित्री रावणिं पञ्चभिः शरैः । २० ॥
ते तस्य कायं निर्भिद्य महाकार्मुकनिःसृताः ।
निपेतुर्धरणीं बाणा रक्ता इव महोरगाः ॥ २१ ॥
स भिन्नवर्मा रुधिरं वमन्वक्त्रेण रावणिः ।
जग्राह कार्मुकश्रेष्ठं दृढज्यं बलवत्तरम् ॥ २२ ॥
स लक्ष्मणं समुद्दिश्य परं लाघवमास्थितः ।
ववर्ष शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥ २३ ॥
मुक्तमिन्द्रजिता तत्तु शरवर्षमरिन्दमः ।
आवारयदसंभ्रान्तो लक्ष्मणः सुदुरासदम् ॥ २४ ॥
दर्शयामास च तदा रावणिं रघुनन्दनः ।
असंभ्रान्तो महातेजास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥
ततस्तान्राक्षसान्सर्वांस्त्रिभिरेकैकमाहवे ।
अविध्यत्परमक्रुद्धः शीघ्रास्त्रं संप्रदर्शयन् ॥ २६ ॥
राक्षसेन्द्रसुतं चापि बाणौघैः समताडयत् ॥ २७ ॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुघातिना ।
असक्तं प्रेषयामास लक्ष्मणाय बहूञ्छरान् ॥ २८ ॥

तानप्राप्ताञ्छितैर्बाणैश्चिच्छेद रघुनन्दनः ॥ २९ ॥
सारथेरस्य च रणे रथिनो रथसत्तमः ।
शिरो जहार धर्मात्मा भल्लेनानतपर्वणा ॥ ३० ॥
असूतास्ते हयास्तत्र रथमूहुरविक्लवाः ।
मण्डलान्यभिधावन्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३१ ॥
अमर्षवशमापन्नः सौमित्रिर्दृढविक्रमः ।
प्रत्यविध्यद्धयांस्तस्य शरैर्वित्रासयन्रणे ॥ ३२ ॥
अमृष्यमाणस्तत्कर्म रावणस्य सुतो बली ।
विव्याध दशभिर्बाणैः सौमित्रिं तममर्षणम् ॥ ३३ ॥
ते तस्य वज्रप्रतिमाः शराः सर्पविषोपमाः ।
विलयं जग्मुराहत्य कवचं काञ्चनप्रभम् ॥ ३४ ॥
अभेद्यकवचं मत्वा लक्ष्मणं रावणात्मजः ।
ललाटे राघवं बाणैः सुपुङ्खैस्त्रिभिरिन्द्रजित् ॥
अविध्यत्परमक्रुद्धः शीघ्रास्त्रं च प्रदर्शयन् ॥ ३५ ॥
तैः पृषत्कैर्ललाटस्थैः शुशुभे रघुनन्दनः ।
रणाग्रे समरश्लाघी त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ३६ ॥
स तथा ह्यर्दितो बाणै राक्षसेन महामृधे ।
तमाशु प्रतिविव्याध लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः ॥
विकृष्येन्द्रजितो युद्धे वदने शुभकुण्डले ॥ ३७ ॥
लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलशरासनौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्बाणैर्विशिखैर्भीमविक्रमौ ॥ ३८ ॥

ततः शोणितदिग्धाङ्गौ लक्ष्मणेन्द्रजिताविुभौ ।
रणे तौ रेजतुर्वीरौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३९ ॥

तौ परस्परमभ्येत्य सर्वगात्रेषु धन्विनौ ।
घोरैर्विव्यधतुर्बाणैः कृतभावावुभौ जये ॥ ४० ॥

ततः समरकोपेन संयुक्तो रावणात्मजः ।
विभीषणं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध वदने शुभे ॥ ४१ ॥

अयोमुखैस्त्रिभिर्विध्वा राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
एकैकेनाभिविव्याध तान्सर्वान्हरियूथपान् ॥ ४२ ॥

तस्मै दृढतरं क्रुद्धो जघान गदया हयान् ।
विभीषणो महातेजा रावणेः स दुरात्मनः ॥ ४३ ॥

स हताश्वादवप्लुत्य रथान्निहतसारथेः ।
अथ शक्तिं महातेजाः पितृव्याय मुमोच ह ॥ ४४ ॥

तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य सुमित्रानन्दवर्धनः ।
चिच्छेद निशितैर्बाणैर्दशधा साऽपतद्भुवि ॥ ४५ ॥

तस्मै दृढधनुः क्रुद्धो हताश्वाय विभीषणः ।
वज्रस्पर्शसमान्पञ्च ससर्जोरसि मार्गणान् ॥ ४६ ॥

ते तस्य कायं निर्भिद्य रुक्मपुङ्खा निमित्तगाः ।
बभूवुर्लोहितादिग्धा रक्ता इव महोरगाः ॥ ४७ ॥

स पितृव्याय संक्रुद्ध इन्द्रजिच्छरमाददे ।
उत्तमं रक्षसां मध्ये यमदत्तं महाबलः ॥ ४८ ॥

तं समीक्ष्य महातेजा महेषुं तेन संहितम् ।
लक्ष्मणोऽप्याददे बाणमन्यं भीमपराक्रमः ॥ ४९ ॥
कुबेरेण स्वयं स्वप्ने यद्दत्तममितात्मना ।
दुर्जयं दुर्विषह्यं च सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ५० ॥
तयोस्ते धनुषी श्रेष्ठे बाहुभिः परिघोपमैः ।
विकृष्यमाणे बलवत्क्रौञ्चाविव चुकूजतुः ॥ ५१ ॥
ताभ्यां तौ धनुषी श्रेष्ठे संहितौ सायकोत्तमौ ।
विकृष्यमाणौ वीराभ्यां भृशं जज्वलतुः श्रिया ॥ ५२ ॥
तौ भासयन्तावाकाशं धनुर्भ्यां विशिखौ च्युतौ ।
मुखेन मुखमाहत्य संनिपेततुरोजसा ॥ ५३ ॥
सन्निपातस्तयोरासीच्छरयोर्घोररूपयोः ॥ ५४ ॥
सधूमविस्फुलिङ्गश्च तज्जोऽग्निर्दारुणोऽभवत् ॥ ५५ ॥
तौ महाग्रहसङ्काशावन्योन्यं सन्निपत्य च ।
सङ्ग्रामे शतधा यान्तौ मेदिन्यां विनिपेततुः ॥ ५६ ॥
शरौ प्रतिहतौ दृष्ट्वा तावुभौ रणमूर्धनि ।
व्रीडितौ जातरोषौ च लक्ष्मणेन्द्रजितौ तदा ॥ ५७ ॥
सुसंरब्धस्तु सौमित्रिरस्त्रं वारुणमाददे ॥ ५८ ॥
रौद्रं महेन्द्रजिद्युद्धे व्यसृजद्युधि निष्ठितः ।
तेन तद्विहतं त्वस्त्रं वारुणं परमाद्भुतम् ॥ ५९ ॥
ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित्समितिञ्जयः ।
आग्नेयं सन्दधे दीप्तं स लोकं संक्षिपन्निव ॥ ६० ॥

सौरेणास्त्रेण तद्वीरो लक्ष्मणः प्रत्यवारयत् ॥ ६१ ॥

अस्त्रं निवारितं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
आसुरं शत्रुनाशाय घोरमस्त्रं समाददे ॥ ६२ ॥

तस्माच्चापाद्विनिष्पेतुर्भास्वराः कूटमुद्गराः ।
शूलानि च भुशुण्ड्यश्च गदाः खड्गाः परश्वधाः ॥६३॥

तद्दृष्ट्वा लक्ष्मणः संख्ये घोरमस्त्रमथासुरम् ।
अवार्यं सर्वभूतानां सर्वशत्रुविनाशनम् ॥
माहेश्वरेण द्युतिमांस्तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ६४ ॥

तयोः सुतुमुलं युद्धं संबभूवाद्भुतोपमम् ॥ ६५ ॥

गगनस्थानि भूतानि लक्ष्मणं पर्यवारयन् ॥ ६६ ॥

भैरवाभिरुते भीमे युद्धे वानररक्षसाम् ।
भूतैर्बहुभिराकाशं विस्मितैरावृतं बभौ ॥ ६७ ॥

ऋषयः पितरो देवा गन्धर्वा गरुडोरगाः ।
शतक्रतुं पुरस्कृत्य ररक्षुर्लक्ष्मणं रणे ॥ ६८ ॥

अथान्यं मार्गणश्रेष्ठं सन्दधे राघवानुजः ।
हुताशनसमस्पर्शं रावणात्मजदारणम् ॥ ६९ ॥

सुपत्रमनुवृत्ताङ्गं सुपर्वाणं सुसंस्थितम् ।
सुवर्णविकृतं वीरः शरीरान्तकरं शरम् ॥ ७० ॥

दुरावारं दुर्विषहं राक्षसानां भयावहम् ।
आशीविषविषप्रख्यं देवसङ्घैः समर्चितम् ॥ ७१ ॥

येन शक्रो महातेजा दानवानजयत्प्रभुः ।
पुरा दैवासुरे युद्धे वीर्यवान्हरिवाहनः ॥ ७२ ॥

तदैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् ।
शरश्रेष्ठं धनुःश्रेष्ठे नरश्रेष्ठोऽभिसन्दधे ॥ ७३ ॥

सन्धायामित्रदलनं विचकर्ष शरासनम् ।
सज्यमायम्य दुर्धर्षं कालो लोकक्षये यथा ॥ ७४ ॥

सन्धाय धनुषि श्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ।
लक्ष्मीवांल्लक्ष्मणो वाक्यमर्थसाधकमात्मनः ॥ ७५ ॥

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वः शरैनं जहि रावणिम् ॥ ७६ ॥

इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् ।
सौमित्रिः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥
ऐन्द्रास्त्रेण समायोज्य लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ७७ ॥

स शिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले ॥ ७८ ॥

तद्राक्षसतनूजस्य छिन्नस्कन्धं शिरो महत् ।
तपनीयनिभं भूमौ ददृशे रुधिरोक्षितम् ॥ ७९ ॥

हतस्तु निपपाताशु धरण्यां रावणात्मजः ।
कवची सशिरस्त्राणो विध्वस्तः सशरासनः ॥ ८० ॥

चुक्रुशुस्ते ततः सर्वे वानराः सविभीषणाः ।
हृष्यन्तो निहते तस्मिन्देवा वृत्रवधे यथा ॥ ८१ ॥

अथान्तरिक्षे देवानामृषीणां च महात्मनाम् ।
अभिजज्ञे च सन्नादो गन्धर्वाप्सरसामपि ॥ ८२ ॥
पतितं तमभिज्ञाय राक्षसी सा महाचमूः ।
वध्यमाना दिशो भेजे हरिभिर्जितकाशिभिः ॥ ८३ ॥
वानरैर्वध्यमानास्ते शस्त्राण्युत्सृज्य राक्षसाः ।
लङ्कामभिमुखाः सस्रुर्नष्टसंज्ञाः प्रधाविताः ॥ ८४ ॥
दुद्रुवुर्बहुधा भीता राक्षसाः शतशो दिशः ।
त्यक्त्वा प्रहरणान्सर्वे पट्टिशासिपरश्वधान् ॥ ८५ ॥
केचिल्लङ्कां परित्रस्ताः प्रविष्टा वानरार्दिताः ॥ ८६ ॥
समुद्रे पतिताः केचित्केचित्पर्वतमाश्रिताः ॥ ८७ ॥
हतमिन्द्रजितं दृष्ट्वा शयानं समरक्षितौ ।
राक्षसानां सहस्रेषु न कश्चित्प्रत्यदृश्यत ॥ ८८ ॥
यथाऽस्तं गत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः ।
तथा तस्मिन्निपतिते राक्षसास्ते गता दिशः ॥ ८९ ॥
शान्तरश्मिरिवादित्यो निर्वाण इव पावकः ।
स बभूव महातेजा व्यपास्तगतजीवितः ॥ ९० ॥
प्रशान्तपीडाबहुलो नष्टारिष्टः प्रतापवान् ।
बभूव लोकः पतिते राक्षसेन्द्रसुते तदा ॥ ९१ ॥
हर्षं च शक्रो भगवान्सह सर्वैः सुरर्षभैः ।
जगाम निहते तस्मिन्राक्षसे पापकर्मणि ॥ ९२ ॥
आकाशे चापि देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः ।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गन्धर्वैश्च महात्मभिः ॥ ९३ ॥

ववृषुः पुष्पवर्षाणि तदद्भुतमभूत्तदा ।
प्रशशंसुर्हते तस्मिन्राक्षसे क्रूरकर्मणि ॥
शुद्धा आपो दिशश्चैव जहृषुर्दैत्यदानवाः ॥ ९४ ॥
आजग्मुः पतिते तस्मिन्सर्वलोकभयावहे ।
ऊचुश्च सहिताः सर्वे देवगन्धर्वदानवाः ॥
विज्वराः शान्तकलुषा ब्राह्मणा विचरन्त्विति: ॥ ९५ ॥
ततोऽभ्यनन्दन्संहृष्टाः समरे हरियूथपाः ।
तमप्रतिबलं दृष्ट्वा हतं नैर्ऋतपुङ्गवम् ॥ ९६ ॥
विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः ।
विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम् ॥ ९७ ॥
क्ष्वेलन्तश्च नदन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
लब्धलक्षा रघुसुतं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ९८ ॥
लाङ्गूलानि प्रविध्यन्तः स्फोटयन्तश्च वानराः ।
लक्ष्मणो जयतीत्येवं वाक्यं विश्रावयंस्तदा ॥ ९९ ॥
अन्योन्यं च समाश्लिष्य कपयो हृष्टमानसाः ।
चक्रुरुच्चावचगुणा राघवाश्रयजाः कथाः ॥ १०० ॥
तदसुकरमथाभिवीक्ष्य हृष्टाः प्रियसुहृदो युधि लक्ष्मणस्य कर्म ।
परममुपलभन्मनःप्रहर्षं विनिहतमिन्द्ररिपुं निशम्य देवाः

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 18995 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4320

## द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

### लक्ष्मणश्लाघनम् ॥

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
बभूव हृष्टस्तं हत्वा शक्रजेतारमाहवे ॥ १ ॥

ततः स जाम्बवन्तं च हनुमन्तं च वीर्यवान् ।
सन्निहत्य महातेजास्तांश्च सर्वान्वनौकसः ॥ २ ॥

आजगाम ततस्तीत्रं यत्र सुग्रीवराघवौ ।
विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥ ३ ॥

ततो राममभिक्रम्य सौमित्रिरभिवाद्य च ।
तस्थौ भ्रातृसमीपस्थ इन्द्रस्येव बृहस्पतिः ॥ ४ ॥

निष्टनन्निव चागम्य राघवाय महात्मने ।
आचचक्षे तदा वीरो घोरमिन्द्रजितो वधम् ॥ ५ ॥

रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना ।
न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः ॥ ६ ॥

श्रुत्वैतत्तु महावीर्यो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्वधम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे रामो वाक्यमुवाच ह ॥ ७ ॥

साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्मणा सुकृतं कृतम् ।
रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय ॥ ८ ॥

स तं शिरस्युपाघ्राय लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ।
लज्जमानं बलात्स्नेहादङ्कमारोप्य वीर्यवान् ॥ ९ ॥

उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम् ।
भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत ॥ १० ॥
शल्यसंपीडितं शस्तं निश्वसन्तं तु लक्ष्मणम् ।
रामस्तु दुःखसन्तप्तस्तदा निश्वसितो भृशम् ॥ ११ ॥
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन् ।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः ॥ १२ ॥
कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा ॥ १३ ॥
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि ॥ १४ ॥
अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन्दुरात्मनि ॥ १५ ॥
रावणस्य नृशंसस्य दिष्ट्या वीर त्वया रणे ।
छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः ॥
विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद्रणे ॥ १७ ॥
अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथंचिद्विनिपातितः ॥ १८ ॥
निरमित्रः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः ।
बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥ १९ ॥
तं पुत्रवधसन्तप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम् ।
बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम् ॥ २० ॥
त्वया लक्ष्मण नाथेन सीता च पृथिवी च मे ।
न दुष्प्रापा हते त्वद्य शक्रजेतरि चाहवे ॥ २१ ॥
स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः ।
रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

सशल्योऽयं महाप्राज्ञ सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ।
यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं समुपाचर ॥ २३ ॥
विशल्यः क्रियतां क्षिप्रं सौमित्रिः सविभीषणः ।
ऋक्षवानरसैन्यानां शूराणां द्रुमयोधिनाम् ॥ २४ ॥
ये चाप्यन्येऽत्र युध्यन्ति सशल्या व्रणिनस्तथा ।
तेऽपि सर्वे प्रयत्नेन क्रियन्तां सुखिनस्त्वया ॥ २५ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण महात्मा हरियूथपः ।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधिम् ॥ २६ ॥
स तस्या गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत ।
तथा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च ॥ २७ ॥
विभीषणमुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया ।
सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सां स तदाऽकरोत् ॥ २८ ॥
ततः प्रकृतिमापन्नो हृतशल्यो गतव्यथः ।
सौमित्रिर्मुदितस्तत्र क्षणेन विगतज्वरः ॥ २९ ॥
तथैव रामः प्लवगाधिपस्तदा विभीषणश्चर्क्षपतिश्च जाम्बवान् ।
अवेक्ष्य सौमित्रिमरोगमुत्थितं मुदा ससैन्याः सुचिरं जहर्षिरे ॥
अपूजयत्कर्म स लक्ष्मणस्य सुदुष्करं दाशरथिर्महात्मा ॥
हृष्टा बभूवुर्युधि यूथपेन्द्रा निपातितं शक्रजितं निशम्य ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19027 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4352

## त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

### रावणविलापः ॥

ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितं हतम् ।
आचचक्षुरभिज्ञाय दशग्रीवाय सव्यथाः ॥ १ ॥

युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः ।
विभीषणसहायेन मिषतां नो महाद्युतिः ॥ २ ॥

शूरः शूरेण संगम्य संयुगेष्वपराजितः ।
लक्ष्मणेन हतः शूरः पुत्रस्तु विबुधेन्द्रजित् ॥
गतः स परमांल्लोकाञ्छरैः संताप्य लक्ष्मणम् ॥ ३ ॥

स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम् ।
घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं चाविशन्महत् ॥ ४ ॥

उपलभ्य चिरात्संज्ञां राजा राक्षसपुङ्गवः ।
पुत्रशोकार्दितो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ५ ॥

हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महारथ ।
जित्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः ॥ ६ ॥

ननु त्वमिषुभिः क्रुद्धो भिन्द्याः कालान्तकावपि ।
मन्दरस्यापि शृङ्गाणि किं पुनर्लक्ष्मणं युधि ॥ ७ ॥

अद्य वैवस्वतो राजा भूयो बहुमतो मम ।
येनाद्य त्वं महाबाहो संयुक्तः कालधर्मणा ॥ ८ ॥

एष पन्थाः सुयोधानां सर्वामरगणेष्वपि ।
यः कृते हन्यते भर्तुः स पुमान्स्वर्गमृच्छति ॥ ९ ॥

अद्य देवगणाः सर्वे लोकपालास्तथर्षयः ।
हतमिन्द्रजितं श्रुत्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः ॥ १० ॥

अद्य लोकास्त्रयः कृत्स्ना पृथिवी च सकानना ।
एकेनेन्द्रजिता हीना शून्येव प्रतिभाति मे ॥ ११ ॥

अद्य नैर्ऋतकन्यानां श्रोष्याम्यन्तःपुरे रवम् ।
करेणुसङ्घस्य यथा निनादं गिरिगह्वरे ॥ १२ ॥

यौवराज्यं च लङ्कां च रक्षांसि च परन्तप ।
मातरं मां च भार्यां च क्व गतोऽसि विहाय नः ॥

मम नाम त्वया वीर गतस्य यमसादनम् ।
प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे ॥ १४ ॥

स त्वं जीवति सुग्रीवे लक्ष्मणे च सराघवे ।
मम शल्यमनुद्धृत्य क्व गतोऽसि विहाय नः ॥ १५ ॥

एवमादिविलापार्तं रावणं राक्षसाधिपम् ।
आविवेश महान्कोपः पुत्रव्यसनसंभवः ॥ १६ ॥

प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः ।
दीप्तं संदीपयामासुर्घर्मेऽर्कमिव रश्मयः ॥ १७ ॥

ललाटे भ्रुकुटीभिश्च सङ्गताभिर्व्यरोचत ।
युगान्ते सह नक्रैस्तु महोर्मिभिरिवोदधिः ॥ १८ ॥

कोपाद्विजृम्भमाणस्य वक्त्राद्व्यक्तमभिज्वलन् ।
उत्पपात स भूयोऽग्निर्वृत्रस्य वदनादिव ॥ १९ ॥

स पुत्रवधसंतप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या वैदेह्या रोचयद्वधम् ॥ २० ॥

तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनाऽपि च ।
रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ २१ ॥

घोरं प्रकृत्या रूपं तत्तस्य क्रोधाग्निमूर्च्छितम् ।
बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव दुरासदम् ॥ २२ ॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नस्रबिन्दवः ।
दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥ २३ ॥

दन्तान्विदशतस्तस्य श्रूयते दशनस्वनः ।
यन्त्रस्यावेष्ट्यमानस्य महतो दानवैरिव ॥ २४ ॥

कालाग्निरिव संक्रुद्धो यां यां दिशमवैक्षत ।
तस्यां तस्यां भयत्रस्ता राक्षसाः संविलिल्यिरे ॥ २५ ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं चराचरचिखादिषुम् ।
वीक्षमाणं दिशः सर्वा राक्षसा नोपचक्रमुः ॥ २६ ॥

ततः परमसंक्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।
अब्रवीद्रक्षसां मध्ये संस्तम्भयिषुराहवे ॥ २७ ॥

मया वर्षसहस्राणि चरित्वा दुश्चरं तपः ।
तेषु तेष्ववकाशेषु स्वयंभूः परितोषितः ॥ २८ ॥

तस्यैव तपसो व्युष्ट्या प्रसादाच्च स्वयंभुवः ।
नासुरेभ्यो न देवेभ्यो भयं मम कदाचन ॥ २९ ॥

कवचं ब्रह्मदत्तं मे यदादित्यसमप्रभम् ।
देवासुरविमर्देषु नभिन्नं वज्रशक्तिभिः ॥ ३० ॥

तेन मामद्य संयुक्तं रथस्थमिह संयुगे ।
प्रतीयात्कोऽद्य मामाजौ साक्षादपि पुरन्दरः ॥ ३१ ॥

यत्तदाऽभिप्रसन्नेन सशरं कार्मुकं महत् ।
देवासुरविमर्देषु मम दत्तं स्वयंभुवा ॥ ३२ ॥

अद्य तूर्यशतैर्भीमं धनुरुत्थाप्यतां मम ।
रामलक्ष्मणयोरेव वधाय परमाहवे ॥ ३३ ॥

स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हन्तुं व्यवस्यत ॥ ३४ ॥

प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो घोरदर्शनः ।
दीनो दीनस्वरान्सर्वांस्तानुवाच निशाचरान् ॥ ३५ ॥

मायया मम वत्सेन वञ्चनार्थं वनौकसाम् ।
किंचिदेव हतं तत्र सीतेयमिति दर्शितम् ॥ ३६ ॥

तदिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः ॥ ३७ ॥

वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम् ॥ ३८ ॥

इत्येवमुक्त्वा सचिवान्खङ्गमाशु परामृशत् ॥ ३९ ॥

उद्धृत्य गुणसंपन्नं विमलाम्बरवर्चसम् ।
निष्पपात स वेगेन सभार्यः सचिवैर्वृतः ॥ ४० ॥

रावणः पुत्रशोकेन भृशमाकुलचेतनः ।
संक्रुद्धः खड्गमादाय सहसा यत्र मैथिली ॥ ४१ ॥

व्रजन्तं राक्षसं प्रेक्ष्य सिंहनादं प्रचुक्रुशुः ।
ऊचुश्चान्योन्यमाश्लिष्य संक्रुद्धं प्रेक्ष्य राक्षसाः ॥ ४२ ॥

अद्यैनं तावुभौ दृष्ट्वा भ्रातरौ प्रव्यथिष्यतः ॥ ४३ ॥

लोकपाला हि चत्वारः क्रुद्धेनानेन निर्जिताः ।
बहवः शत्रवश्चापि संयुगेषु निपातिताः ॥ ४४ ॥

त्रिषु लोकेषु रत्नानि भुङ्क्ते चाहृत्य रावणः ॥ ४५ ॥

विक्रमे च बले चैव नास्त्यस्य सदृशो भुवि ॥ ४६ ॥

तेषां संजल्पमानानामशोकवनिकां गताम् ।
अभिदुद्राव वैदेहीं रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४७ ॥

वार्यमाणः सुसंक्रुद्धः सुहृद्भिर्हितबुद्धिभिः ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः खे ग्रहो रोहिणीमिव ॥ ४८ ॥

मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरनिन्दिता ।
ददर्श राक्षसं क्रुद्धं निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥ ४९ ॥

तं निशाम्य सनिस्त्रिंशं व्यथिता जनकात्मजा ।
निवार्यमाणं बहुशः सुहृद्भिरनुवर्तिनम् ॥
सीता दुःखसमाविष्टा विलपन्तीदमब्रवीत् ॥ ५० ॥

यथाऽयं मामभिक्रुद्धः समभिद्रवति स्वयम् ।
वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः ॥ ५१ ॥

बहुशश्चोदयामास भर्तारं मामनुव्रताम् ।
भार्या भव रमस्वेति प्रत्याख्यातो ध्रुवं मया ॥ ५२ ॥

सोऽयं ममानुपस्थाने व्यक्तं नैराश्यमागतः ।
क्रोधमोहसमाविष्टो निहन्तुं मां समुद्यतः ॥ ५३ ॥

अथ वा तौ नरव्याघ्रौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
मन्निमित्तमनार्येण समरेऽद्य निपातितौ ॥ ५४ ॥

अहो धिङ्मन्निमित्तोऽयं विनाशो राजपुत्रयोः ॥ ५५ ॥

अथवा पुत्रशोकेन अहत्वा रामलक्ष्मणौ ।
विधमिष्यति मां रौद्रो राक्षसः पापनिश्चयः ॥ ५६ ॥

हनूमतोऽपि यद्वाक्यं न कृतं क्षुद्रया मया ॥ ५७ ॥

यद्यहं तस्य पृष्ठेन तदा यायामनिन्दिता ।
नाद्यैवमनुशोचेयं भर्तुरङ्कगता सती ॥ ५८ ॥

मन्ये तु हृदयं तस्याः कौसल्यायाः फलिष्यति ।
एकपुत्रा यदा पुत्रं विनष्टं श्रोष्यते युधि ॥ ५९ ॥

सा हि जन्म च बाल्यं च यौवनं च महात्मनः ।
धर्मकार्यानुरूपं च रुदन्ती संस्मरिष्यति ॥ ६० ॥

निराशा निहते पुत्रे दत्त्वा श्राद्धमचेतना ।
अग्निमारोक्ष्यते नूनमपो वाऽपि प्रवेक्ष्यति ॥ ६१ ॥

धिगस्तु कुब्जामसतीं मन्थरां पापनिश्चयाम् ।
यन्निमित्तमिदं दुःखं कौसल्या प्रतिपत्स्यते ॥ ६२ ॥

इत्येवं मैथिलीं दृष्ट्वा विलपन्तीं तपस्विनीम् ।
रोहिणीमिव चन्द्रेण विना ग्रहवशं गताम् ॥ ६३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यो बुद्धिमाञ्छुचिः ।
सुपार्श्वो नाम मेधावी राक्षसो राक्षसेश्वरम् ॥
निवार्यमाणं सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६४ ॥

कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज ।
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य हि ॥ ६५ ॥

वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतः सदा ।
स्त्रियाः कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर ॥ ६६ ॥

मैथिलीं रूपसंपन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव ।
त्वमेव तु सहास्माभी राघवे क्रोधमुत्सृज ॥ ६७ ॥

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशीम् ।
कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥ ६८ ॥

सन्नद्धः कवची खड्गी रथप्रवरमास्थितः ।
हत्वा दाशरथिं रामं भवान्प्राप्स्यति मैथिलीम् ॥ ६९ ॥

स तद्दुरात्मा सुहृदा निवेदितं वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः।
गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान्पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोका॰ 19097 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4422

## चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

### मूलबलयुद्धम् ॥

स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः ।
निषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन् ॥ १ ॥

अब्रवीच्च स तान्सर्वान्बलमुख्यान्महाबलः ।
रावणः प्राञ्जलिर्वाक्यं पुत्रव्यसनकर्षितः ॥ २ ॥

सर्वे भवन्तः सर्वेण हस्त्यश्वेन समावृताः ।
निर्यान्तु रथसङ्घैश्च पादातैश्चोपशोभिताः ॥ ३ ॥

एकं रामं परिक्षिप्य समरे हन्तुमर्हथ ।
वर्षन्तः शरवर्षेण प्रावृट्काल इवाम्बुदाः ॥ ४ ॥

अथ वाऽहं शरैस्तीक्ष्णैर्भिन्नगात्रं महारणे ।
भवद्भिः श्वो निहन्तास्मि रामं लोकस्य पश्यतः ॥ ५ ॥

इत्येतद्राक्षसेन्द्रस्य वाक्यमादाय राक्षसाः ।
निर्ययुस्ते रथैः शीघ्रैर्नानानीकैः सुसंवृताः ॥ ६ ॥

परिघान्पट्टिशांश्चैव शरखड्गपरश्वधान् ।
शरीरान्तकरान्सर्वे चिक्षिपुर्वानरान्प्रति ॥ ७ ॥

वानराश्च द्रुमाञ्छैलान्राक्षसान्प्रति चिक्षिपुः ॥ ८ ॥

स सङ्ग्रामो महान्भीमः सूर्यस्योदयनं प्रति ।
रक्षसां वानराणां च तुमुलः समपद्यत ॥ ९ ॥

ते गदाभिर्विचित्राभिः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तदा वानरराक्षसाः ॥ १० ॥

एवं प्रवृत्ते सङ्ग्रामे ह्युद्भूतं सुमहद्रजः ।
रक्षसां वानराणां च शान्तं शोणितविस्रवैः ॥ ११ ॥

मातङ्गरथकूलाश्च वाजिमत्स्या ध्वजद्रुमाः ।
शरीरसङ्घाटवहाः प्रसस्रुः शोणितापगाः ॥ १२ ॥

ततस्ते वानराः सर्वे शोणितौघपरिप्लुताः ।
ध्वजवर्मरथानश्वान्नानाप्रहरणानि च ॥
आप्लुत्याप्लुत्य समरे राक्षसानां बभञ्जिरे ॥ १३ ॥

केशान्कर्णललाटांश्च नासिकाश्च प्लवङ्गमाः ।
रक्षसां दशनैस्तीक्ष्णैर्नखैश्चापि न्यकर्तयन् ॥ १४ ॥

एकैकं राक्षसं संख्ये शतं वानरपुङ्गवाः ।
अभ्यधावन्त फलिनं वृक्षं शकुनयो यथा ॥ १५ ॥

तथा गदाभिर्गुर्वीभिः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः ।
निजघ्नुर्वानरान् घोरान्राक्षसाः पर्वतोपमाः ॥ १६ ॥

राक्षसैर्युद्ध्यमानानां वानराणां महाचमूः ।
शरण्यं शरणं याता रामं दशरथात्मजम् ॥ १७ ॥

ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ।
प्रविश्य राक्षसं सैन्यं शरवर्षं ववर्ष ह ॥ १८ ॥

प्रविष्टं तु तदा रामं मेघाः सूर्यमिवाम्बरे ।
नाभिजग्मुर्महाघोरं निर्दहन्तं शराग्निना ॥ १९ ॥

कृतान्येव सुघोराणि रामेण रजनीचराः ।
रणे रामस्य ददृशुः कर्माण्यसुकराणि च ॥ २० ॥

चालयन्तं महानीकं विधमन्तं महारथान् ।
ददृशुस्ते न वै रामं वातं वनगतं यथा ॥ २१ ॥

छिन्नं भिन्नं शरैर्दग्धं प्रभग्नं शस्त्रपीडितम् ।
बलं रामेण ददृशुर्न रामं शीघ्रकारिणम् ॥ २२ ॥

प्रहरन्तं शरीरेषु न ते पश्यन्ति राघवम् ।
इन्द्रियार्थेषु तिष्ठन्तं भूतात्मानमिव प्रजाः ॥ २३ ॥

एष हन्ति गजानीकमेष हन्ति महारथान् ।
एष हन्ति शरैस्तीक्ष्णैः पदातीन्वाजिभिः सह ॥ २४ ॥

इति ते राक्षसाः सर्वे रामस्य सदृशान्रणे ।
अन्योन्यं कुपिता जघ्नुः सादृश्याद्राघवस्य ते ॥ २५ ॥

न ते ददृशिरे रामं दहन्तमरिवाहिनीम् ।
मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना ॥ २६ ॥

ते तु रामसहस्राणि रणे पश्यन्ति राक्षसाः ।
पुनः पश्यन्ति काकुत्स्थमेकमेव महाहवे ॥ २७ ॥

भ्रमन्तीं काञ्चनीं कोटिं कार्मुकस्य महात्मनः ।
अलातचक्रप्रतिमां ददृशुस्ते न राघवम् ॥ २८ ॥

शरीरनाभि सत्त्वार्चिः शरारं नेमिकार्मुकम् ।
ज्याघोषतलनिर्घोषं तेजोबुद्धिगुणप्रभम् ॥ २९ ॥

दिव्यास्त्रगुणपर्यन्तं निघ्नन्तं युधि राक्षसान् ।
ददृशू रामचक्रं तत्कालचक्रमिव प्रजाः ॥ ३० ॥

अनीकं दशसाहस्रं रथानां वातरंहसाम् ।
अष्टादश सहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥ ३१ ॥
चतुर्दश सहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम् ।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे राक्षसानां पदातिनाम् ॥ ३२ ॥
दिवसस्याष्टमे भागे शरैरग्निशिखोपमैः ।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां कामरूपिणाम् ॥ ३३ ॥
ते हताश्वा हतरथाः शान्ता विमथितध्वजाः ।
अभिपेतुः पुरीं लङ्कां हतशेषा निशाचराः ॥ ३४ ॥
हतैर्गजपदात्यश्वैस्तद्बभूव रणाजिरम् ।
आक्रीडमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्य सुमहात्मनः ॥ ३५ ॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु साध्विति रामस्य तत्कर्म समपूजयन् ॥ ३६ ॥
अब्रवीच्च तदा रामः सुग्रीवं प्रत्यनन्तरम् ।
विभीषणं च धर्मात्मा हनूमन्तं च वानरम् ॥ ३७ ॥
जाम्बवन्तं हरिश्रेष्ठं मैन्दं द्विविदमेव च ।
एतदस्त्रबलं दिव्यं मम वा त्र्यम्बकस्य वा ॥ ३८ ॥

निहत्य तां राक्षसवाहिनीं तु रामस्तदा शक्रसमो महात्मा ।
अस्त्रेषु शस्त्रेषु जितक्लमश्च संस्तूयते देवगणैः प्रहृष्टैः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः **19136** युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः **4461**

## पञ्चनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

### राक्षसीनां प्रलापः ॥

तानि तानि सहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम् ।
रथानां त्वग्निवर्णानां सध्वजानां सहस्रशः ॥ १ ॥

राक्षसानां सहस्राणि गदापरिघयोधिनाम् ।
काञ्चनध्वजचित्राणां शूराणां कामरूपिणाम् ॥ २ ॥

निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः ।
रावणेन प्रयुक्तानि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा श्रुत्वा च संभ्रान्ता हतशेषा निशाचराः ।
राक्षसीश्च समागम्य दीनाश्चिन्तापरिप्लुताः ॥ ४ ॥

विधवा हतपुत्राश्च क्रोशन्त्यो हतबान्धवाः ।
राक्षस्यः सह सङ्गम्य दुःखार्ताः पर्यदेवयन् ॥ ५ ॥

कथं शूर्पणखा वृद्धा कराला निर्णतोदरी ।
आससाद वने रामं कन्दर्पमिव रूपिणम् ॥
सुकुमारं महासत्त्वं सर्वभूतहिते रतम् ॥ ३ ॥

तं दृष्ट्वा लोकनिन्द्या सा हीनरूपा प्रकामिता ।
कथं सर्वगुणैर्हीना गुणवन्तं महौजसम् ॥
सुमुखं दुर्मुखी रामं कामयामास राक्षसी ॥ ७ ॥

जनस्यास्याल्पभाग्यत्वाद्वलिनी श्वेतमूर्धजा ।
अकार्यमपहास्यं च सर्वलोकविगर्हितम् ॥ ८ ॥

राक्षसानां विनाशाय दूषणस्य खरस्य च ।
चकाराप्रतिरूपा सा राघवस्य प्रधर्षणम् ॥ ९ ॥

तन्निमित्तमिदं वैरं रावणेन कृतं महत् ॥ १० ॥

वधाय सीता साऽऽनीता दशग्रीवेण रक्षसा ॥ ११ ॥

न च सीतां दशग्रीवः प्राप्नोति जनकात्मजाम् ॥ १२ ॥

बद्धं बलवता वैरमक्षयं राघवेण च ॥ १३ ॥

वैदेहीं प्रार्थयानं तं विराधं प्रेक्ष्य राक्षसम् ।
हतमेकेन रामेण पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १४ ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १५ ॥

खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ।
शरैरादित्यसङ्काशैः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १६ ॥

हतो योजनबाहुश्च कबन्धो रुधिराशनः ।
क्रोधान्नादं नदन्सोऽथ पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १७ ॥

जघान बलिनं रामः सहस्रनयनात्मजम् ।
वालिनं मेरुसङ्काशं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १८ ॥

ऋश्यमूके वसञ्छैले दीनो भग्नमनोरथः ।
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १९ ॥

धर्मार्थसहितं वाक्यं सर्वेषां रक्षसां हितम् ।
युक्तं विभीषणेनोक्तं मोहात्तस्य न रोचते ॥ २० ॥

विभीषणवचः कुर्याद्यदि स्म धनदानुजः ।
श्मशानभूता दुःखार्ता नेयं लङ्का पुरी भवेत् ॥ २१ ॥

कुम्भकर्णं हतं श्रुत्वा राघवेण महाबलम् ।
अतिकायं च दुर्धर्षं लक्ष्मणेन हतं पुनः ॥
प्रियं चेन्द्रजितं पुत्रं रावणो नावबुध्यते ॥ २२ ॥

मम पुत्रो मम भ्राता मम भर्ता रणे हतः ।
इत्येवं श्रूयते शब्दो राक्षसानां कुले कुले ॥ २३ ॥

रथाश्चाश्वाश्च नागाश्च हताः शतसहस्रशः ।
रणे रामेण शूरेण राक्षसाश्च पदातयः ॥ २४ ॥

रुद्रो वा यदि वा विष्णुर्महेन्द्रो वा शतक्रतुः ।
हन्ति नो रामरूपेण यदि वा स्वयमन्तकः ॥ २५ ॥

हतप्रवीरा रामेण निराशा जीविते वयम् ।
अपश्यन्तो भयस्यान्तमनाथा विलपामहे ॥ २६ ॥

रामहस्ताद्दशग्रीवः शूरो दत्तमहावरः ।
इदं भयं महाघोरमुत्पन्नं नावबुध्यते ॥ २७ ॥

न देवा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
उपसृष्टं परित्रातुं शक्ता रामेण संयुगे ॥ २८ ॥

उत्पाताश्चापि दृश्यन्ते रावणस्य निवेशने ॥ २९ ॥

कथयिष्यन्ति रामेण रावणस्य निबर्हणम् ॥ ३० ॥

पितामहेन प्रीतेन देवदानवराक्षसैः ।
रावणस्याभयं दत्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ॥ ३१ ॥

तदिदं मानुषं मन्ये प्राप्तं निःसंशयं भयम् ।
जीवितान्तकरं घोरं रक्षसां रावणस्य च ॥ ३२ ॥

पीड्यमानास्तु बलिना वरदानेन रक्षसा ।
दीप्तैस्तपोभिर्विबुधाः पितामहमपूजयन् ॥ ३३ ॥

देवतानां हितार्थाय महात्मा वै पितामहः ।
उवाच देवताः सर्वा इदं तुष्टो महद्वचः ॥ ३४ ॥

अद्यप्रभृति लोकांस्त्रीन्सर्वे दानवराक्षसाः ।
भयेन प्रावृता नित्यं विचरिष्यन्ति शाश्वतम् ॥ ३५ ॥

दैवतैस्तु समागम्य सर्वैश्चेन्द्रपुरोगमैः ।
वृषध्वजस्त्रिपुरहा महादेवः प्रसादितः ॥ ३६ ॥

प्रसन्नस्तु महादेवो देवानेतद्वचोऽब्रवीत् ॥ ३७ ॥

उत्पत्स्यति हितार्थं वो नारी रक्षःक्षयावहा ॥ ३८ ॥

एषा देवैः प्रयुक्ता तु क्षुद्यथा दानवान्पुरा ।
भक्षयिष्यति नः सीता राक्षसघ्नी सरावणान् ॥ ३९ ॥

रावणस्यापनीतेन दुर्विनीतस्य दुर्मतेः ।
अयं निष्ठानको घोरः शोकेन समभिप्लुतः ॥ ४० ॥

तं न पश्यामहे लोके यो नः शरणदो भवेत् ।
राघवेणोपसृष्टानां कालेनेव युगक्षये ॥ ४१ ॥

नास्ति नः शरणं कश्चिद्भये महति तिष्ठताम् ।
दवाग्निवेष्टितानां हि करेणूनां यथा वने ॥ ४२ ॥

प्राप्तकालं कृतं तेन पौलस्त्येन महात्मना ।
यत एव भयं दृष्टं तमेव शरणं गतः ॥ ४३ ॥

इतीव सर्वा रजनीचरस्त्रियः परस्परं संपरिरभ्य बाहुभिः ।
विषेदुरार्ता भयभारपीडिता विनेदुरुच्चैश्च तदा सुदारुणम् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19180 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4505

## षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

### रावणनिर्याणम् ॥

आर्तानां राक्षसीनां तु लङ्कायां वै कुले कुले ।
रावणः करुणं शब्दं शुश्राव परिदेवितम् ॥ १ ॥

स तु दीर्घं विनिश्वस्य मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।
बभूव परमक्रुद्धो रावणो भीमदर्शनः ॥ २ ॥

संदश्य दशनैरोष्ठं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
राक्षसैरपि दुर्दर्शः कालाग्निरिव मूर्च्छितः ॥ ३ ॥

उवाच च समीपस्थान्राक्षसान् राक्षसेश्वरः ।
भयाव्यक्तकथस्तत्र निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ४ ॥

महोदरमहापार्श्वौ विरूपाक्षं च राक्षसम् ।
शीघ्रं वदत सैन्यानि निर्यातेति ममाज्ञया ॥ ५ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते भयार्दिताः ।
चोदयामासुरव्यग्रान्राक्षसांस्तान्नृपाज्ञया ॥ ६ ॥

ते तु सर्वे तथेत्युक्त्वा राक्षसा घोरदर्शनाः ।
कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे रणायाभिमुखा ययुः ॥ ७ ॥

प्रतिपूज्य यथान्यायं रावणं ते निशाचराः ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणः ॥ ८ ॥

अथोवाच प्रहस्यैतान्रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
महोदरमहापार्श्वौ विरूपाक्षं च राक्षसम् ॥ ९ ॥

अद्य बाणैर्धनुर्मुक्तैर्युगान्तादित्यसन्निभैः ।
राघवं लक्ष्मणं चैव नेष्यामि यमसादनम् ॥ १० ॥

खरस्य कुम्भकर्णस्य प्रहस्तेन्द्रजितोस्तथा ।
करिष्यामि प्रतीकारमद्य शत्रुवधादहम् ॥ ११ ॥

नैवान्तरिक्षं न दिशो न नद्यो नापि सागराः ।
प्रकाशत्वं गमिष्यन्ति मद्बाणजलदावृताः ॥ १२ ॥

अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः ।
धनुषा शरजालेन विधमिष्यामि पत्रिणा ॥ १३ ॥

अद्य वानरसैन्यानि रथेन पवनौजसा ।
धनुःसमुद्रादुद्भूतैर्मथिष्यामि शरोर्मिभिः ॥ १४ ॥

व्याकोशपद्मवक्त्राणि पद्मकेसरवर्चसाम् ।
अद्य यूथतटाकानि गजवत्प्रमथाम्यहम् ॥ १५ ॥

सशरैरद्य वदनैः संख्ये वानरयूथपाः ।
मण्डयिष्यन्ति वसुधां सनालैरिव पङ्कजैः ॥ १६ ॥

अद्य यूथप्रचण्डानां हरीणां द्रुमयोधिनाम् ।
मुक्तेनैकेषुणा युद्धे भेत्स्यामि च शतं शतम् ॥ १७ ॥

हतो भर्ता हतो भ्राता यासां च तनया हताः ।
वधेनाद्य रिपोस्तासां करोम्यस्रप्रमार्जनम् ॥ १८ ॥

अद्य मद्बाणनिर्भिन्नैः प्रकीर्णैर्गतचेतनैः ।
करोमि वानरैर्युद्धे यत्नावेक्ष्यतलां महीम् ॥ १९ ॥

अद्य गोमायवो गृध्रा ये च मांसाशिनोऽपरे ।
सर्वांस्तांस्तर्पयिष्यामि शत्रुमांसैः शरार्दितैः ॥ २० ॥

कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं क्षिप्रमानीयतां धनुः ।
अनुप्रयान्तु मां सर्वे येऽवशिष्टा निशाचराः ॥ २१ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महापार्श्वोऽब्रवीद्वचः ।
बलाध्यक्षान्स्थितांस्तत्र बलं संत्वर्यतामिति ॥ २२ ॥

बलाध्यक्षास्तु संरब्धा राक्षसांस्तान्गृहाद्गृहात् ।
चोदयन्तः परिययुर्लङ्कां लघुपराक्रमाः ॥ २३ ॥

ततो मुहूर्तान्निष्पेतू राक्षसा भीमदर्शनाः ।
नर्दन्तो भीमवदना नानाप्रहरणैर्भुजैः ॥ २४ ॥

असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाभिर्मुसलैश्शरैः ।
शक्तिभिस्तीक्ष्णधाराभिर्महद्भिः कूटमुद्गरैः ॥ २५ ॥

यष्टिभिर्विमलैश्चक्रैर्निशितैश्च परश्वधैः ।
भिण्डिपालैः शतघ्नीभिरन्यैश्चापि वरायुधैः ॥ २६ ॥

अथानयद्बलाध्यक्षः सत्वरो रावणाज्ञया ।
रथानां नियुतं साग्रं नागानां नियुतत्रयम् ॥ २७ ॥

अश्वानां षष्टिकोट्यस्तु खरोष्ट्राणां तथैव च ।
पदातयस्त्वसंख्याता जग्मुस्ते राजशासनात् ॥
बलाध्यक्षाश्च संस्थाप्य राज्ञः सेनां पुरःस्थिताम् ॥२८॥

एतस्मिन्नन्तरे सूतः स्थापयामास तं रथम् ।
दिव्यास्त्रवरसंपन्नं नानालङ्कारभूषितम् ॥ २९ ॥

नानायुधसमाकीर्णं किङ्किणीजालसंयुतम् ।
नानारत्नपरिक्षिप्तं रत्नस्तम्भैर्विराजितम् ॥ ३० ॥

जाम्बूनदमयैश्चैव सहस्रकलशैर्वृतम् ।
तं दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे विस्मयं परमं गताः ॥ ३१ ॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रावणो राक्षसेश्वरः ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ३२ ॥

द्रुतं सूतसमायुक्तं युक्ताष्टतुरगं रथम् ।
आरुरोह स तं भीमो दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ३३ ॥

ततः प्रयातः सहसा राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
रावणः सत्त्वगाम्भीर्याद्दारयन्निव मेदिनीम् ॥ ३४ ॥

रावणेनाभ्यनुज्ञातौ महापार्श्वमहोदरौ ।
विरूपाक्षश्च दुर्धर्षो रथानारुरुहुस्तदा ॥ ३५ ॥

ते तु हृष्टा विनर्दन्तो भिन्दन्त इव मेदिनीम् ।
नादं घोरं विमुञ्चन्तो निर्ययुर्जयकाङ्क्षिणः ॥ ३५ ॥

ततो युद्धाय तेजस्वी रक्षोगणबलैर्वृतः ।
निर्ययावुद्यतधनुः कालान्तकयमोपमः ॥ ३७ ॥

ततः प्रजविताश्वेन रथेन स महारथः ।
द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३८ ॥

ततो नष्टप्रभः सूर्यो दिशश्च तिमिरावृताः ।
द्विजाश्च नेदुर्घोराश्च संचचालेव मेदिनी ॥ ३९ ॥

ववर्ष रुधिरं देवश्चस्खलुस्तुरगाः पथि ॥ ४० ॥

ध्वजाग्रे न्यपतद्गृध्रो विनेदुश्चाशिवं शिवाः ॥ ४१ ॥

नयनं चास्फुरद्वामं सव्यो बाहुरकम्पत ॥ ४२ ॥

विवर्णं वदनं चासीत्किंचिदभ्रश्यत स्वरः ॥ ४३ ॥

ततो निष्पततो युद्धे दशग्रीवस्य रक्षसः ।
रणे निधनशंसीनि रूपाण्येतानि जज्ञिरे ॥ ४४ ॥

अन्तरिक्षात्पपातोल्का निर्घातसमनिस्वना ।
विनेदुरशिवा गृध्रा वायसैरनुनादिताः ॥ ४५ ॥

एतानचिन्तयन्घोरानुत्पातान्समुपस्थितान् ।
निर्ययौ रावणो मोहाद्वधार्थी कालचोदितः ॥ ४६ ॥

तेषां तु रथघोषेण राक्षसानां महात्मनाम् ।
वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत ॥ ४७ ॥

तेषां तु तुमुलं युद्धं बभूव कपिरक्षसाम् ।
अन्योन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम् ॥ ४८ ॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत् ॥ ४९ ॥

निकृत्तशिरसः केचिद्रावणेन वलीमुखाः ।
केचिद्विच्छिन्नहृदयाः केचिच्छ्रोत्रविवर्जिताः ॥ ५० ॥

निरुच्छ्वासा हताः केचित्केचित्पार्श्वेषु दारिताः ।
केचिद्विभिन्नशिरसः केचिच्चक्षुर्विवर्जिताः ॥ ५१ ॥

दशाननः क्रोधविवृत्तनेत्रो यतो यतोऽभ्येति रथेन संख्ये ।
ततस्ततस्तस्य शरप्रवेगं सोढुं न शेकुर्हरिपुङ्गवास्ते ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19232 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4557

## सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

### त्रिरूपाक्षवधः ॥

तथा तैः कृत्तगात्रैस्तु दशग्रीवेण मार्गणैः ।
बभूव वसुधा तत्र प्रकीर्णा हरिभिस्तदा ॥ १ ॥

रावणस्याप्रसह्यं तं शरसंपातमेकतः ।
न शेकुः सहितुं दीप्तं पतङ्गा ज्वलनं यथा ॥ २ ॥

तेऽर्दिता निशितैर्बाणैः क्रोशन्तो विप्रदुद्रुवुः ।
पावकार्चिसमाविष्टा दह्यमाना यथा गजाः ॥ ३ ॥

प्लवङ्गानामनीकानि महाभ्राणीव मारुतः ।
स ययौ समरे तस्मिन्विधमन्रावणः शरैः ॥ ४ ॥

कदनं तरसा कृत्वा राक्षसेन्द्रो वनौकसाम् ।
आससाद ततो युद्धे राघवं त्वरितस्तदा ॥ ५ ॥

सुग्रीवस्तान्कपीन्दृष्ट्वा भग्नान्विद्रवतो रणे ।
गुल्मे सुषेणं निक्षिप्य चक्रे युद्धे द्रुतं मनः ॥ ६ ॥

आत्मनः सदृशं वीरः स तं निक्षिप्य वानरम् ।
सुग्रीवोऽभिमुखः शत्रुं प्रतस्थे पादपायुधः ॥ ७ ॥

पार्श्वतः पृष्ठतश्चास्य सर्वे यूथाधिपाः स्वयम् ।
अनुजह्रुर्महाशैलान्विविधांश्च महाद्रुमान् ॥ ८ ॥

स नर्दन्युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान् ।
पातयन्विविधांश्चान्याञ्जघानोत्तमराक्षसान् ॥ ९ ॥

ममन्थ च महाकायो राक्षसान्वानरेश्वरः ।
युगान्तसमये वायुः प्रवृद्धानगमानिव ॥ १० ॥

राक्षसानामनीकेषु शैलवर्षं ववर्ष ह ।
अश्मवर्षं यथा मेघः पक्षिसङ्घेषु कानने ॥ ११ ॥

कपिराजविमुक्तैस्तैः शैलवर्षैस्तु राक्षसाः ।
विकीर्णशिरसः पेतुर्निकृत्ता इव पर्वताः ॥ १२ ॥

अथ संक्षीयमाणेषु राक्षसेषु समन्ततः ।
सुग्रीवेण प्रभग्नेषु पतत्सु निनदत्सु च ॥ १३ ॥

विरूपाक्षः स्वकं नाम धन्वी विश्राव्य राक्षसः ।
रथादाप्लुत्य दुर्धर्षो गजस्कन्धमुपारुहत् ॥ १४ ॥

स तं द्विरदमारुह्य विरूपाक्षो महारथः ।
विनदन्भीमनिर्ह्रादं वानरानभ्यधावत ॥ १५ ॥

सुग्रीवे स शरान्घोरान्विससर्ज चमूमुखे ।
स्थापयामास चोद्विग्नान्राक्षसान्संप्रहर्षयन् ॥ १६ ॥

स तु विद्धः शितैर्बाणैः कपीन्द्रस्तेन रक्षसा ।
चुक्रोध स महाक्रोधो वधे चास्य मनो दधे ॥ १७ ॥

ततः पादपमुद्धृत्य शूरः संप्रधनो हरिः ।
अभिपत्य जघानास्य प्रमुखे तु महागजम् ॥ १८ ॥

स तु प्रहाराभिहतः सुग्रीवेण महागजः ।
अपासर्पद्धनुर्मात्रं विषसाद ननाद च ॥ १९ ॥

गजात्तु मथितात्तूर्णमपक्रम्य स वीर्यवान् ।
राक्षसोऽभिमुखः शत्रुं प्रत्युद्गम्य ततः कपिम् ॥ २० ॥

आर्षभं चर्म खड्गं च प्रगृह्य लघुविक्रमः ।
भर्त्सयन्निव सुग्रीवमाससाद व्यवस्थितम् ॥ २१ ॥

स हि तस्याभिसंक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ।
विरूपाक्षाय चिक्षेप सुग्रीवो जलदोपमाम् ॥ २२ ॥

स तां शिलामापतन्तीं दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवः ।
अपक्रम्य सुविक्रान्तः खड्गेन प्राहरत्तदा ॥ २३ ॥

तेन खड्गप्रहारेण रक्षसा बलिना हतः ।
मुहूर्तमभवद्वीरो विसंज्ञ इव वानरः ॥ २४ ॥

स तदा सहसोत्पत्य राक्षसस्य महाहवे ।
मुष्टिं संवर्त्य वेगेन पातयामास वक्षसि ॥ २५ ॥

मुष्टिप्रहाराभिहतो विरूपाक्षो निशाचरः ।
तेन खड्गेन संक्रुद्धः सुग्रीवस्य चमूमुखे ॥
कवचं पातयामास पद्भ्यामभिहतोऽपतत् ॥ २६ ॥

स समुत्थाय पतितः कपिस्तस्य व्यसर्जयत् ।
तलप्रहारमशनेः समानं भीमनिस्वनम् ॥ २७ ॥

तलप्रहारं तद्रक्षः सुग्रीवेण समुद्यतम् ।
नैपुण्यान्मोचयित्वैनं मुष्टिनोरस्यताडयत् ॥ २८ ॥

ततस्तु संक्रुद्धतरः सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
मोक्षितं चात्मनो दृष्ट्वा प्रहारं तेन रक्षसा ॥
स ददर्शान्तरं तस्य विरूपाक्षस्य वानरः ॥ २९ ॥

ततो न्यपातयत्क्रोधाच्छङ्खदेशे महत्तलम् ॥ ३० ॥

महेन्द्राशनिकल्पेन तलेनाऽभिहतः क्षितौ ।
पपात रुधिरक्लिन्नः शोणितं च समुद्वमन् ॥
स्रोतोभ्यस्तु विरूपाक्षो जलं प्रस्रवणादिव ॥ ३१ ॥

विवृत्तनयनं क्रोधात्सफेनं रुधिराप्लुतम् ।
ददृशुस्ते विरूपाक्षं विरूपाक्षतरं कृतम् ॥ ३२ ॥

स्फुरन्तं परिवर्तन्तं पार्श्वेन रुधिरोक्षितम् ।
करुणं च विनर्दन्तं ददृशुः कपयो रिपुम् ॥ ३३ ॥

तथा तु तौ संयति संप्रयुक्तौ तरस्विनौ वानरराक्षसानाम् ।
बलार्णवौ सस्वनतुः सुभीमं महार्णवौ द्वाविव भिन्नवेलौ ॥

विनाशितं प्रेक्ष्य विरूपनेत्रं महाबलं तं हरिपार्थिवेन ।
बलं समस्तं कपिराक्षसानामुन्मत्तगङ्गाप्रतिमं बभूव ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19267 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4592

## अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

### महोदरवधः ॥

हन्यमाने बले तूर्णमन्योन्यं ते महामृधे ।
सरसीव महाघर्मे सोपक्षीणे बभूवतुः ॥ १ ॥

स्वबलस्य विघातेन विरूपाक्षवधेन च ।
बभूव द्विगुणं क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥ २ ॥

प्रक्षीणं तु बलं दृष्ट्वा वध्यमानं वलीमुखैः ।
बभूवास्य व्यथा युद्धे प्रेक्ष्य दैवविपर्ययम् ॥ ३ ॥

उवाच च समीपस्थं महोदरमरिन्दमम् ॥ ४ ॥

अस्मिन्काले महाबाहो जयाशा त्वयि मे स्थिता ॥ ५ ॥

जहि शत्रुचमूं वीर दर्शयाद्य पराक्रमम् ॥ ६ ॥

भर्तृपिण्डस्य कालोऽयं निर्देष्टुं साधु युध्यताम् ॥ ७ ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रो महोदरः ।
प्रविवेशारिसेनां तां पतङ्ग इव पावकम् ॥ ८ ॥

ततः स कदनं चक्रे वानराणां महाबलः ।
भर्तृवाक्येन तेजस्वी स्वेन वीर्येण चोदितः ॥ ९ ॥

वानराश्च महासत्त्वाः प्रगृह्य विपुलाः शिलाः ।
प्रविश्यारिबलं भीमं जघ्नुस्ते रजनीचरान् ॥ १० ॥

महोदरस्तु संक्रुद्धः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
चिच्छेद पाणिपादोरून्वानराणां महाहवे ॥ ११ ॥

ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसैरर्दिता भृशम् ।
दिशो दश द्रुताः केचित्केचित्सुग्रीवमाश्रिताः ॥ १२ ॥

प्रभग्नां समरे दृष्ट्वा वानराणां महाचमूम् ।
अभिदुद्राव सुग्रीवो महोदरमनन्तरम् ॥ १३ ॥

प्रगृह्य विपुलां घोरां महीधरसमां शिलाम् ।
चिक्षेप च महातेजास्तद्वधाय हरीश्वरः ॥ १४ ॥

तामापतन्तीं सहसा शिलां दृष्ट्वा महोदरः ।
असंभ्रान्तस्ततो बाणैर्निर्बिभेद दुरासदाम् ॥ १५ ॥

रक्षसा तेन बाणौघैर्निकृत्ता सा सहस्रधा ।
निपपात शिला भूमौ गृध्रचक्रमिवाकुलम् ॥ १६ ॥

तां तु भिन्नां शिलां दृष्ट्वा सुग्रीवः क्रोधमूर्च्छितः ।
सालमुत्पाट्य चिक्षेप राक्षसे रणमूर्धनि ॥ १७ ॥

शरैश्च विददारैनं शूरः परपुरञ्जयः ॥ १८ ॥

स ददर्श ततः क्रुद्धः परिघं पतितं भुवि ॥ १९ ॥

आविध्य तु स तं दीप्तं परिघं तस्य दर्शयन् ।
परिघाग्रेण वेगेन जघानास्य हयोत्तमान् ॥ २० ॥

तस्माद्धतहयाद्वीरः सोऽवप्लुत्य महारथात् ।
गदां जग्राह संक्रुद्धो राक्षसोऽथ महोदरः ॥ २१ ॥

गदापरिघहस्तौ तौ युधि वीरौ समीयतुः ।
नर्दन्तौ गोवृषप्रख्यौ घनाविव सविद्युतौ ॥ २२ ॥

ततः क्रुद्धो गदां तस्मै चिक्षेप रजनीचरः ।
ज्वलन्तीं भास्कराभासां सुग्रीवाय महोदरः ॥ २३ ॥
गदां तां सुमहाघोरामापतन्तीं महाबलः ।
सुग्रीवो रोषताम्राक्षः समुद्यम्य महाहवे ॥
आजघान गदां तस्य परिघेण हरीश्वरः ॥ २४ ॥
पपात स गदोद्भिन्नः परिघस्तस्य भूतले ॥ २५ ॥
ततो जग्राह तेजस्वी सुग्रीवो वसुधातलात् ।
आयसं मुसलं घोरं सर्वतो हेमभूषितम् ॥ २६ ॥
स तमुद्यम्य चिक्षेप सोऽप्यन्यां व्याक्षिपद्गदाम् ॥ २७ ॥
भिन्नावन्योन्यमासाद्य पेततुर्धरणीतले ॥ २८ ॥
ततो भग्नप्रहरणौ मुष्टिभ्यां तौ समीयतुः ।
तेजोबलसमाविष्टौ दीप्ताविव हुताशनौ ॥ २९ ॥
जघ्नतुस्तौ तदाऽन्योन्यं नेदतुश्च पुनः पुनः ॥ ३० ॥
तलैश्चान्योन्यमाहत्य पेततुर्धरणीतले ॥ ३१ ॥
उत्पेततुस्ततस्तूर्णं जघ्नतुश्च परस्परम् ॥ ३२ ॥
भुजैश्चिक्षिपतुर्वीरावन्योन्यमपराजितौ ॥ ३३ ॥
जग्मतुस्तौ श्रमं वीरौ बाहुयुद्धे परन्तपौ ॥ ३४ ॥
आजहार ततः खड्गमदूरपरिवर्तिनम् ।
राक्षसश्चर्मणा सार्धं महावेगो महोदरः ॥ ३५ ॥
तथैव च महाखड्गं चर्मणा पतितं सह ।
जग्राह वानरश्रेष्ठः सुग्रीवो वेगवत्तरः ॥ ३६ ॥

तौ तु रोषपरीताङ्गौ नर्दन्तावभ्यधावताम् ।
उद्यतासी रणे हृष्टौ युधि शस्त्रविशारदौ ॥ ३७ ॥
दक्षिणं मण्डलं चोभौ सुतूर्णं संपरीयतुः ।
अन्योन्यमभिसंक्रुद्धौ जये प्रणिहितावुभौ ॥ ३८ ॥
स तु शूरो महावेगो वीर्यश्लाघी महोदरः ।
महाचर्मणि तं खड्गं पातयामास दुर्मतिः ॥ ३९ ॥
लग्नमुत्कर्षतः खड्गं खड्गेन कपिकुञ्जरः ।
जहार सशिरस्त्राणं कुण्डलोपहितं शिरः ॥ ४० ॥
निकृत्तशिरसस्तस्य पतितस्य महीतले ।
तद्बलं राक्षसेन्द्रस्य दृष्ट्वा तत्र न तिष्ठते ॥ ४१ ॥
हत्वा तं वानरैः सार्धं ननाद मुदितो हरिः ॥ ४२ ॥
चुक्रोध च दशग्रीवो बभौ हृष्टश्च राघवः ॥ ४३ ॥
विषण्णवदनाः सर्वे राक्षसा दीनचेतसः ।
विद्रवन्ति ततः सर्वे भयवित्रस्तचेतसः ॥ ४४ ॥

महोदरं तं विनिपात्य भूमौ महागिरेः कीर्णमिवैकदेशम् ।
सूर्यात्मजस्तत्र रराज लक्ष्म्या सूर्यः स्वतेजोभिरिवाप्रधृष्यः ॥
अथ विजयमवाप्य वानरेन्द्रः समरमुखे सुरयक्षसिद्धसङ्घैः ।
अवनितलगतैश्च भूतसङ्घैर्हरुषसमाकुलितैः स्तुतो महात्मा ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टनवतितमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19313 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4638

## एकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥

### महापार्श्ववधः ॥

महोदरे तु निहते महापार्श्वो महाबलः ।
सुग्रीवेण समीक्ष्याथ क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥
अङ्गदस्य चमूं भीमां क्षोभयामास सायकैः ॥ १ ॥
स वानराणां मुख्यानामुत्तमाङ्गानि सर्वशः ।
पातयामास कायेभ्यः फलं वृन्तादिवानिलः ॥ २ ॥
केषांचिदिषुभिर्बाहून्स्कन्धांश्चिच्छेद राक्षसः ।
वानराणां सुसंक्रुद्धः पार्श्वं केषां व्यदारयत् ॥ ३ ।
तेऽर्दिता बाणवर्षेण महापार्श्वेन वानराः ।
विषादविमुखाः सर्वे बभूवुर्गतचेतसः ॥ ४ ॥
निरीक्ष्य बलमुद्विग्नमङ्गदो राक्षसार्दितम् ।
वेगं चक्रे महाबाहुः समुद्र इव पर्वणि ॥ ५ ॥
आयसं परिघं गृह्य सूर्यरश्मिसमप्रभम् ।
समरे वानरश्रेष्ठो महापार्श्वे न्यपातयत् ॥ ६ ॥
स तु तेन प्रहारेण महापार्श्वो विचेतनः ।
ससूतः स्यन्दनात्तस्माद्विसंज्ञः प्रापतद्भुवि ॥ ७ ॥
सर्क्षराजस्तु तेजस्वी नीलाञ्जनचयोपमः ।
निष्पत्य सुमहावीर्यः स्वाद्व्यूहान्मेघसन्निभात् ॥ ८ ॥
प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभां क्रुद्धः सुविपुलां शिलाम् ।
अश्वाञ्जघान तरसा स्यन्दनं च बभञ्ज तम् ॥ ९ ॥

मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु महापार्श्वो महाबलः ।
अङ्गदं बहुभिर्बाणैर्भूयस्तं प्रत्यविध्यत ॥ १० ॥

जाम्बवन्तं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
ऋक्षराजं गवाक्षं च जघान बहुभिः शरैः ॥ ११ ॥

जाम्बवन्तं गवाक्षं च स दृष्ट्वा शरपीडितौ ।
जग्राह परिघं घोरमङ्गदः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १२ ॥

तस्याङ्गदः प्रकुपितो राक्षसस्य तमायसम् ।
दूरस्थितस्य परिघं रविरश्मिसमप्रभम् ॥ १३ ॥

द्वाभ्यां भुजाभ्यां संगृह्य भ्रामयित्वा च वेगवान् ।
महापार्श्वस्य चिक्षेप वधार्थं वालिनः सुतः ॥ १४ ॥

स तु क्षिप्तो बलवता परिघस्तस्य रक्षसः ।
धनुश्च सशरं हस्ताच्छिरस्त्रं चाप्यपातयत् ॥ १५ ॥

तं समासाद्य वेगेन वालिपुत्रः प्रतापवान् ।
तलेनाभ्यहनत्क्रुद्धः कर्णमूले सकुण्डले ॥ १६ ॥

स तु क्रुद्धो महावेगो महापार्श्वो महाद्युतिः ।
करेणैकेन जग्राह सुमहान्तं परश्वधम् ॥ १७ ॥

तं तैलधौतं विमलं शैलसारमयं दृढम् ।
राक्षसः परमक्रुद्धो वालिपुत्रे न्यपातयत् ॥ १८ ॥

तेन वामांसफलके भृशं प्रत्यवपादितम् ।
अङ्गदो मोक्षयामास सरोषः स परश्वधम् ॥ १९ ॥

स वीरो वज्रसङ्काशमङ्गदो मुष्टिमात्मनः ।
संवर्तयत्सुसंक्रुद्धः पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ २० ॥

राक्षसस्य स्तनाभ्याशे मर्मज्ञो हृदयं प्रति ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं स मुष्टिं विन्यपातयत् ॥ २१ ॥

तेन तस्य निपातेन राक्षसस्य महामृधे ।
पफाल हृदयं चाशु स पपात हतो भुवि ॥ २२ ॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ तत्सैन्यं संप्रचुक्षुभे ॥ २३ ॥

अभवच्च महान्क्रोधः समरे रावणस्य तु ॥ २४ ॥

वानराणां च हृष्टानां सिंहनादश्च पुष्कलः ।
स्फोटयन्निव शब्देन लङ्कां साट्टालगोपुराम् ॥
महेन्द्रेणेव देवानां नादः समभवन्महान् ॥ २५ ॥

अथेन्द्रशत्रुस्त्रिदिवालयानां
वनौकसां चैव महाप्रणादम् ।
श्रुत्वा सरोषं युधि राक्षसेन्द्रः
पुनश्च युद्धाभिमुखोऽवतस्थे ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोनशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19339 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4664

## शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

### रामरावणयुद्धारम्भः ॥

तस्मिंश्च निहते वीरे विरूपाक्षे महाबले ।
महोदरमहापार्श्वौ हतौ दृष्ट्वा तु राक्षसौ ॥
आविवेश महान्क्रोधो रावणं तं महामृधे ॥ १ ॥

सूतं सञ्चोदयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २ ॥

निहतानाममात्यानां रुद्धस्य नगरस्य च ।
दुःखमेषोऽपनेष्यामि हत्वा तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३ ॥

रामवृक्षं रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम् ।
प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्बवान्कुमुदो नलः ॥ ४ ॥

मैन्दश्च द्विविदश्चैव ह्यङ्गदो गन्धमादनः ।
हनुमांश्च सुषेणश्च सर्वे च हरियूथपाः ॥ ५ ॥

स दिशो दश घोषेण रथस्यातिरथो महान् ।
नादयन्प्रययौ तूर्णं राघवं चाभ्यवर्तत ॥ ६ ॥

पूरिता तेन शब्देन सनदीगिरिकानना ।
संचचाल मही सर्वा सवराहमृगद्विपा ॥ ७ ॥

तामसं च महाघोरं चकारास्त्रं सुदारुणम् ।
निर्ददाह कपीन्सर्वांस्ते प्रपेतुः समन्ततः ॥ ८ ॥

उत्पपात रजो घोरं तैर्भग्नैः संप्रधावितैः ॥ ९ ॥

न हि तत्सहितुं शेकुर्ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम् ॥ १० ॥

तान्यनीकान्यनेकानि रावणस्य शरोत्तमैः ।
दृष्ट्वा भग्नानि शतशो राघवः पर्यवस्थितः ॥ ११ ॥

ततो राक्षसशार्दूलो विद्राव्य हरिवाहिनीम् ।
स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम् ॥ १२ ॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विष्णुना वासवं यथा ।
आलिखन्तमिवाकाशमवष्टभ्य महद्धनुः ॥
पद्मपत्रविशालाक्षं दीर्घबाहुमरिन्दमम् ॥ १३ ॥

ततो रामो महातेजाः सौमित्रिसहितो बली ।
वानरांश्च रणे भग्नानापतन्तं च रावणम् ॥
समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कार्मुकम् ॥ १४ ॥

विस्फारयितुमारेभे ततः स धनुरुत्तमम् ।
महावेगं महानादं निर्भिन्दन्निव मेदिनीम् ॥ १५ ॥

रावणस्य च बाणौघै रामविस्फारितेन च ।
शब्देन राक्षसास्ते च पेतुश्च शतशस्तदा ॥ १६ ॥

तयोः शरपथं प्राप्तो रावणो राजपुत्रयोः ।
स बभौ च यथा राहुः समीपे शशिसूर्ययोः ॥ १७ ॥

तमिच्छन्प्रथमं योद्धुं लक्ष्मणो निशितैः शरैः ।
मुमोच धनुरायम्य शरानग्निशिखोपमान् ॥ १८ ॥

तान्मुक्तमात्रानाकाशे लक्ष्मणेन धनुष्मता ।
बाणान्बाणैर्महातेजा रावणः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥

एकमेकेन बाणेन त्रिभिस्त्रीन्दशभिर्दश ।
लक्ष्मणस्य प्रचिच्छेद दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ २० ॥

अभ्यतिक्रम्य सौमित्रिं रावणः समितिञ्जयः ।
आससाद ततो रामं स्थितं शैलमिवाचलम् ॥ २१ ॥

स संख्ये राममासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः ।
व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राघवोपरि ॥ २२ ॥

शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्च्युताः ।
दृष्ट्वैवापततः शीघ्रं भल्लाञ्जग्राह सत्वरम् ॥ २३ ॥

ताञ्छरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः ।
दीप्यमानान्महाघोरान्क्रुद्धानाशीविषानिव ॥ २४ ॥

राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तदा ।
अन्योन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरैरभिववर्षतुः ॥ २५ ॥

चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम् ।
बाणवेगात्समुत्क्षिप्तावन्योन्यमपराजितौ ॥ २६ ॥

तयोर्भूतानि वित्रेसुर्युगपत्संप्रयुध्यतोः ।
रौद्रयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥ २७ ॥

सन्ततं विविधैर्बाणैर्बभूव गगनं तदा ।
घनैरिवातपापाये विद्युन्मालासमाकुलैः ॥ २८ ॥

गवाक्षितमिवाकाशं बभूव शरवृष्टिभिः ॥ २९ ॥

महावेगैः सुतीक्ष्णाग्रैर्गृध्रपत्रैः सुवाजितैः ।
शरान्धकारं तौ भीमं चक्रतुः समरं तदा ॥
गतेऽस्तं तपने चापि महामेघाविवोत्थितौ ॥ ३० ॥

बभूव तुमुलं युद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः ।
अनासाद्यमचिन्त्यं च वृत्रवासवयोरिव ॥ ३१ ॥

उभौ हि परमेष्वासावुभौ शस्त्रविशारदौ ।
उभावस्त्रविदां मुख्यावुभौ युद्धे विचेरतुः ॥ ३२ ॥

उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोर्मयः ।
ऊर्मयो वायुना विद्धा जग्मुः सागरयोरिव ॥ ३३ ॥

ततः संसक्तहस्तस्तु रावणो लोकरावणः ।
नाराचमालां रामस्य ललाटे प्रत्यमुञ्चत ॥ ३४ ॥

रौद्रचापप्रयुक्तां तां नीलोत्पलदलप्रभाम् ।
शिरसा धारयन्रामो न व्यथां प्रत्यपद्यत ॥ ३५ ॥

अथ मन्त्रानभिजपन् रौद्रमस्त्रमुदीरयन् ।
शरान्भूयः समादाय रामः क्रोधसमन्वितः ॥
मुमोच च महातेजाश्चापमायम्य वीर्यवान् ॥ ३६ ॥

ते महामेघसङ्काशे कवचे पतिताः शराः ।
अवध्ये राक्षसेन्द्रस्य व्यथां नाजनयंस्तदा ॥ ३७ ॥

पुनरेवाथ तं रामो रथस्थं राक्षसाधिपम् ।
ललाटे परमास्त्रेण सर्वास्त्रकुशलो रणे ॥ ३८ ॥

ते भित्त्वा बाणरूपाणि पञ्चशीर्षा इवोरगाः ।
श्वसन्तो विविशुर्भूमिं रावणप्रतिकूलिताः ॥ ३९ ॥

निहत्य राघवस्यास्त्रं रावणः क्रोधमूर्छितः ।
आसुरं सुमहाघोरमस्त्रं प्रादुश्चकार ह ॥ ४० ॥

सिंहव्याघ्रमुखांश्चान्यान्कङ्ककाकमुखानपि ।
गृध्रश्येनमुखांश्चापि सृगालवदनांस्तथा ॥ ४१ ॥

ईहामृगमुखांश्चान्यान्व्यादितास्यान्भयानकान् ।
पञ्चास्याल्लेलिहानांश्च ससर्ज निशिताञ्च्छरान् ॥ ४२ ॥

शरान्खरमुखांश्चान्यान्वराहमुखसंस्थितान् ।
श्वानकुक्कुटवक्त्रांश्च मकराशीविषाननान् ॥ ४३ ॥

एतानन्यांश्च मायावी ससर्ज निशिताञ्च्छरान् ।
रामं प्रति महातेजाः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥ ४४ ॥

आसुरेण समाविष्टः सोऽस्त्रेण रघुनन्दनः ।
ससर्जास्त्रं महोत्साहः पावकं पावकोपमः ॥ ४५ ॥

अग्निदीप्तमुखान्बाणांस्तथा सूर्यमुखानपि ।
चन्द्रार्धचन्द्रवक्त्रांश्च धूमकेतुमुखानपि ॥ ४६ ॥

ग्रहनक्षत्रवक्त्रांश्च महोल्कामुखसंस्थितान् ।
विद्युज्जिह्वोपमांश्चान्यान्ससर्ज निशिताञ्च्छरान् ॥ ४७ ॥

ते रावणशरा घोरा राघवास्त्रसमाहताः ।
विलयं जग्मुराकाशे जग्मुश्चैव सहस्रशः ॥ ४८ ॥

तदस्त्रं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
हृष्टा नेदुस्ततः सर्वे कपयः कामरूपिणः ॥
सुग्रीवप्रमुखा वीराः परिवार्य तु राघवम् ॥ ४९ ॥

ततस्तदस्त्रं विनिहत्य राघवः प्रसह्य तद्रावणबाहुनिःसृतम् ।
मुदाऽन्वितो दाशरथिर्महाहवे विनेदुरुच्चैर्मुदिताः कपीश्वराः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे शततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19389 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4714

## एकोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

### शक्त्या लक्ष्मणस्य पतनम् ॥

तस्मिन्प्रतिहतेऽस्त्रे तु रावणो राक्षसाधिपः ।
क्रोधं च द्विगुणं चक्रे क्रोधाच्चास्त्रमनन्तरम् ॥ १ ॥

मयेन विहितं रौद्रमन्यदस्त्रं महाद्युतिः ।
उत्स्रष्टुं रावणो घोरं राघवाय प्रचक्रमे ॥ २ ॥

ततः शूलानि निश्चेरुर्गदाश्च मुसलानि च ।
कार्मुकाद्दीप्यमानानि वज्रसाराणि सर्वशः ॥ ३ ॥

मुद्गराः कूटपाशाश्च दीप्ताश्चाशनयस्तथा ।
निष्पेतुर्विविधास्तीक्ष्णा वाता इव युगक्षये ॥ ४ ॥

तदस्त्रं राघवः श्रीमानुत्तमास्त्रविदां वरः ।
जघान परमास्त्रेण गान्धर्वेण महाद्युतिः ॥ ५ ॥

तस्मिन्प्रतिहतेऽस्त्रे तु राघवेण महात्मना ।
रावणः क्रोधताम्राक्षः सौरमस्त्रमुदैरयत् ॥ ६ ॥

ततश्चक्राणि निष्पेतुर्भास्वराणि महान्ति च ।
कार्मुकाद्भीमवेगस्य दशग्रीवस्य धीमतः ॥ ७ ॥

तैरासीद्गगनं दीप्तं संपतद्भिरितस्ततः ।
पतद्भिश्च दिशो दीप्ताश्चन्द्रसूर्यग्रहैरिव ॥ ८ ॥

तानि चिच्छेद बाणौघैश्चक्राणि स तु राघवः ।
आयुधानि च चित्राणि रावणस्य चमूमुखे ॥ ९ ॥

तदस्त्रं तु हतं दृष्ट्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
विव्याध दशभिर्बाणै रामं सर्वेषु मर्मसु ॥ १० ॥

स विद्धो दशभिर्बाणैर्महाकार्मुकनिःसृतैः ।
रावणेन महातेजा न प्राकम्पत राघवः ॥ ११ ॥

ततो विव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिञ्जयः ।
राघवस्तु सुसंक्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः ॥ १२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली ।
लक्ष्मणः सायकान्सप्त जग्राह परवीरहा ॥ १३ ॥

तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः ।
ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा ॥ १४ ॥

सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
जहार लक्ष्मणः श्रीमान्नैर्ऋतस्य महाबलः ॥ १५ ॥

तस्य बाणैश्च चिच्छेद धनुर्गजकरोपमम् ।
लक्ष्मणो राक्षसेन्द्रस्य पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ १६ ॥

नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान्पर्वतोपमान् ।
जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः ॥ १७ ॥

हताश्वाद्वेगवान्वेगादवप्लुत्य महारथात् ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः ॥ १८ ॥

ततः शक्तिं महाशक्तिर्दीप्तां दीप्ताशनीमिव ।
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ १९ ॥

अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः ॥ २० ॥

अथोदतिष्ठत्संनादो वानराणां तदा रणे ॥ २१ ॥

सा पपात त्रिधा च्छिन्ना शक्तिः काञ्चनमालिनी ।
सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव दिवश्च्युता ॥ २२ ॥

ततः संभाविततरां कालेनापि दुरासदाम् ।
जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥ २३ ॥

सा वेगिता बलवता रावणेन दुरासदा ।
जज्वाल सुमहाघोरा शक्राशनिसमप्रभा ॥ २४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम् ।
प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत ॥ २५ ॥

तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः ।
रावणं शक्तिहस्तं वै शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २६ ॥

कीर्यमाणः शरौघेण विसृष्टेन महात्मना ।
स प्रहर्तुं मनश्चक्रे विमुखीकृतविक्रमः ॥ २७ ॥

मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः ।
लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥

मोक्षितस्ते बलश्लाघिन्यस्मादेवं विभीषणः ।
विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते ॥ २९ ॥

एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षणा ।
मद्बाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति ॥ ३० ॥

इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिमष्टघण्टां महास्वनाम् ।
मयेन मायाविहिताममोघां शत्रुघातिनीम् ॥ ३१ ॥

लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा ।
रावणः परमक्रुद्धश्चिक्षेप च ननाद च ॥ ३२ ॥

सा क्षिप्ता भीमवेगेन शक्राशनिसमस्वना ।
शक्तिरभ्यपतद्वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥

तामनुव्याहरच्छक्तिमापतन्तीं स राघवः ।
स्वस्त्यस्तु लक्ष्मणायेति मोघा भव हतोद्यमा ॥ ३४ ॥

रावणेन रणे शक्तिः क्रुद्धेनाशीविषोपमा ।
मुक्ताऽऽशूरस्यभीतस्य लक्ष्मणस्य ममज्ज सा ॥ ३५ ॥

न्यपतत्सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि ।
जिह्वेवोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युतिः ॥ ३६ ॥

ततो रावणवेगेन सुदूरमवगाढया ।
शक्त्या निर्भिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः ॥ ३७ ॥

तदवस्थं समीपस्थो लक्ष्मणं प्रेक्ष्य राघवः ।
भ्रातृस्नेहान्महातेजा विषण्णहृदयोऽभवत् ॥ ३८ ॥

स मुहूर्तमनुध्याय बाष्पव्याकुललोचनः ।
बभूव संरब्धतरो युगान्त इव पावकः ॥ ३९ ॥

न विषादस्य कालोऽयमिति संचिन्त्य राघवः ।
चक्रे सुतुमुलं युद्धं रावणस्य वधे धृतः ॥
सर्वयत्नेन महता लक्ष्मणं संनिरीक्ष्य च ॥ ४० ॥

स ददर्श ततो रामः शक्त्या भिन्नं महाहवे ।
लक्ष्मणं रुधिरादिग्धं सपन्नगमिवाचलम् ॥ ४१ ॥

तामपि प्रहितां शक्तिं रावणेन बलीयसा ।
यत्नतस्ते हरिश्रेष्ठा न शेकुरवमर्दितुम् ॥
अर्दिताश्चैव बाणौघैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा ॥ ४२ ॥

सौमित्रिं सा विनिर्भिद्य प्रविष्टा धरणीतलम् ॥ ४३ ॥

तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम् ।
बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवान्विचकर्ष च ॥ ४४ ॥

तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा ।
शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः ॥ ४५ ॥

अचिन्तयित्वा तान्बाणान्समाश्लिष्य च लक्ष्मणम् ।
अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं चैव राघवः ॥ ४६ ॥

लक्ष्मणं परिवार्येह तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः ॥ ४७ ॥
पापात्माऽयं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः ॥ ४८ ॥

पराक्रमस्य कालोऽयं संप्राप्तो मे चिरेप्सितः ।
काङ्क्षतश्चातकस्येव घर्मान्ते मेघदर्शनम् ॥ ४९ ॥
अस्मिन्मुहूर्ते न चिरात्सत्यं प्रतिशृणोमि वः ॥ ५० ॥
अरावणमरामं वा जगद्द्रक्ष्यथ वानराः ॥ ५१ ॥

राज्यनाशं वने वासं दण्डके परिधावनम् ।
वैदेह्याश्च परामर्शं रक्षोभिश्च समागमम् ॥ ५२ ॥

प्राप्तं दुःखं महद्घोरं क्लेशं च निरयोपमम् ।
अद्य सर्वमहं त्यक्ष्ये निहत्वा रावणं रणे ॥ ५३ ॥

यदर्थं वानरं सैन्यं समानीतमिदं मया ।
सुग्रीवश्च कृतो राज्ये निहत्वा वालिनं रणे ॥ ५४ ॥

यदर्थं सागरः क्रान्तः सेतुर्बद्धश्च सागरे ।
सोऽयमद्य रणे पापश्चक्षुर्विषयमागतः ॥ ५५ ॥

चक्षुर्विषयमागम्य नायं जीवितुमर्हति ।
दृष्टिं दृष्टिविषस्येव सर्पस्य मम रावणः ॥ ५६ ॥

स्वस्थाः पश्यत दुर्धर्षा युद्धं वानरपुङ्गवाः ।
आसीनाः पर्वताग्रेषु ममेदं रावणस्य च ॥ ५७ ॥

अद्य रामस्य रामत्वं पश्यन्तु मम संयुगे ।
त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्षिचारणाः ॥ ५८ ॥

अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः ।
सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥
समागम्य सदा लोके यथा युद्धं प्रवर्तितम् ॥ ५९ ॥

एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः ।
आजघान दशग्रीवं रणे रामः समाहितः ॥ ६० ॥

अथ प्रदीप्तैर्नाराचैर्मुसलैश्चापि रावणः ।
अभ्यवर्षत्तदा रामं धाराभिरिव तोयदः ॥ ६१ ॥

रामरावणमुक्तानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ।
वराणां च शराणां च बभूव तुमुलः स्वनः ॥ ६२ ॥

ते भिन्नाश्च विकीर्णाश्च रामरावणयोः शराः ।
अन्तरिक्षात्प्रदीप्ताग्रा निपेतुर्धरणीतले ॥ ६३ ॥

तयोर्ज्यातलनिर्घोषो रामरावणयोर्महान् ।
त्रासनः सर्वभूतानां संबभूवाद्भुतोपमः ॥ ६४ ॥

स कीर्यमाणः शरजालवृष्टिभि-
र्महात्मना दीप्तधनुष्मताऽर्दितः ।
भयात्प्रदुद्राव समेत्य रावणो
यथाऽनिलेनाभिहतो बलाहकः ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19454 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4779

## द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

### लक्ष्मणसञ्जीवनम् ॥

शक्त्या विनिहतं दृष्ट्वा रावणेन बलीयसा ।
लक्ष्मणं समरे शूरं रुधिरौघपरिप्लुतम् ॥ १ ॥

स दत्त्वा तुमुलं युद्धं रावणस्य दुरात्मनः ।
विसृजन्नेव बाणौघान्सुषेणं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

एष रावणवीर्येण लक्ष्मणः पतितः क्षितौ ।
सर्पवद्वेष्टते वीरो मम शोकमुदीरयन् ॥ ३ ॥

शोणितार्द्रमिमं वीरं प्राणैरिष्टतमं मम ।
पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः ॥ ४ ॥

अयं स समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः ।
यदि पञ्चत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन च ॥ ५ ॥

लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद्धनुः ।
सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता ॥
अवसीदन्ति गात्राणि स्वप्नयाने नृणामिव ॥ ६ ॥

चिन्ता मे वर्धते तीव्रा मुमूर्षा चोपजायते ।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा रावणेन दुरात्मना ॥ ७ ॥

विनिष्टनन्तं दुःखार्तं मर्मण्यभिहतं भृशम् ।
राघवो भ्रातरं दृष्ट्वा प्रियं प्राणं बहिश्चरम् ॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो ध्यानशोकपरायणः ॥ ८ ॥

परं विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ९ ॥
न हि युद्धेन मे कार्यं नैव प्राणैर्न सीतया ।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं रणपांसुषु ॥ १० ॥
किं मे राज्येन किं प्राणैर्युद्धे कार्यं न विद्यते ।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः ॥ ११ ॥
देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ १२ ॥
इत्येवं विलपन्तं तं शोकविह्वलितेन्द्रियम् ।
विवेष्टमानं करुणमुच्छ्वसन्तं पुनः पुनः ॥
राममाश्वासयन्वीरः सुषेणो वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥
न मृतोऽयं महाबाहो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥ १४ ॥
न चास्य विकृतं वक्त्रं नापि श्यावं न निष्प्रभम् ॥
सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्याभिलक्ष्यते ॥ १६ ॥
पद्मरक्ततलौ हस्तौ सुप्रसन्ने च लोचने ॥ १७ ॥
एवं न विद्यते रूपं गतासूनां विशांपते ॥ १८ ॥
दीर्घायुषस्तु ये मर्त्यास्तेषां तु मुखमीदृशम् ॥ १९ ॥
नायं प्रेतत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥ २० ॥
मा विषादं कृथा वीर सप्राणोऽयमरिन्दमः ॥ २१ ॥
आख्यास्यते प्रसुप्तस्य स्रस्तगात्रस्य भूतले ।
सोच्छ्वासं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

एवमुक्त्वा तु वाक्यज्ञः सुषेणो राघवं वचः ।
समीपस्थमुवाचेदं हनुमन्तं महाकपिम् ॥ २३ ॥

सौम्य शीघ्रमितो याहि शैलमोषधिपर्वतम् ।
पूर्वं ते कथितो योऽसौ वीर जाम्बवता शुभः ॥ २४ ॥

दक्षिणे शिखरे तस्य जातामोषधिमानय ।
विशल्यकरणीं नाम विशल्यकरणीं शुभाम् ॥ २५ ॥

सावर्णकरणीं चापि तथा सञ्जीवनीमपि ।
सन्धानकरणीं चापि गत्वा शीघ्रमिहानय ॥
सञ्जीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥ २६ ॥

इत्येवमुक्तो हनुमान्गत्वा चौषधिपर्वतम् ।
चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानंस्तां महौषधिम् ॥ २७ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः ।
इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरेः ॥ २८ ॥

अस्मिन्हि शिखरे जातामोषधीं तां सुखावहाम् ।
प्रतर्केणावगच्छामि सुषेणोऽप्येवमब्रवीत् ॥ २९ ॥

अगृह्य यदि गच्छामि विशल्यकरणीमहम् ।
कालात्ययेन दोषः स्याद्वैक्लव्यं च महद्भवेत् ॥ ३० ॥

इति सञ्चिन्त्य हनुमान् गत्वा क्षिप्रं महाबलः ।
आसाद्य पर्वतश्रेष्ठं त्रिः प्रकम्प्य गिरेस्तटम् ॥ ३१ ॥

फुल्लनानातरुगणं समुत्पाट्य महाबलः ।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो हस्ताभ्यां समतोलयत् ॥ ३२ ॥

स नीलमिव जीमूतं तोयपूर्णं नभःस्थलात् ।
आपपात गृहीत्वा तु हनुमाञ्छिखरं गिरेः ॥ ३३ ॥

समागम्य महावेगः संन्यस्य शिखरं गिरेः ।
विश्रम्य किञ्चिद्धनुमान्सुषेणमिदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

ओषधीं नावगच्छामि तामहं हरिपुङ्गव ॥ ३५ ॥

तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया ॥ ३६ ॥

एवं कथयमानं तं प्रशस्य पवनात्मजम् ।
सुषेणो वानरश्रेष्ठो जग्राहोत्पाट्य चौषधीम् ॥ ३७ ॥

विस्मितास्तु बभूवुस्ते रणे वानरराक्षसाः ।
दृष्ट्वा हनुमतः कर्म सुरैरपि सुदुष्करम् ॥ ३८ ॥

ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः ।
लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतेः ॥ ३९ ॥

सशल्यस्तां समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा ।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥ ४० ॥

तमुत्थितं ते हरयो भूतलात्प्रेक्ष्य लक्ष्मणम् ।
साधु साध्विति सुप्रीताः सुषेणं प्रत्यपूजयन् ॥ ४१ ॥

एह्येहीत्यब्रवीद्रामो लक्ष्मणं परवीरहा ॥ ४२ ॥

सस्वजे स्नेहगाढं च बाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ ४३ ॥

अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा ॥ ४४ ॥

दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात्पुनरागतम् ॥ ४५ ॥

न हि मे जीवितेनार्थः सीतया चापि लक्ष्मण ।
को हि मे विजयेनार्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते ॥ ४६ ॥
इत्येवं वदतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।
खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४७ ॥
तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम ।
लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैवं वक्तुमिहार्हसि ॥ ४८ ॥
न हि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां साधवोऽनघ ।
लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥ ४९ ॥
नैराश्यमुपगन्तुं वै तदलं मत्कृतेऽनघ ॥ ५० ॥
वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय ॥ ५१ ॥
न जीवन्यास्यते शत्रुस्तव बाणपथं गतः ।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य सिंहस्येव महागजः ॥ ५२ ॥
अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः ।
यावदस्तं न यात्येष कृतकर्मा दिवाकरः ॥ ५३ ॥
यदि वधमिच्छसि रावणस्य संख्ये
यदि च कृतां त्वमिहेच्छसि प्रतिज्ञाम् ।
यदि तव राजवरात्मजाभिलाषः
कुरु च वचो मम शीघ्रमद्य वीर ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19508 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4833

## त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

### इन्द्ररथमारुह्य संग्राम. ॥

लक्ष्मणेन तु तद्वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः ।
संदधे परवीरघ्नो धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १ ॥

रावणाय शरान्घोरान्विससर्ज चमूमुखे ॥ २ ॥

अथान्यं रथमारुह्य रावणो राक्षसाधिपः ।
अभ्यद्रवत काकुत्स्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ३ ॥

दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ।
आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयदः ॥ ४ ॥

दीप्तपावकसङ्काशैः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
निर्बिभेद रणे रामो दशग्रीवं समाहितम् ॥ ५ ॥

भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य च रक्षसः ।
न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वदानवाः ॥ ६ ॥

ततः काञ्चनचित्राङ्गः किङ्किणीशतभूषितः ।
तरुणादित्यसङ्काशो वैडूर्यमयकूबरः ॥ ७ ॥

सदश्वैः काञ्चनापीडैर्युक्तः श्वेतप्रकीर्णकैः ।
हरिभिः सूर्यसङ्काशैर्हेमजालविभूषितैः ॥
रुक्मवेणुध्वजः श्रीमान्देवराजरथो वरः ॥ ८ ॥

देवराजेन संदिष्टो रथमारुह्य मातलिः ।
अभ्यवर्तत काकुत्स्थमवतीर्य त्रिविष्टपात् ॥ ९ ॥

अब्रवीच्च तदा रामं सप्रतोदो रथे स्थितः ।
प्राञ्जलिर्मातलिर्वाक्यं सहस्राक्षस्य सारथिः ॥ १० ॥

सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोऽयं विजयाय ते ।
दत्तस्तव महासत्त्व श्रीमञ्छत्रुनिबर्हण ॥ ११ ॥

इदमैन्द्रं महच्चापं कवचं चाग्निसन्निभम् ।
शराश्चादित्यसङ्काशाः शक्तिश्च विमला शिता ॥ १२ ॥

आरुह्येमं रथं वीर राक्षसं जहि रावणम् ।
मया सारथिना राजन्महेन्द्र इव दानवान् ॥ १३ ॥

इत्युक्तः संपरिक्रम्य रथं समभिवाद्य च ।
आरुरोह तदा रामो लोकाल्लक्ष्म्या विराजयन् ॥ १४ ॥

तद्बभूवाद्भुतं युद्धं द्वैरथं रोमहर्षणम् ।
रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षसः ॥ १५ ॥

स गान्धर्वेण गान्धर्वं दैवं दैवेन राघवः ।
अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ॥ १६ ॥

अस्त्रं तु परमं घोरं राक्षसं राक्षसाधिपः ।
ससर्ज परमक्रुद्धः पुनरेव निशाचरः ॥ १७ ॥

ते रावणधनुर्मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः ।
अभ्यवर्तन्त काकुत्स्थं सर्पा भूत्वा महाविषाः ॥ १८ ॥

ते दीप्तवदना दीप्तं वमन्तो ज्वलनं मुखैः ।
राममेवाभ्यवर्तन्त व्यादितास्या भयानकाः ॥ १९ ॥

तैर्वासुकिसमस्पर्शैर्दीप्तभोगैर्महाविषैः ।
दिशश्च सन्तताः सर्वाः प्रदिशश्च समावृताः ॥ २० ॥

तान्दृष्ट्वा पन्नगान्रामः समापतत आहवे ।
अस्त्रं गारुत्मतं घोरं प्रादुश्चक्रे भयावहम् ॥ २१ ॥

ते राघवशरा मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिखिप्रभाः ।
सुपर्णाः काञ्चना भूत्वा विचेरुः सर्पशत्रवः ॥ २२ ॥

ते तान्सर्वाञ्च्छराञ्जघ्नुः सर्परूपान्महाजवान् ।
सुपर्णरूपा रामस्य विशिखाः कामरूपिणः ॥ २३ ॥

अस्त्रे प्रतिहते क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।
अभ्यवर्षत्तदा रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः ॥ २४ ॥

ततः शरसहस्रेण राममक्लिष्टकारिणम् ।
अर्दयित्वा शरौघेण मातलिं प्रत्यविध्यत ॥ २५ ॥

चिच्छेद केतुमिन्द्रस्य शरेणैकेन रावणः ॥ २६ ॥

पातयित्वा रथोपस्थे रथात्केतुं च काञ्चनम् ।
ऐन्द्रानपि जघानाश्वाञ्च्छरजालेन रावणः ॥ २७ ॥

तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म रावणस्य दुरात्मनः ।
विषेदुर्देवगन्धर्वा दानवाश्चारणैः सह ॥ २८ ॥

राममार्तं तदा दृष्ट्वा सिद्धाश्च परमर्षयः ।
व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः सविभीषणाः ॥ २९ ॥

रामचन्द्रमसं दृष्ट्वा ग्रस्तं रावणराहुणा ।
प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शशिनः प्रियाम् ॥
समाक्रम्य बुधस्तस्थौ प्रजानामशुभावहः ॥ ३० ॥

सधूमपरिवृत्तोर्मिः प्रज्वलन्निव सागरः ।
उत्पपात तदा क्रुद्धः स्पृशन्निव दिवाकरम् ॥ ३१ ॥

शस्त्रवर्णः सुपरुषो मन्दरश्मिर्दिवाकरः ।
अदृश्यत कबन्धाङ्कः संसक्तो धूमकेतुना ॥ ३२ ॥

कोसलानां च नक्षत्रं व्यक्तमिन्द्राग्निदैवतम् ।
आक्रम्याङ्गारकस्तस्थौ विशाखामपि चाम्बरे ॥ ३३ ॥

दशास्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ।
अदृश्यत दशग्रीवो मैनाक इव पर्वतः ॥ ३४ ॥

निरस्यमानो रामस्तु दशग्रीवेण रक्षसा ।
नाशक्नोदभिसन्धातुं सायकान्रणमूर्धनि ॥ ३५ ॥

स कृत्वा भ्रुकुटिं क्रुद्धः किञ्चित्संरक्तलोचनः ।
जगाम सुमहाक्रोधं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19544 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4869

## चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

### रावणशूलोद्धरणम् ॥

तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
सर्वभूतानि वित्रेसुः प्राकम्पत च मेदिनी ॥ १ ॥

सिंहशार्दूलवाञ्छैलः संचचाल चलद्रुमः ॥ २ ॥

बभूव चातिक्षुभितः समुद्रः सरितां पतिः ॥ ३ ॥

खगाश्च खरनिर्घोषा गगने परुषा घनाः ।
औत्पातिकानि नर्दन्तः समन्तात्परिचक्रमुः ॥ ४ ॥

रामं दृष्ट्वा सुसंक्रुद्धमुत्पातांश्च सुदारुणान् ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि रावणस्याभवद्भयम् ॥ ५ ॥

विमानस्थास्तदा देवा गन्धर्वाश्च महोरगाः ।
ऋषिदानवदैत्याश्च गरुत्मन्तश्च खेचराः ॥ ६ ॥

ददृशुस्ते तदा युद्धं लोकसंवर्तसंस्थितम् ।
नानाप्रहरणैर्भीमैः शूरयोः संप्रयुद्ध्यतोः ॥ ७ ॥

ऊचुः सुरासुराः सर्वे तदा विग्रहमागताः ।
प्रेक्षमाणा महद्युद्धं वाक्यं भक्त्या प्रहृष्टवत् ॥ ८ ॥

दशग्रीवं जयेत्याहुरसुराः समवस्थिताः ॥ ९ ॥

देवा राममथोचुस्ते त्वं जयेति पुनः पुनः ॥ १० ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रोधाद्राघवस्य स रावणः ।
प्रहर्तुकामो दुष्टात्मा स्पृशन्प्रहरणं महत् ॥ ११ ॥

वज्रसारं महानादं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
शैलशृङ्गनिभैः कूटैश्चितं दृष्टिभयावहम् ॥ १२ ॥

सधूममिव तीक्ष्णाग्रं युगान्ताग्निचयोपमम् ।
अतिरौद्रमनासाद्यं कालेनापि दुरासदम् ॥ १३ ॥

त्रासनं सर्वभूतानां दारणं भेदनं तदा ।
प्रदीप्तमिव रोषेण शूलं जग्राह रावणः ॥ १४ ॥

तच्छूलं परमक्रुद्धो जग्राह युधि वीर्यवान् ।
अनेकैः समरे शूरै राक्षसैः परिवारितः ॥ १५ ॥

समुद्यम्य महाकायो ननाद युधि भैरवम् ।
संरक्तनयनो रोषात्स्वसैन्यमभिहर्षयन् ॥ १६ ॥

पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
प्राकम्पयत्तदा शब्दो राक्षसेन्द्रस्य दारुणः ॥ १७ ॥

अतिनादस्य नादेन तेन तस्य दुरात्मनः ।
सर्वभूतानि वित्रेसुः सागरश्च प्रचुक्षुभे ॥ १८ ॥

स गृहीत्वा महावीर्यः शूलं तद्रावणो महत् ।
विनद्य सुमहानादं रामं परुषमब्रवीत् ॥ १९ ॥

शूलोऽयं वज्रसारस्ते राम रोषान्मयोद्यतः ।
तव भ्रातृसहायस्य सद्यः प्राणान्हरिष्यति ॥ २० ॥

रक्षसामद्य शूराणां निहतानां चमूमुखे ।
त्वां निहत्य रणश्लाघिन्करोमि तरसा समम् ॥ २१ ॥

तिष्ठेदानीं निहन्मि त्वामेष शूलेन राघव ॥ २२ ॥

एवमुक्त्वा स चिक्षेप तच्छूलं राक्षसाधिपः ॥ २३ ॥

तद्रावणकरान्मुक्तं विद्युज्ज्वालासमाकुलम् ।
अष्टघण्टं महानादं वियद्गतमशोभत ॥ २४ ॥

तच्छूलं राघवो दृष्ट्वा ज्वलन्तं घोरदर्शनम् ।
ससर्ज विशिखान्रामश्चापमायम्य वीर्यवान् ॥ २५ ॥

आपतन्तं शरौघेण वारयामास राघवः ।
उत्पतन्तं युगान्ताग्निं जलौघैरिव वासवः ॥ २६ ॥

निर्ददाह स तान्बाणान्रामकार्मुकनिःसृतान् ।
रावणस्य महाशूलः पतङ्गानिव पावकः ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा तान् भस्मसाद्भूताञ्छूलसंस्पर्शचूर्णितान् ।
सायकानन्तरिक्षस्थान्राघवः क्रोधमाहरत् ॥ २८ ॥

स तां मातलिनाऽऽनीतां शक्तिं वासवनिर्मिताम् ।
जग्राह परमक्रुद्धो राघवो रघुनन्दनः ॥ २९ ॥

सा तोलिता बलवता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना ।
नभः प्रज्वालयामास युगान्तोल्केव सप्रभा ॥ ३० ॥

सा क्षिप्ता राक्षसेन्द्रस्य तस्मिञ्छूले पपात ह ॥ ३१ ॥

भिन्नः शक्त्या महाञ्छूलो निपपात हतद्युतिः ॥३२॥

साधु साध्विति भूतानि प्रशशंसू रघूत्तमम् ॥ ३३ ॥

निर्बिभेद ततो बाणैर्हयानस्य महाजवान् ।
रामस्तीक्ष्णैर्महावेगैर्वज्रकल्पैः शितैः शरैः ॥ ३४ ॥

निर्बिभेदोरसि ततो रावणं निशितैः शरैः ।
राघवः परमायत्तो ललाटे पत्रिभिस्त्रिभिः ॥ ३५ ॥

स शरैर्भिन्नसर्वाङ्गो गात्रप्रस्रुतशोणितः ।
राक्षसेन्द्रः समूहस्थः फुल्लाशोक इवाबभौ ॥ ३६ ॥

स रामबाणैरभिविद्धगात्रो निशाचरेन्द्रः क्षतजार्द्रगात्रः ।
जगाम खेदं च समाजमध्ये क्रोधं च चक्रे सुभृशं तदानीम्॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः **19581** युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः **4906**

## पञ्चोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

युद्धाद्रावणरथवाहनम् ॥

स तेन तु तथा क्रोधात्काकुत्स्थेनार्दितो रणे ।
रावणः समरश्लाघी महाक्रोधमुपागमत् ॥ १ ॥

स दीप्तनयनो रोषाच्चापमायम्य वीर्यवान् ।
अभ्यर्दयत्सुसंक्रुद्धो राघवं परमाहवे ॥ २ ॥

बाणधारासहस्रैस्तैः स तोयद इवाम्बरात् ।
राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयत् ॥ ३ ॥

पूरितः शरजालेन धनुर्मुक्तेन संयुगे ।
महागिरिरिवाकम्प्यः काकुत्स्थो न प्रकम्पते ॥ ४ ॥

स शरैः शरजालानि वारयन्समरे स्थितः ।
गभस्तीनिव सूर्यस्य प्रतिजग्राह वीर्यवान् ॥ ५ ॥

ततः शरसहस्राणि क्षिप्रहस्तो निशाचरः ।
निजघानोरसि क्रुद्धो राघवस्य महात्मनः ॥ ६ ॥

स शोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः ।
दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान्किंशुकद्रुमः ॥ ७ ॥

शराभिघातसंरब्धः सोऽपि जग्राह सायकान् ।
काकुत्स्थः सुमहातेजा युगान्तादित्यतेजसः ॥ ८ ॥

ततोऽन्योन्यं सुसंरब्धावुभौ तौ रामरावणौ ।
शरान्धकारे समरे नोपालक्षयतां तदा ॥ ९ ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः ।
उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः ॥ १० ॥

मम भार्या जनस्थानादज्ञानाद्राक्षसाधम ।
हृता ते विवशा यस्मात्तस्मात्त्वं नासि वीर्यवान् ॥ ११ ॥

मया विरहितां दीनां वर्तमानां महावने ।
वैदेहीं प्रसभं हृत्वा शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १२ ॥

स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराभिमर्शक ।
कृत्वा कापुरुषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १३ ॥

भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवस्थित ।
दर्पान्मृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १४ ॥

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च ।
श्लाघनीयं यशस्यं च कृतं कर्म महत्त्वया ॥ १५ ॥

उत्सेकेनाभिपन्नस्य गर्हितस्याहितस्य च ।
कर्मणः प्राप्नुहीदानीं तस्याद्य सुमहत्फलम् ॥ १६ ॥

शूरोऽहमिति चात्मानमवगच्छसि दुर्मते ॥ १७ ॥
नैव लज्जाऽस्ति ते सीतां चोरवद्व्यपकर्षतः ॥ १८ ॥

यदि मत्सन्निधौ सीता धर्षिता स्यात्त्वया बलात् ।
भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा मत्सायकैर्हतः ॥ १९ ॥

दिष्ट्याऽसि मम दुष्टात्मंश्चक्षुर्विषयमागतः ॥ २० ॥

अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ २१ ॥

अद्य ते मच्छरैश्छिन्नं शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
क्रव्यादा व्यपकर्षन्तु विकीर्णं रणपांसुषु ॥ २२ ॥

निपत्योरसि गृध्रास्ते क्षितौ क्षिप्तस्य रावण ।
पिबन्तु रुधिरं तर्षाच्छरशल्यान्तरोत्थितम् ॥ २३ ॥

अद्य मद्बाणभिन्नस्य गतासोः पतितस्य ते ।
कर्षन्त्वान्त्राणि पतगा गरुत्मन्त इवोरगान् ॥ २४ ॥

दुष्टोऽसि महतः कालाद्दिष्ट्या दृष्टिपथं गतः ।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसंभवम् ॥ २५ ॥

इत्येवं संवदन्वीरो रामः शत्रुनिबर्हणः ।
राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २६ ॥

बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्च संयुगे ।
रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकाङ्क्षिणः ॥ २७ ॥

प्रादुर्बभूवुरस्त्राणि सर्वाणि विदितात्मनः ।
प्रहर्षाच्च महातेजाः शीघ्रहस्ततरोऽभवत् ॥ २८ ॥

शुभान्येतानि चिह्नानि विज्ञायात्मगतानि सः ।
भूय एवार्दयद्रामो रावणं राक्षसान्तकृत् ॥ २९ ॥

हरीणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात् ।
हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत् ॥ ३० ॥

यदा च शस्त्रं नारेभे न व्यकर्षच्छरासनम् ।
नास्य प्रत्यकरोद्वीर्यं विक्लबेनान्तरात्मना ॥ ३१ ॥

क्षिप्ताश्चापि शरास्तेन शस्त्राणि विविधानि च ।
न रणार्थाय वर्तन्ते मृत्युकालेऽभिवर्ततः ॥ ३२ ॥

सूतस्तु रथनेताऽस्य तदवस्थं समीक्ष्य तम् ।
शनैर्युद्धादसंभ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत् ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19614 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4939

## षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

### रावणरथप्रत्यानयनम् ॥

स तु मोहात्सुसंक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः ।
क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत् ॥ १ ॥

हीनवीर्यमिवाशक्तं पौरुषेण विवर्जितम् ।
भीरुं लघुमिवासत्त्वं विहीनमिव तेजसा ॥ २ ॥

विमुक्तमिव मायाभिरस्त्रैरिव बहिष्कृतम् ।
मामवज्ञाय दुर्बुद्धे स्वया बुद्ध्या विचेष्टसे ॥ ३ ॥

किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च ।
त्वया शत्रोः समक्षं मे रथोऽयमपवाहितः ॥ ४ ॥

त्वयाऽद्य हि ममानार्य चिरकालसमार्जितम् ।
यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः ॥ ५ ॥

शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रञ्जनीयस्य विक्रमैः ।
पश्यतो युद्धलुब्धोऽहं कृतः कापुरुषस्त्वया ॥ ६ ॥

यस्त्वं रथमिमं मोहान्न चोद्वहसि दुर्मते ।
सत्योऽयं प्रतितर्को मे परेण त्वमुपस्कृतः ॥ ७ ॥

न हि तद्विद्यते कर्म सुहृदो हितकाङ्क्षिणः ।
रिपूणां सदृशं चैतन्न त्वयैतत्स्वनुष्ठितम् ॥ ८ ॥

निवर्तय रथं शीघ्रं यावन्नोपैति मे रिपुः ।
यदि वाऽध्युषितो वाऽसि स्मर्यन्ते यदि वा गुणाः ॥ ९ ॥

एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना ।
अब्रवीद्रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः ॥ १० ॥

न भीतोऽस्मि न मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः ।
न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मृता न च सत्क्रिया ॥११॥

मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता ।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा प्रियमित्यप्रियं कृतम् ॥ १२ ॥

नास्मिन्नर्थे महाराज त्वं मां प्रियहिते रतम् ।
कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि ॥ १३ ॥

श्रूयतां त्वभिधास्यामि यन्निमित्तं मया रथः ।
नदीवेग इवाभोगे संयुगे विनिवर्तितः ॥ १४ ॥

श्रमं तवावगच्छामि महता रणकर्मणा ।
न हि ते वीर सौमुख्यं प्रहर्षं वोपधारये ॥ १५ ॥

रथोद्वहनखिन्नाश्च त इमे रथवाजिनः ।
दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव ॥ १६ ॥

निमित्तानि च भूयिष्ठं यानि प्रादुर्भवन्ति नः ।
तेषु तेष्वभिपन्नेषु लक्षयाम्यप्रदक्षिणम् ॥ १७ ॥

देशकालौ च विज्ञेयौ लक्षणानीङ्गितानि च ।
दैन्यं खेदश्च हर्षश्च रथिनश्च बलाबलम् ॥ १८ ॥

स्थलनिम्नानि भूमेश्च समानि विषमाणि च ।
युद्धकालश्च विज्ञेयः परस्यान्तरदर्शनम् ॥ १९ ॥

उपयानापयाने च स्थानं प्रत्यपसर्पणम् ।
सर्वमेतद्रथस्थेन ज्ञेयं रथकुटुम्बिना ॥ २० ॥

तव विश्रमहेतोश्च तथैषां रथवाजिनाम् ।
रौद्रं वर्जयता खेदं क्षमं कृतमिदं मया ॥ २१ ॥

न मया स्वेच्छया वीर रथोऽयमपवाहितः ॥ २२ ॥
भर्तृस्नेहपरीतेन मयेदं यत्कृतं विभो ॥ २३ ॥

आज्ञापय यथातत्त्वं वक्ष्यस्यरिनिषूदन ।
तत्करिष्याम्यहं वीर गतानृण्येन चेतसा ॥ २४ ॥

संतुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः ।
प्रशस्यैनं बहुविधं युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥
रथं शीघ्रमिमं सूत राघवाभिमुखं कुरु ।
नाहत्वा समरे शत्रून्निवर्तिष्यति रावणः ॥ २६ ॥
एवमुक्त्वा ततस्तुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ।
ददौ तस्मै शुभं ह्येकं हस्ताभरणमुत्तमम् ॥ २७ ॥
श्रुत्वा रावणवाक्यं तु सारथिः संन्यवर्तत ॥ २८ ॥

ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः प्रचोदयामास हयान्स सारथिः ।
स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षडुत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19643 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4968

## सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

### आदित्यहृदयोपदेशः ॥

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् ।
रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥ १ ॥

दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् ।
उपागम्याब्रवीद्राममगस्त्यो भगवानृषिः ॥ २ ॥

राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम् ।
येन सर्वानरीन्वत्स समरे विजयिष्यसि ॥ ३ ॥

आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
जयावहं जपेन्नित्यमक्षय्यं परमं शिवम् ॥ ४ ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ ५ ॥

रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम् ।
पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥ ६ ॥

सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः ।
एष देवासुरगणांल्लोकान्पाति गभस्तिभिः ॥ ७ ॥

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः ।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः ॥ ८ ॥

पितरो वसवः साध्या ह्यश्विनौ मरुतो मनुः ।
वायुर्वह्निः प्रजाप्राण ऋतुकर्ता प्रभाकरः ॥ ९ ॥

आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् ।
सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः ॥१०॥

हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ।
तिमिरोन्मथनः शंभुस्त्वष्टा मार्तण्ड अंशुमान् ॥ ११ ॥

हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनो भास्करो रविः ।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः ॥ १२ ॥

व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुःसामपारगः
घनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथी प्लवङ्गमः ॥ १३ ॥

आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः
कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः ॥ १४ ॥

नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावनः ।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥

नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाद्रये नमः ।
ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः ॥ १६ ॥

जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः ।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः ॥ १७ ॥

नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः ।
नमः पद्मप्रबोधाय मार्ताण्डाय नमो नमः ॥ १८ ॥

ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूर्यायादित्यवर्चसे ।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः ॥ १९ ॥

तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने ।
कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः ॥ २० ॥

तप्तचामीकराभाय वह्नये विश्वकर्मणे ।
नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे ॥ २१ ॥

नाशयत्येष वै भूतं तदेव सृजति प्रभुः ।
पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥ २२ ॥

एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः ।
एष एवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम् ॥ २३ ॥

वेदाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च ।
यानि कृत्यानि लोकेषु सर्व ऐष रविः प्रभुः ॥ २४ ॥

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च ।
कीर्तयन्पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ॥ २५ ॥

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम् ।
एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि ॥ २६ ॥

अस्मिन्क्षणे महाबाहो रावणं त्वं वधिष्यसि ।
एवमुक्त्वा तदाऽगस्त्यो जगाम च यथागतम् ॥ २७ ॥

एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत्तदा ।
धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान् ॥ २८ ॥

आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वा तु परं हर्षमवाप्तवान् ।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान् ॥ २९ ॥

रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा युद्धाय समुपागमत् ।
सर्वयत्नेन महता वधे तस्य धृतोऽभवत् ॥ ३० ॥

अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः ।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19674 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4999

## अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

रावणदुर्निमित्तानि ॥

स रथं सारथिर्हृष्टः परसैन्यप्रधर्षणम् ।
गन्धर्वनगराकारं समुच्छ्रितपताकिनम् ॥ १ ॥

युक्तं परमसंपन्नैर्वाजिभिर्हेममालिभिः ।
युद्धोपकरणैः पूर्णं पताकाध्वजमालिनम् ॥ २ ॥

ग्रसन्तमिव चाकाशं नादयन्तं वसुन्धराम् ।
प्रणाशं परसैन्यानां स्वसैन्यानां प्रहर्षणम् ॥ ३ ॥
रावणस्य रथं क्षिप्रं चोदयामास सारथिः ॥ ३ ॥

तमापतन्तं सहसा स्वनवन्तं महास्वनम् ।
रथं राक्षसराजस्य नरराजो ददर्श ह ॥ ४ ॥

कृष्णवाजिसमायुक्तं युक्तं रौद्रेण वर्चसा ।
दीप्यमानमिवाकाशे विमानं सूर्यवर्चसम् ॥ ५ ॥

तडित्पताकागहनं दर्शितेन्द्रायुधायुधम् ।
शरधारा विमुञ्चन्तं धारासारमिवाम्बुदम् ॥ ६ ॥

तं दृष्ट्वा मेघसङ्काशमापतन्तं रथं रिपोः ।
गिरेर्वज्राभिमृष्टस्य दीर्यतः सदृशस्वनम् ॥ ७ ॥

विस्फारयन्वै वेगेन बालचन्द्रनतं धनुः ।
उवाच मातलिं रामः सहस्राक्षस्य सारथिम् ॥ ८ ॥

मातले पश्य संरब्धमापतन्तं रथं रिपोः ॥ ९ ॥

यथाऽपसव्यं पतता वेगेन महता पुनः ।
समरे हन्तुमात्मानं तथा तेन कृता मतिः ॥ १० ॥

तदप्रमादमातिष्ठन्प्रत्युद्गच्छ रथं रिपोः ।
विध्वंसयितुमिच्छामि वायुर्मेघमिवोत्थितम् ॥ ११ ॥

अविक्लबमसंभ्रान्तमव्यग्रहृदयेक्षणम् ।
रश्मिसञ्चारनियतं प्रचोदय रथं द्रुतम् ॥ १२ ॥

कामं न त्वं समाधेयः पुरन्दररथोचितः ।
युयुत्सुरहमेकाग्रः स्मारये त्वां न शिक्षये ॥ १३ ॥

परितुष्टः स रामस्य तेन वाक्येन मातलिः ।
प्रचोदयामास रथं सुरसारथिसत्तमः ॥ १४ ॥

अपसव्यं ततः कुर्वन्रावणस्य महारथम् ।
चक्रोत्क्षिप्तेन रजसा रावणं व्यवधानयत् ॥ १५ ॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवस्ताम्रविस्फारितेक्षणः ।
रथप्रतिमुखं रामं सायकैरवधूनयत् ॥ १६ ॥

धर्षणामर्षितो रामो धैर्यं रोषेण लम्भयन् ।
जग्राह सुमहावेगमैन्द्रं युधि शरासनम् ॥
शरांश्च सुमहातेजाः सूर्यरश्मिसमप्रभान् ॥ १७ ॥

तदोपोढ महद्युद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः ।
परस्पराभिमुखयोर्दृप्तयोरिव सिंहयोः ॥ १८ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
समेयुर्द्वैरथं द्रष्टुं रावणक्षयकाङ्क्षिणः ॥ १९ ॥

समुत्पेतुरथोत्पाता दारुणा रोमहर्षणाः ।
रावणस्य विनाशाय राघवस्य जयाय च ॥ २० ॥

ववर्ष रुधिरं देवो रावणस्य रथोपरि ॥ २१ ॥

वाता मण्डलिनस्तीक्ष्णा ह्यपसव्यं प्रचक्रमुः ॥ २२ ॥

महद्गृध्रकुलं चास्य भ्रममाण नभःस्थले ।
येन येन रथो याति तेन तेन प्रधावति ॥ २३ ॥

संध्यया चावृता लङ्का जपापुष्पनिकाशया ।
दृश्यते संप्रदीप्तेव दिवसेऽपि वसुन्धरा ॥ २४ ॥

सनिर्घाता महोल्काश्च संप्रचेरुर्महास्वनाः ॥ २५ ॥

व्यषादयंस्ता रक्षांसि रावणस्य तदाऽहिताः ॥ २६ ॥

रावणश्च यतस्तत्र सञ्चचाल वसुन्धरा ।
रक्षसां च प्रहरतां गृहीता इव बाहवः ॥ २७ ॥

ताम्राः पीताः सिताऽश्वेताः पतिताः सूर्यरश्मयः ।
दृश्यन्ते रावणस्याङ्गे पर्वतस्येव धातवः ॥ २८ ॥

गृध्रैरनुगताश्चास्य वमन्त्यो ज्वलनं मुखैः ।
प्रणेदुर्मुखमीक्षन्त्यः संरब्धमशिवं शिवाः ॥ २९ ॥

प्रतिकूलं ययौ वायू रणे पांसून्समुत्किरन् ।
तस्य राक्षसराजस्य कुर्वन्दृष्टिविलोपनम् ॥ ३० ॥

निपेतुरिन्द्राशनयः सैन्ये चास्य समन्ततः ।
दुर्विषह्यस्वना घोरा विना जलधरस्वनम् ॥ ३१ ॥

दिशश्च प्रदिशः सर्वा बभूवुस्तिमिरावृताः ॥ ३२ ॥

पांसुवर्षेण महता दुर्दर्शं च नभोऽभवत् ॥ ३३ ॥

कुर्वन्त्यः कलहं घोरं शारिकास्तद्रथं प्रति ।
निपेतुः शतशस्तत्र दारुणं दारुणारुताः ॥ ३४ ॥

जघनेभ्यः स्फुलिङ्गांश्च नेत्रेभ्योऽश्रूणि सन्ततम् ।
मुमुचुस्तस्य तुरगास्तुल्यमग्निं च वारि च ॥ ३५ ॥

एवंप्रकारा बहवः समुत्पाता भयावहाः ।
रावणस्य विनाशाय दारुणाः संप्रजज्ञिरे ॥ ३६ ॥

रामस्यापि निमित्तानि सौम्यानि च शुभानि च ।
बभूवुर्जयशंसीनि प्रादुर्भूतानि सर्वशः ॥ ३७ ॥

निमित्तानि च सौम्यानि राघवः स्वजयाय च ।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टो हतं मेने च रावणम् ॥ ३८ ॥

ततो निरीक्ष्यात्मगतानि राघवो
रणे निमित्तानि निमित्तकोविदः ।
जगाम हर्षं च परां च निर्वृतिं
चकार युद्धे ह्यधिकं च विक्रमम् ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19713 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5038

## नवोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

### रामरावणयोः समसमरः ॥

ततः प्रवृत्तं सुक्रूरं रामरावणयोस्तदा ।
सुमहद्द्वैरथं युद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ १ ॥

ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्बलम् ।
प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समतिष्ठत ॥ २ ॥

संप्रयुद्धौ ततो दृष्ट्वा बलवन्नरराक्षसौ ।
व्याक्षिप्तहृदयाः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥ ३ ॥

नानाप्रहरणैर्व्यग्रैर्भुजैर्विस्मितबुद्धयः ।
तस्थुः प्रेक्ष्य च संग्रामं नाभिजग्मुः परस्परम् ॥ ४ ॥

रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम् ।
पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ ॥ ५ ॥

तौ तु तत्र निमित्तानि दृष्ट्वा रावणराघवौ ।
कृतबुद्धी स्थिरामर्षौ युयुधाते ह्यभीतवत् ॥ ६ ॥

जेतव्यमिति काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः ।
धृतौ स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा ॥ ७ ॥

ततः क्रोधाद्दशग्रीवः शरान्सन्धाय वीर्यवान् ।
मुमोच ध्वजमुद्दिश्य राघवस्य रथे स्थितम् ॥ ८ ॥

ते शरास्तमनासाद्य पुरन्दररथध्वजम् ।
रथशक्तिं परामृश्य निपेतुर्धरणीतले ॥ ९ ॥

ततो रामोऽभिसंक्रुद्धश्चापमायम्य वीर्यवान् ।
कृतप्रतिकृतं कर्तुं मनसा संप्रचक्रमे ॥ १० ॥

रावणध्वजमुद्दिश्य मुमोच निशितं शरम् ।
महासर्पमिवासह्यं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥ ११ ॥

जगाम स महीं छित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः ॥ १२ ॥

स निकृत्तोऽपतद्भूमौ रावणस्य रथध्वजः ॥ १३ ॥

ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः सुमहाबलः ।
संप्रदीप्तोऽभवत्क्रोधादमर्षात्प्रदहन्निव ॥ १४ ॥

स रोषवशमापन्नः शरवर्षं महद्वमन् ।
रामस्य तुरगान्दीप्तैः शरैर्विव्याध रावणः ॥ १५ ॥

ते विद्धा हरयस्तत्र नास्खलन्नापि बभ्रमुः ।
बभूवुः स्वस्थहृदयाः पद्मनालैरिवाहताः ॥ १६ ॥

तेषामसंभ्रमं दृष्ट्वा वाजिनां रावणस्तदा ।
भूय एव सुसंक्रुद्धः शरवर्षं मुमोच ह ॥ १७ ॥

गदाश्च परिघाश्चैव चक्राणि मुसलानि च ।
गिरिशृङ्गाणि वृक्षांश्च तथा शूलपरश्वधान् ॥ १८ ॥

मायाविहितमेतत्तु शस्त्रवर्षमपातयत् ।
तुमुलं त्रासजननं भीमं भीमप्रतिस्वनम् ॥ १९ ॥

तद्वर्षमभवद्युद्धे नैकशस्त्रमयं महत् ।
विमुच्य राघवरथं समन्ताद्वानरे बले ॥ २० ॥

सायकैरन्तरिक्षं च चकाराशु निरन्तरम् ॥ २१ ॥

सहस्रशस्ततो बाणानश्रान्तहृदयोद्यमः ।
मुमोच च दशग्रीवो निःसङ्गेनान्तरात्मना ॥ २२ ॥

व्यायच्छमानं तं दृष्ट्वा तत्परं रावणं रणे ।
प्रहसन्निव काकुत्स्थः सन्दधे सायकाञ्छितान् ॥ २३ ॥

स मुमोच ततो बाणान्रणे शतसहस्रशः ।
तान्दृष्ट्वा रावणश्चक्रे स्वशरैः खं निरन्तरम् ॥ २४ ॥

ततस्ताभ्यां प्रमुक्तेन शरवर्षेण भास्वता ।
शरबद्धमिवाभाति द्वितीयं भास्वदम्बरम् ॥ २५ ॥

नानिमित्तोऽभवद्बाणो नातिभेत्ता न निष्फलः ।
तथा विसृजतो बाणान्रामरावणयोर्मृधे ॥ २६ ॥

प्रायुद्ध्यतामविच्छिन्नमस्यन्तौ सव्यदक्षिणम् ।
चक्रतुश्च शरौघैस्तौ निरुच्छ्वासमिवाम्बरम् ॥ २७ ॥

नान्तरं ददृशे किञ्चित्पश्यद्भिरनिमेषणम् ।
भूमिष्ठैः कपिरक्षोभिः खस्थैर्वा देवदानवैः ॥ २८ ॥

रावणस्य हयान्रामो हयान्रामस्य रावणः ।
जघ्नतुस्तौ तथाऽन्योन्यं कृतानुकृतकारिणौ ॥ २९ ॥

एवं तौ तु सुसंक्रुद्धौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम् ।
मुहूर्तमभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ ३० ॥

प्रयुध्यमानौ समरे महाबलौ
शितैः शरै रावणलक्ष्मणाग्रजौ ।
ध्वजावपातेन स राक्षसाधिपो
भृशं प्रचुक्रोध तदा रघूत्तमे ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे नवोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19745 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5070

## दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

### रावणशिरश्छेदः ॥

तौ तदा युद्ध्यमानौ तु समरे रामरावणौ ।
ददृशुः सर्वभूतानि विस्मितेनान्तरात्मना ॥ १ ॥

अर्दयन्तौ तु समरे तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ ।
परस्परमभिक्रुद्धौ परस्परमभिद्रुतौ ॥
परस्परवधे युक्तौ घोररूपौ बभूवतुः ॥ २ ॥

मण्डलानि च वीथीश्च गतप्रत्यागतानि च ।
दर्शयन्तौ बहुविधां सूतसारथ्यजां गतिम् ॥ ३ ॥

अर्दयन्रावणं रामो राघवं चापि रावणः ।
गतिवेगं समापन्नौ प्रवर्तननिवर्तने ॥ ४ ॥

क्षिपतोः शरजालानि तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ ।
चेरतुः संयुगमहीं सासारौ जलदौ यथा ॥ ५ ॥

दर्शयित्वा तथा तौ तु गतिं बहुविधां रणे ।
परस्परस्याभिमुखौ पुनरेवावतस्थतुः ॥ ६ ॥

धुरं धुरेण रथयोर्वक्त्रं वक्त्रेण वाजिनाम् ।
पताकाश्च पताकाभिः समेयुः स्थितयोस्तदा ॥ ७ ॥

रावणस्य ततो रामो धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ।
चतुर्भिश्चतुरो दीप्तैर्हयान्प्रत्यपसर्पयत् ॥ ८ ॥

स क्रोधवशमापन्नो हयानामपसर्पणे ।
मुमोच निशितान्बाणान्राघवाय निशाचरः ॥ ९ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता दशग्रीवेण राघवः ।
जगाम न विकारं च न चापि व्यथितोऽभवत् ॥ १० ॥

चिक्षेप च पुनर्बाणान्वज्रपातसमस्वनान् ।
सारथिं वज्रहस्तस्य समुद्दिश्य निशाचरः ॥ ११ ॥

मातलेस्तु महावेगाः शरीरे पतिताः शराः ।
न सूक्ष्ममपि संमोह व्यथां वा प्रददुर्युधि ॥ १२ ॥

तया धर्षणया क्रुद्धो मातलेर्न तथाऽऽत्मनः ।
चकार शरजालेन राघवो विमुखं रिपुम् ॥ १३ ॥

विंशतं त्रिंशतं षष्टिं शतशोऽथ सहस्रशः ।
मुमोच राघवो वीरः सायकान्स्यन्दने रिपोः ॥ १४ ॥

रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः ।
गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद्रणे ॥ १५ ॥

तत्प्रवृत्तं महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ १६ ॥

गदानां मुसलानां च परिघाणां च निस्वनैः ।
शराणां पुङ्खपातैश्च क्षुभिताः सप्त सागराः ॥ १७ ॥

क्षुब्धानां सागाराणां च पातालतलवासिनः ।
व्यथिताः पन्नगाः सर्वे दानवाश्च सहस्रशः ॥ १८ ॥

चकम्पे मेदिनी कृत्स्ना सशैलवनकानना ।
भास्करो निष्प्रभश्चासीन्न ववौ चापि मारुतः ॥ १९ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
चिन्तामापेदिरे सर्वे सकिन्नरमहोरगाः ॥ २० ॥

स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकास्तिष्ठन्तु शाश्वताः ।
जयतां राघवः संख्ये रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ २१ ॥

एवं जपन्तोऽपश्यंस्ते देवाः सर्षिगणास्तदा ।
रामरावणयोर्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥ २२ ॥

गन्धर्वाप्सरसां सङ्घा ददृशुर्युद्धमद्भुतम् ॥ २३ ॥

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः ।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥ २४ ॥

एवमूचुस्तदालोक्य युद्धं ते रोमहर्षणम् ॥ २५ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहू रघूणां कीर्तिवर्धनः ।
संधाय धनुषा रामः शरमाशीविषोपमम् ॥ २६ ॥

रावणस्य शिरोऽच्छिनच्छ्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।
तच्छिरः पतितं भूमौ दृष्टं लोकैस्त्रिभिस्तदा ॥ २७ ॥

तस्यैव सदृशं चान्यद्रावणस्योत्थितं शिरः ।
तत्क्षिप्रं क्षिप्रहस्तेन रामेण क्षिप्रकारिणा ॥ २८ ॥

द्वितीयं रावणशिरश्छिन्नं संयति सायकैः ।
छिन्नमात्रं तु तच्छीर्षं पुनरन्यत्स्म दृश्यते ॥ २९ ॥

तदप्यशनिसंङ्काशैश्छिन्नं रामेण सायकैः ।
एवमेकशतं छिन्नं शिरसां तुल्यवर्चसाम् ॥ ३० ॥

न चैव रावणस्यान्तो दृश्यते जीवितक्षये ॥ ३१ ॥
ततः सर्वास्त्रविद्वीरः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
मार्गणैर्बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः ॥ ३२ ॥
मारीचो निहतो यैस्तु खरो यैस्तु सदूषणः ।
क्रौञ्चावने विराधस्तु कबन्धो दण्डकावने ॥ ३३ ॥
त इमे सायकाः सर्वे युद्धे प्रात्ययिका मम ।
किं नु तत्कारणं येन रावणे मन्दतेजसः ॥ ३४ ॥
इति चिन्तापरश्चासीदप्रमत्तश्च संयुगे ।
ववर्ष शरवर्षाणि राघवो रावणोरसि ॥ ३५ ॥
रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः ।
गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद्रणे ॥ ३६ ॥
तत्प्रवृत्तं महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
अन्तरिक्षे च भूमौ च पुनश्च गिरिमूर्धनि ॥ ३७ ॥
देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
पश्यतां तन्महद्युद्धं सर्वरात्रमवर्तत ॥ ३८ ॥
नैव रात्रं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम् ।
रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति ॥ ३९ ॥
दशरथसुतराक्षसेन्द्रयोर्जयमनवेक्ष्य रणे स राघवस्य ।
सुरवररथसारथिर्महात्मा रणगतमेनमुवाच वाक्यमाशु ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे दशोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19785 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5110

## एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

### रावणवधः ॥

अथ संस्मारयामास राघवं मातलिस्तथा ।
अजानन्निव किं वीर त्वमेनमनुवर्तसे ॥ १ ॥

विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो ।
विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ॥ २ ॥

ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः ।
जग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥ ३ ॥

यमस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः ।
ब्रह्मदत्तं महाबाणममोघं युधि वीर्यवान् ॥ ४ ॥

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा ।
दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकाङ्क्षिणः ॥ ५ ॥

यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करौ ।
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ॥ ६ ॥

जाज्वल्यमानं वपुषा सुपुङ्खं हेमभूषितम् ।
तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसम् ॥ ७ ॥

सधूममिव कालाग्निं दीप्तमाशीविषं यथा ।
परनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् ॥ ८ ॥

द्वाराणां परिघाणां च गिरीणामपि भेदनम् ।
नानारुधिरसिक्ताङ्गं मेदोदिग्धं सुदारुणम् ॥ ९ ॥

वज्रसारं महानादं नानासमितिदारणम् ।
सर्ववित्रासनं भीमं श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥ १० ॥

कङ्कगृध्रबलानां च गोमायुगणरक्षसाम् ।
नित्यं भक्ष्यप्रदं युद्धे यमरूपं भयावहम् ॥ ११ ॥

नन्दनं वानरेन्द्राणां रक्षसामवसादनम् ।
वाजितं विविधैर्वाजैश्चारुचित्रैर्गरुत्मतः ॥ १२ ॥

तमुत्तमेषुं लोकानामिक्ष्वाकुभयनाशनम् ।
द्विषतां कीर्तिहरणं प्रहर्षकरमात्मनः ॥ १३ ॥

अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः ।
वेदप्रोक्तेन विधिना संदधे कार्मुके बली ॥ १४ ॥

तस्मिन्संधीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे ।
सर्वभूतानि वित्रेसुश्चचाल च वसुन्धरा ॥ १५ ॥

स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ।
चिक्षेप परमायत्तस्तं शरं मर्मघातिनम् ॥ १६ ॥

स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः ।
कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥ १७ ॥

स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः शरः ।
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ १८ ॥

रुधिराक्तः स वेगेन जीवितान्तकरः शरः ।
रावणस्य हरन्प्राणान्विवेश धरणीतलम् ॥ १९ ॥

स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रीकृतच्छविः ।
कृतकर्मा निभृतवत्स्वतूणीं पुनरागमत् ॥ २० ॥

तस्य हस्ताद्धतस्याशु कार्मुकं तत्ससायकम् ।
निपपात सह प्राणैर्भ्रश्यमानस्य जीवितात् ॥ २१ ॥

गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः ।
पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा ॥ २२ ॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः ।
हतनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः संप्रदुद्रुवुः ॥ २३ ॥

नर्दन्तश्चाभिपेतुस्तान्वानरा द्रुमयोधिनः ॥ २४ ॥

दशग्रीववधं दृष्ट्वा विजयं राघवस्य च ।
अर्दिता वानरैर्हृष्टैर्लङ्कामभ्यपतन्भयात् ॥
गताश्रयत्वात्करुणैर्बाष्पप्रस्रवणैर्मुखैः ॥ २५ ॥

ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः ।
वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तं वधम् ॥ २६ ॥

अथान्तरिक्षे व्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः ।
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ ॥ २७ ॥

निपपातान्तरिक्षाच्च पुष्पवृष्टिस्तदा भुवि ।
किरन्ती राघवरथं दुरवापा मनोरमा ॥ २८ ॥

राघवस्तवसंयुक्ता गगनेऽपि च शुश्रुवे ।
साधु साध्विति वागग्र्या दैवतानां महात्मनाम् ॥ २९ ॥

आविवेश महान्हर्षो देवानां चारणैः सह ।
रावणे निहते रौद्रे सर्वलोकभयङ्करे ॥ ३० ॥

ततः सकामं सुग्रीवमङ्गदं च महाबलम् ।
चकार राघवः प्रीतो हत्वा राक्षसपुङ्गवम् ॥ ३१ ॥

ततः प्रजग्मुः प्रशमं मरुद्गणा
दिशः प्रसेदुर्विमलं नभोऽभवत् ।
मही चकम्पे न हि मारुतो ववौ
स्थिरप्रभश्चाप्यभवद्दिवाकरः ॥ ३२ ।

ततस्तु सुग्रीवविभीषणादयः
सुहृद्विशेषाः सहलक्ष्मणास्तदा ।
समेत्य हृष्टा विजयेन राघवं
रणेऽभिरामं विधिना ह्यपूजयन् ॥ ३३ ॥

स तु निहतरिपुः स्थिरप्रतिज्ञः
स्वजनबलाभिवृतो रणे रराज ।
रघुकुलनृपनन्दनो महौजा-
स्त्रिदशगणैरभिसंवृतो यथेन्द्रः ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19819 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5144

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे चतुर्विंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥

[ पुरा कुशलवाभ्यां श्रीरामसन्निधावश्वमेधयज्ञवाटे
द्वात्रिंशतिदिनेषु गीते श्रीमद्रामायणे पञ्चत्रिंशेऽह्नि युद्धकाण्डे
द्वादशोत्तरशततमसर्गमारभ्य यावत्काण्डसमाप्ति
(19820—20724 श्लोकाः) गीतम् ।
तस्मिन् दिने गीताः श्लोकाः 905 ]

## द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

### विभीषणविलापः ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं रामनिर्जितम् ।
शोकवेगपरीतात्मा विललाप विभीषणः ॥ १ ॥

वीर विक्रान्तविख्यात विनीत नयकोविद ।
महार्हशयनोपेत किं शेषेऽद्य हतो भुवि ॥ २ ॥

विक्षिप्य दीर्घौ निश्चेष्टौ भुजावङ्गदभूषितौ ।
मुकुटेनापवृत्तेन भास्कराकारवर्चसा ॥ ३ ॥

तदिदं वीर संप्राप्तं मया पूर्वं समीरितम् ।
काममोहपरीतस्य यत्ते न रुचितं वचः ॥ ४ ॥

यन्न दर्पात्प्रहस्तो वा नेन्द्रजिन्नापरे जनाः ।
न कुम्भकर्णोऽतिरथो नातिकायो नरान्तकः ॥
न स्वयं त्वममन्येथास्तस्योदर्कोऽयमागतः ॥ ५ ॥

गतः सेतुः सुनीतानां गतो धर्मस्य विग्रहः ।
गतः सत्त्वस्य संक्षेपः प्रस्तावानां गतिर्गता ॥ ६ ॥

आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः ।
चित्रभानुः प्रशान्तार्चिर्व्यवसायो निरुद्यमः ॥
अस्मिन्निपतिते भूमौ वीरे शस्त्रभृतां वरे ॥ ७ ॥

किं शेषमिव लोकस्य हतवीरस्य सांप्रतम् ।
रणे राक्षसशार्दूले प्रसुप्त इव पांसुषु ॥ ८ ॥

धृतिप्रवालः प्रसहाग्र्यपुष्पस्तपोबलः शौर्यनिबद्धमूलः ।
रणे महान्राक्षसराजवृक्षः संमर्दितो राघवमारुतेन ॥

तेजोविषाणः कुलवंशवंशः कोपप्रसादापरगात्रहस्तः ।
इक्ष्वाकुसिंहावगृहीतदेहः सुप्तः क्षितौ रावणगन्धहस्ती ॥

पराक्रमोत्साहविजृम्भितार्चिर्निश्वासधूमः स्वबलप्रतापः ।
प्रतापवान्संयति राक्षसाग्निर्निर्वापितो रामपयोधरेण ॥

सिंहर्क्षलाङ्गूलककुद्विषाणः पराभिजिद्गन्धनगन्धहस्ती ।
रक्षोवृषश्चापलकर्णचक्षुः क्षितीश्वरव्याघ्रहतोऽवसन्नः ॥

वदन्तं हेतुमद्वाक्यं परिमृष्टार्थनिश्चयम् ।
रामः शोकसमाविष्टमित्युवाच विभीषणम् ॥ १३ ॥

नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः ।
अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः ॥ १४ ॥

नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्ममवस्थिताः ।
वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे ॥ १५ ॥

येन सेन्द्रास्त्रयो लोकास्त्रासिता युधि धीमता ।
तस्मिन्कालसमायुक्ते न कालः परिशोचितुम् ॥ १६ ॥

नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन ।
परैर्वा हन्यते वीरः परान्वा हन्ति संयुगे ॥ १७ ॥
इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्रियसंमता ॥ १८ ॥
क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः ॥ १९ ॥
तदेवं निश्चयं दृष्ट्वा तत्त्वमास्थाय विज्वरः ।
यदिहानन्तरं कार्यं कल्प्यं तदनुचिन्तय ॥ २० ॥
तमुक्तवाक्यं विक्रान्तं राजपुत्रं विभीषणः ।
उवाच शोकसन्तप्तो भ्रातुर्हितमनन्तरम् ॥ २१ ॥
योऽयं विमर्देषु न भग्नपूर्वः सुरैः समेतैः सह वासवेन ।
भवन्तमासाद्य रणे विभग्नो वेलामिवासाद्य यथा समुद्रः ॥
अनेन दत्तानि सुपूजितानि भुक्ताश्च भोगा निभृताश्च भृत्याः ।
धनानि मित्रेषु समर्पितानि वैराण्यमित्रेषु च यापितानि ॥
एषोऽहिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तगः कर्मसु चाग्र्यवीर्यः ।
एतस्य यत्प्रेतगतस्य कृत्यं तत्कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात् ॥
स तस्य वाक्यैः करुणैर्महात्मा संबोधितः साधु विभीषणेन ।
आज्ञापयामास नरेन्द्रसूनुः स्वर्गीयमाधानमदीनसत्त्वः ॥२५॥
मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19845 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5170

## त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

### रावणान्तःपुरस्त्रीविलापः ॥

रावणं निहतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना ।
अन्तःपुराद्विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः ॥ १ ॥

वार्यमाणाः सुबहुशो वेष्टन्त्यः क्षितिपांसुषु ।
विमुक्तकेश्यो दुःखार्ता गावो वत्सहता इव ॥ २ ॥

उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः ।
प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं पतिम् ॥ ३ ॥

आर्यपुत्रेति वादिन्यो हा नाथेति च सर्वशः ।
परिपेतुः कबन्धाङ्कां महीं शोणितकर्दमाम् ॥ ४ ॥

ता बाष्पपरिपूर्णाक्ष्यो भर्तृशोकपराजिताः ।
करेण्व इव नर्दन्त्यो न रेजुर्हतयूथपाः ॥ ५ ॥

ददृशुस्तं महावीर्यं महाकायं महाद्युतिम् ।
रावणं निहतं भूमौ नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ६ ॥

ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु ।
निपेतुस्तस्य गात्रेषु छिन्ना वनलता इव ॥ ७ ॥

बहुमानात्परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह ॥ ८ ॥

चरणौ काचिदालिङ्ग्य काचित्कण्ठेऽवलम्ब्य च ॥ ९ ॥

उद्धृत्य च भुजौ काचिद्भूमौ स्म परिवर्तते ॥ १० ॥

हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोहमुपागमत् ॥ ११ ॥

काचिदङ्के शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती ।
स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पङ्कजम् ॥ १२ ॥

एवमार्ताः पतिं दृष्ट्वा रावणं निहतं भुवि ।
चुक्रुशुर्बहुधा शोकाद्भूयस्ताः पर्यदेवयन् ॥ १३ ॥

येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः ।
येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः ॥ १४ ॥

गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम् ।
भयं येन महद्दत्तं सोऽयं शेते रणे हतः ॥ १५ ॥

असुरेभ्यः सुरेभ्यो वा पन्नगेभ्योऽपि वा तथा ।
न भयं यो विजानाति तस्येदं मानुषाद्भयम् ॥ १६ ॥

अवध्यो देवतानां यस्तथा दानवरक्षसाम् ।
हतः सोऽयं रणे शेते मानुषेण पदातिना ॥ १७ ॥

यो न शक्यः सुरैर्हन्तुं न यक्षैर्नासुरैस्तथा ।
सोऽयं कश्चिदिवासत्त्वो मृत्युं मर्त्येन लम्भितः ॥ १८ ॥

एवं वदन्त्यो बहुधा रुरुदुस्तस्य ताः स्त्रियः ।
भूय एव च दुःखार्ता विलेपुश्च पुनः पुनः ॥ १९ ॥

अशृण्वता च सुहृदां सततं हितवादिनाम् ।
मरणायाहृता सीता घातिताश्च निशाचराः ॥ २० ॥

एताः सममिदानीं ते वयमात्मा च पातिताः ।
ब्रुवाणोऽपि हितं वाक्यमिष्टो भ्राता विभीषणः ॥
धृष्टं परुषितो मोहात्त्वयाऽऽत्मवधकाङ्क्षिणा ॥ २१ ॥

यदि निर्यातिता ते स्यात्सीता रामाय मैथिली ।
न नः स्याद्व्यसनं घोरमिदं मूलहरं महत् ॥ २२ ॥

वृत्तकामो भवेद्भ्राता रामो मित्रकुलं भवेत् ।
वयं चाविधवाः सर्वाः सकामा न च शत्रवः ॥ २३ ॥

त्वया पुनर्नृशंसेन सीतां संरुन्धता बलात् ।
राक्षसा वयमात्मा च त्रयं तुल्यं निपातितम् ॥ २४ ॥

न कामकारः कामं वा तव राक्षसपुङ्गव ।
दैवं चेष्टयते सर्वं हतं दैवेन हन्यते ॥ २५ ॥

वानराणां विनाशोऽयं रक्षसां च महाहवे ।
तव चैव महाबाहो दैवयोगादुपागतः ॥ २६ ॥

नैवार्थेन न कामेन विक्रमेण न चाज्ञया ।
शक्या दैवगतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता ॥ २७ ॥

विलेपुरेवं दीनास्ता राक्षसाधिपयोषितः ।
कुरर्य इव दुःखार्ता बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 19873 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5198

## चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

### मण्डोदरीविलापः रावणसंस्कारश्च ॥

तासां विलपमानानां तथा राक्षसयोषिताम् ।
ज्येष्ठा पत्नी प्रिया दीना भर्तारं समुदैक्षत ॥ १ ॥

दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा ।
पतिं मण्डोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥ २ ॥

ननु नाम महाभाग तव वैश्रवणानुज ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरन्दरः ॥ ३ ॥

त्रस्यन्ति ऋषयश्चैव गन्धर्वाश्च यशस्विनः ॥ ४ ॥

ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ।
स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः ॥ ५ ॥

न व्यपत्रपसे राजन्किमिदं राक्षसर्षभ ॥ ६ ॥

कथं त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितम् ।
अविषह्यं जघान त्वां मानुषो वनगोचरः ॥ ७ ॥

मानुषाणामविषये चरतः कामरूपिणः ।
विनाशस्तव रामेण संयुगे नोपपद्यते ॥ ८ ॥

न चैतत्कर्म रामस्य श्रद्दधामि चमूमुखे ।
सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्शनम् ॥ ९ ॥

यदैव च जनस्थाने राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
खरस्तव हतो भ्राता तदेवासौ न मानुषः ॥ १० ॥

यदैव नगरीं लङ्कां दुष्प्रवेशां सुरैरपि ।
प्रविष्टो हनुमान्वीर्यात्तदैव व्यथिता वयम् ॥ ११ ॥

यदैव वानरैर्घोरैर्बद्धः सेतुर्महार्णवे ।
तदैव हृदयेनाहं शङ्के रामममानुषम् ॥ १२ ॥

अथवा रामरूपेण कृतान्तः स्वयमागतः ।
मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥ १३ ॥

अथवा वासवेन त्वं धर्षितोऽसि महाबल ॥ १४ ॥

वासवस्य कुतः शक्तिस्त्वां द्रष्टुमपि संयुगे ॥ १५ ॥

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः ।
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान् ॥ १६ ॥

तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः ।
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः ॥ १७ ॥

मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ।
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः ॥ १८ ॥

सर्वलोकेश्वरः साक्षाल्लोकानां हितकाम्यया ।
सराक्षसपरीवारं हतवांस्त्वां महाद्युतिः ॥ १९ ॥

इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया ।
स्मरद्भिरिव तद्वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः ॥ २० ॥

क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया ।
उच्यमानो न गृह्णासि तस्येयं व्युष्टिरागता ॥ २१ ॥

अकस्माच्चाभिकामोऽसि सीतां राक्षसपुङ्गव ।
ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च ॥ २२ ॥

अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते ।
सीतां धर्षयता मान्यां त्वया ह्यसदृशं कृतम् ॥ २३ ॥

वसुधायाश्च वसुधां श्रियः श्रीं भर्तृवत्सलाम् ।
सीतां सर्वानवद्याङ्गीमरण्ये विजने शुभाम् ॥ २४ ॥

आनयित्वा तु तां दीनां छद्मनाऽऽत्मस्वदूषण ।
अप्राप्य चैव तं कामं मैथिलीसङ्गमे कृतम् ॥
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥ २५ ॥

तदैव यन्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम् ।
देवा बिभ्यति ते सर्वे सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ २६ ॥

अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः ।
घोरं पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः ॥ २७ ॥

शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते ॥ २८ ॥

विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम् ॥ २९ ॥

सन्त्यन्याः प्रमदास्तुभ्यं रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ३० ॥

अनङ्गवशमापन्नस्त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ॥ ३१ ॥

न कुलेन न रूपेण न दाक्षिण्येन मैथिली ।
मयाऽधिका वा तुल्या वा त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ॥ ३२ ॥

सर्वथा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षणः ।
तव तावदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षणः ॥ ३३ ॥

सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृतः ॥ ३४ ॥

मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ॥ ३५ ॥

अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे ॥ ३६ ॥

कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने ।
देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया ॥ ३७ ॥

विमानेनानुरूपेण या याम्यतुलया श्रिया ।
पश्यन्ती विविधान्देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा ॥
भ्रंशिता कामभोगेभ्यः साऽस्मि वीर वधात्तव ॥ ३८ ॥

सैवान्येवास्मि संवृत्ता धिग्राज्ञां चञ्चलाः श्रियः ॥ ३९ ॥

हा राजन्सुकुमारं ते सुभ्रु सुत्वक् समुन्नसम् ।
कान्तिश्रीद्युतिभिस्तुल्यमिन्दुपद्मदिवाकरैः ॥ ४० ॥

किरीटकूटोज्ज्वलितं ताम्रास्यं दीप्तकुण्डलम् ।
मदव्याकुललोलाक्षं भूत्वा यत्पानभूमिषु ॥ ४१ ॥

विविधस्रग्धरं चारु वल्गुस्मितकथं शुभम् ।
तदेवाद्य तवेदं हि वक्त्रं न भ्राजते प्रभो ॥ ४२ ॥

रामसायकनिर्भिन्नं सिक्तं रुधिरविस्रवैः ।
विशीर्णमेदोमस्तिष्कं रूक्षं स्यन्दनरेणुभिः ॥ ४३ ॥

हा पश्चिमा मे संप्राप्ता दशा वैधव्यकारिणी ।
या मयाऽसीन्न संबुद्धा कदाचिदपि मन्दया ॥ ४४ ॥

पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः ।
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्येवं गर्विता भृशम् ॥ ४५ ॥

दृप्तारिमर्दनाः शूराः प्रख्यातबलपौरुषाः ।
अकुतश्चिद्भया नाथा ममेत्यासीन्मतिर्दृढा ॥ ४६ ॥

तेषामेवंप्रभावानां युष्माकं राक्षसर्षभ ।
कथं भयमसंबुद्धं मानुषादिदमागतम् ॥ ४७ ॥

स्निग्धेन्द्रनीलनीलं तु प्रांशुशैलोपमं महत् ।
केयूराङ्गदवैडूर्यमुक्तादामस्रगुज्ज्वलम् ॥ ४८ ॥

कान्तं विहारेष्वधिकं दीप्तं संग्रामभूमिषु ।
भात्याभरणभाभिर्यद्विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ ४९ ॥

तदेवाद्य शरीरं ते तीक्ष्णैर्नैकैः शरैश्चितम् ।
पुनर्दुर्लभसंस्पर्शं परिष्वक्तुं न शक्यते ॥ ५० ॥

श्वाविधः शललैर्यद्वद्बाणैर्लग्नैर्निरन्तरम् ।
स्वर्पितैर्मर्मसु भृशं संच्छिन्नस्नायुबन्धनम् ॥
क्षितौ निपतितं राजञ्छ्यावं रुधिरसच्छवि ॥ ५१ ॥

वज्रप्रहाराभिहतो विकीर्ण इव पर्वतः ॥ ५२ ॥

हा स्वप्नः सत्यमेवेदं त्वं रामेण कथं हतः ॥ ५३ ॥

त्वं मृत्योरपि मृत्युः स्याः कथं मृत्युवशं गतः ॥ ५४ ॥

त्रैलोक्यवसुभोक्तारं त्रैलोक्योद्वेगदं महत् ।
जेतारं लोकपालानां क्षेप्तारं शङ्करस्य च ॥ ५५ ॥

दृप्तानां निगृहीतारमाविष्कृतपराक्रमम् ।
लोकक्षोभयितारं च नादैर्भूतविराविणम् ॥ ५६ ॥

ओजसा दृप्तवाक्यानां वक्तारं रिपुसन्निधौ ।
स्वयूथभृत्यवर्गाणां गोप्तारं भीमकर्मणाम् ॥ ५७ ॥

हन्तारं दानवेन्द्राणां यक्षाणां च सहस्रशः ।
निवातकवचानां च संग्रहीतारमीश्वरम् ॥ ५८ ॥

नैकयज्ञविलोप्तारं त्रातारं स्वजनस्य च ।
धर्मव्यवस्थाभेत्तारं मायास्रष्टारमाहवे ॥ ५९ ॥

देवासुरनृकन्यानामाहर्तारं ततस्ततः ।
शत्रुस्त्रीशोकदातारं नेतारं स्वजनस्य च ॥ ६० ॥

लङ्काद्वीपस्य गोप्तारं कर्तारं भीमकर्मणाम् ।
अस्माकं कामभोगानां दातारं रथिनां वरम् ॥ ६१ ॥

एवंप्रभावं भर्तारं दृष्ट्वा रामेण पातितम् ।
स्थिराऽस्मि या देहमिमं धारयामि हतप्रिया ॥ ६२ ॥

शयनेषु महार्हेषु शयित्वा राक्षसेश्वर ।
इह कस्मात्प्रसुप्तोऽसि धरण्यां रेणुपाटलः ॥ ६३ ॥

यदा मे तनयः शस्तो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्युधि ।
तदाऽस्म्यभिहता तीव्रमद्य त्वस्मिन्निपातिता ॥ ६४ ॥

साऽहं बन्धुजनैर्हीना हीना नाथेन तु त्वया ।
विहीना कामभोगैश्च शोचिष्ये शाश्वतीः समाः ॥ ६५ ॥

प्रपन्नो दीर्घमध्वानं राजन्नद्यासि दुर्गमम् ॥ ६६ ॥

नय मामपि दुःखार्तां न वर्तिष्ये त्वया विना ॥ ६७ ॥

कस्मात्त्वं मां विहायेह कृपणां गन्तुमिच्छसि ॥ ६८ ॥

दीनां विलपितैर्मन्दां किं वा मां नाभिभाषसे ॥ ६९ ॥

दृष्ट्वा न खल्वसि क्रुद्धो मामिहानवकुण्ठिताम् ।
निर्गतां नगरद्वारात्पद्भ्यामेवागतां प्रभो ॥ ७० ॥

पश्येष्टदार दारांस्ते भ्रष्टलज्जावकुण्ठितान् ।
बहिर्निष्पतितान्सर्वान्कथं दृष्ट्वा न कुप्यसि ॥ ७१ ॥

अयं क्रीडासहायस्तेऽनाथो लालप्यते जनः ॥ ७२ ॥

न चैनमाश्वासयसे किं वा न बहुमन्यसे ॥ ७३ ॥

यास्त्वया विधवा राजन्कृता नैकाः कुलस्त्रियः ।
पतिव्रता धर्मपरा गुरुशुश्रूषणे रताः ॥
ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशं गतः ॥ ७४ ॥

त्वया विप्रकृताभिर्यत्तदा शप्तं तदागतम् ॥ ७५ ॥

प्रवादः सत्य एवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप ।
पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले ॥ ७६ ॥

कथं च नाम ते राजंल्लोकानाक्रम्य तेजसा ।
नारीचौर्यमिदं क्षुद्रं कृतं शौण्डीर्यमानिना ॥ ७७ ॥

अपनीयाश्रमाद्रामं यन्मृगच्छद्मना त्वया ।
आनीता रामपत्नी सा तत्ते कातर्यलक्षणम् ॥ ७८ ॥

कातर्यं च न ते युद्धे कदाचित्संस्मराम्यहम् ।
तत्तु भाग्यविपर्यासान्नूनं ते पक्वलक्षणम् ॥ ७९ ॥

अतीतानागतार्थज्ञो वर्तमानविचक्षणः ।
मैथिलीमाहृतां दृष्ट्वा ध्यात्वा निश्वस्य चायतम् ॥ ८० ॥

सत्यवाक् स महाभागो देवरो मे यदब्रवीत् ।
सोऽयं राक्षसमुख्यानां विनाशः पर्युपस्थितः ॥
कामक्रोधसमुत्थेन व्यसनेन प्रसङ्गिना ॥ ८१ ॥

निर्वृत्तस्त्वत्कृतेऽनर्थः सोऽयं मूलहरो महान् ॥ ८२ ॥

त्वया कृतमिदं सर्वमनाथं रक्षसां कुलम् ॥ ८३ ॥

न हि त्वं शोचितव्यो मे प्रख्यातबलपौरुषः ।
स्त्रीस्वभावात्तु मे बुद्धिः कारुण्ये परिवर्तते ॥ ८४ ॥

सुकृतं दुष्कृतं च त्वं गृहीत्वा स्वां गतिं गतः ।
आत्मानमनुशोचामि त्वद्वियोगेन दुःखिता ॥ ८५ ॥

सुहृदां हितकामानां न श्रुतं वचनं त्वया ।
भ्रातॄणां चापि कार्त्स्न्येन हितमुक्तं दशानन ॥ ८६ ॥

हेत्वर्थयुक्तं विधिवच्छ्रेयस्करमदारुणम् ।
विभीषणेनाभिहितं न कृतं हेतुमत्त्वया ॥ ८७ ॥

मारीचकुम्भकर्णाभ्यां वाक्यं मम पितुस्तदा ।
न श्रुतं वीर्यमत्तेन तस्येदं फलमीदृशम् ॥ ८८ ॥

नीलजीमूतसङ्काश पीताम्बर शुभाङ्गद ।
स्वगात्राणि विनिक्षिप्य किं शेषे रुधिराप्लुतः ॥ ८९ ॥

प्रसुप्त इव शोकार्ता किं मां न प्रतिभाषसे ॥ ९० ॥

महावीर्यस्य दक्षस्य संयुगेष्वपलायिनः ।
यातुधानस्य दौहित्र किं च मां नाभ्युदीक्षसे ॥ ९१ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे प्राप्ते परिभवे नवे ॥ ९२ ॥

अद्य वै निर्भया लङ्कां प्रविष्टाः सूर्यरश्मयः ॥ ९३ ॥

येन सूदयसे शत्रून्समरे सूर्यवर्चसा ।
वज्रो वज्रधरस्येव सोऽयं ते सततार्चितः ॥ ९४ ॥

रणे शत्रुप्रहरणो हेमजालपरिष्कृतः ।
परिघो व्यवकीर्णस्ते बाणैश्छिन्नः सहस्रधा ॥ ९५ ॥

प्रियामिवोपगुह्य त्वं शेषे समरमेदिनीम् ।
अप्रियामिव कस्माच्च मां नेच्छस्यभिभाषितुम् ॥ ९६ ॥

धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा ।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम् ॥ ९७ ॥

इत्येवं विलपन्त्येव बाष्पव्याकुललोचना ।
स्नेहावस्कन्नहृदया देवी मोहमुपागमत् ॥ ९८ ॥

कश्मलाभिहता सन्ना बभौ सा रावणोरसि ।
संध्यानुरक्ते जलदे दीप्ता विद्युदिवासिते ॥ ९९ ॥

तथागतां समुत्पत्य सपत्न्यस्ता भृशातुराः ।
पर्यवस्थापयामासू रुदन्त्यो रुदतीं भृशम् ॥ १०० ॥

न ते सुविदिता देवि लोकानां स्थितिरध्रुवा ।
दशाविभागपर्याये राज्ञां चञ्चलया श्रिया ॥ १०१ ॥

इत्येवमुच्यमाना सा सशब्दं प्ररुरोद ह ।
स्नापयन्ती त्वभिमुखौ स्तनावस्राम्बुविस्रवैः ॥ १०२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह ।
संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रियश्चैता निवर्तय ॥ १०३ ॥

तं प्रश्रितस्ततो रामं श्रुतवाक्यो विभीषणः ।
विमृश्य बुद्ध्या धर्मज्ञो धर्मार्थसहितं वचः ॥
रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तरं प्रत्यभाषत ॥ १०४ ॥

त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा ।
नाहमर्होऽस्मि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम् ॥ १०५ ॥

भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहिते रतः ।
रावणो नार्हते पूजां पूज्योऽपि गुरुगौरवात् ॥ १०६ ॥

नृशंस इति मां राम वक्ष्यन्ति मनुजा भुवि ।
श्रुत्वा तस्यागुणान्सर्वे वक्ष्यन्ति सुकृतं पुनः ॥ १०७ ॥

तच्छ्रुत्वा परमप्रीतो रामो धर्मभृतां वरः ।
विभीषणमुवाचेदं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥ १०८ ॥

तवापि मे प्रियं कार्यं त्वत्प्रभावाच्च मे जितम् ।
अवश्यं तु क्षमं वाच्यो मया त्वं राक्षसेश्वरः ॥ १०९ ॥

अधर्मानृतसंयुक्तः कामं त्वेष निशाचरः ।
तेजस्वी बलवाञ्छूरो संयुगेषु च नित्यशः ॥ ११० ॥

शतक्रतुमुखैर्देवैः श्रूयते न पराजितः ।
महात्मा बलसम्पन्ना रावणो लोकरावणः ॥ १११ ॥

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥ ११२ ॥

त्वत्सकाशाद्दशग्रीवः संस्कारं विधिपूर्वकम् ।
प्राप्तुमर्हति धर्मज्ञ त्वं यशोभाग्भविष्यसि ॥ ११३ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः ।
संस्कारेणानुरूपेण योजयामास रावणम् ॥ ११४ ॥

चितां चन्दनकाष्ठानां पद्मकोशीरसंवृताम् ।
ब्राह्मया संवेशयांचक्रू राङ्कवास्तरणावृताम् ॥ ११५ ॥

वर्तते वेदविहितो राज्ञो वै पश्चिमः क्रतुः ।
प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुक्रमम् ॥ ११६ ॥

वेदिं च दक्षिणप्राच्यां यथास्थानं च पावकम् ।
पृषदाज्येन संपूर्णं स्रुवं सर्वे प्रचिक्षिपुः ॥ ११७ ॥

पादयोः शकटं प्रादुरन्तरूर्वोरुलूखलम् ।
दारुपात्राणि सर्वाणि अरणिं चोत्तरारणिम् ॥११८॥
दत्त्वा तु मुसलं चान्यद्यथास्थानं विचक्षणाः ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ॥ ११९ ॥
तत्र मेध्यं पशुं हत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ।
परिस्तरणिकां राज्ञो घृताक्तां समवेशयन् ॥ १२० ॥
गन्धैर्माल्यैरलङ्कृत्य रावणं दीनमानसाः ।
विभीषणसहायास्ते वस्त्रैश्च विविधैरपि ॥
लाजैश्चावकिरन्ति स्म बाष्पपूर्णमुखास्तदा ॥ १२१ ॥
ददौ च पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः ॥ १२२ ॥
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दूर्वाभिमिश्रितान् ।
उदकेन च संमिश्रान्प्रदाय विधिपूर्वकम् ॥ १२३ ॥
प्रदाय चोदकं तस्मै मूर्ध्ना चैनं नमस्य च ।
ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वमुक्त्वा पुनः पुनः ॥
गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं तदा ॥ १२५ ॥
प्रविष्टासु च सर्वासु राक्षसीषु विभीषणः ।
रामपार्श्वमुपागम्य तदाऽतिष्ठद्विनीतवत् ॥ १२६ ॥
रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
हर्षं लेभे रिपुं हत्वा यथा वृत्रं शतक्रतुः ॥ १२७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20000 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5325

## पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

### विभीषणाभिषेकः ॥

ते रावणवधं दृष्ट्वा देवगन्धर्वदानवाः ।
जग्मुः स्वैः स्वैर्विमानैस्ते कथयन्तः शुभाः कथाः ॥ १ ॥

रावणस्य वधं घोरं राघवस्य पराक्रमम् ।
सुयुद्धं वानराणां च सुग्रीवस्य च मन्त्रितम् ॥ २ ॥

अनुरागं च वीर्यं च मारुतेर्लक्ष्मणस्य च ।
कथयन्तो महाभागा जग्मुर्हृष्टा यथागतम् ॥ ३ ॥

राघवस्तु रथं दिव्यमिन्द्रदत्तं शिखिप्रभम् ।
अनुज्ञाय महाभागो मातलिं प्रत्यपूजयत् ॥ ४ ॥

राघवेणाभ्यनुज्ञातो मातलिः शक्रसारथिः ।
दिव्यं तं रथमास्थाय दिवमेवारुरोह सः ॥ ५ ॥

तस्मिंस्तु दिवमारूढे सुरसारथिसत्तमे ।
राघवः परमप्रीतः सुग्रीवं परिषस्वजे ॥ ६ ॥

परिष्वज्य च सुग्रीवं लक्ष्मणेन प्रचोदितः ।
पूज्यमानो हरिश्रेष्ठैराजगाम बलालयम् ॥ ७ ॥

अब्रवीच्च तदा रामः समीपपरिवर्तिनम् ।
सौमित्रिं सत्यसंपन्नं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥ ८ ॥

विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय ।
अनुरक्तं च भक्तं च मम चैवोपकारिणम् ॥ ९ ॥

एष मे परमः कामो यदीमं रावणानुजम् ।
लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम् ॥ १० ॥

एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना ।
तथेत्युक्त्वा तु संहृष्टः सौवर्णं घटमाददे ॥ ११ ॥
तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान् ।
आदिदेश महासत्त्वान्समुद्रसलिलानये ॥ १२ ॥
इति शीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते महाबलाः ।
आगतास्तज्जलं गृह्य समुद्राद्वानरोत्तमाः ॥ १३ ॥
ततस्त्वेकं घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने ।
घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ॥ १४ ॥
लङ्कायां रक्षसां मध्ये राजानं रामशासनात् ।
विधिना मन्त्रदृष्टेन सुहृद्गणसमावृतम् ॥
अभ्यषिञ्चत्स धर्मात्मा शुद्धात्मानं विभीषणम् ॥ १५ ॥
तस्यामात्या जहृषिरे भक्ता ये चास्य राक्षसाः ।
दृष्ट्वाऽभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ॥ १६ ॥
स तद्राज्यं महत्प्राप्य रामदत्तं विभीषणः ।
प्रकृतीः सान्त्वयित्वा च ततो राममुपागमत् ॥ १७ ॥
अक्षतान्मोदकांल्लाजान्दिव्याः सुमनसस्तदा ।
आजह्रुरथ संहृष्टाः पौरास्तस्मै निशाचराः ॥ १८ ॥
स तान्गृहीत्वा दुर्धर्षो राघवाय न्यवेदयत् ।
मङ्गल्यं मङ्गलं सर्वं लक्ष्मणाय च वीर्यवान् ॥ १९ ॥

कृतकार्यं समृद्धार्थं दृष्ट्वा रामो विभीषणम् ।
प्रतिजग्राह तत्सर्वं तस्यैव प्रियकाम्यया ॥ २० ॥
ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं पार्श्वतः स्थितम् ।
अब्रवीद्राघवो वाक्यं हनुमन्तं प्लवङ्गमम् ॥ २१ ॥
बहुमानय राजानमिमं सौम्य विभीषणम् ॥ २२ ॥
गच्छ सौम्य पुरीं लङ्कामनुज्ञाप्य यथाविधि ।
प्रविश्य रावणगृहं विजयेनाभिनन्द्य च ॥ २३ ॥
वैदेह्यै मां कुशलिनं ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् ।
आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ रावणं च मया हतम् ॥ २४ ॥
प्रियमेतदुदाहृत्य मैथिल्यास्त्वं हरीश्वर ।
प्रतिगृह्य च सन्देशमुपावर्तितुमर्हसि ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20025 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5350

## षोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

### हनुमत्सीतासंवादः ॥

इति प्रतिसमादिष्टो हनुमान्मारुतात्मजः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥ १ ॥
प्रविश्य च महातेजा रावणस्य निवेशनम् ।
ददर्श शशिना हीनां सातङ्कामिव रोहिणीम् ॥
वृक्षमूले निरानन्दां राक्षसीभिः समावृताम् ॥ २ ॥

निभृतः प्रणतः प्रह्वः सोऽभिगम्याभिवाद्य च ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा तमागतं देवी हनुमन्तं महाबलम् ।
तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा प्रमुदिताऽभवत् ॥ ४ ॥

सौम्यं दृष्ट्वा मुखं तस्या हनुमान्प्लवगोत्तमः ।
रामस्य वचनं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥

वैदेहि कुशली रामः सहसुग्रीवलक्ष्मणः ।
विभीषणसहायश्च हरीणां सहितो बलैः ॥ ६ ॥

कुशलं चाह सिद्धार्थो हतशत्रुररिन्दमः ॥ ७ ॥

विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह ।
निहतो रावणो देवि लक्ष्मणस्य नयेन च ॥ ८ ॥

पृष्ट्वा तु कुशलं रामो वीरस्त्वां रघुनन्दनः ।
अब्रवीत्परमप्रीतः कृतार्थेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥
प्रियमाख्यामि ते देवि त्वां तु भूयः सभाजये ॥ १० ॥
दिष्ट्या जीवसि धर्मज्ञे जयो मे प्रतिगृह्यताम् ॥ ११ ॥
लब्धो नो विजयः सीते स्वस्था भव गतव्यथा ॥ १२ ॥
रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चेयं वशे स्थिता ॥ १३ ॥
मया ह्यलब्धनिद्रेण दृढेन तव निर्जये ।
प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ ॥ १४ ॥
संभ्रमश्च न गन्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये ॥ १५ ॥
विभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम् ॥ १६ ॥

तदाश्वसिहि विश्वस्ता स्वगृहे परिवर्तसे ॥ १७ ॥
अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ॥ १८ ॥

एवमुक्ता समुत्पत्य सीता शशिनिभानना ।
प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याजहार न किंचन ॥ १९ ॥

अब्रवीच्च हरिश्रेष्ठः सीतामप्रतिजल्पतीम् ॥ २० ॥

किं नु चिन्तयसे देवि किं नु मां नाभिभाषसे ॥ २१ ॥

एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मे व्यवस्थिता ।
अब्रवीत्परमप्रीता हर्षगद्गदया गिरा ॥ २२ ॥

प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम् ।
प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्याऽस्मि क्षणान्तरम् ॥ २३ ॥

न हि पश्यामि सदृशं चिन्तयन्ती प्लवङ्गम ।
मत्प्रियाख्यानकस्येह तव प्रत्यभिनन्दनम् ॥ २४ ॥

न हि पश्यामि तत्सौम्य पृथिव्यामपि वानर ।
सदृशं मत्प्रियाख्याने तव दातुं भवेत्समम् ॥ २५ ॥

हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च ।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु नैतदर्हति भाषितुम् ॥ २६ ॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः ।
गृहीतप्राञ्जलिर्वाक्यं सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥ २७ ॥

भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि ।
स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हसि भाषितुम् ॥ २८ ॥

तवैतद्वचनं सौम्ये सारवत्स्निग्धमेव च ।
रत्नौघाद्विविधाच्चापि देवराज्याद्विशिष्यते ॥ २९ ॥

अर्थतश्च मया प्राप्ता देवराज्यादयो गुणाः ।
हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थितम् ॥ ३० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली जनकात्मजा ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ॥ ३१ ॥

अतिलक्षणसम्पन्नं माधुर्यगुणभूषितम् ।
बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम् ॥ ३२ ॥

श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं पुत्रः परमधार्मिकः ।
बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम् ॥ ३३ ॥

तेजः क्षमा धृतिर्धैर्यं विनीतत्वं न संशयः ।
एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः ॥ ३४ ॥

अथोवाच पुनः सीतामसंभ्रान्तो विनीतवत् ।
प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात्सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥ ३५ ॥

इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे ।
हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा ॥ ३६ ॥

क्लिश्यन्तीं पतिदेवां त्वामशोकवनिकां गताम् ।
घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः ॥
राक्षस्यो दारुणकथा वरमेतत्प्रयच्छ मे ॥ ३७ ॥

मुष्टिभिः पाणिभिः सर्वाश्चरणैश्चैव शोभने ।
इच्छामि विविधैर्घातैर्हन्तुमेताः सुदारुणाः ॥ ३८ ॥

घातैर्जानुप्रहारैश्च दशनानां च पातनैः ।
भक्षणैः कर्णनासानां केशानां लुञ्चनैस्तथा ॥ ३९ ॥

नखैः शुष्कमुखीभिश्च दारणैर्लङ्घनैर्हतैः ।
निपात्य हन्तुमिच्छामि तव विप्रियकारिणीः ॥ ४० ॥

एवंप्रकारैर्बहुभिर्विप्रकारैर्यशस्विनि ।
हन्तुमिच्छाम्यहं देवि तवेमाः कृतकिल्बिषाः ॥ ४१ ॥

एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा ।
उवाच धर्मसहितं हनुमन्तं यशस्विनी ॥ ४२ ॥

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वन्तीनां पराज्ञया ।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम ॥ ४३ ॥

भाग्यवैषम्ययोगेन पुरा दुश्चरितेन च ।
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥ ४४ ॥

प्राप्तव्यं तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम् ।
दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥ ४५ ॥

आज्ञप्ता रावणेनैता राक्षस्यो मामतर्जयन् ।
हते तस्मिन्न कुर्युर्हि तर्जनं वानरोत्तम ॥ ४६ ॥

अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणो धर्मसंस्थितः ।
ऋक्षेण गीतः श्लोको मे तन्निबोध प्लवङ्गम ॥ ४७ ॥

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥ ४८ ॥
पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम ।
कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ ४९ ॥
लोकहिंसाविहाराणां रक्षसां कामरूपिणाम् ।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥ ५० ॥
एवमुक्तस्तु हनुमान्सीतया वाक्यकोविदः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥ ५१ ॥
युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी यशस्विनी ।
प्रतिसन्दिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥ ५२ ॥
एवमुक्ता हनुमता वैदेही दीनवत्सला ।
अब्रवीद्द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं वानरोत्तम ॥ ५३ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान्मारुतात्मजः ।
हर्षयन्मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महाद्युतिः ॥ ५४ ॥
पूर्णचन्द्राननं रामं द्रक्ष्यस्यार्ये सलक्ष्मणम् ।
स्थिरमित्रं हतामित्रं शचीव त्रिदशेश्वरम् ॥ ५५ ॥
तामेवमुक्त्वा राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम् ।
आजगाम महावेगो हनुमान्यत्र राघवः ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20081 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 540

## सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

### सीतानयनम् ॥

स उवाच महाप्राज्ञमभिगम्य प्लवङ्गमः ।
रामं वचनमर्थज्ञो वरं सर्वधनुष्मताम् ॥ १ ॥

यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां च फलोदयः ।
तां देवीं शोकसन्तप्तां मैथिलीं द्रष्टुमर्हसि ॥ २ ॥

सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
मैथिली विजयं श्रुत्वा तत्र हर्षमुपागमत् ॥ ३ ॥

पूर्वकात्प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया ।
भर्तारं द्रष्टुमिच्छामि कृतार्थं सहलक्ष्मणम् ॥ ४ ॥

एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतां वरः ।
अगच्छत्सहसा ध्यानमीषद्बाष्पपरिप्लुतः ॥ ५ ॥

दीर्घमुष्णं विनिश्वस्य मेदिनीमवलोकयन् ।
उवाच मेघसङ्काशं विभीषणमुपस्थितम् ॥ ६ ॥

दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम् ।
इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम् ॥ ७ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः ।
प्रविश्यान्तःपुरं सीतां स्वाभिः स्त्रीभिरचोदयत् ॥ ८ ॥

दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ।
यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ ९ ।

एवमुक्ता तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम् ।
अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसाधिप ॥ १० ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ॥ ११ ॥
यदाह रामो भर्ता ते तत्तथा कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली भर्तृदेवता ।
भर्तृभक्तिव्रता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत ॥ १३ ॥
ततः सीतां शिरःस्नातां युवतीभिरलङ्कृताम् ।
महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम् ॥ १४ ॥
आरोप्य शिबिकां दीप्तां परार्ध्याम्बरसंवृताम् ।
रक्षोभिर्बहुभिर्गुप्तामाजहार विभीषणः ॥ १५ ॥
सोऽभिगम्य महात्मानं ज्ञात्वाऽपि ध्यानमास्थितम् ।
प्रणतश्च प्रहृष्टश्च प्राप्तां सीतां न्यवेदयत् ॥ १६ ॥
तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम् ।
हर्षो दैन्यं च रोषश्च त्रयं राघवमाविशत् ॥ १७ ॥
ततः पार्श्वगतं दृष्ट्वा सविमर्शं विचारयन् ।
विभीषणमिदं वाक्यं प्रहृष्टो राघवोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥
राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजये रत ।
वैदेही सन्निकर्षं मे शीघ्रं समुपगच्छतु ॥ १९ ॥
स तद्वचनमाज्ञाय राघवस्य विभीषणः ।
तूर्णमुत्सारणे यत्नं कारयामास सर्वतः ॥ २० ॥

कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रजर्जरपाणयः ।
उत्सारयन्तः पुरुषाः समन्तात्परिचक्रमुः ॥ २१ ॥

ऋक्षाणां वानराणां च राक्षसानां च सर्वशः ।
वृन्दान्युत्सार्यमाणानि दूरमुत्तस्थुस्तदा ॥ २२ ॥

तेषामुत्सार्यमाणानां सर्वेषां ध्वनिरुत्थितः ।
वायुनोद्वर्तमानस्य सागरस्येव निस्वनः ॥ २३ ॥

उत्सार्यमाणांस्तान्दृष्ट्वा समन्ताज्जातसंभ्रमान् ।
दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च वारयामास राघवः ॥ २४ ॥

संरब्धश्चाब्रवीद्रामश्चक्षुषा प्रदहन्निव ।
विभीषणं महाप्राज्ञं सोपालम्भमिदं वचः ॥ २५ ॥

किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः ।
निवर्तयैनमुद्वेगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥ २६ ॥

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रियाः ।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः ॥ २७ ॥

व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे ।
न क्रतौ न विवाहे च दर्शनं दुष्यति स्त्रियाः ॥ २८ ॥

सैषा युद्धगता चैव कृच्छ्रे च महति स्थिता ।
दर्शनेऽस्या न दोषः स्यान्मत्समीपे विशेषतः ॥ २९ ॥

तदानय समीपं मे शीघ्रमेनां विभीषण ।
सीता पश्यतु मामेषा सुहृद्गणवृतं स्थितम् ॥ ३० ॥

एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो विभीषणः ।
रामस्योपानयत्सीतां सन्निकर्षं विनीतवत् ॥ ३१ ॥

ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनुमांश्च प्लवङ्गमः ।
निशम्य वाक्यं रामस्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥ ३२ ॥

कलत्रनिरपेक्षैश्च इङ्गितैरस्य दारुणैः ।
अप्रीतमिव सीतायां तर्कयन्ति स्म राघवम् ॥ ३३ ॥

लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली ।
विभीषणेनानुगता भर्तारं साऽभ्यवर्तत ॥ ३४ ॥

सा वस्त्रसंरुद्धमुखी लज्जया जनसंसदि ।
रुरोदासाद्य भर्तारमार्यपुत्रेति भाषिणी ॥ ३५ ॥

विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता ।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥ ३६ ॥

अथ समपनुदन्मनःक्लमं सा
सुचिरमदृष्टमुदीक्ष्य वै प्रियस्य ।
वदनमुदितपूर्णचन्द्रकान्तं
विमलशशाङ्कनिभानना तदाऽऽसीत् ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20118 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5443

## अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

### श्रीरामपरुषोक्तिः ॥

तां तु पार्श्वस्थितां प्रह्वां रामः संप्रेक्ष्य मैथिलीम् ।
हृदयान्तर्गतक्रोधो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

एषाऽसि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा मया रणे ।
पौरुषाद्यदनुष्ठेयं तदेतदुपपादितम् ॥ २ ॥

गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा संप्रमार्जिता ।
अवमानश्च शत्रुश्च मया युगपदुद्धृतौ ॥ ३ ॥

अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः ।
अद्य तीर्णप्रतिज्ञत्वात्प्रभवामीह चात्मनः ॥ ४ ॥

या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा ।
दैवसंपादितो दोषो मानुषेण मया जितः ॥ ५ ॥

संप्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ।
कस्तस्य पुरुषार्थोऽस्ति पुरुषस्याल्पतेजसः ॥ ६ ॥

लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चावमर्दनम् ।
सफलं तस्य तच्छ्लाघ्यं महत्कर्म हनूमतः ॥ ७ ॥

युद्धे विक्रमतश्चैव हितं मन्त्रयतश्च मे ।
सुग्रीवस्य ससैन्यस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥ ८ ॥

निर्गुणं भ्रातरं त्यक्त्वा यो मां स्वयमुपस्थितः ।
विभीषणस्य भक्तस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥ ९ ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सीता रामस्य तद्वचः ।
मृगीवोत्फुल्लनयना बभूवाश्रुपरिप्लुता ॥ १० ॥

पश्यतस्तां तु रामस्य भूयः क्रोधो व्यवर्धत ।
प्रभूताज्यावसिक्तस्य पावकस्येव दीप्यतः ॥ ११ ॥

स बद्ध्वा भ्रुकुटीं वक्त्रे तिर्यक्प्रेक्षितलोचनः ।
अब्रवीत्परुषं सीतां मध्ये वानररक्षसाम् ॥ १२ ॥

यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां परिमार्जता ।
तत्कृतं सकलं सीते शत्रुहस्तादमर्षणात् ॥ १३ ॥

निर्जिता जीवलोकस्य तपसा भावितात्मना ।
अगस्त्येन दुराधर्षा मुनिना दक्षिणेव दिक् ॥ १४ ॥

विदितश्चास्तु ते भद्रे योऽयं रणपरिश्रमः ।
स तीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थं मया कृतः ॥ १५ ॥

रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वशः ।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिमार्जता ॥ १६ ॥

प्राप्तचारित्रसंदेहा मम प्रतिमुखे स्थिता ।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलाऽसि मे दृढम् ॥ १७ ॥

तद्गच्छ ह्यभ्यनुज्ञाता यथेष्टं जनकात्मजे ।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ॥ १८ ॥

कः पुमान्हि कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् ।
तेजस्वी पुनरादद्यात्सुहृल्लेख्येन चेतसा ॥ १९ ॥

रावणाङ्कपरिभ्रष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा ।
कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन्महत् ॥ २० ॥

तदर्थं निर्जिता मे त्वं यशः प्रत्याहृतं मया ॥ २१ ॥

नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामितः ॥ २२ ॥

इति प्रव्याहृतं भद्रे मयैतत्कृतबुद्धिना ।
लक्ष्मणे भरते वा त्वं कुरु बुद्धिं यथासुखम् ॥ २३ ॥

सुग्रीवे वानरेन्द्रे वा राक्षसेन्द्रे विभीषणे ।
निवेशय मनः सीते यथा वा सुखमात्मनः ॥ २४ ॥

न हि त्वां रावणो दृष्ट्वा दिव्यरूपां मनोरमाम् ।
मर्षयेत चिरं सीते स्वगृहे परिवर्तिनीम् ॥ २५ ॥

ततः प्रियार्हश्रवणा तदप्रियं
प्रियादुपश्रुत्य चिरस्य मैथिली ।
मुमोच बाष्पं सुभृशं प्रवेपिता
गजेन्द्रहस्ताभिहतेव सल्लकी ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20144 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5469

## एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

### सीताग्निप्रवेशः ॥

एवमुक्ता तु वैदेही परुषं रोमहर्षणम् ।
राघवेण सरोषेण भृशं प्रव्यथिताऽभवत् ॥ १ ॥

सा तदश्रुतपूर्वं हि जने महति मैथिली ।
श्रुत्वा भर्तृवचो रूक्षं लज्जया व्रीडिताऽभवत् ॥ २ ॥

प्रविशन्तीव गात्राणि स्वान्येव जनकात्मजा ।
वाक्छल्यैस्तैः सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥ ३ ॥

ततो बाष्पपरिक्लिष्टं प्रमार्जन्ती स्वमाननम् ।
शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥

किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् ।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ ५ ॥

न तथाऽस्मि महाबाहो यथा त्वमवगच्छसि ।
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे ॥ ६ ॥

पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं तां परिशङ्कसे ॥ ७ ॥

परित्यजेमां शङ्कां तु यदि तेऽहं परीक्षिता ॥ ८ ॥

यद्यहं गात्रसंस्पर्शं गताऽस्मि विवशा प्रभो ।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ ९ ॥

मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते ।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ॥ १० ॥

सह संवृद्धभावाच्च संसर्गेण च मानद ।
यद्यहं ते न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥ ११ ॥

प्रेषितस्ते यदा वीरो हनुमानवलोककः ।
लङ्कास्थाऽहं त्वया वीर किं तदा न विसर्जिता ॥ १२ ॥

प्रत्यक्षं वानरेन्द्रस्य त्वद्वाक्यसमनन्तरम् ।
त्वया संत्यक्तया वीर त्यक्तं स्याज्जीवितं मया ॥ १३ ॥

न वृथा ते श्रमोऽयं स्यात्संशये न्यस्य जीवितम् ।
सुहृज्जनपरिक्लेशो न चायं निष्फलस्तव ॥ १४ ॥

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥ १५ ॥

अपदेशेन जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात् ।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु तेन पुरस्कृतम् ॥ १६ ॥

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः ।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥ १७ ॥

एवं ब्रुवाणा रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी ।
अब्रवील्लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरं स्थितम् ॥ १८ ॥

चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् ।
मिथ्योपघातोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ १९ ॥

अप्रीतस्य गुणैर्भर्तुस्त्यक्ताया जनसंसदि ।
या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ २० ॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा ।
अमर्षवशमापन्नो राघवाननमैक्षत ॥ २१ ॥

स विज्ञाय ततश्छन्दं रामस्याकारसूचितम् ।
चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥ २२ ॥

अधोमुखं तदा रामं शनैः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
उपासर्पत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ॥ २३ ॥

प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥ २४ ॥

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ २५ ॥

यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ २६ ॥

कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम् ।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः ॥ २७ ॥

आदित्यो भगवान्वायुर्दिशश्चन्द्रस्तथैव च ।
अहश्चापि तथा संध्ये रात्रिश्च पृथिवी तथा ॥
यथान्येऽपि विजानन्ति तथा चारित्रसंयुताम् ॥ २८ ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम् ।
विवेश ज्वलनं दीप्तं निःसङ्गेनान्तरात्मना ॥ २९ ॥

जनः स सुमहांस्त्रस्तो बालवृद्धसमाकुलः ।
ददर्श मैथिलीं तत्र प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ ३० ॥
सा तप्तनवहेमाभा तप्तकाञ्चनभूषणा ।
पपात ज्वलनं दीप्तं सर्वलोकस्य सन्निधौ ॥ ३१ ॥
ददृशुस्तां विशालाक्षीं पतन्तीं हव्यवाहने ।
सीतां सर्वाणि रूपाणि रुक्मवेदिनिभां तदा ॥ ३२ ॥
प्रचुक्रुशुः स्त्रियः सर्वास्तां दृष्ट्वा हव्यवाहने ।
पतन्तीं संस्कृतां मन्त्रैर्वसोर्धारामिवाध्वरे ॥ ३३ ॥
ददृशुस्तां त्रयो लोका देवगन्धर्वदानवाः ।
शप्तां पतन्तीं निरये त्रिदिवाद्देवतामिव ॥ ३४ ॥
तस्यामग्निं विशन्त्यां तु हा हेति विपुलः स्वनः ।
रक्षसां वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20179 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 4550

## विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

श्रीरामस्तवः ॥

ततो हि दुर्मना रामः श्रुत्वैवं वदतां गिरः ।
दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा बाष्पव्याकुललोचनः ॥ १ ॥
ततो वैश्रवणो राजा यमश्चामित्रकर्शनः ।
सहस्राक्षो महेन्द्रश्च वरुणश्च परंतपः ॥ २ ॥

षडर्धनयनः श्रीमान्महादेवो वृषध्वजः ।
कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ ३ ॥
एते सर्वे समागम्य विमानैः सूर्यसन्निभैः ।
आगम्य नगरीं लङ्कामभिजग्मुश्च राघवम् ॥ ४ ॥
ततः सहस्ताभरणान्प्रगृह्य विपुलान्भुजान् ।
अब्रुवंस्त्रिदशश्रेष्ठाः प्राञ्जलिं राघवं स्थितम् ॥ ५ ॥
कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानवतां वरः ।
उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने ॥ ६ ॥
कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुध्यसे ॥ ७ ॥
ऋतधामा वसुः पूर्वं वसूनां त्वं प्रजापतिः ।
त्रयाणां त्वं हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥ ८ ॥
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामसि पञ्चमः ।
अश्विनौ चापि ते कर्णौ चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी ॥ ९ ॥
अन्ते चादौ च लोकानां दृश्यसे त्वं परन्तप ।
उपेक्षसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा ॥ १० ॥
इत्युक्तो लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य राघवः ।
अब्रवीत्त्रिदशश्रेष्ठान्रामो धर्मभृतां वरः ॥ ११ ॥
आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।
योऽहं यस्य यतश्चाहं भगवांस्तद्ब्रवीतु मे ॥ १२ ॥
इति ब्रुवन्तं काकुत्स्थं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
अब्रवीच्छृणु मे राम सत्यं सत्यपराक्रम ॥ १३ ॥

भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधो विभुः ।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥ १४ ॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥ १५ ॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ।
अजितः खड्गधृद्विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः ॥ १६ ॥
सेनानीर्ग्रामणीश्च त्वं बुद्धिः सत्त्वं क्षमा दमः ।
प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः ॥ १७ ॥
इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत् ।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ॥ १८ ॥
सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतजिह्वो महर्षभः ।
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥ १९ ॥
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः ॥ २० ॥
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परन्तपः ।
प्रभवं निधनं वा ते न विदुः को भवानिति ॥ २१ ॥
दृश्यसे सर्वभूतेषु ब्राह्मणेषु च गोषु च ।
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु वनेषु च ॥ २२ ॥
सहस्रचरणः श्रीमाञ्छतशीर्षः सहस्रदृक् ।
त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च सपर्वताम् ॥ २३ ॥
अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः ।
त्रीँल्लोकान्धारयन्राम देवगन्धर्वदानवान् ॥ २४ ॥

अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ।
देवा गात्रेषु रोमाणि निर्मिता ब्रह्मणा प्रभो ॥ २५ ॥
निमेषस्ते भवेद्रात्रिरुन्मेषस्ते भवेद्दिवा ।
संस्कारास्तेऽभवन्वेदा न तदस्ति त्वया विना ॥ २६ ॥
जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ।
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः ॥ २७ ॥
त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुराणे विक्रमैस्त्रिभिः ।
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा महासुरम् ॥ २८ ॥
सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ।
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥ २९ ॥
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया धर्मभृतां व ॥ ३० ॥
निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ॥ ३१ ॥
अमोघं बलवीर्यं ते अमोघस्ते पराक्रमः ॥ ३२ ॥
अमोघं दर्शनं राम न च मोघः स्तवस्तव ॥ ३३ ॥
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तश्च ये नराः ॥ ३४ ॥
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
प्राप्नुवन्ति सदा कामानिह लोके परत्र च ॥ ३५ ॥
इममार्षं स्तवं नित्यमितिहासं पुरातनम् ।
ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20215 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5540

## एकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

### सीतास्वीकारः ॥

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम् ।
अङ्केनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः ॥ १ ॥

स विधूय चितां तां तु वैदेहीं हव्यवाहनः ।
उत्तस्थौ मूर्तिमानाशु गृहीत्वा जनकात्मजाम् ॥ २ ॥

तरुणादित्यसङ्काशां तप्तकाञ्चनभूषणाम् ।
रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ॥ ३ ॥

अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपां मनस्विनीम् ।
ददौ रामाय वैदेहीमङ्के कृत्वा विभावसुः ॥ ४ ॥

अब्रवीच्च तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः ॥ ५ ॥

एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥ ६ ॥

नैव वाचा न मनसा नानुध्यानान्न चक्षुषा ।
सुवृत्ता वृत्तशौण्डीर न त्वामतिचचार ह ॥ ७ ॥

रावणेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा ।
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जिता वनात् ॥ ८ ॥

रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा ।
रक्षिता राक्षसीसङ्घैर्विकृतैर्घोरदर्शनैः ॥ ९ ॥

प्रलोभ्यमाना विविधं भर्त्स्यमाना च मैथिली ।
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ १० ॥

विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व राघव ।
न किञ्चिदभिधातव्यमहमाज्ञापयामि ते ॥ ११ ॥

ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वैतद्वदतां वरः ।
दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा बाष्पव्याकुललोचनः ॥ १२ ॥

एवमुक्तो महातेजा द्युतिमान्दृढविक्रमः ।
अब्रवीत्त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः ॥ १३ ॥

अवश्यं त्रिषु लोकेषु सीता पावनमर्हति ।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥ १४ ॥

बालिशः खलु कामात्मा रामो दशरथात्मजः ।
इति वक्ष्यन्ति मां सन्तो जानकीमविशोध्य हि ॥ १५ ॥

अनन्यहृदयां भक्तां मच्चित्तपरिवर्तिनीम् ।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ १६ ॥

प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः ।
उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ १७ ॥

इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा ।
रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः ॥ १८ ॥

न हि शक्तः स दुष्टात्मा मनसाऽपि हि मैथिलीम् ।
प्रधर्षयितुमप्राप्तां दीप्तामग्निशिखामिव ॥ १९ ॥

नेयमर्हति चैश्वर्यं रावणान्तःपुरे शुभा ।
अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा ॥ २० ॥

इदानीं तु विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः ।
वधार्थं रावणस्येदं विहितं पुरुषोत्तम ॥ १७ ॥
सिद्धार्था खलु कौसल्या या त्वां राम गृहं गतम् ।
वनान्निवृत्तं संहृष्टा द्रक्ष्यत्यरिनिषूदन ॥ १८ ॥
सिद्धार्थाः खलु ते राम नरा ये त्वां पुरीं गतम् ।
जलार्द्रमभिषिक्तं च द्रक्ष्यन्ति वसुधाधिपम् ॥ १९ ॥
अनुरक्तेन बलिना शुचिना धर्मचारिणा ।
इच्छामि त्वामहं द्रष्टुं भरतेन समागतम् ॥ २० ॥
चतुर्दश समाः सौम्य वने निर्यापितास्त्वया ।
वसता सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च धीमता ॥ २१ ॥
निवृत्तवनवासोऽसि प्रतिज्ञा सफला कृता ।
रावणं च रणे हत्वा देवास्ते परितोषिताः ॥ २२ ॥
कृतं कर्म यशः श्लाघ्यं प्राप्तं ते शत्रुसूदन ।
भ्रातृभिः सह राज्यस्थो दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥ २३ ॥
इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ २४ ॥
कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च ।
सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता कैकयी त्वया ॥ २५ ॥
स शापः कैकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत्प्रभो ॥ २६ ॥
स तथेति महाराजो राममुक्त्वा कृताञ्जलिम् ।
लक्ष्मणं च परिष्वज्य पुनर्वाक्यमुवाच ह ॥ २७ ॥
रामं शुश्रूषता भक्त्या वैदेह्या सह सीतया ।
कृता मम महाप्रीतिः प्राप्तं धर्मफलं च ते ॥ २८ ॥

धर्मं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ यशश्च विपुलं भुवि ।
रामे प्रसन्ने स्वर्गं च महिमानं तथैव च ॥ २९ ॥
रामं शुश्रूष भद्रं ते सुमित्रानन्दवर्धन ।
रामः सर्वस्य लोकस्य शुभेष्वभिरतः सदा ॥ ३० ॥
एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अभिगम्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥ ३१ ॥
एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसंमितम् ।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परन्तपः ॥ ३२ ॥
अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलं त्वया ।
रामं शुश्रूषता भक्त्या वैदेह्या सह सीतया ॥ ३३ ॥
स तथोक्त्वा महाबाहुर्लक्ष्मणं प्राञ्जलिं स्थितम् ।
उवाच राजा धर्मात्मा वैदेहीं वचनं शुभम् ॥ ३४ ॥
कर्तव्यो न तु वैदेहि मन्युस्त्यागमिमं प्रति ।
रामेण त्वद्विशुद्ध्यर्थं कृतमेतद्धितैषिणा ॥ ३५ ॥
न त्वं सुभ्रु समाधेया पतिशुश्रूषणं प्रति ।
अवश्यं तु मया वाच्यमेष ते दैवतं परम् ॥ ३६ ॥
इति प्रतिसमादिश्य पुत्रौ सीतां तथा स्नुषाम् ।
इन्द्रलोकं विमानेन ययौ दशरथो ज्वलन् ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20275 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5600

## त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥

### वानरोज्जीवनम् ॥

प्रतियाते तु काकुत्स्थे महेन्द्रः पाकशासनः ।
अब्रवीत्परमप्रीतो राघवं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥ १ ॥

अमोघं दर्शनं राम तवास्माकं परन्तप ।
प्रीतियुक्ताः स्म तेन त्वं ब्रूहि यन्मनसेच्छसि ॥ २ ॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
लक्ष्मणेन सह भ्राता सीतया सह भार्यया ॥ ३ ॥

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना मयि सर्वसुरेश्वर ।
वक्ष्यामि कुरु ते सत्यं वचनं वदतां वर ॥ ४ ॥

मम हेतोः पराक्रान्ता ये गता यमसादनम् ।
ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानराः ॥ ५ ॥

मत्कृते विप्रयुक्ता ये पुत्रैर्दारैश्च वानराः ।
तान् प्रीतमनसः सर्वान् द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥ ६ ॥

विक्रान्ताश्चापि शूराश्च न मृत्युं गणयन्ति च ।
कृतयत्ना विपन्नाश्च जीवयैतान् पुरन्दर ॥ ७ ॥

मत्प्रियेष्वभिरक्ताश्च न मृत्युं गणयन्ति च ।
त्वत्प्रसादात्समेयुस्ते वरमेतदहं वृणे ॥ ८ ॥

नीरुजो निर्व्रणांश्चैव सम्पन्नबलपौरुषान् ।
गोलाङ्गूलांस्तथैवर्क्षान्द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥ ९ ॥

अकाले चापि मुख्यानि मूलानि च फलानि च ।
नद्यश्च विमलास्तत्र तिष्ठेयुर्यत्र वानराः ॥ १० ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य राघवस्य महात्मनः ।
महेन्द्रः प्रत्युवाचेदं वचनं प्रीतिलक्षणम् ॥ ११ ॥

महानयं वरस्तात त्वयोक्तो रघुनन्दन ।
द्विर्मया नोक्तपूर्वं हि तस्मादेतद्भविष्यति ॥ १२ ॥

समुत्तिष्ठन्तु ते सर्वे हता ये युधि राक्षसैः ।
ऋक्षाश्च सहगोपुच्छा निकृत्ताननबाहवः ॥ १३ ॥

नीरुजो निर्व्रणाश्चैव सम्पन्नबलपौरुषाः ।
समुत्थास्यन्ति हरयः सुप्ता निद्राक्षये यथा ॥ १४ ॥

सुहृद्भिर्बान्धवैश्चैव ज्ञातिभिः स्वजनैरपि ।
सर्व एव समेष्यन्ति संयुक्ताः परया मुदा ॥ १५ ॥

अकाले पुष्पशबलाः फलवन्तश्च पादपाः ।
भविष्यन्ति महेष्वास नद्यश्च सलिलायुताः ॥ १६ ॥

सव्रणैः प्रथमं गात्रैः संवृत्तैर्निर्व्रणैः पुनः ॥ १७ ॥

ततः समुत्थिताः सर्वे सुप्त्वेव हरिपुङ्गवाः ।
ते समेत्य मुदा युक्ता राघवायाभ्यवादयन् ॥ १८ ॥

तान् दृष्ट्वा युद्धनिहतान् पुनरेव समुत्थितान् ।
बभूवुर्वानराः सर्वे किमेतदिति विस्मिताः ॥ १९ ॥

काकुत्स्थं परिपूर्णार्थं दृष्ट्वा सर्वे सुरोत्तमाः ।
ऊचुस्ते प्रथमं स्तुत्वा स्तवार्हं सहलक्ष्मणम् ॥ २० ॥

गच्छायोध्यामितो वीर विसर्जय च वानरान् ।
मैथिलीं सान्त्वयस्वैनामनुरक्तां तपस्विनीम् ॥
शत्रुघ्नं च महात्मानं मातृः सर्वाः परन्तप ॥ २१ ॥

भ्रातरं पश्य भरतं त्वच्छोकाद्व्रतधारिणम् ।
अभिषेचय चात्मानं पौरान्गत्वा प्रहर्षय ॥ २२ ॥

एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य रामं सौमित्रिणा सह ।
विमानैः सूर्यसङ्काशैर्हृष्टा जग्मुः सुरा दिवम् ॥ २३ ॥

अभिवाद्य च काकुत्स्थः सर्वांस्तांस्त्रिदशोत्तमान् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वासमाज्ञापयत्तदा ॥ २४ ॥

ततस्तु सा लक्ष्मणरामपालिता
महाचमूर्हृष्टजना यशस्विनी ।
श्रिया ज्वलन्ती विरराज सर्वतो
निशा प्रणीतेव हि शीतरश्मिना ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20300 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5625

## चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

### श्रीरामस्य विभीषणसत्कारः ॥

तां रात्रिमुषितं रामं सुखोत्थितमरिन्दमम् ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं जयं पृष्ट्वा विभीषणः ॥ १ ॥

स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्राण्याभरणानि च ।
चन्दनानि च दिव्यानि माल्यानि विविधानि च ॥ २ ॥

अलङ्कारविदश्चेमा नार्यः पद्मनिभेक्षणाः ।
उपस्थितास्त्वां विधिवत्स्नापयिष्यन्ति राघव ॥
प्रतिगृह्णीष्व तत्सर्वं मदनुग्रहकाम्यया ॥ ३ ॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
हरीन्सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनाभिनिमन्त्रय ॥ ४ ॥

स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः ।
सुकुमारो महाबाहुः कुमारः सत्यसंश्रवः ॥ ५ ॥

तं विना कैकयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम् ।
न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ॥ ६ ॥

इत एव पथा क्षिप्रं प्रतिगच्छामि तां पुरीम् ।
अयोध्यामागतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥ ७ ॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः ।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥ ८ ॥

पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसन्निभम् ।
मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेनाहृतं बलात् ॥ ९ ॥

हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम् ।
त्वदर्थे पालितं चैतत्तिष्ठत्यतुलविक्रम ॥ १० ॥
तदिदं मेघसङ्काशं विमानमिह तिष्ठति ।
तेन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः ॥ ११ ॥
अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान् ।
वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥ १२ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ।
अर्चितः सर्वकामैस्त्वं ततो राम गमिष्यसि ॥ १३ ॥
प्रीतियुक्तस्य मे राम ससैन्यः ससुहृद्गणः ।
सत्क्रियां विहितां तावद्गृहाण त्वं मयोद्यताम् ॥ १४ ॥
प्रणयाद्बहुमानाच्च सौहृदेन च राघव ।
प्रसादयामि प्रेष्योऽहं न खल्वाज्ञापयामि ते ॥ १५ ॥
एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
रक्षसां वानराणां च सर्वेषां चोपशृण्वताम् ॥ १६ ॥
पूजितोऽहं त्वया सौम्य साचिव्येन परन्तप ।
सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहृदेनोत्तमेन च ॥ १७ ॥
न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर ।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ॥ १८ ॥
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः ।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया ॥ १९ ॥
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।
गुरूंश्च सुहृदश्चैव पौरांश्च तनयैः सह ॥ २० ॥

उपस्थापय मे क्षिप्रं विमानं राक्षसेश्वर ।
कृतकार्यस्य मे वासः कथंस्विदिह संमतः ॥ २१ ॥
अनुजानीहि मां सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण ।
मन्युर्न खलु कर्तव्यस्त्वरितं त्वाऽनुमानये ॥ २२ ॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
तं विमानं समादाय तूर्णं प्रतिनिवर्तत ॥ २३ ॥
ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैडूर्यमयवेदिकम् ।
कूटागारैः परिक्षिप्तं सर्वतो रजतप्रभम् ॥ २४ ॥
पाण्डुराभिः पताकाभिर्ध्वजैश्च समलंकृतम् ।
शोभितं काञ्चनैर्हर्म्यैर्हेमपद्मविभूषितम् ॥ २५ ॥
प्रकीर्णं किङ्किणीजालैर्मुक्तामणिगवाक्षितम् ।
घण्टाजालैः परिक्षिप्तं सर्वतो मधुरस्वनम् ॥ २६ ॥
यन्मेरुशिखराकारं निर्मितं विश्वकर्मणा ।
बहुभिर्भूषितं हर्म्यैर्मुक्तारजतसन्निभैः ॥ २७ ॥
तलैः स्फाटिकचित्राङ्गैर्वैडूर्यैश्च वरासनैः ।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥ २८ ॥
उपस्थितमनाधृष्यं तद्विमानं मनोजवम् ।
निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20329 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5654

## पञ्चविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

### वानरसेनासंमाननम् ॥

उपस्थितं तु तं दृष्ट्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् ।
अविदूरस्थितो रामं प्रत्युवाच विभीषणः ॥ १ ॥

स तु बद्धाञ्जलिः प्रह्वो विनीतो राक्षसेश्वरः ।
अब्रवीत्त्वरयोपेतः किं करोमीति राघवम् ॥ २ ॥

तमब्रवीन्महातेजा लक्ष्मणस्योपशृण्वतः ।
विमृश्य राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥ ३ ॥

कृतप्रयत्नकर्माणो विभीषण वनौकसः ।
रत्नैरर्थैश्च विविधैर्भूषणैश्चापि पूजय ॥ ४ ॥

सहैभिरजिता लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर ।
हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः ॥ ५ ॥

त इमे कृतकर्माणः पूज्यन्तां सर्ववानराः ।
धनरत्नप्रदानेन कर्मैषां सफलं कुरु ॥ ६ ॥

एवं सम्मानिताश्चैते मानार्हा मानद त्वया ।
भविष्यन्ति कृतज्ञेन निर्वृता हरियूथपाः ॥ ७ ॥

त्यागिनं संग्रहीतारं सानुक्रोशं यशस्विनम् ।
सर्वे त्वामवगच्छन्ति ततः संबोधयाम्यहम् ॥ ८ ॥

हीनं रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे ।
त्यजन्ति नृपतिं सैन्याः संविग्नास्तं नरेश्वरम् ॥ ९ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान्विभीषणः ।
रत्नार्थैः संविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत् ॥ १० ॥
ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वा रत्नैरर्थैश्च यूथपान् ।
आरुरोह ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥ ११ ॥
अङ्केनादाय वैदेहीं लज्जमानां यशस्विनीम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ॥ १२ ॥
अब्रवीच्च विमानस्थः पूजयन्सर्ववानरान् ।
सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः सविभीषणम् ॥ १३ ॥
मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरोत्तमाः ।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत ॥ १४ ॥
यत्तु कार्यं वयस्येन सुहृदा वा परन्तप ।
कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवताऽधर्मभीरुणा ॥ १५ ॥
किष्किन्धां प्रतियाह्याशु स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥ १६ ॥
स्वराज्ये वस लङ्कायां मया दत्ते विभीषण ।
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः ॥ १७ ॥
अयोध्यां प्रतियास्यामि राजधानीं पितुर्मम ।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वांश्चामन्त्रयामि वः ॥ १८ ॥
एवमुक्तास्तु रामेण वानरास्ते महाबलाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयो रामं राक्षसश्च विभीषणः ॥ १९ ॥
अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान्नयतु नो भवान् ।
उद्युक्ता विचरिष्यामो वनानि नगराणि च ॥ २० ॥

दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं कौसल्यामभिवाद्य च ।
अचिरेणागमिष्यामः स्वान्गृहान्नृपतेः सुत ॥ २१ ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सविभीषणैः ।
अब्रवीद्राघवः श्रीमान्ससुग्रीवविभीषणान् ॥ २२ ॥

प्रियात्प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः ।
सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः ॥ २३ ॥

क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं वानरैः सह ।
त्वमध्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषण ॥ २४ ॥

ततस्तत्पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह सेनया ।
अध्यारोहत्त्वरञ्छीघ्रं सामात्यश्च विभीषणः ॥ २५ ॥

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम् ॥ २६ ॥

ययौ तेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता ।
प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ॥ २७ ॥

ते सर्वे वानरा हृष्टा राक्षसाश्च महाबलाः ।
यथासुखमसंबाधं दिव्ये तस्मिन्नुपाविशन् ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे पञ्चविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20357 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5682

## षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

### सीतायै तत्तद्देशप्रदर्शनम् ॥

अनुज्ञातं तु रामेण तद्विमानमनुत्तमम् ।
उत्पपात महामेघः श्वसनेनोद्धतो यथा ॥ १ ॥
पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः ।
अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥ २ ॥
कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ।
लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ ३ ॥
एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमः ।
हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत् ॥ ४ ॥
अत्र दत्तवरः शेते प्रमाथी राक्षसेश्वरः ।
तव हेतोर्विशालाक्षि रावणो निहतो मया ॥ ५ ॥
कुम्भकर्णोऽत्र निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः ।
धूम्राक्षश्चात्र निहतो वानरेण हनूमता ॥ ६ ॥
विद्युन्माली हतश्चात्र सुषेणेन महात्मना ॥ ७ ॥
लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे ।
अङ्गदेनात्र निहतो विकटो नाम राक्षसः ॥ ८ ॥
विरूपाक्षश्च दुर्धर्षो महापार्श्वमहोदरौ ।
अकम्पनश्च निहतो बलिनोऽन्ये च राक्षसाः ॥ ९ ॥
त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
युद्धोन्मत्तश्च मत्तश्च राक्षसप्रवरावुभौ ॥ १० ॥

मकराक्षश्च दुर्धर्षो मया युधि निपातितः ।
यज्ञशत्रुर्ब्रह्मशत्रुः शोणिताक्षश्च वीर्यवान् ॥ ११ ॥

यूपाक्षश्च प्रजङ्घश्च निहतौ तु महाहवे ।
विद्युज्जिह्वोऽत्र निहतो राक्षसो भीमदर्शनः ॥ १२ ॥

निकुम्भश्चैव कुम्भश्च कुम्भकर्णात्मजो बली ।
वज्रदंष्ट्रश्च दंष्ट्रश्च बहवो राक्षसा हताः ॥ १३ ॥

अत्र मण्डोदरी नाम भार्या तं पर्यदेवयत् ।
सपत्नीनां सहस्रेण सास्रेण परिवारिता ॥ १४ ॥

एतत्तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने ।
यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम् ॥ १५ ॥

एष सेतुर्मया बद्धः सागरे सलिलार्णवे ।
तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः ॥ १६ ॥

पश्य सागरमक्षोभ्यं वैदेहि वरुणालयम् ।
अपारमभिगर्जन्तं शङ्खशुक्तिनिषेवितम् ॥ १७ ॥

हिरण्यनाभं शैलेन्द्रं काञ्चनं पश्य मैथिलि ।
विश्रमार्थं हनुमतो भित्त्वा सागरमुत्थितम् ॥ १८ ॥

एतत्कुक्षौ समुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशनम् ॥ १९ ॥

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येनाभिपूजितम् ॥
शुभं पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ॥ २० ॥

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोत्प्रभुः ॥ २१ ॥

अत्र राक्षसराजोऽयमाजगाम विभीषणः ॥ २२ ॥

एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना ।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मया हतः ॥ २३ ॥

अथ दृष्ट्वा पुरीं सीता किष्किन्धां वालिपालिताम् ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा ॥ २४ ॥

सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप ।
अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम् ॥
गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वयाऽनघ ॥ २५ ॥

एवमुक्तोऽथ वैदेह्या राघवः प्रत्युवाच ताम् ।
एवमस्त्विति किष्किन्धां प्राप्य संस्थाप्य राघवः ॥
विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २६ ॥

ब्रूहि वानरशार्दूल सर्वान्वानरपुङ्गवान् ।
स्वदारसहिताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया ॥ २७ ॥

तथा त्वमपि सर्वाभिः स्त्रीभिः सह महाबल ।
अयोध्यां याहि सीतायाः काम एष प्रपूर्यताम् ॥
अभित्वरस्व सुग्रीव गच्छामः प्लवगेश्वर ॥ २८ ॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणामिततेजसा ।
वानराधिपतिः श्रीमांस्तैश्च सर्वैः समावृतः ॥
प्रविश्यान्तःपुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य सोऽब्रवीत् ॥ २९ ॥

प्रिये त्वं सह नारीभिर्वानराणां महात्मनाम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञाता मैथिलीप्रियकाम्यया ॥ ३० ॥

त्वर त्वमभिगच्छामो गृह्य वानरयोषितः ।
अयोध्यां दर्शयिष्यामः सर्वा दशरथस्त्रियः ॥ ३१ ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तारा सर्वाङ्गशोभना ।
आहूय चाब्रवीत्सर्वा वानराणां तु योषितः ॥ ३२ ॥

सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता गन्तुं सर्वैश्च वानरैः ।
मम चापि प्रियं कार्यमयोध्यादर्शनेन च ॥ ३३ ॥

प्रवेशं चापि रामस्य पौरजानपदैः सह ।
विभूतिं चैव सर्वासां स्त्रीणां दशरथस्य च ॥ ३४ ॥

तारया चाभ्यनुज्ञाताः सर्वा वानरयोषितः ।
नेपथ्यं विधिपूर्वेण कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ ३५ ॥

अध्यारोहन्विमानं तत्सीतादर्शनकाङ्क्षया ।
दृष्ट्वा सीतां ततः सर्वा विस्मिता वाग्भिरीडिरे ॥ ३६ ॥

ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः ।
ऋश्यमूकसमीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥ ३७ ॥

दृश्यतेऽसौ महान्सीते सविद्युदिव तोयदः ।
ऋश्यमूको गिरिश्रेष्ठः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः ॥ ३८ ॥

अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः ।
समयश्च कृतः सीते वधार्थं वालिनो मया ॥ ३९ ॥

एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना ।
त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः ॥ ४० ॥
अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारिणी ।
अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया ॥ ४१ ॥
दृश्यते च जनस्थाने सीते श्रीमान्वनस्पतिः ।
यत्र युद्धं महद्वृत्तं तव हेतोर्विलासिनि ॥
रावणस्य नृशंसस्य जटायोश्च महात्मनः ॥ ४२ ॥
खरश्च निहतो यत्र दूषणश्च निपातितः ।
त्रिशिराश्च महावीर्यो मया बाणैरजिह्मगैः ॥
एतत्तदाश्रमपदमस्माकं वरवर्णिनि ॥ ४३ ॥
पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शना ।
यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात् ॥ ४४ ॥
एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शिवा ।
अगस्त्यस्याश्रमो ह्येष दृश्यते पश्य मैथिलि ॥ ४५ ॥
दीप्तश्चैवाश्रमो ह्येष सुतीक्ष्णस्य महात्मनः ॥ ४६ ॥
वैदेहि दृश्यते चात्र शरभङ्गाश्रमो महान् ।
उपयातः सहस्राक्षो यत्र शक्रः पुरन्दरः ॥ ४७ ॥
अस्मिन्देशे महाकायो विराधो निहतो मया ॥ ४८ ॥
एते हि तापसावासा दृश्यन्ते तनुमध्यमे ।
अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरप्रभः ॥
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ॥ ४९ ॥

असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते ।
यत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ॥ ५० ॥

एषा सा यमुना दूराद्दृश्यते चित्रकानना ॥ ५१ ॥

भरद्वाजाश्रमो यत्र श्रीमानेष प्रकाशते ॥ ५२ ॥

एषा त्रिपथगा गङ्गा दृश्यते वरवर्णिनि ।
नानाद्विजगणाकीर्णा संप्रपुष्पितकानना ॥ ५३ ॥

शृङ्गिबेरपुरं चैतद्गुहो यत्र समागतः ॥ ५४ ॥

एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यूपमालिनी ।
नानातरुशताकीर्णा संप्रपुष्पितकानना ॥ ५५ ॥

एषा सा दृश्यतेऽयोध्या राजधानी पितुर्मम ।
अयोध्यां कुरु वैदेहि प्रणामं पुनरागता ॥ ५६ ॥

ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः ।
उत्पत्योत्पत्य ददृशुस्तां पुरीं शुभदर्शनाम् ॥ ५७ ॥

ततस्तु तां पाण्डुरहर्म्यमालिनीं
विशालकक्ष्यां गजवाजिसङ्कुलाम् ॥
पुरीमयोध्यां ददृशुः प्लवङ्गमाः
पुरीं महेन्द्रस्य यथाऽमरावतीम् ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20415 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5740

## सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

### भरद्वाजाश्रमप्राप्तिः ॥

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥ १ ॥

सोऽपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम् ॥ २ ॥

शृणोषि कच्चिद्भगवन्सुभिक्षानामयं पुरे ।
कच्चिच्च युक्तो भरतो जीवन्त्यपि च मातरः ॥ ३ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनिः ।
प्रत्युवाच रघुश्रेष्ठं स्मितपूर्वं प्रहृष्टवत् ॥ ४ ॥

पङ्कदिग्धस्तु भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते ।
पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे ॥ ५ ॥

त्वां पुरा चीरवसनं प्रविशन्तं महावनम् ।
स्त्रीतृतीयं च्युतं राज्याद्धर्मकामं च केवलम् ॥ ६ ॥

पदातिं त्यक्तसर्वस्वं पितुर्वचनकारिणम् ।
सर्वभोगैः परित्यक्तं स्वर्गच्युतमिवामरम् ॥ ७ ॥

दृष्ट्वा तु करुणा पूर्वं ममासीत्समितिञ्जय ।
कैकेयीवचने युक्तं वन्यमूलफलाशिनम् ॥ ८ ॥

सांप्रत सुसमृद्धार्थं समित्रगणबान्धवम् ।
समीक्ष्य विजितारिं त्वां मम प्रीतिरनुत्तमा ॥ ९ ॥

सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव ॥ १० ॥

यत्त्वया विपुलं प्राप्तं जनस्थानवधादिकम् ।
ब्राह्मणार्थे नियुक्तस्य रक्षितुः सर्वतापसान् ॥ ११ ॥
रावणेन हृता भार्या बभूवेयमनिन्दिता ।
मारीचदर्शनं चैव सीतोन्मथनमेव च ॥ १२ ॥
कबन्धदर्शनं चैव पम्पाभिगमनं तथा ।
सुग्रीवेण च ते सख्यं यच्च वाली हतस्त्वया ॥ १३ ॥
मार्गणं चैव वैदेह्याः कर्म वातात्मजस्य च ।
विदितायां च वैदेह्यां नलसेतुर्यथा कृतः ॥ १४ ॥
यथा त्वा दीपिता लङ्का प्रहृष्टैर्हरियूथपैः ।
सपुत्रबान्धवामात्यः सबलः सहवाहनः ॥ १५ ॥
यथा विनिहतः संख्ये रावणो देवकण्टकः ।
समागमश्च त्रिदशैर्यथा दत्तश्च ते वरः ॥ १६ ॥
सर्वं ममैतद्विदितं तपसा धर्मवत्सल ।
संपतन्ति च मे शिष्या प्रवृत्त्याख्याः पुरीमितः ॥ १७ ॥
अहमप्यत्र ते दद्मि वरं शस्त्रभृतां वर ॥ १८ ॥
अर्घ्यमद्य गृहाणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि ॥ १९ ॥
तस्य तच्छिरसा वाक्यं प्रतिगृह्य नृपात्मजः ।
बाढमित्येव संहृष्टो धीमान्वरमयाचत ॥ २० ॥
अकाले फलिनो वृक्षाः सर्वे चापि मधुस्रवाः ।
फलान्यमृतकल्पानि बहूनि विविधानि च ॥
भवन्तु मार्गे भगवन्नयोध्यां प्रतिगच्छतः ॥ २१ ॥

तथेति च प्रतिज्ञाते वचनात्समनन्तरम् ।
अभवन्पादपास्तत्र स्वर्गपादपसन्निभाः ॥ २२ ॥

निष्फलाः फलिनश्चासन्विपुष्पाः पुष्पशालिनः ।
शुष्काः समग्रपत्रास्ते नगाश्चैव मधुस्रवाः ॥
सर्वतो योजनास्त्रीणि गच्छतामभवंस्तदा ॥ २३ ॥

ततः प्रहृष्टाः प्लवगर्षभास्ते बहूनि दिव्यानि फलानि चैव ।
कामादुपाश्नन्ति सहस्रशस्ते मुदाऽन्विताः स्वर्गजितो यथैव ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः

आदितः श्लोकाः 20439 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5764

## अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२८ ॥

### भरतं प्रति हनुमत्प्रेषणम् ॥

अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः ।
प्रियकामः प्रियं रामस्ततस्त्वरितविक्रमः ॥ १ ॥
चिन्तयित्वा ततो दृष्टिं वानरेषु न्यपातयत् ॥ २ ॥
उवाच धीमांस्तेजस्वी हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ।
अयोध्यां त्वरितो गत्वा शीघ्रं प्लवगसत्तम ॥
जानीहि कच्चित्कुशली जनो नृपतिमन्दिरे ॥ ३ ॥
शृङ्गिबेरपुरं प्राप्य गुहं गहनगोचरम् ।
निषादाधिपतिं ब्रूहि कुशलं वचनान्मम ॥ ४ ॥

श्रुत्वा तु मां कुशलिनमरोगं विगतज्वरम् ।
भविष्यति गुहः प्रीतः स ममात्मसमः सखा ॥ ५ ॥

अयोध्यायाश्च ते मार्गं प्रवृत्तिं भरतस्य च ।
निवेदयिष्यति प्रीतो निषादाधिपतिर्गुहः ॥ ६ ॥

भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम ।
सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम् ॥ ७ ॥

हरणं चापि वैदेह्या रावणेन बलीयसा ।
सुग्रीवेण च संसर्गं वालिनश्च वधं रणे ॥ ८ ॥

मैथिल्यन्वेषणं चैव यथा चाधिगता त्वया ।
लङ्घयित्वा महातोयमापगापतिमव्ययम् ॥ ९ ॥

उपयानं समुद्रस्य सागरस्य च दर्शनम् ।
यथा च कारितः सेतू रावणश्च यथा हतः ॥ १० ॥

वरदानं महेन्द्रेण ब्रह्मणा वरुणेन च ।
महादेवप्रसादाच्च पित्रा मम समागमम् ॥ ११ ॥

उपयातं च मां सौम्य भरताय निवेदय ।
सह राक्षसराजेन हरीणामीश्वरेण च ॥ १२ ॥

जित्वा शत्रुगणान्रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः ।
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥ १३ ॥

एतच्छ्रुत्वा यमाकारं भजते भरतस्तदा ।
स च ते वेदितव्यः स्यात्सर्वं यच्चापि मां प्रति ॥ १४ ॥

ज्ञेयाश्च सर्वे वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च ।
तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्या व्याभाषणेन च ॥ १५ ॥

सर्वकामसमृद्धं हि हस्त्यश्वरथसंकुलम् ।
पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः ॥ १६ ॥

सङ्गत्या भरतः श्रीमान्राज्यार्थी चेत्स्वयं भवेत् ।
प्रशास्तु वसुधां कृत्स्नामखिलां रघुनन्दनः ॥ १७ ॥

तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर ।
यावन्न दूरं याताः स्म क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥ १८ ॥

इति प्रतिसमादिष्टो हनुमान्मारुतात्मजः ।
मानुषं धारयन्रूपमयोध्यां त्वरितो ययौ ॥ १९ ॥

अथोत्पपात वेगेन हनुमान्मारुतात्मजः ।
गरुत्मानिव वेगेन जिघृक्षन्भुजगोत्तमम् ॥ २० ॥

लङ्घयित्वा पितृपदं भुजगेन्द्रालयं शुभम् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्यं सन्निपातमतीत्य च ॥ २१ ॥

शृङ्गिबेरपुरं प्राप्य गुहमासाद्य वीर्यवान् ।
स वाचा शुभया हृष्टो हनुमानिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

सखा तु तव काकुत्स्थो रामः सत्यपराक्रमः ।
सहसीतः ससौमित्रिः स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥ २३ ॥

पञ्चमीमद्य रजनीमुषित्वा वचनान्मुनेः ।
भरद्वाजाभ्यनुज्ञातं द्रक्ष्यस्यद्यैव राघवम् ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वा महातेजाः संप्रहृष्टतनूरुहः ।
उत्पपात महावेगो हनुमानविचारयन् ॥ २५ ॥

सोऽपश्यद्रामतीर्थं च नदीं वालुकिनीं तथा ।
गोमतीं तां च सोऽपश्यद्भीमं सालवनं तथा ॥
प्रजाश्च बहुसाहस्रीः स्फीताञ्जनपदानपि ॥ २६ ॥

स गत्वा दूरमध्वानं त्वरितः कपिकुञ्जरः ।
आससाद द्रुमान्फुल्लान्नन्दिग्रामसमीपगान् ॥ २७ ॥

स्त्रीभिः सपुत्रैर्वृद्धैश्च रममाणैरलंकृतान् ।
सुराधिपस्योपवने यथा चैत्ररथे द्रुमान् ॥ २८ ॥

क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥ २९ ॥

जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम् ।
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम् ॥ ३० ॥

समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् ।
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् ॥ ३१ ॥

पादुके ते पुरस्कृत्य शासन्तं वै वसुन्धराम् ।
चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात् ॥ ३२ ॥

उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः ।
बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥ ३३ ॥

न हि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलम् ॥ ३४ ॥

तं धर्ममिव धर्मज्ञं देहवन्तमिवापरम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः ॥ ३५ ॥
वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् ।
अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥ ३६ ॥
प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यक्ष्यसि दारुणम् ।
अस्मिन्मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः ॥
लक्ष्मणेन च वैदेह्या परां प्रीतिमवाप्स्यसि । ३७ ॥
निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम् ।
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः । ३८ ॥
लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी ।
सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण यथा शची ॥ ३९ ॥
एवमुक्तो हनुमता भरतो भ्रातृवत्सलः ।
पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहं जगाम ह ॥ ४० ॥
ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः ।
हनुमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम्॥ ४१ ॥ ४१ ॥
अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिङ्ग्य संभ्रमात् ।
सिषेच भरतः श्रीमान्विपुलैरास्रबिन्दुभिः ॥ ४२ ॥
देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः ।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥ ४३ ॥
गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं परम् ।
सुकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्याश्च षोडश: ॥ ४४ ॥

तत: पश्चाच्छूर्पणखा रामपार्श्वमुपागता ॥ १६ ॥
ततो रामेण संदिष्टो लक्ष्मणः सहसोत्थितः ।
प्रगृह्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः ॥ १७ ॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
हतानि वसता तत्र राघवेण महात्मना ॥१८॥
एकेन सह सङ्गम्य रणे रामेण सङ्गताः ।
अह्नश्चतुर्थभागेन निःशेषा राक्षसाः कृताः ॥ १९ ॥
महाबला महावीर्यास्तपसो विघ्नकारिणः ।
निहता राघवेणाजौ दण्डकारण्यवासिनः ॥ २० ॥
राक्षसाश्च विनिष्पिष्टाः खरश्च निहतो रणे ॥ २१ ॥
ततस्तेनार्दिता बाला रावणं समुपागता ॥ २२ ॥
रावणानुचरो घोरो मारीचो नाम राक्षसः ।
लोभयामास वैदेहीं भूत्वा रत्नमयो मृगः ॥ २३ ॥
अथैनमब्रवीद्रामं वैदेही गृह्यतामिति ।
अहो मनोहरः कान्त आश्रमो नो भविष्यति ॥ २४ ॥
ततो रामो धनुष्पाणिर्धावन्तमनुधावति ।
स तं जघान धावन्तं शरेणानतपर्वणा ॥ २५ ॥
अथ सौम्य दशग्रीवो मृगं याते तु राघवे ।
लक्ष्मणे चापि निष्क्रान्ते प्रविवेशाश्रमं तदा ॥ २६ ॥
जग्राह तरसा सीतां ग्रहः खे रोहिणीमिव ।
त्रातुकामं ततो युद्धे हत्वा गृध्रं जटायुषम् । ॥ २७ ॥

प्रगृह्य सीतां सहसा जगामाशु स रावणः ॥ २८ ॥
ततस्त्वद्भुतसङ्काशाः स्थिताः पर्वतमूर्धनि ।
सीतां गृहीत्वा गच्छन्तं वानराः पर्वतोपमाः ॥
ददृशुर्विस्मितास्तत्र रावणं राक्षसाधिपम् ॥ २९ ॥
प्रविवेश ततो लङ्कां रावणो लोकरावणः ॥ ३० ॥
तां सुवर्णपरिक्रान्ते शुभे महति वेश्मनि ।
प्रवेश्य मैथिलीं वाक्यैः सान्त्वयामास रावणः ॥ ३१ ॥
तृणवद्भाषितं तस्य तं च नैर्ऋतपुङ्गवम् ।
अचिन्तयन्ती वैदेही अशोकवनिकां गता ॥ ३२ ॥
न्यवर्तत ततो रामो मृगं हत्वा महावने ।
निवर्तमानः काकुत्स्थ अदृष्ट्वा विव्यथे खगम् ॥ ३३ ॥
गृध्रं हतं ततो दग्ध्वा रामः प्रियसखं पितुः ।
मार्गमाणस्तु वदेहीं राघवः सहलक्ष्मणः ॥
गोदावरीमन्वचरद्वनोद्देशांश्च पुष्पितान् ॥ ३४ ॥
आसेदतुर्महारण्ये कबन्धं नाम राक्षसम् ॥ ३५ ॥
ततः कबन्धवचनाद्रामः सत्यपराक्रमः ।
ऋश्यमूकं गिरिं गत्वा सुग्रीवेण समागतः ॥ ३६ ॥
तयोः समागमः पूर्वं प्रीत्या हार्दो व्यजायत ।
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन सुग्रीवो वालिना पुरा ॥
इतरेतरसंवादात्प्रगाढः प्रणयस्तयोः ॥ ३७ ॥
रामस्य बाहुवीर्येण स्वराज्यं प्रत्यपादयत् ।
वालिनं समरे हत्वा महाकायं महाबलम् ॥ ३८ ॥

सुग्रीवः स्थापितो राज्ये सहितः सर्ववानरैः ।
रामाय प्रतिजानीते राजपुत्र्याश्च मार्गणम् ॥ ३९ ॥
आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महात्मना ।
दश कोट्यः प्लवङ्गानां सर्वाः प्रस्थापिता दिशः ॥ ४० ॥
तेषां नो विप्रकृष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
भृशं शोकाभितप्तानां महान्कालोऽत्यवर्तत ॥ ४१ ॥
भ्राता तु गृध्रराजस्य संपातिर्नाम वीर्यवान् ।
समाख्याति स्म वसतिं सीताया रावणालये ॥ ४२ ॥
सोऽहं शोकपरीतानां दुःखं तज्ज्ञातिनां नुदन् ।
आत्मवीर्यं समास्थाय योजनानां शतं प्लुतः ॥ ४३ ॥
तत्राहमेकामद्राक्षमशोकवनिकां गताम् ।
कौशेयवस्त्रां मलिनां निरानन्दां दृढव्रताम् ॥ ४४ ॥
तया समेत्य विधिवत्पृष्ट्वा सर्वमनिन्दिताम् ।
अभिज्ञानं मया दत्तं रामनामाङ्गुलीयकम् ॥ ४५ ॥
तं दृष्ट्वा परमप्रीता विशश्वास च मैथिली ॥ ४६ ॥
रावणं च ततो दृष्ट्वा कृत्वा लङ्कां च भस्मसात् ।
अभिज्ञानं मणिं लब्ध्वा चरितार्थोऽहमागतः ॥ ४७ ॥
मया च पुनरागम्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
अभिज्ञानं मया दत्तमर्चिष्मान्स महामणिः ॥ ४८ ॥
श्रुत्वा तु मैथिलीं हृष्टस्त्वाशशंसे च जीवितम् ।
जीवितान्तमनुप्राप्तः पीत्वाऽमृतमिवातुरः ॥ ४९ ॥

उद्योजयिष्यन्नुद्योगं दध्रे कामं वधे मनः ।
जिघांसुरिव लोकान्ते सर्वाल्लोकान्विभावसुः ॥ ५० ॥
ततः समुद्रमासाद्य नलं सेतुमकारयत् ।
अतरत्कपिवीराणां वाहिनी तेन सेतुना ॥ ५१ ॥
प्रहस्तमवधीन्नीलः कुम्भकर्णं तु राघवः ।
लक्ष्मणो रावणसुतं स्वयं रामस्तु रावणम् ॥ ५२ ॥
स शक्रेण समागम्य यमेन वरुणेन च ।
महेश्वरस्वयंभूभ्यां तथा दशरथेन च ॥ ५३ ॥
तैश्च दत्तवरः श्रीमानृषिभिश्च समागतैः ।
सुरर्षिभिश्च काकुत्स्थो वराँल्लेभे परन्तपः ॥ ५४ ॥
स तु दत्तवरः प्रीत्या वानरैश्च समागतः ।
समग्रबलसंयुक्तो राज्यं दत्त्वा विभीषणे ॥
पुष्पकेण विमानेन किष्किन्धामभ्युपागमत् ॥ ५५ ॥
तं गङ्गां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसन्निधौ ।
अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि ॥ ५६ ॥
ततस्तु सत्यं हनुमद्वचो महन्निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः।
उवाच वाणीं मनसः प्रहर्षिणीं चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकोनत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20542 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5867

## त्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३० ॥

### श्रीरामभरतसमागमः ॥

श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः ।
हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा ॥ १ ॥

दैवतानि च सर्वाणि चैत्यानि नगरस्य च ।
सुगन्धमाल्यैर्वादित्रैरर्चन्तु शुचयो नराः ॥ २ ॥

सूताः स्तुतिपुराणज्ञाः सर्वे वैतालिकास्तथा ।
सर्वे वादित्रकुशला गणिकाश्चापि सङ्घशः ॥ ३ ॥

राजदारास्तथाऽमात्याः सैन्याः सेनागणाङ्गनाः ।
ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः ॥ ४ ॥

अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम् ॥ ५ ॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा ।
विष्टीरनेकसाहस्राश्चोदयामास वीर्यवान् ॥ ६ ॥

समीकुरुत निम्नानि विषमाणि समानि च ।
स्थलानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम् ॥ ७ ॥

सिञ्चन्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतेन वारिणा ।
ततोऽभ्यवकिरन्त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वशः ॥ ८ ॥

समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे ।
शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ ९ ॥

स्रग्दामभिर्मुक्तपुष्पैः सुगन्धैः पञ्चवर्णकैः ।
राजमार्गमसंबाधं किरन्तु शतशो नराः ॥ १० ॥

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो ह्यर्थसाधकः ।
अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः ॥
मत्तैर्नागसहस्रैश्च शातकुम्भविभूषितैः ॥ ११ ॥

अपरे हेमकक्ष्याभिः सगजाभिः करेणुभिः ।
निर्ययुस्तुरगाक्रान्तै रथैश्च सुमहारथाः ॥ १२ ॥

शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सध्वजानां पताकिनाम् ।
तुरगाणां सहस्रैश्च मुख्यैर्मुख्यनरान्वितैः ॥
पदातीनां सहस्रैश्च वीराः परिवृता ययुः ॥ १३ ॥

ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः ।
कौसल्यां प्रमुखे कृत्वा सुमित्रां चापि निर्ययुः ॥ १४ ॥

कैकेय्या सहिताः सर्वा नन्दिग्राममुपागमन् ॥ १५ ॥

अश्वानां खुरशब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
शङ्खदुन्दुभिनादेन संचचालेव मेदिनी ॥ १६ ॥

गजानां बृंहितैश्चापि शङ्खदुन्दुभिनिस्वनैः ।
कृत्स्नं च नगरं तत्तु नन्दिग्राममुपागमत् ॥ १७ ॥

द्विजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः ।
माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः ॥ १८ ॥

शङ्खभेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिवन्दितः ।
आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः ॥ १९ ॥

पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम् ।
शुक्ले च वालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते ॥ २० ॥

उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ।
भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः ॥ २१ ॥

प्रत्युद्ययौ ततो रामं महात्मा सचिवैः सह ॥ २२ ॥

समीक्ष्य भरतो वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ॥ २३ ॥

कच्चिन्न खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता ।
न हि पश्यामि काकुत्स्थं राममार्यं परन्तपम् ॥
कच्चिन्न खलु दृश्यन्ते वानराः कामरूपिणः ॥ २४ ॥

अथैवमुक्ते वचने हनुमानिदमब्रवीत् ।
अर्थं विज्ञापयन्नेव भरतं सत्यविक्रमम् ॥ २५ ॥

सदाफलान्कुसुमितान्वृक्षान्प्राप्य मधुस्रवान् ।
भरद्वाजप्रसादेन मत्तभ्रमरनादितान् ॥ २६ ॥

तस्य चैष वरो दत्तो वासवेन परन्तप ।
ससैन्यस्य तथाऽऽतिथ्यं कृतं सर्वगुणान्वितम् ॥ २७ ॥

निस्वनः श्रूयते भीमः प्रहृष्टानां वनौकसाम् ।
मन्ये वानरसेना सा नदीं तरति गोमतीम् ॥ २८ ॥

रजोवर्षं समुद्भूतं पश्य वालुकिनीं प्रति ।
मन्ये सालवनं रम्यं लोलयन्ति प्लवङ्गमाः ॥ २९ ॥

तदेतद्दृश्यते दूराद्विमलं चन्द्रसन्निभम् ।
विमानं पुष्पकं दिव्यं मनसा ब्रह्मनिर्मितम् ॥
रावणं बान्धवैः सार्धं हत्वा लब्धं महात्मना ॥ ३० ॥

तरुणादित्यसङ्काशं विमानं रामवाहनम् ।
धनदस्य प्रसादेन दिव्यमेतन्मनोजवम् ॥ ३१ ॥

एतस्मिन्भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या सह राघवौ ।
सुग्रीवश्च महातेजा राक्षसश्च विभीषणः ॥ ३२ ॥

एवं ब्रुवति काकुत्स्थं हनूमत्यतिवेगिना ।
विमानेनाभवन्सर्वे नन्दिग्रामसमीपगाः ॥ ३३ ॥

ततो हर्षसमुद्भूतो निस्वनो दिवमस्पृशत् ।
स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते ॥ ३४ ॥

रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महीं गताः ।
ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे ॥ ३५ ॥

प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः ।
स्वागतेन यथार्थेन ततो राममपूजयत् ॥ ३६ ॥

मनसा ब्रह्मणा सृष्टे विमाने भरताग्रजः ।
रराज पृथुदीर्घाक्षो वज्रपाणिरिवापरः ॥ ३७ ॥

ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा ।
ववन्दे प्रयतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥ ३८ ॥

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् ।
हंसयुक्तं महावेगं निष्पपात महीतले ॥ ३९ ॥

आरोपितो विमानं तद्भरतः सत्यविक्रमः ।
राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥ ४० ॥

तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् ।
अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे ॥ ४१ ॥

ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः ।
अभिवाद्य ततः प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥ ४२ ॥

सुग्रीवं कैकयीपुत्रो जाम्बवन्तं तथाऽङ्गदम् ।
मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं परिषस्वजे ॥ ४३ ॥

सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् ।
शरभं पनसं चैव भरतः परिषस्वजे ॥ ४४ ॥

ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः ।
कुशलं पर्यपृच्छंस्ते प्रहृष्टा भरतं तदा ॥ ४५ ॥

अथाब्रवीद्राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥ ४६ ॥

त्वमस्माकं चतुर्णां तु भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ।
सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ॥ ४७ ॥

विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत् ।
दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥ ४८ ॥

शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् ।
सीतायाश्चरणौ पश्चाद्ववन्दे विनयान्वितः ॥ ४९ ॥

रामो मातरमासाद्य विषण्णां शोककर्शिताम् ।
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन् ॥ ५० ॥

अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।
स मातृश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागमत् ॥ ५१ ॥

स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन ।
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन् ॥ ५२ ॥

तान्यञ्जलिसहस्राणि प्रगृहीतानि नागरैः ।
व्याकोशानीव पद्मानि ददर्श भरताग्रजः ॥ ५३ ॥

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् ।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित् ॥ ५४ ॥

अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥

एतत्ते रक्षितं राजन्राज्यं निर्यातितं मया ।
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः ॥ ५६ ॥

यस्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम् ।
अवेक्षतां भवान्कोशं कोष्ठागारं पुरं बलम् ॥
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ॥ ५७ ॥

तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम् ।
मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः ॥ ५८ ॥

ततः प्रहर्षाद्भरतमङ्कमारोप्य राघवः ।
ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम् ॥ ५९ ॥

भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा ।
अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले ॥ ६० ॥

अब्रवीच्च तदा रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ।
वह वैश्रवणं देवमनुजानामि गम्यताम् ॥ ६१ ॥

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् ।
उत्तरां दिशमागम्य जगाम धनदालयम् ॥ ६२ ॥

पुरोहितस्यात्मसमस्य राघवो बृहस्पतेः शक्र इवामराधिपः ।
निपीड्य पादौ पृथगासने शुभे सहैव तेनोपविवेश वीर्यवान् ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे त्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20604 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 5929

## एकत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३१ ॥

### श्रीरामपट्टाभिषेकः ॥

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेय्यानन्दवर्धनः ।
बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १ ॥

पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ।
तद्ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम ॥ २ ॥

धुरमेकाकिना न्यस्तामृषभेण बलीयसा ।
किशोरवद्गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे ॥ ३ ॥

वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरन् ।
दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम् ॥ ४ ॥

गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः ।
नान्वेतुमुत्सहे राम तव मार्गमरिन्दम ॥ ५ ॥

यथा चारोपितो वृक्षो जातश्चान्तर्निवेशने ।
महांश्च सुदुरारोहो महास्कन्धप्रशाखवान् ॥ ६ ॥

शीर्येत पुष्पितो भूत्वा न फलानि प्रदर्शयन् ।
तस्य नानुभवेदर्थं यस्य हेतोः स रोप्यते ॥ ७ ॥

एषोपमा महाबाहो त्वदर्थं वेत्तुमर्हसि ।
यद्यस्मान्मनुजेन्द्र त्वं भक्तान्भृत्यान्न शाधि हि ॥ ८ ॥

जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु सर्वतः ।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥ ९ ॥

तूर्यसङ्घातनिर्घोषैः काञ्चीनूपुरनिस्वनैः ।
मधुरैर्गीतशब्दैश्च प्रतिबुध्यस्व राघव ॥ १० ॥

यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुन्धरा ।
तावत्त्वमिह सर्वस्य स्वामित्वमनुवर्तय ॥ ११ ॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः ।
तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे ॥ १२ ॥

ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धकाः ।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्युपासत ॥ १३ ॥

पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले ।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥ १४ ॥

विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
महार्हवसनो रामस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥ १५ ॥

प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान् ।
लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥ १६ ॥

प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः ।
आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ॥ १७ ॥

ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम् ।
चकार यत्नात्कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ॥ १८ ॥

ततः शत्रुघ्नवचनात्सुमन्त्रो नाम सारथिः ।
योजयित्वाऽभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम् ॥ १९ ॥

अर्कमण्डलसङ्काशं दिव्यं दृष्ट्वा रथोत्तमम् ।
आरुरोह महाबाहू रामः सत्यपराक्रमः ॥ २० ॥

सुग्रीवो हनुमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती ।
स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ ॥ २१ ॥

वराभरणसम्पन्ना ययुस्ताः शुभकुण्डलाः ।
सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः ॥ २२ ॥

अयोध्यायां तु सचिवा राज्ञो दशरथस्य ये ।
पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत् ॥ २३ ॥

अशोको विजयश्चैव सुमन्त्रश्चैव सङ्गताः ।
मन्त्रयन्रामवृद्ध्यर्थमृद्ध्यर्थं नगरस्य च ॥ २४ ॥

सर्वमेवाभिषेकार्थं जयार्हस्य महात्मनः ।
कर्तुमर्हथ रामस्य यद्यन्मङ्गलपूर्वकम् ॥ २५ ॥

इति ते मन्त्रिणः सर्वे सन्दिश्य तु पुरोहितम् ।
नगरान्निर्ययुस्तूर्णं रामदर्शनबुद्धयः ॥ २६ ॥

हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः ।
प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥ २७ ॥

जग्राह भरतो रश्मीञ्छत्रुघ्नश्छत्रमाददे ।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि सम्पर्यवीजयत् ॥ २८ ॥

श्वेतं च वालव्यजनं जग्राह पुरतः स्थितः ।
अपरं चन्द्रसङ्काशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥ २९ ॥

ऋषिसङ्घैस्तदाऽऽकाशे देवैश्च समरुद्गणैः ।
स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः ॥ ३० ॥

ततः शत्रुञ्जयं नाम कुञ्जरं पर्वतोपमम् ।
आरुरोह महातेजाः सुग्रीवः प्लवगर्षभः ॥ ३१ ॥

नव नागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः ।
मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः ॥ ३२ ॥

शङ्खभेरीप्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निस्वनैः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्यमालिनीम् ॥ ३३ ॥

ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम् ।
विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥ ३४ ॥

ते वर्धयित्वा काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम् ॥ ३५ ॥

अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः ।
श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ ३६ ॥

स पुरोगामिभिस्तूर्यैस्तालस्वस्तिकपाणिभिः ।
प्रव्याहरद्भिर्मुदितैर्मङ्गलानि ययौ वृतः ॥ ३७ ॥

अक्षतं जातरूपं च गावः कन्यास्तथा द्विजाः ।
नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥ ३८ ॥

सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे ।
वानराणां च तत्कर्म राक्षसानां च तद्बलम् ॥
विभीषणस्य संयोगमाचचक्षे च मन्त्रिणाम् ॥ ३९ ॥

श्रुत्वा तु विस्मयं जग्मुरयोध्यापुरवासिनः ॥ ४० ॥

द्युतिमानेतदाख्याय रामो वानरसंवृतः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णामयोध्यां प्रविवेश ह ॥ ४१ ॥

ततो ह्यभ्युच्छ्रयन्पौराः पताकास्ते गृहे गृहे ॥ ४२ ॥

ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम् ॥ ४३ ॥

पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च महात्मनः ।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीमभिवाद्य च ॥ ४४ ॥

अथाब्रवीद्राजसुतो भरतं धर्मिणां वरम् ।
अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः ॥ ४५ ॥

यच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत् ।
मुक्तावैडूर्यसङ्कीर्णं सुग्रीवाय निवेदय ॥ ४६ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः ।
पाणौ गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम् ॥ ४७ ॥
ततस्तैलप्रदीपांश्च पर्यङ्कास्तरणानि च ।
गृहीत्वा विविशुः क्षिप्रं शत्रुघ्नेन प्रचोदिताः ॥ ४८ ॥
उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवानुजः ।
अभिषेकाय रामस्य दूतानाज्ञापय प्रभो ॥ ४९ ॥
सौवर्णान्वानरेन्द्राणां चतुर्णां चतुरो घटान् ।
ददौ क्षिप्रं स सुग्रीवः सर्वरत्नविभूषितान् ॥ ५० ॥
यथा प्रत्यूषसमये चतुर्णां सागराम्भसाम् ।
पूर्णैर्घटैः प्रतीक्षध्वं तथा कुरुत वानराः ॥ ५१ ॥
एवमुक्ता महात्मानो वानरा वारणोपमाः ।
उत्पेतुर्गगनं शीघ्रं गरुडा इव शीघ्रगाः ॥ ५२ ॥
जाम्बवांश्च हनूमांश्च वेगदर्शी च वानरः ।
ऋषभश्चैव कलशाञ्जलपूर्णानथानयन् ॥ ५३ ॥
नदीशतानां पञ्चानां जलं कुम्भेषु चाहरन् ॥ ५४ ॥
पूर्वात्समुद्रात्कलशं जलपूर्णमथानयत् ।
जाम्बवान् सत्त्वसम्पन्नः सर्वरत्नविभूषितम् ॥ ५५ ॥
ऋषभो दक्षिणात्तूर्णं समुद्राज्जलमाहरत् ।
रक्तचन्दनशाखाभिः संवृतं काञ्चनं घटम् ॥ ५६ ॥

गवयः पश्चिमात्तोयमाजहार महार्णवात् ।
रत्नकुम्भेन महता शीतं मारुतविक्रमः ॥ ५७ ॥
उत्तराच्च जलं शीघ्रं गरुडानिलविक्रमः ।
आजहार स धर्मात्मा हनुमान् मारुतात्मजः ॥ ५८ ॥
ततस्तैर्वानरश्रेष्ठैरानीतं प्रेक्ष्य तज्जलम् ।
अभिषेकाय रामस्य शत्रुघ्नः सचिवैः सह ॥
पुरोहिताय श्रेष्ठाय सुहृद्भ्यश्च न्यवेदयत् ॥ ५९ ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

## ॥ श्रीरामस्य पट्टाभिषेकघट्टः ॥

ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह ।
रामं रत्नमये पीठे सहसीतं न्यवेशयत् ॥ ६० ॥
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः ।
कात्यायनः सुयज्ञश्च गौतमो विजयस्तथा ॥ ६१ ॥
अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना ।
सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥ ६२ ॥
ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तदा ।
योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते संप्रहृष्टाः सनैगमैः ॥ ६३ ॥
सर्वौषधिरसैर्दिव्यैर्दैवतैर्नभसि स्थितैः ।
चतुर्भिर्लोकपालैश्च सर्वैर्देवैश्च सङ्गतैः ॥ ६४ ॥
छत्रं तु तस्य जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम् ।
श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥
अपरं चन्द्रसङ्काशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥ ६५ ॥

मालां ज्वलन्तीं वपुषा काञ्चनीं शतपुष्कराम् ।
राघवाय ददौ वायुर्वासवेन प्रचोदितः ॥ ६६ ॥

सर्वरत्नसमायुक्तं मणिरत्नविभूषितम् ।
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः ॥ ६७ ॥

प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
अभिषेके तदर्हस्य तदा रामस्य धीमतः ॥ ६८ ॥

भूमिः सस्यवती चैव फलवन्तश्च पादपाः ।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि बभूवू राघवोत्सवे ॥ ६९ ॥

सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा ।
ददौ शतं वृषान्पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः ॥ ७० ॥

त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ।
नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः ॥ ७१ ॥

अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम् ।
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजर्षभः ॥ ७२ ॥

वैडूर्यमणिचित्रे च वज्ररत्नविभूषिते ।
वालिपुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ ॥ ७३ ॥

मणिप्रवरजुष्टं च मुक्ताहारमनुत्तमम् ।
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम् ॥ ७४ ॥

अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च ।
अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे ॥ ७५ ॥

अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ।
अवैक्षत हरीन्सर्वान्भर्तारं च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥
तामिङ्गितज्ञः संप्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम् ।
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टाऽसि भामिनि ॥ ७७ ॥
तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः ।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि सर्वशः ॥ ७८ ॥
ददौ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा ॥ ७९ ॥
हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः ।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाऽचलः ॥ ८० ॥
ततो द्विविदमैन्दाभ्यां नीलाय च परन्तपः ।
सर्वान्कामगुणान्वीक्ष्य प्रददौ वसुधाधिपः ॥ ८१ ॥
सर्ववानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरेश्वराः ।
वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः ॥ ८२ ॥
विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनुमाञ्जाम्बवांस्तथा ।
सर्ववानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ८३ ॥
यथार्हं पूजिताः सर्वैः कामै रत्नैश्च पुष्कलैः ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥ ८४ ॥
नत्वा सर्वे महात्मानं ततस्ते प्लवगर्षभाः ।
विसृष्टाः पार्थिवेन्द्रेण किष्किन्धामभ्युपागमन् ॥ ८५ ॥
सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम् ।
पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत्पुरीम् ॥ ८६ ॥

विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह तैर्नैर्ऋतर्षभैः ।
लब्ध्वा कुलधनं राजा लङ्कां प्रायान्महायशाः ॥ ८७ ॥
स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः ।
राघवः परमोदारः शशास परया मुदा ॥ ८८ ॥
उवाच लक्ष्मणं रामो धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥ ८९ ॥
आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन ।
तुल्यं मया त्वं पितृभिर्धृता या तां यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व ॥
सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सौमित्रिरुपैति योगम् ।
नियुज्यमानोऽपि च यौवराज्ये ततोऽभ्यषिञ्चद्भरतं महात्मा ॥
पौण्डरीकाश्वमेधाभ्यां वाजपेयेन चासकृत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरयजत्पार्थिवर्षभः ॥ ९२ ॥
राज्यं दश सहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः ।
शताश्वमेधानाजह्रे सदश्वान्भूरिदक्षिणान् ॥ ९३ ॥
आजानुलम्बबाहुः स महास्कन्धः प्रतापवान् ।
लक्ष्मणानुचरो रामः पृथिवीमन्वपालयत् ॥ ९४ ॥
राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ।
ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुहृज्ज्ञातिबान्धवैः ॥ ९५ ॥
न पर्यदेवन्विधवा न च व्यालकृतं भयम् ।
न व्याधिजं भयं वापि रामे राज्यं प्रशासति ॥ ९६ ॥
निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थः कंचिदस्पृशत् ।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ ९७ ॥

सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वो धर्मपरोऽभवत् ।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन्परस्परम् ॥ ९८ ॥

आसन्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ।
निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥ ९९ ॥

रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ।
रामभूतं जगद्भूद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ १०० ॥

नित्यपुष्पा नित्यफलास्तरवः स्कन्धविस्तृताः ।
काले वर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥ १०१ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः ।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ॥ १०२ ॥

आसन्प्रजा धर्मरता रामे शासति नानृताः ।
सर्वे लक्षणसंपन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ॥ १०३ ॥

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान्रामो राज्यमकारयत् ॥ १०४ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम् ।
आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥
यः पठेच्छृणुयाल्लोके नरः पापाद्विमुच्यते ॥ १०५ ॥

पुत्रकामस्तु पुत्रान्वै धनकामो धनानि च ।
लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥ १०६ ॥

महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ।
राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च ॥
भरतेनेव कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः ॥ १०७ ॥

श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ।
रामस्य विजयं चैव सर्वमक्लिष्टकर्मणः ॥ १०८ ॥

शृणोति य इदं काव्यमार्षं वाल्मीकिना कृतम् ।
श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ॥ १०९ ॥

समागमं प्रवासान्ते लभते चापि बान्धवैः ।
प्रार्थितांश्च वरान्सर्वान्प्राप्नुयादिह राघवात् ॥ ११० ॥

श्रवणेन सुराः सर्वे प्रीयन्ते संप्रशृण्वताम् ।
विनायकाश्च शाम्यन्ति गृहे तिष्ठन्ति यस्य वै ॥ १११ ॥

विजयेत महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान्व्रजेत् ।
स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान्सूयुरनुत्तमान् ॥ ११२ ॥

पूजयंश्च पठंश्चेममितिहासं पुरातनम् ।
सर्वपापात्प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ११३ ॥

प्रणम्य शिरसा नित्यं श्रोतव्यं क्षत्रियैर्द्विजात् ।
ऐश्वर्यं पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः ॥ ११४ ॥

रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा ।
प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥ ११५ ॥

आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ ११६ ॥

कुटुम्बवृद्धिं धनधान्यवृद्धिं स्त्रियश्च मुख्याः सुखमुत्तमं च ।
श्रुत्वा शुभं काव्यमिदं महार्थं प्राप्नोति सर्वां भुवि चार्थसिद्धिम् ॥

आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं सौभ्रातृकं बुद्धिकरं सुखं च ।
श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भिराख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः ॥

एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ ११९ ॥

देवाश्च सर्वे तुष्यन्ति ग्रहणाच्छ्रवणात्तथा ।
रामायणस्य श्रवणात्तुष्यन्ति पितरस्तथा ॥ १२० ॥

भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम् ।
लेखयन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥ १२१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
युद्धकाण्डे एकत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥

आदितः श्लोकाः 20724 युद्धकाण्डे आदितः श्लोकाः 6049

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे पञ्चविंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः ॥

श्री गोमतीतीरे नैमिशारण्ये अश्वमेधयज्ञवाटगतमुनीन्द्रद्विजेन्द्रनरेन्द्र-
ऋक्षगोपुच्छवानरेन्द्रराक्षसेन्द्रपरिवृतस्य मुनिबृन्दारकबृन्दवन्द्यमानकोर-
काकारपादयुगळस्य अयोध्यापुराधीशस्य राजाधिराजस्य कृतज्ञस्य
सकललोकशरण्यस्य सकलजगद्रक्षणजागरूकस्य लोकाभिरामस्य
श्रीरामचन्द्रस्य निकटे गायतोः श्रीरामात्मजयोः कुशलवयोः
आख्याने श्रीमद्रामायणे वर्तमानकथाप्रसङ्गः